सम्प्रेषण-क्षमता की दृष्टि से गुरु गोविन्द सिंह
के
ब्रजभाषा काव्य का मूल्यांकन

The Evaluation of Guru Gobind Singh's Braj Bhasha Poetry from the point of view of power of Communication)

पंजाब विश्वविद्यालय को पी. एच. डी. की उपाधि के लिए प्रस्तुत
शोध प्रबन्ध

प्रस्तुत कर्त्ता

महेश चन्द्र शर्मा

एम. ए.

निर्देशक

डा. कैलाश चन्द्र सिंहल

एम. ए., पी-एच. डो., पी. ई. एस. (II)

प्रवर प्राध्यापक, : स्नातकोत्तर हिन्दो विभाग,
गवर्नमैंट कालेज, लुधियाना ।

वर्ष 1973

सम्प्रेषण क्षमता की दृष्टि से
गुरु गोविन्दसिंह के ब्रज-भाषा काव्य का मूल्यांकन

(Evaluation of Guru Gobind singh Braj Kasha Poetry from the point of view of power of Communication)

पंजाब विश्वविद्यालय से पी-एच-डी की उपाधि के लिए प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

प्रस्तुतकर्ता :

महेशचन्द्र शर्मा
एम-ए.

निर्देशक :

डा० कैलाशचन्द्र सिंहल
एम-ए, पी-एच-डी, पी-ई-एस (II)

प्रवर प्राध्यापक, : स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग,
गवर्नमेण्ट कालेज, लुधियाना .

वर्ष : 1973

:o:o:o:o:o:o:o:o:o:o:o:o:o:o:o:o:o:o:o:o:o:o:o:o:o:o:o:

प्राक्कथन

प्राक्कथन

जब मैं छात्र ही था तो गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी के चुनावों के मध्य खालसा दल की ओर से आयोजित एक सभा में एक मान्य नेता ने अपने भाषण का प्रारम्भ सामान्य परम्परा -' वाहि गुरु का खालसा, वाहि गुरु की फतह '- से न करके 'वाहि गुरु का खालसा ,खालसा जी की फतह -' कह कर ज्यों ही किया उसे सभी गुरुभक्त श्रोताओं के उग्र आक्रोश का सामना करना पड़ा । शब्दों के इस परिवर्तन से अभीष्ट अर्थ को जो आघात पहुँचा है उसे तो गुरु गोविन्द सिंह के काव्य का अनुशीलन करने के पश्चात् कहीं अब समझ पाया हूँ किन्तु दशम गुरु के शब्द जनता-जनार्दन की दृष्टि में वेदवाक्य के समान यथावत् पवित्र और अपरिवर्तनीय हैं इसका बोध मुझे उसी दिन हो गया था ।

गुरु काव्य के अध्ययन के प्रतिरुचि का बीज मेरे अवचेतन में अजाने रूप से उसी दिन आ पड़ा था । इसका अंकुरण भी एक ऐसी ही घटना से हुआ । पंजाबी-हिन्दी का विवाद अपने यौवन पर था । लुधियाना के चौड़े बाज़ार से सटाव रहने के कारण उभय-पक्षीय जलूसों और प्रदर्शनों से प्राय: साक्षात् हो ही जाता था । उन्हीं दिनों नवभारत टाइम्स में श्री किशोरीदास बाजपेयी का एक पत्र छपा जिसका शीर्षक था ' वाहि गुरु का खालसा , वाहि गुरु की फतह ।' पत्र में प्रतिपादित

किया गया था कि गुरु गोविन्दसिंह अखिल-भारतीय रूप में हिन्दी की प्रतिष्ठा चाहते थे। अत: उन्होंने अपना मुख्य नारा क्षेत्रीय भाषा पंजाबी में न लगा कर राष्ट्र भाषा हिन्दी में लगाया। जो अब तक अपने मूल रूप में दरबार साहब एवं सिक्खसंगतों में सर्वत्र लगाया जाता है।

गुरु गोविन्दसिंह की इस एक पंक्ति की ऊहा-पोह ने मेरे हृदय में उनके साहित्य के अनुशीलन की अदम्य भावना उत्पन्न कर डाली और जैसे ही मैं एम.ए. की परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ वैसे ही उनके साहित्य की शोध के लिए उपयुक्त विषय की खोज करने लगा।

दशम गुरु का काव्य अब तक शोधार्थियों के लिये सर्वथा अछूता नहीं रहा था। डा० धर्मपाल अष्टाकृत 'दी पोयट्री आफ दसम ग्रन्थ,' डा० हरिभजन सिंह कृत 'गुरुमुखी लिपि में हिन्दी काव्य,' डा० कुमारी प्रसिन्नी सहगल कृत 'गुरु गोविन्दसिंह और उनका काव्य,' डा० रत्नसिंह जग्गी कृत 'दसम ग्रन्थ की पौराणिक पृष्ठभूमि' तथा डा० महीप सिंह कृत 'गुरुगोविंदसिंह और उनकी हिन्दी कविता' शोध प्रबन्ध प्रकाशित हो चुके थे पर मेरा मन फिर भी गुरु काव्य के प्रतिपादन करने के लिए आग्रही बना था। अत: दशम गुरु के काव्य पर शोध योग्य प्रसंगों पर विचार करने के लिए मैं डा० हज़ारी प्रसाद द्विवेदी भूतपूर्व अध्यक्ष हिन्दी विभागपंजाब विश्वविद्यालय से मिला जिनकी प्रेरणा से मैंने 'सम्प्रेषण क्षमता की दृष्टि से गुरु गोविंद सिंह के ब्रजभाषा काव्य का मूल्यांकन' करना ही अपनी शोध का विषय बनाया। सम्प्रेषण की दृष्टि से हिन्दी के किसी काव्य का मूल्यांकन अभी तक हुआ भी न था। अत: इस सर्वथा अछूते विषय को अपने अभीष्ट के परिवेश में देखना मुझे बड़ा अच्छा लगा। कठिन कार्य भी रुचि के अनुकूल होने पर सरल बन जाता है। बड़ों की यह उक्ति ही इस अनुशीलन अवधि में मेरा सब से बड़ा पाथेय बनी।

प्रस्तुत प्रबन्ध भूमिका के अतिरिक्त ७: अध्यायों में विभक्त है। किसी भी कवि की कृति उसके व्यक्तित्व से पूर्णतया प्रभावित होती है। 'दशम ग्रंथ' भी इसका अपवाद नहीं है। अत: गुरु गोविन्दसिंह के व्यक्तित्व का

विश्लेषण एक प्रकार से आवश्यक था। भूमिका के प्रथम खण्ड में गुरु गोबिन्दसिंह के युगीन परिस्थितियों, तथा उनके व्यक्तित्व और दर्शन पर विचार किया गया है। इस व्यक्तित्व में हम उनके 'सन्त सिपाही' रूप का दर्शन करते हैं।

हमारे अध्ययन का विषय गुरु गोविन्दसिंह का ब्रजभाषा काव्य था। पर काव्य कृतियों को पढ़ते समय ऐसा अनुभव हुआ कि संभवत: यह भाषा ब्रज नहीं है। इस सन्देह के निराकरण के लिए मैंने व्याकरण की दृष्टि से गुरु कवि की कृतियों का अध्ययन किया। अन्त में निष्कर्ष यही निकला कि गुरु जी की अधिकांश कृतियों की भाषा मुख्यतया ब्रज ही है। यद्यपि हिन्दी व पंजाबी आदि का मिश्रण भी उसमें है। भूमिका के दूसरे भाग में गुरु गोविन्दसिंह की भाषा पर व्याकरण की दृष्टि से विहंगावलोकन किया गया है। दशम ग्रन्थ की भाषा का विस्तृत अध्ययन एक पृथक् शोध ग्रन्थ का विषय है। अत: इस विवेचन में हम अधिक गहराई तक नहीं गए हैं।

प्रथम अध्याय में हमने 'सम्प्रेषण' के सम्बन्ध में पाश्चात्य मान्यताओं पर विचार किया है। इसमें रिचर्ड्स के विवेचन को अध्ययन का आधार बनाया है और आगे चल कर उसकी दृष्टि से ही हमने अपनी आलोच्य कृतियों के मूल्यांकन का यत्न किया है।

भारतीय काव्य शास्त्र में भी सम्प्रेषणीयता पर परोक्ष रूप से विचार हुआ है, यह बात सर्व मान्य है। अत: भारतीय काव्य शास्त्र के मुख्य सम्प्रदायों का संक्षिप्त विवेचन हमने दूसरे अध्याय में प्रस्तुत किया है।

तीसरे अध्याय में रस सिद्धान्त और सम्प्रेषण सिद्धान्त का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। ताकि प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में मूल्यांकन के विस्तृत मानदण्ड स्थापित किए जा सकें।

गुरु गोविन्दसिंह की रचनाओं का बार बार पाठ मुझे इस बात के लिए बाध्य करता था कि मैं इसमें भक्ति रस की विद्यमानता

स्वीकार कर लूं परन्तु भक्ति रस की स्थापना के विषय में आचार्यों में स्वयं मतभेद है। अत: यह आवश्यक था कि इसका विवेचन एक अध्याय का विषय बनाया जाए। इसीलिए भक्तिरस का विवेचन और उसकी स्थापना चतुर्थ अध्याय में की गई है।

पंचम अध्याय इस शोध ग्रन्थ का सब से विस्तृत और मुख्य अध्याय है। जिसमें गुरु गोविन्दसिंह की काव्य कृतियों का सम्प्रेषण की दृष्टि से मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है। गम्भीरता, व्यवस्था एवं पूर्णता के विचार से प्रत्येक रचना का पृथक् पृथक् विवेचन सम्प्रेषणीयता की दृष्टि से हमें अधिक वांछनीय तथा उपयुक्त लगा। अत: इसी ढंग को अपनाया गया है।

एक बात 'विचित्र नाटक' के सम्बन्ध में कहनी आवश्यक है। वह यह कि 'विचित्र नाटक' के अन्तर्गत प्रसंगों को अनेक विद्वानों ने अलग अलग रचनाएं माना है परन्तु गुरु गोविन्दसिंह ने इसे एक ही रचना माना है। कहीं भी अलग अलग नहीं माना :--

जिह जिह बिधि जन्म सुधि आई।
तिम तिम कहे गिरंथ बनाई।
प्रथमे सतजुग जिह बिधि लहा।
प्रथमे देबी चरित्र को कहा।
पहले चण्डी चरित्र बनायो।
नख सिख ते क्रम भाख सुनायो।
थोड़ कथा तब प्रथम सुनाई।
अब चाहत फिरि करों बड़ाई।[1]

इसके अतिरिक्त प्रत्येक रचना के अन्त में दी हुई पुष्पिका यथा :--'इतिश्री विचित्र नाटक चंडी चरित्रे चंडमुंड बधहि चतुर्थ ध्यायह'[2] इसी प्रकार

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 73।
2- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 85।

'विचित्र नाटके रामावतार' कथा सूर्पनखा को नाक काटिबो धिआइ सम्पूर्ण मस्तु शुभ मस्तु ।[1]' भी इस समस्त रचना के एकत्व की ही सूचना दे रहे है। अत: मैंने इसे एक ही रचना माना है ।

उपसंहार में स्वाभाविकतया इस सम्पूर्ण शोध प्रबन्ध को इति तक पहुँचाया गया है ।

दशम ग्रन्थ की प्रामाणिकता विवादास्पद विषय है । परन्तु मैंने इस विवाद में न पड़ते हुए डा० हरिभजन सिंह और डा० महीपसिंह के शोध प्रबन्धों के निष्कर्षों के आधार पर गुरु जी की सभीकृतियों को प्रामाणिक माना है ।अध्ययन की दृष्टि से भाई जवाहर सिंह कृपालसिंह अमृतसर द्वारा संवत् 2024 में गुरुमुखी लिपि में प्रकाशित 'दशम ग्रन्थ' ही मेरा आधार भूत ग्रन्थ रहा है । देवनागरी लिपि में 'दशम ग्रन्थ' की कोई कोई रचना तो उपलब्ध है पर सम्पूर्ण 'दशम ग्रन्थ' नहीं ।गुरु मुखी लिपि वाले 'दशम ग्रन्थ' को ही विद्वानों ने भी मान्यता प्रदान की है ।अत: लिपि के कारण अध्ययन में कुछ बाधाएं अवश्य उपस्थित हुई पर उनका परिहार कर दिया गया है ।विशेषा कर छंद निर्णय में ।

यह दुरुह कार्य मैंने डा० श्री कैलाशचन्द्र जी सिंहल के शुभ निर्देशन में सम्पन्न किया ।उनकी सहायता एवं कृपा के लिए मैं हृदय से आभारी एवं कृतज्ञ हूं । एक विनम्र शोधार्थी के रूप में यह प्रबन्ध पाठकों के सम्मुख सादर प्रस्तुत कर रहा हूं ।त्रुटियों के लिए क्षमा प्रार्थी हूं क्योंकि मनुष्य पूर्णता के लिए प्रयत्नशील हो सकता है ।पूर्णता का दावा नहीं कर सकता। अन्त में मैं परमपिता परमात्मा का धन्यवाद करता हूं जिसकी असीम कृपा से यह तुच्छ प्रयत्न सम्पन्न हो सका ।

महेश चन्द्र शर्मा

दिनांक 12-12-1973
लुधियाना

महेशचन्द्र शर्मा

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 214 ।

विषय-सूची

विषय-सूची

पृष्ठ

प्राक्कथन — एक - पांच

भूमिका

खण्ड : एक

(भाग- क)

समकालीन परिस्थितियों की उपज-- गुरु गोविंदसिंह — 1 - 9

(भाग-ख)

गुरु गोविन्दसिंह -- व्यक्तित्व और दर्शन — 10 - 41

खण्ड : दो

गुरु गोविन्दसिंह की आलोच्य रचनाओं की भाषा- ब्रज भाषा --- एक व्याकरणात्मक विश्लेषण — 42 - 73

प्रथम अध्याय

सम्प्रेषणीयता पाश्चात्य दृष्टि से — 74 - 94

द्वितीय अध्याय

भारतीय काव्य शास्त्र में सम्प्रेषणीयता के तत्व — 95 - 111

तृतीय अध्याय

रस सिद्धान्त और आई- ए- रिचर्ड्स का सम्प्रेषण सिद्धान्त : एक तुलनात्मक विवेचन । — 112 - 123

चतुर्थ अध्याय :

भक्ति रस-- ॐ रसत्व स्थापना-- एक विवेचन 124 - 138

पंचम अध्याय :- 139 - 487

कवि की कृतियों का सम्प्रेषण की दृष्टि से मूल्यांकन

(क) जापु 140 - 156

(ख) अकाल-उस्तुति 157 - 195

(ग) ज्ञान-प्रबोध 196 - 229

(घ) विचित्र नाटक 230 - 388

(ङ) तेंतीस सवैये 389 - 399

(च) शब्द हजारे 400 - 409

(छ) खालसा महिमा 410 - 411

(ज) शस्त्र नाम माला 412 - 425

(झ) चरित्रोपाख्यान 426 - 487

~~(ञ)~~

अंटा अध्याय :- 488 - 494

उपसंहार :

पुस्तक सूची 495 - 505

:o:o:o:o:o:o:o:o:o:o:o:

भूमिका :

खण्ड :-- 1

भाग क

सम्कालीन परिस्थितियों की उपज -- गुरु गोविन्दसिंह

:o:o:o:o:

समकालीन परिस्थितियों की उपज -- गुरु गोविन्दसिंह

साहित्य समाज का दर्पण और अपने युग की वाणी कहलाता है। इसी प्रकार साहित्यकार अपने युग की सृष्टि भी होता है और उस युग का स्रष्टा अथवा मार्ग-दर्शक भी। इसलिए गुरु गोविंद सिंह के काव्य का मूल्यांकन करने से पूर्व उन परिस्थितियों का विश्लेषण अधिक युक्ति संगत होगा, जिन्होंने इस महान् व्यक्तित्व को उभरने और विकसित होने का महत्वपूर्ण अवसर प्रदान किया।

अकबर ने राजनीति में जिस धार्मिक सहिष्णुता का सूत्रपात किया था वह औरंगजेब अथवा उसके समकालीन गुरु गोविंदसिंह के समय तक आते आते समाप्त हो चुकी थी। मुगल शासकों में धार्मिक असहिष्णुता की नीति का प्रारम्भ औरंगजेब के कुछ पूर्व ही हो गया था। सन् 1632 ई० में शाहजहाँ ने शाही फर्मान द्वारा यह घोषणा करवाई कि अब आगे से नए मन्दिर नहीं बनवाए जाएं और जो मन्दिर बनवाए जाने के क्रम में हों, वे तोड़ दिए जाएं। गो-हत्या की मुमानियत भी जो अकबर के समय से चली आ रही थी सन् 1626 ई० के आसपास ढीली हो गई थी।[1] हिन्दुओं को अनेक प्रकार से तंग किया जा रहा था। उनकी आर्थिक स्थिति को निम्न स्तर तक लाने के लिए शासन की ओर से योजनाबद्ध ढंग से कार्य किया जा रहा था। 10 अप्रैल 1665 ई० को एक नियम जारी किया गया इसके अनुसार मुसलमान सौदागरों की वस्तुओं पर 2½ % तथा हिन्दुओं से उसका 5% चुंगी कर लिया जाए।[2] हिन्दुओं पर फिर से जज़िया लगा दिया गया था। मुसलमानों के सम्मुख उनका घोड़ों पर चढ़ना व साफ कपड़े पहन कर चलना भी वर्जित था। प्रो० श्री राम शर्मा के अनुसार तो औरंगजेब के समय

1- रामधारीसिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ 303।

2- यदुनाथ सरकार, औरंगजेब (हिन्दी संस्करण) पृष्ठ198।

में हिन्दू लोग कतरनों के सिले वस्त्र पहन सकते थे तथा कोई भी अपनी दाढ़ी विशेष लम्बाई से अधिक नहीं रख सकता था ।[1]

प्रत्येक क्रिया की प्रतिक्रिया होती है । प्रकृति का यह नियम है । औरंगजेब की इस धार्मिक असहिष्णुता के कारण हिन्दुओं के हृदय में भी प्रतिशोध की ज्वाला प्रज्वलित हो चुकी थी । सन् 1669 ई० में मथुरा के जाटों ने जमीन्दार गोकुल के नेतृत्व में उस प्रदेश के मुगल फौजदार अब्दुन्नबीखां और उसके उन सिपाहियों का वध कर दिया जिन्होंने मथुरा के मन्दिरों का ध्वंस किया था ।[2] दूसरी ओर 1671 ई० में बुन्देलखण्ड में छत्रसाल के नेतृत्व में बुन्देलों ने स्वयं को औरंगजेब के विरुद्ध सन्नद्ध किया ।1672 ई० में दिल्ली के निकट नारनौल के सतनामियों का विद्रोह भी इस प्रतिक्रिया की एक कड़ी था। दक्षिण में शिवाजी ने औरंगजेब का विरोध किया ।

पंजाब में गुरु गोबिंदसिंह ने औरंगजेब के विरुद्ध परिस्थितियों से विवश होकर तलवार उठाई । गुरु तेगबहादुर के बलिदान के पश्चात् भी जब औरंगजेब के अत्याचार बन्द नहीं हुए तो उन्हें तलवार उठाने के लिए बाध्य होना पड़ा ।इससे पहले भी पंचम गुरु अर्जुनदेव के बलिदान के पश्चात् गुरु हर गोविन्द सिंह ने भी मुगलों के विरुद्ध अपने को शस्त्रों से सुसज्जित किया था। सो गुरु गोविन्दसिंह ने तत्कालीन परिस्थितियों के विरुद्ध स्वयं को तथा सिक्ख सम्प्रदाय को अस्त्रशस्त्रों से सुसज्जित किया ।परन्तु देश का यह दुर्भाग्य था कि इनका विरोध भी तत्कालीन पहाड़ी हिन्दू राजाओं ने किया ।हिन्दू राजा क्षुद्र स्वार्थों के कारण आपस में लड़ रहे थे और इस प्रकार मुगलों के सहायक सिद्ध हो रहे थे ।दक्षिण में शिवाजी को भी अपने चारों ओर के मराठा सरदारों के सतत विरोध का सामना करना पड़ा और जोध पुर के महाराजा जसवन्तसिंह और आमेर के राजा जयसिंह उन्हें दबाने दक्षिण गए ।[3]

इस प्रकार मुगल सम्राट औरंगजेब की अदूरदर्शिता, धर्मान्धता पूर्ण राजनीतिक संकीर्णता और कटुता पर आधारित शासन नीति

1- प्रो० श्रीराम शर्मा , रिलीजस पालिसी आफ मुगल एम्पायर

2- यदुनाथ सरकार, औरंगजेब (हिन्दी संस्करण) पृष्ठ 200-201 ।

3- जदुनाथ सरकार, शिवजी (हिन्दी संस्करण),पृष्ठ 64 ।

ने उस वर्ग को जो केवल ईश्वर व परलोक की समस्याओं और मात्र हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य को ही पल्लवित-पुष्पित कर रहा था , गुरु गोविन्दसिंह के नेतृत्व में एक सुसंगठित राजनीतिक सैनिक सम्प्रदाय में परिवर्तित होना पड़ा ।बाद में यही वर्ग मुगलों के पतन एवं विनाश का मूल कारण बना ।

राजनीतिक अव्यवस्था के इस युग में समाज की दशा भी अच्छी नहीं थी । तत्कालीन समाज दो वर्गों में विभाजित था शासक और शासित । मुसलमान शासक थे हिन्दू शासित ।मुस्लिम उच्चवर्ग के पास धन व ऐश्वर्य को प्राप्त करने के सभी साधन थे।उनका अधिकांश समय जशनों, उत्सवों और भोजों के आनन्द भोगने में ही व्यतीत होता था ।इनके महल स्त्रियों से भरे रहते थे । निम्न मुस्लिम वर्ग जिसमें राज्यकर्मचारी,सैनिक, दुकानदार और शिल्पकार ,बढ़ई, लोहार, राज, भिस्त्री आदि शामिल थे ,उच्च श्रेणी के मुसलमानों से जीवन-स्तर में बहुत नीचे होते हुए भी सुखी थे ।

जहाँ तक दूसरे वर्ग (शासित) का सम्बन्ध है उनमें हिन्दू आते थे ।यद्यपि उच्च श्रेणी के हिन्दुओं की दशा कुछ अच्छी थी परन्तु साधारण हिन्दू जनता की दशा बहुत ही शोचनीय थी ।

हिन्दू समाज अनेक जातियों और उपजातियों में बँटा हुआ था ।अस्पृश्यता की भावना पूरे जोरों पर थी ।लोगों में अज्ञान बहुत था , इस लिए उनमें अन्ध विश्वास भी बहुत थे । नारी की स्थिति भी अच्छी नहीं थी। उसे पुरुष की वासना पूर्ति का साधन समझा जाता था हिन्दू और मुसलमान दोनों ही जातियों में पर्दे का रिवाज था ।

मुसलमान शासक विलासी थे अत: यथा राजा तथा प्रजा की उक्ति के अनुसार समाज में अनाचार और विलासिता का ही बोल बाला था ।

समाज में व्याप्त विभिन्न मत-मतान्तरों और उपासना-पद्धतियों के परस्पर विरोधी होने के परिणामों से परिचित होने के कारण गुरु गोविन्दसिंह ने सब के दोषों का निराकरण किया ।विलासिता ,प्रेमभ्य उन्मुक्त अनैतिकता का स्पष्ट चित्रण करके उनके दोषों से समाज को सचेत किया । कर्मकाण्डों,बाह्याचारों और कुप्रथाओं का स्थान स्थान पर विरोध किया और सर्वत्र सरल, जनोपयोगी उपासना,जीवन पद्धति और शान्ति के अभिनव सन्देश को जन समूह तक पहुँचाया । इस विशृंखल और दोष-पूर्ण सामाजिक स्थिति

के कारण गुरुगोबिन्दसिंह की काव्यसाधना में शृंगार परक मनोहारी दृश्य, प्रेम के विविध विषायक चित्र, वीर भावनाओं की तीव्र अभिव्यक्ति और नीति-उपदेश की प्रभावपूर्ण शक्ति ने समाज पर अपना अधिकार जमा लिया ।

कलि काती राजे कसाई धरमु पंख कर उडरिआ ।
कूड़ अमावस सचु चंद्रमा दीसै नाही कह चड़िआ ।
हउ भाल विकुन्नी होई। आधेरै राहु न कोई ।[1]

अर्थात् कलियुग कटार के समान है, राजे कसाई और उनके राज्य में धर्म पंख लगा कर उड़ गया है ।चारों ओर असत्य की अमावस छाई हुई है ।उनमें सत्य का चांद कहाँ उदय हुआ है दिखाई नहीं देता। जीव इस अन्धेरे में सत्य की खोज करता हुआ भ्रमित घूम रहा है । अन्धकार में कोई मार्ग नहीं सूझता ।गुरु नानकदेव जी के ये शब्द तत्कालीन युग परपूर्णतया चरितार्थ होते हैं । वस्तुत: इस युग में अन्ध विश्वास, रूढ़ियों का अनुसरण और बाह्याडम्बरों का पालन ही धर्म था।ईश्वर और खुदा की प्रेरणा पूर्ण भावनाओं के स्थान पर पंडितों और मुल्लाओं का स्थूल और लौकिक प्रभुत्व स्थापित हो गया था जिनकी सम्मति और वाणी अन्धविश्वास से युक्त अशिक्षित जनता के लिए वेदवाक्य अथवा खुदा की आवाज का काम करती थी । यही नहीं, ईश्वर और खुदा के प्रतिनिधि एक दूसरे को अपना प्रतिद्वन्द्वी समझते थे ।[2]

मुसलमानों में दो प्रकार के लोग थे एक वे लोग जो उदार धार्मिक विचारों के थे । दूसरे धार्मिक कट्टरता को ही सर्वोच्च धर्म मानने वाले थे।मुगल दरबार में मौलवियों और काजियों से प्रभावित इस कट्टर-पंथी वर्ग का ही प्रभाव था । औरंगजेब और दारा शिकोह का संघर्ष वास्तव में कट्टर और उदार विचारधारा का ही संघर्ष था और यह देश का दुर्भाग्य था कि इसमें कट्टरता की ही विजय हुई । "जिस दिन दारा शिकोह मारा गया और औरंगजेब गद्दी-नशीन हुआ, सामासिक संस्कृति का कलेजा साल में उसी रोज फटा और तब से यद्यपि हम इस फटन को बार बार सीने की कोशिश करते आ रहे हैं, किन्तु वह ठीक से सिल नहीं पाती ।"[3]

1- वार माझ महला 1
2- हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास (षष्ठ भाग) पृष्ठ 17 ।
3- रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ 309 ।

औरंगजेब ने गद्दी पर बैठते ही जिस धार्मिक असहिष्णुता का परिचय दिया उसे आजतक हिन्दू नहीं भूले हैं। अपने शासनकाल के प्रारम्भ में ही औरंगजेब ने एक हुक्म निकाला था, जिसमें उसने कटक से लेकर मेदिनीपुर तक उड़ीसा के प्रत्येक गाँव और शहर के स्थानीय हाकिम को सारे मन्दिर गिरवा देने की आज्ञा दी थी। पिछले 10 या 12 वर्षों के भीतर बने मिट्टी के फाँपड़ों में स्थापित मन्दिरों को भी इस हुक्म के अन्तर्गत माना गया[1]। 9 अप्रैल 1669 को उसने एक अन्य आज्ञानुसार हिन्दुओं के सब शिक्षणालय और मन्दिर गिराने का हुक्म दिया। अबकी बार उसकी विनाशकारी कुदाल सोमनाथ के दूसरे मन्दिर, बनारस में विश्वनाथ जी के मंदिर और मथुरा में केशवराय के मन्दिर के समान बड़े मन्दिरों पर भी पड़ी जिन्हें समस्त हिन्दू जनता बड़े आदर और श्रद्धा की दृष्टि से देखती थी[2]। हिन्दुओं के विभिन्न तीर्थस्थानों पर लगने वाले मेलों पर भी औरंगजेब ने सन् 1668 ई० में एक आज्ञा द्वारा रोक लगा दी[3]। इस प्रकार औरंगजेब पूर्णतया हिन्दुओं को समाप्त करना चाहता था। हिन्दू धर्म पर उसके इन अत्याचारों के कारण ही गुरु तेगबहादुर को अपना बलिदान करना पड़ा।

भक्तिकाल में जो एक महत्वपूर्ण भक्ति की लहर चली थी, अब वह शान्त एवं विकृत हो चुकी थी। कृष्ण की मधुरा-भक्ति अब नायक-नायिका भेद निरूपण में काम आने लगी थी। मर्यादा पुरुषोत्तम राम और सीता भी सरयू के किनारे काम क्रीड़ा करने वाले साधारण नायक नायिका हो गए थे।

निर्गुण सम्प्रदाय में यद्यपि अनेक पन्थों का जन्म हो चुका था फिर भी इस परम्परा के अनुयायी कुछ संगठित और संयमी थे। इन सभी पन्थों में गुरु नानक का सिक्ख पंथ सर्वाधिक प्रभावशाली था।

गुरु गोविन्दसिंह ने तद्युगीन समस्त धार्मिक परिस्थितियों का गहन अध्ययन किया। सन्तमत और अपने पूर्व के गुरुओं की

1- यदुनाथ सरकार, औरंगजेब (हिन्दी संस्करण) पृष्ठ 193।

2- वही, पृष्ठ 194।

3- वही, पृष्ठ 200।

परम्परा के अनुसार तत्कालीन धर्म को नया मोड़ देने का दृढ संकल्प किया।[1]

गुरु गोविन्दसिंह के धार्मिक विश्वासों, सुधारों और प्रतिक्रियाओं पर युग का व्यापक प्रभाव पड़ा था। उन्होंने तत्कालीन धर्म में व्याप्त आडम्बरों का स्थान स्थान पर खण्डन किया। राम और कृष्ण के कोमल रूप के स्थान पर वीर रूप की स्थापना की। वे सभी धर्मों और मतों के प्रति प्रेम और सद्भावना रखते हुए भी स्वाभिमान और प्रतिष्ठा पर आघात करने वाले को दंडित करने के पक्षपाती थे। इसलिए शान्ति के समर्थक होते हुए भी शक्ति के प्रतीक अस्त्र-शस्त्रों तक को उन्होंने ईश्वर का रूप माना।

गुरु गोविन्द सिंह का कार्य-काल हिन्दी साहित्य का 'रीतिकाल' है। रीतिकाल का समय संवत् 1700-1900 तक (सन् 1650-1850 तक) है। गुरु गोविन्दसिंह का कार्यकाल सन् 1666 ई० से 1702 तक है। विलासिता के इस युग और दरबारी वातावरण में पलने वाला कवि एवं कलाकार अपने आश्रयदाता के विलास और राग-रंग में घुल-मिल गया था। उस युग के कवि के सम्मुख कोई महत् आदर्श नहीं था। ~~रचना~~ काव्य का परिशीलन और सृजन इनका कोई शुगल नहीं था, स्थायी कर्तव्य-कर्म था।[2] इस काल का कवि अपने आश्रयदाताओं को प्रसन्न करने के लिए इनकी स्तुति करता और इनकी विलास-वृत्ति को सन्तुष्ट करने का प्रयास करता। शृंगार वर्णन को बहुतेरे कवियों ने तो अश्लीलता की सीमा तक पहुँचा दिया था। इसका कारण जनता की रुचि नहीं, आश्रय दाता राजा-महाराजाओं की रुचि थी जिनके लिए कर्मण्यता और वीरता का जीवन बहुत कम रह गया था।[3]

इस प्रकार इस काल का कवि शृंगार के रसराज सिद्ध करने, नायक और नायिका के सूक्ष्मातिसूक्ष्म भेद निरूपित करने तथा लक्षण-ग्रन्थों के निर्माण में लगा हुआ था। भूषण, लाल, सूदन जैसे वीर रस के कवि भी इस भावना से अछूते न रहे थे। रीतिकाल के अधिकांश प्रमुख कवि चिंतामणि, बिहारी, मतिराम, कुलपति मिश्र और देव, सभी औरंगजेब के समकालीन थे किन्तु

1- डा० गोकुलचन्द नारंग, ट्रांसफारमेशन आफ सिखिज़्म, पृष्ठ 56।
2- डा० नगेन्द्र, रीतिकाव्य की भूमिका, पृष्ठ 146।
3- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ223।

आश्चर्य की बात है कि इनमें से किसी ने भी अपने युग की राजनीतिक स्थिति की अपने काव्य में झलक तक नहीं दी। सन् 1630 ई० में औरंगजेब ने जयपुर के हिन्दू मन्दिर तुड़वा दिए परन्तु जयपुर के महाराजा रामसिंह के दरबारी कवि कुलपति मिश्र ने अपनी किसी रचना में उसके विरुद्ध रोष प्रकट नहीं किया[1]।

अपनी आँखों के सम्मुख इन खुले अत्याचारों को देख कर उनका हृदय सर्वथा अप्रभावित रहा हो ऐसा नहीं कहा जा सकता। किन्तु उनके विरोध में तलवार उठाना तो दूर, कलम उठाने का साहस भी उन्होंने नहीं किया।

इसके विपरीत गुरु गोविन्द सिंह तलवार और लेखनी दोनों को हाथ में संभाल कर अपने कर्तव्य-पथ पर आरुढ़ हुए। विलासिता की दलदल में फँसे दूसरे कवियों के लिए जहाँ तिर्यक रति भी ईर्ष्या का कारण था[2]। वहाँ गुरु गोविन्दसिंह ने अपनी आराध्य(चण्डी) से धर्मयुद्ध में बलिदान होने का वर माँगा[3]। शृंगाररस का चित्रण गुरु गोविन्दसिंह ने भी किया परन्तु उनके शृंगारिक वर्णन में प्राय: कहीं भी उच्छृंखलता अथवा निम्न कोटि की रसिकता नहीं मिलती। वीर सेनानी शासक के लिए जो संयमित, संतुलित शृंगारिक भावना आवश्यक होती है वही उनमें विद्यमान है।

औरंगजेब की धार्मिक असहिष्णुता, हिन्दूराजाओं की आपस की फूट, समाज और धर्म में व्याप्त कुरीतियाँ आदि गुरु गोविंदसिंह को प्रतिकूल परिस्थितियों के रूप में मिलीं परन्तु एक महान् सांस्कृतिक विरासत, मालवे और माझे के वीर जाटों के रूप में गुरुभक्त सिक्खों की एक बहुत बड़ी संख्या अनुकूल शक्ति के रूप में मिली। दूसरी ओर औरंगजेब दक्षिण की रियास्तों की बढ़ती हुई शक्ति को दबाने में 25 वर्ष तक व्यस्त रहने के उपरांत

1- डा० महीपसिंह, गुरु गोविन्दसिंह और उनकी हिन्दी कविता, पृष्ठ 14।

2- पट पाँखु भ्रूख काकड़े सुपर परेई संग
सुखी परेवा पहुमी में तुहि एक विहंग (बिहारी)

3- देहि सिवा वर मोही इहै सुभ कर्मन ते कबहूँ न टरौं।
न डरौं अरि सो जब जाइ लरौं निसचै करि अपनी जीत करौं
अरु सिख हौं अपने ही मन को इह लालच हउ गुनतउ उचरौं
जब आवकी औध निदान बने अति ही रण में तब जूझ मरौं।
द.ग्रं., पृष्ठ 99।।

पश्चिमोत्तरी प्रदेश के पठानों के विद्रोह को दबाने के लिए भेजा जिससे गुरु जी को एक महान् प्रतिद्वन्द्वी व रिपु से लोहा लेने की प्रेरणा मिली । उन्होंने अपनी शक्ति को सुनियोजित किया और वह महान् आन्दोलन चलाया जिसका वर्णन भारत तथा पंजाब के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा हुआ है ।इसलिए यदि हम गुरु गोविन्द सिंह को अपनी परिस्थितियों की उपज कह दें, तो इस में भ्रम की बात नहीं ।

--

भूमिका

खण्ड : 1

भाग : ख

गुरु गोविन्दसिंह व्यक्तित्व और दर्शन एक विहंगम-दृष्टि

:0:0:0:

भूमिका खंड - 1
भाग - 2ब

गुरु गोविन्दसिंह व्यक्तित्व और दर्शन[1] एक विहंगम-दृष्टि

व्यक्तित्व :- गुरु गोविन्दसिंह सत्रहवीं शती ईसवी की महान् विभूति हैं। पंजाब में गुरु परम्परा की अन्तिम सशरीरी ज्योति होने के नाते उन्होंने राष्ट्रीय धर्म और संस्कृति के रक्षार्थ भक्ति और शक्ति का समन्वय करते हुए अन्याय, अनीति, अनाचार और अनास्था को रणभूमि में ललकारा और उसका मुँह तोड़ दिया । जिसके नाम से भारत के वीरों का हृदय दोलायित हो जाता था, उस औरंगजेब को 'जफरनामा' के माध्यम से वह फटकार बताई कि उसकी कुंठित व सुप्त चेतना भी अंगडाई लेकर राजकीय कर्तव्यों पर विचार करने को विवश हो गई। ऐसा नरनाहर श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण द्वारा दिए गए वचन --'अभ्युत्थानम धर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्' की निश्चित ही पूर्ति था, यह कहने में कोई अत्युक्ति न होगी ।

संसार के इतिहास पर दृष्टिपात करने से संभवत: कोई ही ऐसा विरला महापुरुष होगा जो एक साथ वीर, भक्त और कवि रहा हो ।एक व्यक्ति वीर हो सकता है परन्तु भक्त और कवि नहीं ।

1- दर्शन से यहां मेरा भाव पारिभाषिक अर्थ में नहीं इस शब्द का प्रयोग केवल उन विचारों के लिए प्रयुक्त किया गया है, जो साधारणतया उनकी कृतियों में व्यक्त हुए हैं ।

शारीरिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक दृष्टि से गुरु गोविन्दसिंह का व्यक्तित्व ही ऐसा महान् था जिसमें तीनों ही गुणों का समावेश हमें मिलता है । वे एक साथ वीर, कवि और भक्त थे । एक हाथ में माला और दूसरे हाथ में तलवार लेकर चलने वाले इस महान् पुरुष को इसीलिए 'सन्त सिपाही' की संज्ञा से विभूषित किया जाता है ।" दक्षिणे चतुरो-वेदा वामहस्ते सयं धनु: इदं ब्राहम मिदं क्षात्रम्- शापादपि शरादपि" ।

इस महान् विभूति का जन्म संवत् 1723 विक्रमी तदनुसार 26 दिसंबर 1666 ई० में सिक्खों के नौवें गुरु तेगबहादुर के घर पटना में हुआ[1] । और सन् 1708 ई० में 42 वर्ष की आयु में दक्षिण भारत में गोदावरी के किनारे नन्देड़ नामक स्थान पर देहावसान[2] ।इस 42 वर्ष के कार्यकाल में ही इन्होंने जीवन के ऐसे महान् कार्य किए, जो भारत के स्मृति-पटल पर ही नहीं विश्व के हृदय पर भी अंकित हो गए ।

'होनहार विरवान के होत चीकने पात' वाली उक्ति इन पर पूर्णतया लागू हुई । शैशव की चपलता भावी जीवन की महानता व कर्मठता को इंगित कर देती है । जिस प्रकार बाल-कृष्ण ने पूतना व कंस का वध कर दिया था तथा राम ने यज्ञ में विघ्न डालने वाले राक्षसों का वध कर दिया था उसी प्रकार गुरु गोविन्दसिंह ने बाल्यकाल में ही अपने सम-व्यस्कों का नेतृत्व करना आरम्भ किया और भान्ति-भान्ति के खेलों द्वारा धनुषबाण से लक्ष्य-साधना , नकली दुर्ग बना कर उसे नष्ट करके तथा शिशु सैनिकों के संचालन आदि अनेक क्रीड़ाओं द्वारा अपने साथियों को चकित ही

1- (क) भाई सन्तोखसिंह ने 'गुरु बिलास' में गुरु गोविन्दसिंह की जन्मतिथि के विषय में लिखा है :--

संवत् सत्रह सहस्र मनीजे । बीस तीन संग बरख गनीजे ।
महि पोख पुन अधिक सुबीनै ।जगत प्रवेस क्रिपानिधि कीनै।।

(ख) प्रो० कर्तारसिंह - जीवनकथा श्री गुरु गोविन्दसिंह ,पृष्ठ 23. पृष्ठ 46.

2- (क) संवत सत्रह सहस्र मनीजे, अर्ध सहस्र घित अवसर गणीजे ।
कार्तिक सुदी पंचमी जान । वीर धार निस चढ़े बिमान।।
(गुरु विलास पृष्ठ 599).

(ख) मैकालिफ - दी सिक्ख रिलीजन भाग ७,पृष्ठ 246 .

नहीं कर दिया वरन् अपने वीरता पूर्ण व्यक्तित्व का भी पूर्ण परिचय दिया ।[1]

नौ वर्ष की अल्पायु में काश्मीरी पंडितों की करुण-गाथा सुन कर अपने पिता गुरु तेगबहादुर को धर्म की वेदी पर बलिदान होने की प्रेरणा दी[2] । पिता की मृत्यु के पश्चात् इसी अवस्था में आप गुरु-गद्दी पर आसीन हुए[3] । अपने जीवन का प्रथम युद्ध भंगानी के स्थान पर 13 वर्ष की आयु में सन् 1686 ई० में लड़ा और विजय पाई[4] । तत्पश्चात् तो मानो युद्धों का तांता ही लग गया । नादौन का युद्ध[5], मिर्जा बेग से युद्ध, सैयद बेग और अलफखान से युद्ध, 1702 में आनन्दपुर का प्रथम युद्ध, 1703 में आनन्दपुर का दूसरा युद्ध[6], चमकौर का युद्ध, 1706 में मुक्तसर का युद्ध और[7] अन्त में 1703 ई० में शरीर-त्याग । इस प्रकार गुरु गोविन्दसिंह जीवन के अन्तिम क्षण तक युद्धों में ही रत रहे । मृत्यु का कारण भी एक मजबूत कमान का चिल्ला चढ़ाते समय घावों के टांके टूट जाना ही बताया जाता है । इस प्रकार आयु-पर्यन्त एक अजेय योद्धा का महान् रूप हमें गुरु जी में दिखाई पड़ता है । महाभारत में लिखा मिलता है :--

"दण्डे स्वहि राजान:। क्षात्रिय धर्माणो न मुण्डनम्[8] ।" -- अर्थात् क्षात्रियों का धर्म है देश और संस्कृति की रक्षा के लिए युद्धभूमि में जाकर लड़ना। युद्ध क्षेत्र में धर्म रक्षा करना क्षात्रियों का सामाजिक कर्तव्य है न कि संसार त्यागना ।उनका कर्तव्य है कि शक्ति के बल पर राजधर्म का पालन करे न कि सिर मुण्डा कर सन्यासी बन जाए । इसी का पालन गुरु गोविन्दसिंह ने किया ।

गुरु गोविन्दसिंह एक धर्मयोद्धा थे जिन्होंने अपना सर्वस्व धर्मयुद्ध में बलिदान कर दिया । उनके हृदय में केवल धर्म के लिए युद्ध करने का ही चाव था ।

अवर वासना नाहिं कछु धर्मयुद्ध को चाह[9] ।

1- खजानसिंह , हिस्टरी एण्ड फिलासफी आफ सिक्ख रिलिजियन, पार्ट 1, पृष्ठ 162 ।
2- कृपालसिंह नारंग, पंजाब का इतिहास, पृष्ठ 138 ।
3- वही०, पृष्ठ 133 ।
4- वही०, ,, 141 ।
5- वही०, ,, 142 ।
6- वही०, ,, 143-149 ।
7- वही०, ,, 151 ।
8- महाभारत शान्ति पर्व 23, 46 ।
9- दशम ग्रन्थ , पृष्ठ 70 ।

गुरु तेगबहादुर ने भावी गुरु गोविन्द की परीक्षा के लिए जब देहली की जेल से एक श्लोक लिख कर भेजा :--

` बल छुटि गयो बन्धन परे कछू न होत उपाय `
कहु नानक अब ओट हरि गज ज्यों होत सहाय।

तो गुरु गोविन्द सिंह ने उत्तर दिया :--

बल होय बन्धन छूटे सब कछु होत उपाय ।
नानक सब कछु तुम्हरे हाथ में तुम्हीं होत सहाय।

इस प्रकार [redacted] गुरु गोविन्दसिंह को अपनी शक्ति पर पूर्ण विश्वास था और उन्होंने शक्ति प्राप्त करने के लिए तैयारियां भी आरम्भ कर दीं । इसीलिए अपने शिष्यों को उन्होंने आज्ञा दी कि भविष्य में भेंट में अस्त्र-शस्त्र और घोड़े आदि ही लाया करें ।[1] सन् 1699 ई. में खालसा पन्थ का निर्माण भी इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए किया गया ।[2]

सत्रहवीं शताब्दी में हिन्दुओं पर अनेक अत्याचार किए जा रहे थे।उन्हें बलात् मुसलमान बनाया जा रहा था। ऐसे समय में धर्म रक्षार्थ गुरु गोविन्दसिंह ने तलवार उठाई । उन्होंने स्वयं विचित्र नाटक में कहा है :---

हम इह काज जगत में आए ।
धर्म हेत गुरु देव पठाए ।
जहां तहां तुम धर्म बिथारो ,
दुस्ट दोखियन पकरी पछारो ।।[3]

धर्म से यहां तात्पर्य किसी पन्थ या सम्प्रदाय से नहीं वरन् न्याय और सत्य की स्थापना के लिए है।उसी धर्म की रक्षा के लिए उन्होंने जन्म लिया जिसकी रक्षा व स्थापना के लिए भगवान् श्रीकृष्ण को भी युग-युग में जन्म लेना पड़ता है ।--

यदायदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानम् धर्मस्यतदात्मान सृजाम्यहम्।।

1- ठाकुर देशराज, सिक्ख इतिहास,पृष्ठ 176 ।
2- कृपालसिंह नारंग,पंजाब का इतिहास,पृष्ठ143 ।
3- दशम ग्रन्थ,पृष्ठ 57 ।

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ।।[1]

गुरु गोविन्दसिंह का लक्ष्य भी यही था :--

याही काज धरा हम जन्मं ।
समझ लेहु साधु सब मनमं ।
धर्म चलावन संत उबारन ।
दुस्ट सबन को मूल उपारन ।।[2]

जब हिन्दुओं पर औरंगजेब के अत्याचार किसी प्रकार बन्द नहीं हुए, तो गुरु गोबिन्दसिंह ने तलवार का आश्रय लिया । उन्होंने माना है :--

चूंकार अज़हमा हिल्लते दर गुज़शत ।
हलाल अस्त बुरदन - ब- शमशीरदस्त ।[3]

अर्थात् जब सभी उपाय विफल हो उठें, तो हाथ में तलवार उठाना सर्वथा न्याय है। अन्तत: यदि ऐसी स्थिति से दो-चार होना ही पड़े, तो गुरु जी के आदर्शानुसार मानव का एक मात्र धर्म यही है कि वह अपने हृदय की सभी कामनाओं को समाहित करे और रण-शस्त्रों को अपने समस्त जप, तप, ध्यान, धारणा और भक्ति का उपास्य मान कर रण चण्डी की आराधना करे । धर्म की रक्षा के लिए जो व्यक्ति तलवार नहीं उठाता वह पापी और गुनहगार है ।गीता में भी इसी नीति का प्रतिपादन है । जब विश्वामित्र के समझाने पर भी राक्षसों ने यज्ञ का विध्वंस करना बंद न किया तो उन्होंने धनुर्धारी राम की सहायता के लिए दशरथ से प्रार्थना की :--

असुर समूह सतावहिं मोही ।मैं जाचन आयउं नृप तोही ।
अनुज समेत देहु रघुनाथा।निसिचर वध मैंहोव सनाथा।।[4]

तब स्वयं राम ने विवश होकर दुराचारी रावण के विरुद्ध शक्ति का प्रयोग किया ।शास्त्रों और शस्त्रों की एकसाथ उपासना गुरु गोविंदसिंह के जीवन की विशिष्टता है। दशम ग्रन्थ के निम्न उद्धरण में यही स्वर मुखरित हुआ है:--

---

1- श्रीमद्भगवदगीता, 4।3 ।
2- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 57 ।
3- जफरनामा --22 ।
4- रामचरितमानस बालकाण्ड चौपाई 222, पृष्ठ 153 ।

असि क्रिपान खंडो खड्ग तुपक तवर अरु तीर ।
सैफ सरोही सेहथी यही हमारे पीर ।।[1]

विकट से विकट परिस्थितियों में भी गुरु जी की यह प्रभु-प्रार्थना मानव मात्र के विश्वास का संबल बनती है :--

हे रवि । हे ससि । हे करुणानिधि मेरि अबै बिनती सुन लीजे ।
और न मांगत हौं तुम ते कछु चाहत हौं चित में सोई कीजे ।
शस्त्रन स्यों अति ही रण भीतर जूझ मरों तउ सांच पतीजे।
संत सहाय सदा जग माय क्रिपाकरि स्याम इहै वरु दीजे ।।[2]

गुरु जी के वीर व्यक्तित्व की महानतम विशेषता यह है कि उन्होंने युद्धभूमि में सदा न्याय और धर्म का पक्ष लिया और एक बार निश्चय कर लेने के पश्चात् शत्रुपक्ष के भयंकर से भयंकर दलबल की भी परवाह नहीं की । शत्रु चालीस हजार तो क्या चालीस लाख भी हो तो भी गुरु जी अपने निश्चय से विचलित नहीं हुए ।इसी प्रकार स्वपक्ष के लाखों सैनिक यदि सैकडों की संख्या में भी शेष रह जाएं,तो भी वे अपने प्रशस्त मार्ग पर आरूढ रहते थे । पर्वतीय राजाओं तथा मुगलों की सम्मिलित सेना ने जब आनन्दपुर को चारों ओर से घेर लिया तो भी गुरु जी तनिक भी विचलित नहीं हुए ।[3] इसी प्रकार जब चमकौर की गढ़ी में अगणित शत्रु सैनिक मात्र चालीस भूखे सिक्खों पर टूट पड़े[4] तो भी गुरु जी अचल और ध्रुव बने रहे क्योंकि उनका विश्वास था :--

चु हक यार बाशद चि: दुश्मन कुनद ।
अगर दुश्मनी रा बसद तन कुनद ।।[5]

अर्थात् यदि प्रभु मेहरबान है,तो शत्रु कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता ।

गुरु जी को अपने प्रभु पर दृढ़ विश्वास था उन्होंने औरंगज़ेब को स्पष्ट कहा था कि --' हे औरंगज़ेब , यदि तुम्हारी दृष्टि सेना और धन दौलत पर है,तो मेरी दृष्टि केवल अपने प्रभु पर है ।[6] गुरु जी का यह

1- दशम ग्रन्थ,पृष्ठ 717 ।
2- वही०, पृष्ठ 495 ।
3- मैकालिफ, सिक्ख रिलीजन ,पृष्ठ 173-74 ।
4- वही०, पृष्ठ 133-39 ।
5- जफरनामा 107 ।
6- तुरागर नज़र हस्त लश्कर व ज़र ।कि मारा निगाह अस्त यज़्दा शुकर।
(जफरनामा 102)।

प्रभु विश्वास और दृढ़ आस्था उस समय अपनी चरम सीमा पर पहुंच गई जब वे अपने सगे सहोदरों और पुत्र-मित्रों से बिछुड़ कर एकाकी ही रह गए । शत्रु-दल चारों ओर फैला हुआ था। सब परिवार और परिजन एक एक कर बिछुड़ गए । भौतिक शरीर, एक कृपाण और चित्तस्थ प्रभु ही उनके साथी थे । पर इतने कष्ट सहते हुए भी इन्होंने समरांगण में निर्भीकता पूर्वक जूझते हुए ही प्रभु-चरणों में लीन हो जाने का वर मांगा :--

जउ कछु इच्छ करो धन की तउ चल्यो धनु देसन देस से आवें ।
अउ सब रिद्धनि सिद्धन पे हमरो नहीं नैकु हीया ललचावें ।
अउर सुनो कछु जोग बिधै कहि कउन इतो तपके तनु पावै।
जूझ मरों इनमें तजि मै तुमते प्रभु स्याम हहै बरु पावें ।[1]

गुरु गोविन्दसिंह वीर होने के साथ साथ निर्लिप्त, क्षमाशील और अभिमान-रहित थे। अनेक पहाड़ी राजाओं को पराजित करने के उपरान्त भी उन्होंने शत्रु की एक इंच भूमि पर भी अधिकार नहीं किया । यदि वे चाहते तो युद्धों के पश्चात् पांच-छ: रियासतों पर अधिकार कर एक बड़ा राज्य स्थापित कर सकते थे परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया ।[2] यही नहीं जब मुग़ल सेनाओं ने कांगड़ा और बिलासपुर पर आक्रमण किया, तो संकट-ग्रस्त पहाड़ी राजाओं ने गुरु जी की शरण ली। गुरु जी ने उनके समस्त अपराध क्षमा कर उनकी रियासतों की रक्षा की ।[3] गुरु जी ने कभी भी अपनी शक्ति पर अभिमान नहीं किया । वे तो हर समय प्रभु से अपनी अपने शिष्यों की रक्षा के लिए तथा शत्रुओं के विनाश के लिए प्रार्थना करते रहते थे :--

हमरी करो हाथ दै रच्छा । पूरन होइ चित की इच्छा ।
तब चरनन मन रहै हमारा। अपना जान करो प्रतिपारा ।
हमरे दुसट सभै तुम घावहु। आपु हाथ दै मोहि बचावहु ।[4]

गुरु जी के त्याग और बलिदान की कहानी अपूर्व है । दो पुत्रों को स्वयं अपने हाथों सुसज्जित करके रणभूमि में भेजा।[5] दो को सरहिंद के नवाब ने दीवार में चुनवा दिया।[6] जब माता सुन्दरी जी ने दमदमे में आकर

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 495 ।
2- डा० त्रिलोचनसिंह, संक्षिप्त जीवन गुरु गोविंदसिंह, पृष्ठ 24।
3- वही०, पृष्ठ 24 । (4) दशमग्रन्थ, पृष्ठ 1336 ।
5- कृपालसिंह नारंग, पंजाब का इतिहास, पृष्ठ150।
6- मकालिफ, सिक्खरिलीजन, भाग 5, पृष्ठ 198 ।

रोते हुए पूछा ,--' हे नाथ ! मेरे लाल कहाँ हैं ?' तो गुरु जी ने सामने बैठी समस्त संगत की ओर इंगित करते हुए कहा :---

इन पुत्रन के सीस पर वार दिए सुत चार ।
चार गए तो क्या हुआ जीवत कई हजार ।।

गुरु जी के वीर व्यक्तित्व की एक और अद्भुत और महान् विशेषता जो हमारे सम्मुख आती है, वह है उनमें शत्रु के गुणों के प्रति प्रशंसक-भाव । एक स्थान पर उन्होंने औरंगजेब जैसे घोर शत्रु के गुणों की भी प्रशंसा की :--

खुशश शाही शाहान औरंगजेब ।
कि चालाका दस्तूर चाबुक रकेब ।
ब: तरतीब दानिश व तदबीर तेग,
खुदा वंदे देगो खुदावंदे तेग ।।[1]

अर्थात् ऐ औरंगजेब तू प्रबन्ध करने में चतुर है अच्छा घुड़सवार है और तेग का धनी भी है ।

योद्धा लोग प्राय: निष्ठुर होते हैं किन्तु गुरु जी महान् योद्धा होते हुए भी अपूर्व दयालु थे। आनन्दपुर की लड़ाई में भाई कन्हैया के विरुद्ध जब सिक्खों ने गुरु जी से शिकायत की कि भाई कन्हैया शत्रुओं के घायलों को भी पानी पिलाते हैं, तो गुरु जी ने भाई कन्हैया को बुलाया । कन्हैया ने गुरु जी के पूछने पर उत्तर दिया कि सेवाधर्म में अपने पराये को स्थान नहीं । गुरु जी इस उत्तर से बड़े प्रसन्न हुए और कन्हैया को आज्ञा दी कि घायलों की मरहम पट्टी भी कर दिया करो ।[2] संसार के इतिहास में ऐसे योद्धा बहुत कम मिलते हैं, जिन्होंने शत्रु के प्रति भी उदारता दिखाई हो । संभवत: गुरु जी के सम्मुख प्राचीन आर्यों के धर्म-युद्धों का उदाहरण था ।

गुरु जी केवल शत्रु के प्रति ही दयालु नहीं थे, अपितु विभिन्न धार्मिक मत मतान्तरों के प्रति उनका दृष्टिकोण बड़ा सहिष्णु, उदार और वैज्ञानिक था । धर्म के सत्य रूप पर इन्होंने बल दिया

1- जफरनामा 86,87 ।

2- ठाकुर देशराज, सिक्ख इतिहास, पृष्ठ 20 ।

और आडम्बरों का चाहे वे किसी भी धर्म के क्यों न हों, खुल कर विरोध किया है । राम और रहीम, हिन्दू और तुर्क, मन्दिर और मस्जिद पूजा और नमाज को वे तत्त्वत: एक ही मानते हैं ।[1] भगवान अनेक नामों से पुकारे जा कर भी अनेक नहीं हो जाते । अनेक भाषाओं में अभिव्यक्त होकर भी परम सत्य एक ही है । उन्हें शिकायत है, तो यह कि विभिन्न मतों के अनुयायी अपनी ही धर्म पुस्तकों में बताए हुए उपदेशों का पालन नहीं करते । -- न कुरान को मानु लेहंगे न पुरान देखन देहुंगे ।[2] उनके मत में यह पाखण्ड ही कलियुगी अनाचार का मूल कारण है । अहिंसा का पालन करने से, पत्थर की पूजा से हठयोग से, शरीर को कष्ट देने से तीर्थों पर स्नान करने से प्रभु को नहीं पाया जा सकता ।[2] नमाज़ पढ़ने अथवा काशी में जाकर करवत लेने से भी वह प्रभु नहीं मिलता । उस प्रभु को पाने के लिए तो विश्वास की आवश्यकता है ।[3] गुरु-कवि ने केवल आडम्बरों का खण्डन ही नहीं किया अपितु अच्छा सन्यासी और अच्छा योगी ~~बनने~~ बनने का उपदेश भी दिया है :--

रे मन इह विधि जोग कमाओ ।
सिंगी साँच अकपट कंठला धयान विभूत चढ़ाओ ।
तातो गहु आतम बसि कर की भिक्षा नाम अधारं ।
बाजे परम तार ततु हरि के उपजे राग रसारं ।।[4]

इसके साथ-साथ उन्होंने नाथ-पन्थी योगियों का खंडन करते हुए लिखा है :--

देखी जोग न भेख दिखाए ।
नाहन जटा विभूत नखन में नाहन वसत्र रंगाए ।
जो बन बसै जोग को पाइये पंछी सदा बसत बन ।
कुंचर सदा धूर सिर मेलत देखो समझ तुम ही मन ।
दादुर मीन सदा तीरथ में कयो करत इसनाना ।।
धयान बिडाल बकीबक लावत तिन क्या जोग पिछाना।।[5]

1- दशम ग्रन्थ , पृष्ठ 575 ।
2- अकालउस्त्ति 11।31 (द०ग्र० पृष्ठ 13) ।
3- वही०, च 13।33(द.ग्र.पृ.19)
4- शब्द हज़ारे 3 ।
5- दशम ग्रन्थ , पृष्ठ 679 ।

जहाँ उन्होंने पाखण्ड का खण्डन किया है, वहाँ सच्चे प्रेम पर बल दिया है । ये प्रेम उनके भक्त रूप का ही दूसरा नाम है ।नैतिक मूल्यों के समान भगवान से प्रेम का उपदेश भी सभी धर्म किसी न किसी रूप में देते हैं । गुरु जी का कहना है कि प्रेम के बिना भगवान् की प्राप्ति असम्भव ही है। प्रेम के बिना धर्म पाखण्ड बन जाता है। इसी प्रेम हीन व श्रद्धा हीन पाखण्ड का खण्डन गुरु जी ने बार बार किया है :--

कहा भयौ दोऊ लोचन मूंद के बैठि रह्यो बक ध्यान लगायो ।
नहात फिरयो लिए सात समुंद्रन लोक गयो परलोक गंवायो ।
बासु कियो बिखयान सो बैठ के ऐसे ही ऐसे सुबेस बतायो ।
साँच कहू सुन लेहु सभै जिन प्रेम कियो तिनही प्रभ पायो ।।[1]

उन्होंने दूसरे सम्प्रदायों की आलोचना कभी भी अपने सम्प्रदाय विशेष की उत्कृष्टता सिद्ध करने के लिए नहीं की।उनकी आलोचना में भले ही कहीं कटुता भी आई हो पर उसमें सच्ची आत्मीयता और लगन का अभाव नहीं दीख पड़ता ।

गुरु गोविन्दसिंह एक महान् योद्धा और भक्त होने के साथ-साथ उच्चकोटि के दार्शनिक भी थे ।गुरु गोविन्दसिंह ने भारतीय अध्यात्मवाद और विशेष रूप से आदि ग्रन्थ का विशद अध्ययन किया था। अपने युग में प्रचलित विभिन्न मतों एवं सम्प्रदायों की विचारधारा और साधना पद्धतियों का भी सूक्ष्म निरीक्षण उन्होंने किया था।उनके दार्शनिक विचार और आचार सम्बन्धी दृष्टिकोण 'दशम ग्रन्थ' में अनेक स्थलों पर मोतियों की भाँति बिखरे पड़े हैं ।सुरुचि एवं सुदृष्टि से यदि उन्हें संकलित किया जाए तो एक बहुत सुन्दर माला बन सकती है ।

दर्शन :- गुरु गोविन्दसिंह सिक्ख सम्प्रदाय के दसवें और अन्तिम गुरु हैं । फिर भी गुरु गोविन्दसिंह ने उस चिन्तन धारा का केवल पिष्ट-पेषण न कर संवर्धन किया है । सम्भवत: इसी विचार से दशम गुरु ने अपनी वाणी के साथ न तो नानक नाम ही लगाया और न उसे आदिग्रन्थ में

1- दशम ग्रन्थ , पृष्ठ 14 ।

संकलित ही होने दिया। इतना होते हुए भी दशम ग्रन्थ की वाणी में कोई ऐसी सीमा - रेखा नहीं खींची जा सकती जो ~~~~ नानक के चिन्तन और गोविन्द के परिवर्धन को स्पष्ट अभिव्यक्ति दे सके।

यों ब्रह्म, प्रकृति, जीव, इनके पारस्परिक सम्बन्ध, अद्वैतता, ज्ञान और भक्ति आदि सम्बन्धी गुरु गोविन्दसिंह की मान्यताएं भी अन्य गुरुओं के समान हैं तथा साधना-पद्धति में भी अन्तर नहीं तथापि गोविन्दसिंह का अपना जीवनदर्शन है। दूसरों से प्रभावित होने पर भी उसमें एक निजत्व है।

सिक्ख धर्म के संस्थापक श्री गुरु नानक देव जी ने जपुजी के मूलमन्त्र में कहा है --

"१ ओंकार सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरबैरु
अकाल-मूरति अजूनी सैभं गुर-प्रसादि ।।"[1]

अर्थात् परमात्मा का निज नाम केवल ओ३म् है। एक मात्र उसका नाम ही सत्य स्वरूप है। वह सृष्टि-कर्ता पुरुष निर्भय और निर्वैर है। उसका स्वरूप त्रिकालातीत है। वह अजन्मा और स्वयंभू है उसकी प्राप्ति गुरु की कृपा से ही सम्भव है।

गुरु नानक के जपुजी की यह भावना गुरु गोविंद सिंह के जापु में निम्नांकित शब्दावली को लेकर प्रकट हुई :--

चक्र चिह्न अरु बरन जात अरु पात नहिंन जिह
रूप रंग अरु रेख भेख कोउ कहि न सकति किह
अचल मूरति अनभउ प्रकास अमितोज कहिज्जे
कोटि इन्द्र इन्द्राणि साहि साहाणि गणिज्जे।
त्रिभुवन महीप सुर नर असुर नेत नेत बन त्रिण कहत ।
तब सरब नाम कथै कवन करम नाम बरनत सुमत।।[2]

1- जपुजी ।

2- दशम ग्रंथ , पृष्ठ 1 ।

अर्थात् जिसका कोई चक्र, चिन्ह, वर्ण और जाति-पाँति नहीं है, जिसके रूप, रंग रेखा और वेष के विषय में भी कोई कुछ नहीं कह सकता । जो अचल-मूर्ति है । अनुभव से ही प्रकाशित होने वाला है , जिसका ओज(प्रताप) अमित है अर्थात् पाया नहीं जा सकता , जिसकी गणना करोड़ों इन्द्रों के इन्द्र तथा शाहंशाहों के शहंशाह के रूप में की जा सकती है ।तीनों भुवनों के महीप, देवता, असुर और मनुष्य स्वयं को जिसके सम्मुख तिनके के समान तुच्छ मान कर जिसे 'नेति नेति' कहते हैं ऐसे तेरे समस्त नामों को कौन कह सकता है।बुद्धिमान केवल तेरे कर्म नामों का ही वर्णन कर सकते हैं ।इस प्रकार गुरु नानक तथा गुरु गोविंद सिंह के ब्रह्म सम्बन्धी विचारों में कोई भेद नहीं है ।

सिक्ख गुरुओं के ब्रह्म सम्बन्धी विचार कबीर जैसे निर्गुण सन्तों[1] और शांकर अद्वैतवादियों के अनुसार है । अद्वैत वेदान्त के अनुसार एक मात्र ब्रह्म ही सत्य है।गुरु गोविन्दसिंह भी केवल अकाल-पुरुष की ही सत्ता स्वीकार करते हैं ।गुरु कवि ने ब्रह्म के लिए मुख्यत: अकाल-पुरुष का प्रयोग किया है।वह वाणी बुद्धि से परे है।उसका चिन्तन नहीं हो सकता,वह एक होकर भी अनेक है :-- 'नमस्तं सु एकं, नमस्तं अनेकं'।[2] करोड़ों विष्णु और महेशों का आधार है । 'काल पुरख की देहि मों कोटिक बिसन महेस'[3] ऋषियों मुनियों के प्रयत्न उसी को जानने के लिए रहे हैं ।भक्तों का वही आराध्य है।

गुरु जी का अकाल-पुरुष या परम तत्त्व, विलक्षण व विपरीत धर्मों और सभी प्रकार के तत्त्वों का मानो संगम स्थल है।परमशक्ति का अधिपति होते हुए भी वह दयाशील, अनुकम्पा-स्वरूप तथा करुणामय है।

1- कबीर, गुरु नानक, दादू जैसे साधकों को भी निर्गुनिया कहना निर्दोष नहीं वास्तव अर्थों में तो निर्गुनिया वही है, जो परम तत्व को निर्गुण भी नहीं कहता क्योंकि यह 'निर्गुणत्व' ही उसका गुण हो जाएगा ।

-डा० ब्रजलाल गोस्वामी, साहित्य मार्गप्रथम अंक, पृ० 1.

2- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 2 ।

3- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 132 ।

नमस्तं रहीमे । नमस्तं करीमे । 25
नमो सरब दयाले । नमो सरब पाले ।20[1]

दिव्य सौन्दर्य की अभिव्यंजक उपाधियों से विभूषित वह अकाल पुरुष ही गुरु कवि का आराध्य है।उसका सौन्दर्य अपार्थिव है,नयनाभिराम है और अद्भुतमय है ।ऐसे परम सुन्दर अकाल का कविनेनिम्नांकित पंक्तियों में अभिवादन किया है :--

कलंक बिना नेकलंकी सरूपे ।
नमो राजराजेस्वर परम रूपे ।[2]

उस सौन्दर्य का निरूपण यद्यपि वाणी की शक्ति से परे है फिर भी गुरु उसका अनेक विधियों से प्रतिपादन करते हैं ।

`जपुजी ` का अकालमूर्त्ति, अजूनी, सैभं की भान्ति ही गुरु गोविन्दसिंह द्वारा प्रतिपादित ब्रह्म भी आदि रूप व अनादि मूर्त्ति (अनादि मूरती) है ।वही सृष्टिकर्त्ता पालक और संहर्त्ता है।

आदि रूप अनादि मूरति अजोनि पुरख अपार
सरब थान त्रिथान देव अभेव आदि उदार ।
सरब पालक सरब घालक सरब का पुनि काल
जत्र तत्र बिराज ही अवधूत रूप रसाल ।[3]

वह अकाल पुरुष काम, क्रोध, लोभ मोह, रोग, शोक, भोग और भय से परे । वह देह-विहीन है फिर भी सभी से प्रेम करता है । परिचित और अपरिचित सभी के प्रति दयालु है ।

काम न क्रोध न लोभ न मोह न रोग न सोग न भोग न भै है ।
देह बिहीन सनेह सभी तन नेह बिरक्त अगेह अछै है ।
जान को देत अजान को देत जमीन को देत जमान को दै है ।
काहे को डोलत है तुमरी सुधि सुंदर स्री पद्मापति लै है ।।[4]

1- दशम ग्रन्थ ,पृष्ठ 8 ।
2- वही०, पृष्ठ 3 ।
3- वही०, ,, 4 ।
4- 33 सवैये-- 5 ।

वह ब्रह्म सब के हृदय में निवास करता है ।सब की पीड़ा को पहचानता है चींटी से लेकर हाथी तक सभी पर कृपा करने वाला है । सन्तों के दु:ख से दु:खी और उनके सुख से सुखी है ---

घट घट के अंतर की जानत । भले बुरे की पीर पछानत ।

चींटी ते कुंजर असथूला । सभ पर क्रिपा द्रिसटि कर फूला ।
संतन दुख पाए तें दुखी ।सुख पाए साधन के सुखी ।
एक एक की पीर पछाने । घट घट के पट पट की जाने ।[1]

वह अकाल पुरुष सच्चिदानन्द स्वरूप है और गुरु गोविन्द सिंह ने अनेक निर्गुणात्मक सम्बोधनों से उसकी आराधना की है ।

सदा एक जोत्यं अजोनी सरुपं ।
महादेव देवं महाभूप भूपं ।
निरंकार नित्य निरुपं निर्बाणं
कलंकारणोयं नमो खड्गपाणं ।।3।।
निरंकार निर्बिकार नित्यं निरालं ।
न द्रिघं विसेखं न तरुणं न बालं
न रंक न रायं न रुपं न रेखं
न रंग न रागं अपारं अभेखं ।।4 ।।
न रूपं न रेखं न रंग न रागं ।
न नामं न ठामं महाज्योति जागं
न द्वेखं न भेखं निरंकार नित्यं
महाजोग जोगं सु आदं पवित्यं ।।5 ।।[2]

महाकाल का यह रुप परम पवित्र और पुनीत है ।वह अजेय, अभय, और अनाम है । अलेख, अभेख, वेश रहित है जरा-मरण के भय से मुक्त है । रोग-शोक से अतीत तथा काम क्रोध प्रभृति विकारों से परे है ।

सु आदं अनादं, अनीलं अनंतं,
अद्वेखं अभेखं महेसं महंतं

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 1337 ।
2- वही०, पृष्ठ 39 ।

न रोगं न सोगं न द्रोहं न मोहं
न कामं न क्रोध अजोनी अजेहं ।।6 ।।
परेअं पवित्रं पुनीतं पुरानं
अजेयं अभेयं अविख्यं भवानं
न रोगं न सोगं सुनित्यं नवीनं ।
अजायं सहायं परम प्रबीन ।।7 ।।[1]

गुरु गोविन्दसिंह जहाँ ब्रह्म के निर्गुण रूप का निरूपण करते हैं, वहाँ उसके सगुण रूप का भी वर्णन उसी श्रद्धा से करते हैं। वह सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, सर्वकालदर्शी, सर्वोपरि, कण कण में व्याप्त, कीट कुंजर में समान रूप से स्थित व घट घट का अन्तर्यामी है, वह जल, थल, वन, पर्वत, आकाश में विद्यमान महाकाल का भी काल, करोड़ों इन्द्रों, वामन, ब्रह्मा, रुद्र, महेश, राम, कृष्ण, मुहम्मद, दैत्यों, गंधर्व, यक्ष को बनाने और खपाने वाला है। स्वेदज, अण्डज, उद्भिज, जरायुज चारों योनियों की रचना करने वाला है। सभी का कर्ता, पालक, संहारक है। अकलंक, सूर्य, चन्द्र, जल-थल, आकाश, पवन, अग्नि और रात दिन का निर्माता है। वह दयालु, कृपालु, भयत्राता, दाता, पवित्र, दीनबन्धु, स्वामी, सब जीव जन्तुओं पर दया करने वाला है।

वस्तुतः उन्होंने ब्रह्म को --' नेति नेति' और 'तत्वमसि' दोनों रूपों में स्मरण किया है। एक ओर उसे--' नेति नेति' और 'बिअंत बिअंत' कहा है तो दूसरी ओर सर्वव्यापक भी। तूही तूही। तूही तूही। तूही तूहीं। जले हरि, थले हरि, उरे हरि बने हरि' के रूप में निरूपण किया गया है। वह उसे एक रूप और सर्व रूप भी मानते हैं और अरूप भी। वह अकाल-पुरुष हिन्दू होकर गुप्त गायत्री का पाठ करता है तो कहीं तुर्क होकर बांग देता है, कहीं मुंडिया, कहीं योगी, कहीं पुराण पाठी तो कहीं कुरान-पाठी है। वह कहीं त्रिगुणातीत है, तो कहीं सर्वगुण-सम्पन्न[2]। कहीं यति है तो कहीं क्षत्रिय। कहीं जटाधारी है

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 39।
2- कहूँ हुइके हिंदुआ गायत्री को गुप्त जप्यो,
कहूँ हुइके तुरका पुकारे बांग देत हो।
कहूँ कहूँ कोक काव हुइके पुराण को पढ़त मन
कतहूँ कुरान को निदान जानलेत हो। कहूँ वेदरीत कहूँ ता सिउं बिपरीत,
कहूँ त्रिगुन अतीत कहूँ सुरगुन सभेत हो।। (द0ग्र0 पृष्ठ 12)।

तो कहीं कामी । कहीं दैत्य है तो कहीं दानी, व भिखारी। कहीं राजा है, तो कहीं मुसलमान । कहीं बालक है,तो कहीं वृद्ध । सर्वत्र सभी कुछ वही है । वह अशरीरी भी है और तेज-युक्त भी,रूपवान भी है और नाशरहित भी द्वैत से युक्त भी और आशा रहित भी ।दाता भी है और बेअन्त (अनन्त) भी। सर्वत्र उसी का प्रसार और प्रकाश है,सातो आकाशों,सातों पातालों में उसी अदृश्य का विस्तार है ।वह सब से दूर और सब के निकट है,पूर्ण प्रकाश है ।

गुरु गोविन्दसिंह का आदर्श जैसा कि पहले लिखा जा चुका है 'सन्त सिपाही' का है ।[1] इसीलिए जहाँ उन्होंने ब्रह्म के शान्त व सौम्य रूप का चित्रण किया है,वहाँ उसके प्रलयंकारी तथा भयंकर रूप की भी कल्पना की है ।गुरु जी ने अकाल-पुरुष के इस रूप को इन शब्दों में नमस्कार किया है :---

नमो शस्त्र पाणे । नमो अस्त्र भाणे ।
नमो परम ज्ञाता । नमो लोक माता ।।[2]

नमो जुध जुधे । नमो कलह कर्ता ।[3]
नमो नित नारायणे क्रूर कर्मे ।[4]

गीता में अर्जुन के मोह को दूर करने के लिए भगवान् कृष्ण ने भी ब्रह्म के संहारकारी रूप का वर्णन किया है :---

कालोऽस्मि लोक क्षय कृत्प्रवृद्धो लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत: ।
ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे येऽवस्थिता: प्रत्यनीकेषु योधा:[5] ।

तुलसीदास सन्त थे अत: उन्हें अपने इष्टदेव रघुनाथ के दर्शन चंदन घिसते एवं तिलक लगाते हुए रूप में चित्रकूट में हुए । सूर मथुरा वृन्दावन में हरे भरे करील कुंजों और ग्वालिनियों के मध्य बसते थे । अत:

1- देखो प्रस्तुत शोधप्रबन्ध की भूमिका पृष्ठ -एक ।
2- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 3 ।
3- वही०, पृष्ठ 10 ।
4- वही०, ,, 3 ।
5- श्रीमद्भगवद्गीता, 11।32 ।

उनके आराध्यदेव भी उसी तन्मयता से ग्वालों के जीवन के साथ घुले-मिले ग्वाल रूप में दिखाई दिए हैं। गुरु गोविन्दसिंह का समस्त जीवन युद्धभूमि में बीता। इसलिए उन्हें अपने इष्ट अकाल पुरुष के दर्शन युद्ध भूमि में ही हुए :--

कर बाम चापयं क्रिपाणं करालं,
महातेज तेजं बिराजै बिसालं।
महादाढ़ दाढ़ंसु सोहं अपारं
जिनै चरवीयं जीव जग्यं हजारं
डमा डम्म डमरू सितासेत छत्रं
हाहा हूह हासं फना फन्म अत्रं।
महाघोर सबदं बजै संख ऐसे
प्रलै काल के काल की ज्वाल जैसे।।[1]

उन्होंने बड़े विश्वास पूर्वक कहा है कि काल ने सुंभ (शुम्भ) निसुंभ, (निशुम्भ) धूम्रलोचन, चण्ड, मुण्ड, महिषासुर, चामर, चिक्षुर और रक्तबीज जैसे भयंकर दैत्यों को क्षण भर में नष्ट कर दिया ऐसे स्वामी का सहारा पाकर दास को भला किसकी परवाह हो सकती है।[2]

अकाल पुरुष को कवि ने सर्वकाल,[3] महाकाल,[4] आदि अनेक नामों से पुकारा है। डमरू बजाते, फणि धर के समान फुफकारते, बाघ के समान दहाड़ते, दामिनी के समान हँसते, रक्त पीते हुए, अष्टायुध धारण किए सिंह पर सवार अपनी दाढ़ में सभी को चबाते हुए भयावह रूप का चित्रण अनेक स्थानों पर हुआ है। यथा :--

---

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 40।

2- सुंभ निसुंभ से कोटि निसाचर जाहि छिनेक बिखे हन डारे।
धूमर लोचन चण्ड मुंड से भाहरव से पल बीच निवारे।।
चामर से रन चिक्षुर से रकतिक्षण से फट दै फमफकारे।
ऐसो सु साहिबु पाइ कहा परवाह रही इह दास तिहारे। (द0ग्र0पृष्ठ45)।

3- सरबकाल करुणा तब भरे। सेवक जानि दयारस दरे (द0ग्र0पृष्ठ 73)।

4- तहं हम अधिक तपस्या साधी। महाकाल काल का आधी, द0ग्र0, पृष्ठ55।

हाँबरु हबकेंबबर बबकें भुजा फरकें तेज बरं ।
लंकुडीआ फाधें आयुध बाँधे सेन विमर्दन काल असुरं ।
अस्टायुध चमकें भूषाण दमकें अतिसित फमकें फुंकफणं
जय जय होसी महिष्मासुर मर्दन रुम कपर्दन देत जिणं ।।[1]

काल का वर्णन करते हुए उसके साकार रुप की कल्पना भी कवि के सम्मुख अनायास आ गयी है । इस साकार कल्पना में काल का अस्त्र-शस्त्र धारी रुप ही उनके सम्मुख प्रमुख रुप से रहा है ।उसे उन्होंने (खड्गपाणी[2]) कृपाण पाणि[3], बाणपाणि[4],दंडधारी[5],चक्रपाणि[6],,असिपाणि[7], असिधुज(असिध्वज)[8] खड्गकेतु[9] आदि अनेक शस्त्रधारी विशेषणों से अभिहित् किया है ।

कवि ने 'काल' को विष्णु के समान अपनी रचनाओं में चित्रित किया है । कहीं कहीं वह विष्णु से बड़ा भी है । विष्णु के समान ही वह क्षीरसागर में शेषनाग की शैय्या पर शयन करता है ।[10] लक्ष्मी उसकी दासी है । विपत्ति पड़ने पर देवता क्षीर-सागर में इसी 'कालपुरुष' के पास जाते हैं और पृथ्वी पर असुरों की विजय और देवताओं की पराजय से उत्पन्न आर्तनाद से प्रेरित होकर काल ही विष्णु को अवतार धारण करने की आज्ञा दे देता है :--

दीयो आइसं काल पुरखं अपारं ।
धरो बावना बिसन आरंभवतारं ।
लई बिसन आगिआ चलयो धाइ ऐसे
लह्यो दारदी भूप मंडार जैसे ।।[11]

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 31 ।
2- खड्गपाणि की क्रिपा ते पोथी रची विचार(द.ग्र. 336) ।
3- क्रिंपाण पाणि जे जपे। अनन्त थारते थपे। (।। 44) ।
4- नमो बाण पाणं।नमो निरभयाणं। (द0ग्र0 45) ।
5- नमो बाण पाणं।नमो दंड धारिय । (,, ,,) ।
6- नमो चक्रपाणो। अभूतं भयाणं । (,, ,,) ।
7- श्री आपान क्रिपा तुमरी करि मैं न कह्यो सब तोहि बखान्यो(द.ग्र.254)
8- असिधुज जू कोपा जब हीयन (पृष्ठ 1379)
9- खड्ग केतु मै सरनि तिहारी (पृष्ठ 1338) ।
10- शेष नाग पर सोइबो करै,जग तिह सेब साइ उचरै(द0ग्र0,पृष्ठ 47)।
11- दशम ग्रन्थ,पृष्ठ 167 ।

विष्णु ने वामन, नृसिंह[1] रुद्रावतार[2], जालन्धर[3], राम[4], व कृष्ण[5] अवतार के रूप भी 'काल-पुरुष' की आज्ञा से ही धारण किए।

भगवान की काल रूप में प्रतिष्ठा पौराणिक युग में हो चुकी थी। विष्णु पुराण के प्रारम्भ में ही उसकी काल रूपेण अवस्थिति का संकेत है।[6] पर गुरु गोबिन्दसिंह ने इस विनाशक रूप पर इतना अधिक बल दिया है, कि उनके द्वारा प्रयुक्त अकाल पुरुष के अन्य विशेषण इसके चारों ओर चक्कर सा काटते दिखाई देते हैं।

गुरु गोविन्दसिंह के अवतार वर्णन को देख कर उनके अवतारवादी होने की भ्रान्ति हो सकती है पर यह उचित नहीं क्योंकि उन्होंने दशम ग्रन्थ में स्थान स्थान पर अवतार वाद का खण्डन किया है :--

---

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 169 ।

2- वही ०, पृष्ठ 173 ।

3- वही ०, पृष्ठ 182 ।

4- वही ०, पृष्ठ 188 ।

5- वही ०, पृष्ठ 254 ।

6- तवे सर्व मे वैत द्व्यक्ता व्यक्त स्वरुप वत्
तथा पुरुष रुपेण काल रुपेण च स्थितम् ।
परस्य ब्रह्मणो रुपं पुरुषः प्रथमं द्विज ।
व्यक्ताव्यक्ते तथै वान्ये रुपे कालस्तथा परम् ।

विष्णोः स्वरुपात्परतोहिते द्वे रुपे प्रधानं पुरुषश्च विप्र
तस्यैव ते न्येन धृते वियुक्ते रुपान्तरं तद्द्विजकाल संज्ञम् ।।

अनादिर्भगवान्कालो नान्तोऽस्यद्विज विद्यते ।
अन्यूच्छिन्नास्ततस्त्वेते सर्गस्थित्यन्त संयमाः ।।

-- विष्णुपुराण प्रथम अंश प्रथम अध्याय,
श्लोक 14, 15, 24, 26 ।

एक सिव भए एक गए एक फेरि भए, राम चन्द्र क्रिसन के अवतार भी अनेक हैं।
ब्रह्मा अरु बिसन केते बेद और पुरान केते सिंम्रिति समूहन के दुइहुई बितए हैं।
भौनदीमदार केते अनीकुमार केते अंसा अवतार केते कालबस भए हैं।
पीर और पिकांबर केते गनेनपरत येते, भूम ही ते हुइ कै फेरि भूमिही मिलाए हैं।

'दशम ग्रन्थ' में कवि ने चौबीस अवतारों की कथाओं का निरूपण अवश्य किया है, परन्तु उन्होंने अपनी ओर से यह नहीं कहा कि वे इन अवतारों के ब्रह्मत्व में विश्वास रखते हैं ।

दशरथ सुत तिहुं लोक बखाना, राम-नाम का मरम है आना' कहने वाले कबीर ने भी भक्त प्रहलाद का चरित्र वर्णन करते हुए भक्त की रक्षा के लिए खम्भे से नृसिंह अवतार का प्रकट होना कहा है[1] । पर इससे कबीर अवतार वादी नहीं हो जाते। ~~गुरु-जी-ने-तो-स्पष्ट-कहा-है-:---~~

वस्तुत: गुरु जी भक्ति के प्रचारक या भक्त होते हुए भी राज-पुरुष थे। अपने युग के आततायी शासन के विरुद्ध उभरते हुए जन-आन्दोलन के नेता थे। सहस्रों वर्ष पूर्व गीता में 'साधुओं के परित्राण एवं दुष्टों के विनाश' की व्यक्त उक्ति जनमानस में अवतार की कल्पना को सजीव बनाए हुए थी। इसीलिए गुरु गोविन्द सिंह ने जनमानस के विश्वास को उखाड़ा नहीं वरन् उसे पुष्ट किया और कहा :--

जब जब होत अरिस्ट अपारा तब तब देह धरत अवतारा[2]

इस प्रकार गुरु गोविन्द सिंह ने यद्यपि स्वयं को अवतार नहीं माना तथापि अपने जन्म का हेतु उन्होंने लगभग अवतारों जैसा ही माना है ।-

'याही काज धरा हम जनमं ।
समझ लेत साधु सब मनमं ।।

1- प्रहलाद पधारे पढ़न साल, संग सखा लीये बहुत बाल
मोहि कहा पढ़ावे आल जाल, मेरी पाटी लिखि दे श्री गोपाल,
मोहि कहा डरावे बार बार, जिनि जलथल तिर को कियो प्रहार।
तब काढ़ि खड्ग कोप्यो रिसाई तोहि राखन हारो मोहि बताइ।
खंभा में प्रगट्यो गिलरि हनाक्स मार्यो नख बिचारि।
महापुरुष देवाधिदेव, नरसिंघ प्रगट कियो भगति भेव।
कहै कबीर कोई लहै न पार प्रहलाद उबार्यो अनेक बार ।
कबीर ग्रन्थावली, पद379।

2- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 135 ।

धर्म चलावन सन्त उबारन ।
दुस्ट सबन को मूल उपारन ।[1]

जो हमको परमेसर उचरिहै ।
ते सब नरक कुंड महि परिहै
मो को दास तवन का जानो
या मे भेदन रंच पछानो।।6।[2]

इसके साथ साथ उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि इन सब को उत्पन्न करने वाला तथा इन्हें नष्ट करने वाला काल ही है --

काल सभन का कीत पसारा
अंत काल सोई खापनहारा
आपन रूप अनंतन धर ही
आपहि मध लीन पुन करही ।[3]

कवि ने अवतार कथाओं में भी स्थान स्थान पर अवतारों के ब्रह्मत्व का खण्डन किया है ।चौबीस अवतार के प्रारंभ में ही कहते हैं :--

जो चउबीस अवतार कहाए।तिन भी तुम प्रभ तनक न पाए ।
सभ ही जग भरमे भरमायें ।तातेनाम बिअंत कहाये।।[4]
(~~चौ. अवतार प्रा~~)

कृष्णावतार में कहते है :--

मैं न गणेसहि प्रथम मनाऊँ। बिसन बिसन कबहूं न धिआऊं ।
कान सुने पहचान न तिनसों। लिव लागी मोरी पग इनसों।[5]

इस प्रकार शेष ~~ष~~ शेय्या अवतार में कहते हैं :--

काल पुरख देहि मो कोटिक बिसन महेस।।[6]

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 57-58 ।
2- वही०, पृष्ठ 57 ।
3- वही०, पृष्ठ 156 ।
4- वही०, पृष्ठ 156 ।
5- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 310 ।
6- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 182 ।

अत: स्पष्ट है कि गुरु कवि ने अवतार कथाओं का वर्णन किया है। परन्तु उन्होंने इन अवतार कथाओं को इस रूप में ढाला है कि उनसे अवतारों के प्रति भक्ति उत्पन्न नहीं होती वरन् धर्मयुद्ध के लिए उत्साह और प्रेरणा मिलती है। श्वेताश्वतर उपनिषाद् में प्रकृति को ही माया कहा है :--

मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्।[1]

यह प्रकृति ही उस सर्वशक्तिमान प्रभु की शक्ति है। शक्तिमान के साथ उसकी शक्ति सदैव संयुक्त रहती है शक्ति और शक्तिमान ही प्रकृति और पुरुष है। उमा और शिव हैं। माया और ब्रह्म हैं। श्री और विष्णु हैं। लक्ष्मी और नारायण हैं। सीता और राम हैं। राधा और कृष्ण हैं। इसीलिए साहित्य में कहीं दुर्गा की वन्दना है। सरस्वती की उपासना है। राधा की आराधना है तथा सीता की स्तुति है।[2]

गोस्वामी तुलसीदास ने ईश्वर और माया के इस रूप को ही राम और सीता के रूप में देख कर कहा :--

सियाराम मय सब जग जानी,
करहुं प्रनाम जोरि जुग पानी ।।

ईश्वर और माया अथवा पुरुष और प्रकृति अथवा उसकी शक्ति के इसी का रूप कालिदास ने माता-पिता के रूप में स्वीकार करके उनकी वन्दना की।

वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थ प्रतिपत्तये।
जगत: पितरौ वन्दे पार्वती परमेश्वरौ ।।3

गुरु गोविन्दसिंह भी परमेश्वर की इस शक्ति को माता के रूप में ही स्वीकार करते हैं :--

सरब काल है पिता हमारा।
देवि कालका मात हमारा ।।[4]

1- श्वेताश्वेतर उपनिषाद 4।10।

2- डा० मुन्शीराम शर्मा, भक्ति का विकास, पृष्ठ 451, 52।

3- रघुवंश 1।1।

4- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 73।

आराधना करते समय भी वे सरबकाल (सर्वकाल) के साथ साथ देवि कालका (देवी कालिका) का ध्यान करते हैं :--

तहँ हम अधिक तपस्या साधी
महाकाल कालका आराधी।।[1]

गुरु गोविन्दसिंह ने कबीर तथा दूसरे निर्गुण सन्तों के समान माया या प्रकृति की निन्दा नहीं की है।वे माया को न ठगिनी मानते हैं और न प्रकृति का उपासक उनकी दृष्टि में प्राकृत (मूर्ख) ही है। उनकी दृष्टि में तो माया शक्ति है। महाकाल का अपना तेज है।इसके बिना शिव शव है। सारी सृष्टि को उपजाने वाली इस शक्ति को ही वे भवानी के नाम से पुकारते है।

प्रथम काल सभ जग को ताता
तांते भयो तेज विख्याता ।
सोई भवानी नामकहाई
जिन सगरी यह स्रिस्टी उपाई।[2]

पौराणिक आधार पर शक्ति का सम्बन्ध शिव के साथ है।शक्ति की चरितार्थता वास्तव में शिव के साथ रहने में ही है।शिव ध्वंस के देवता है।अपनी शक्ति के बल पर वे अशिव का विनाश करते है। गुरु गोविन्दसिंह सन्त-सिपाही थे।धर्म की, शिव की स्थापना और अन्तों का उन्मूलन उनका लक्ष्य था। अत: ईश्वर के लिए भी, अकाल पुरुष के लिए भी उन्हें काल, महाकाल,सर्वकाल, रुद्र आदि भयानक नाम ही अधिक रुचे है। भवानी इसी शिव या महाकाल की दासी है।

अनहद रूप अनाहद बानी।
चरन सरन जिह बसत भवानी।।[3]

चण्डी के इस रूप की स्वीकृति के पीछे मार्कण्डेय पुराण का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है।मार्कण्डेय पुराण में उसे विश्व की सर्वोपरिशक्ति मान कर उसे सर्वेश्वरी कहा गया है।वह जगत्पति की योग-निद्रा है।उनकी विश्वमोहिनी शक्ति है।

1- दशम ग्रन्थ,पृष्ठ 54-55 । (2) वही०,पृष्ठ 157-58 ।
(3) वही०,पृष्ठ 11 ।

पच्चीस :

तन्नात विस्मय: कार्योयोग निद्रा जगत्पते:
महामाया हरेश्चैषातया सम्मोह्यते जगत् ।।[1]

गुरु गोविन्दसिंह ने चण्डी के इस विश्वमोहिनी रुप का चित्र इस प्रकार खींचा है :--

कंचन सो तन खंजन से दृग, कंचन की सुषमा सकुची है ।
ले करतार सुधाकर में मधु, भूरति सो अंग अंग रची है ।
आनन के सर को ससि नाहिन और कछु उपमान बची है ।
शृंग सुमेरु के चंडी बिराजत मानो सिंहासन बैठ शची है ।[2]

तथा -

मीन भुरकाने कंज खंजन खिसाने अलि
फिरत दिवाने वन डोले जित तित ही ।
कीर औ कपोत बिंब कोकिला कलापी लूटे
फूटे फिरे मन चैन हूं न कित ही
दारमदारकि गयो देखी दशनन पांति
रुप ही कान्ति जग फैल रही सित ही।
ऐसी गुण सागर उजागर सुनागरि है
लीनो मन मेरो हर नैन कोट चित ही ।।[3]

चंडी के इस विश्व मोहिनी रूप के चित्रण में कवि ने अपनी मौलिकता प्रदर्शित न करके परम्परा का निर्वाह भर कर छोड़ा है । मार्कण्डेय पुराण में ऐसी चर्चा अध्याय 79 में श्लोक 83 से 91 तक हुई है ।कवि को चंडी का विश्व-विजेता रूप प्रिय है। इसी में चंडी नाम की अन्वर्थता और शक्ति नाम की सार्थकता है।वास्तव में कालिका की चरितार्थता काल बनने में ही है---

---

1- मार्कण्डेय पुराण 78।41 ।
2- दशम ग्रन्थ ,पृष्ठ 81 ।
3- दशम ग्रन्थ ,पृष्ठ 82 ।

पान क्रिपाण धरे बलवान सु कोप के बिज्जुल जिउं गरजी है ।
मेरु समेत हिल गरुड़ गिरि सेस के सीस धरा लरजी है ।
ब्रह्म धनेश दिनेश डरा सुनिके हरि की छतियां तरजी है ।
चंडी प्रचंड अखंड लिए करकालिका काल ही जिउ अरजी है ।[1]

तथा --

सिंह चढ़ी मुख संख बजावत यों घन मच्छितड़िता द्युति मंडी ।
चक्र चलाय गिराय दियो अरि भाजत देव बड़े बरबंडी ।
भूत पिशाचनि मांस अहार को किलकार खिलाइ कै फंडी ।
मुंड को मुंड उतार दइओ अब चंड को हाथ लगावत चंडी ।[2]

चंडी के स्वरूप वर्णन में कवि ने उसे महाकाल की सर्वथा सह-धर्मिणी दिखाया है :--

नमो घोर रूपा नमो चार नैणा ।
नमो सूलणी सैंथणी बक्र बैणा ।
नमो ब्रिध बुधं कटी जोग जुआला ।
नमो चंड मुंडी प्रिंडा क्रूर काला ।[3]

इस प्रकार गुरु गोविन्दसिंह ने अकाल पुरुष के समान ही उसकी माया शक्ति का भी वर्णन किया है, जो सृजन, पालन और संहार करने वाला है ।

जीव के सम्बन्ध में गुरु गोविन्दसिंह के विचार बड़े स्पष्ट हैं । अकालपुरुष विविध जीवों के रूप में अनन्त रूप धारण करता है और फिर सब को अपने में ही लीन कर लेता है:--

`एकोऽहं बहु स्याम ।`
आपन रूप अनन्तन धरही ।
आपहि मध लीन पुन करही ।[4]

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 31 ।
2- वही०, पृष्ठ35 ।
3- वही०, पृष्ठ 117 ।
4- वही०, पृष्ठ 156 ।

सारी आत्मायें उसी अकाल पुरुष की ज्योति का प्रकाश है --

जैसे एक आगते कनूका कोटि आग उठे ,
नयारे नयारे होई के कोटि आग में मिलाहिंगे ।
जैसे एक धूर ते अनेक धूर पूरत हैं
धूर के कनूका फेर धूर ही समाहिंगे ।
जैसे एक नद ते तरंग कोट उपजत हैं
पान के तरंग सबै पान ही कहाहिंगे ।
तैसे विस्व रूप ते अभूत भूत प्रगट होई
ताही ते उपज सबै ताही में समाहिंगे ।।[1]

उपर्युक्त पद्य से स्पष्ट है कि गुरु गोविन्द सिंह ब्रह्म और जीव की पृथक् सत्ता को परमार्थत: स्वीकार नहीं करते।जीव ब्रह्म का ही अंश है ।अग्नि पुंज से नि:सृत अग्नि-स्फुलिंगों की भांति, एक धूल के विभिन्न कणों की भांति नदी जल और उसकी तरंगों की भांति[2] ।। नाम रूपों की पृथकता इनकी अनेकता का कारण नहीं हो सकती ।मूल तत्व एक ही है । यह ही जगत् का उपादान कारण है और वह ही निमित्त कारण भी है[3]।

नि:सन्देह जीव की ब्रह्म से उत्पत्ति और ब्रह्म में पुन: लीनता के संबंध में गुरुगोविन्द सिंह सिख परम्परा के अनुसार अद्वैत वेदान्त से पूर्ण सहमति रखते हैं ।सारी सृष्टि का पसार एक लीला मात्र है।ब्रह्म से एकाकारता जीव का लक्ष्य है।अज्ञान तिमिर के मिटते ही जीव का व्यक्तित्व तिरोहित हो जाता है।वह सांसारिक आवागमन के चक्र से मुक्त हो सदा के लिए ब्रह्म में लीन हो जाता है :--

खेल खेल अखेल खेलन अंत को फिरि एक।[4]

1- दशम ग्रन्थ,पृष्ठ 19-20 ।

2- तुलना कीजिए :--

दरियाव की लहर दरियाव है जी,
दरियाव और लहर भिन्न कोयम --कबीर ।

3- तुलना कीजिए:--कारण कारण प्रभु एक है दूसर नाही कोई
--आदि ग्रन्थ गउडी सुखमनी, महला 5,पृष्ठ276।

4- दशम ग्रन्थ पृ. 5

साधना-पद्धति :-

ज्ञान, कर्म और उपासना भारतीय साधना पद्धति की तीन धारायें हैं। 'बाहुल्येन व्यपदेशा: भवन्ति' के आधार पर कहना हो तो शांकर वेदान्त ज्ञान को मुख्य मान कर आगे बढ़ा, मीमांसक लोगों ने कर्म को ही सर्वोपरि माना और सारा भक्ति आन्दोलन उपासना की धारा को गति देता रहा। गीता में इन तीनों का समन्वय है पर अपने मतवाद के आग्रह से विद्वानों ने उसे ज्ञानप्रधान,[1] कर्मप्रधान[2] और उपासना प्रधान[3] सिद्ध करने का प्रयास किया है। ज्ञान, कर्म और उपासना इन तीनों का समन्वित आदर्श उपस्थित करने के कारण ही चारों वेद 'त्रयी विद्या' के नाम से पुकारे जाते हैं। दशम ग्रन्थ भी ज्ञान, कर्म और उपासना की एक सुन्दर त्रिवेणी है। 'जापु,' 'अकाल उस्तुति,' 'ज्ञान प्रबोध' के अधिकांश पद्य श्री अकाल पुरुष की स्तुति-परक होने के कारण ज्ञान की गंगा है।[4] सम्पूर्ण 'विचित्र नाटक' में कर्मधारा की कालिन्दी का अजस्र प्रवाह है।[5] अकाल उस्तुति, सबद हजारे आदि में उपासना की सरस्वती प्रवाह मान है।[6]

1- ज्ञानाग्नि सर्व कर्माणि भस्मसात् कुरुते जुन

2- कर्मण्ये वाधिकारस्ते फलेषु कदा चन

3- नमस्ते भवद्भक्ताभद्यायजी मानमस्कार ।

4- गेन में उड़ते केते जल में रहते केते ।
गिआन के विहीन जक जारेई मारत है। (दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 20) ।
- गिआन के विहीन काल फांस के अधीन सदा।
जुगन की चाकरी किरार्इ फिरा है। (वही०, पृष्ठ 13)।

5- स्त्री को पूत हो ब्राह्मन को नहि, के तंपु आवत है जु कहीं।
अरु और जंजार जिते ग्रिह को तृहि त्याग कहा चित ता में धरौं।
अब रीझ के देहु वहे हमको जोऊ हउ विनती कर जोर करौं
जब आवकी अउध निदान बने अति ही रण में तब जूझ मरौं। (2439)
कृष्णावतार

6- केवल करम भरम से चीनहु धरम करम अनुरागो।
संग्रह करो सदा सिमरन को, परम पाप तजि भागे।
जाते दुख पाप नहि मेटे काल जाल ते तागो
जो सुख चाहो सदा समन को तो हरि के स पागो। (शब्दहजारे 3।3।

(1) नामस्मरण :-

नाम स्मरण निर्गुण साधना-पद्धति का एक विशिष्ट अंग है। गुरु गोविन्दसिंह की साधना पद्धति भी नाम के महत्व से आरम्भ होती है। अकाल पुरुष के नाम स्मरण बिना किए गए करोड़ों व्रत व्यर्थ है। अत: उन्होंने जापु, अकाल उस्तुति, ज्ञान प्रबोध, शस्त्र नाम माला में विशेषत: तथा अन्य रचनाओं में सामान्यत: ईश्वर के असंख्य नामों का उच्चारण किया है। हिन्दी तो क्या संभवत: संस्कृत में भी ऐसा कोई ही ग्रन्थ विद्यमान हो जिसमें परमात्मा के विशेषण इतनी विपुल मात्रा में आए हों। नाम के संबंध में कवि का आग्रह परम्परा विशेष, संस्कृति विशेष या भाषा विशेष नहीं रहा है। हिन्दू परम्परा के वैदिक और पौराणिक संस्कृत नामों के अतिरिक्त उन्होंने प्राकृत, अपभ्रंश व अरबी फारसी के नामों का खुला प्रयोग किया है और स्वयं भी असंख्य नामों को गढ़ा है। नामों के सम्बन्ध में उनका यह विचार दर्शन सिक्खों की गुरु परम्परा 'एको अल्लह पारब्रह्म'[1] के अनुकूल ही रहा है।

(2) बाह्याचार, पाखण्ड, कपट और अहंकार का त्याग :-

ये वे निकृष्ट दोष है, जो व्यक्ति को ईश्वर की ओर बढ़ने ही नहीं देते। भक्ति हृदय से होती है उसके लिए बाहरी दिखावे निष्प्रयोजन हैं। सच्ची भक्ति के लिए मानसिक दोषों का भी त्याग अपेक्षित है। अत: वे बार बार अपने मन को सचेत करते हैं :--

1- रे मन इह विधि जोग कमाउ।
सिंगी साच अकपट कंठला धिआन विभूत चढ़ाउ।[2]

2- रे मन ऐसो करि सनियासा
बन से सदन सबै करि समझहु मन ही माहि उदासा।[3]

1- गुरु ग्रन्थ साहब, 5।34।45 गुरु हरगोविन्द।

2- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 710।

3- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 709।

3- काम क्रोध हंकार लोभ हठ मोह न मन सो ल्यावें
तब ही आतम तत्त को दरसे परम पुरख कह पावें ।[1]

2- जिह फोकट धरम सबै तजि है।इक चित क्रिपानिधि को जपि है
तेउ या भव सागर को तरि है।भव भूल न देह पुनह धर है।[2]

कवि ने न केवल स्वयं को फोकट धर्म से बचे रहने की बात कही है अपितु इन के पीछे पड़े रहने वालों का भी खण्डन किया है ।

ताप के सहैते जो पैंपाइये आप नाथ
तापना अनेक तन धाइल सहत है ।
जाप के किए ते जो पै पायत अजाय देव,
पूदना सदीव तुही तुही उचरत है ।
नभ के उड़े ते जो पै नारायण पाइयत
अनल अकास पंछी डोलबो करत है।
आग में जरे तै गति रांड की परत कर
पाताल के वासी किऊं भुजंग न तरत है ।[3]

प्राणिमात्र में समता :-

गुरु जी ऊंचनीच की भावना के सदा विरोधी रहे हैं।उनके पांच प्यारे इस तथ्य के ज्वलंत निदर्शन हैं कि वे मानव मात्र की समता के समर्थक थे ।

1- हिन्दू तुरक ओह राफ जी इमाम साफी
मानस की जात सबै एकै पहचानबो ।।[4]

2- देहरा मसीत सोई पूजा और निवाज ओई
मानस सबै एक पै अनेक को भ्रमाउ है।।[5]

1- दशम ग्रन्थ ,पृष्ठ 709 ।
2- दशम ग्रन्थ,पृष्ठ25-26 ।
3- वही०, पृष्ठ 19 ।
4- वही०, पृष्ठ 19 ।
5- वही०, ,, ,, ।

इन पंक्तियों में बड़ी ही स्पष्टता से सब धर्मावलंबियों और उनके पूजा स्थानों की एकता का भाव विद्यमान है ।

निष्कामता :-

गीता का निष्काम कर्मयोग भी उनमें पूर्णतया प्रतिफलित रहा है :--------

कामना अधीन पशु नाचत है नाचन सो
ज्ञान के विहीन कैसे ब्रह्मलोक पावही।[1]
कामना अधीन सदा दामना प्रवीन ।
एक भावना विहीन कैसे पावे जगदीस को ।।[2]

यथार्थ ज्ञान की अनिवार्यता :

ज्ञान की अग्नि से सारे कर्म बन्धन समाप्त हो जाते हैं ।ज्ञान रहित प्रेम केवल मोह है तथा ज्ञान रहित भक्ति अन्ध श्रद्धा है । अत: कवि गुरु ने अपनी साधना पद्धति में ज्ञान को अनिवार्य तत्त्व स्वीकार किया है ।

प्रेम और अनन्यता :-

गुरुमत में प्रेम की प्रतिष्ठा आदि गुरु नानक देव जी ने ही कर दी थी :--

रे मन ऐसी हरिसिउ प्रीति कर जैसी जल कमलेहि ।
लहिरी नाल पछाड़ीए भी विगसे असनेहि ।
रे मन ऐसी हरि सिउ प्रीति कर जैसी मछुली नीर
बिनु जल घड़ी न जीवई प्रभु जाणै अभ पीर।।[3]

गुरु गोविन्दसिंह ने भी अपनी साधना के मार्ग में प्रेम को ही सब से बड़ा पाथेय माना है :--

साच कहौ सुन लेहु सबै
जिन प्रेम कियो तिन ही प्रभ पायो।।[4]

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 19 ।
2- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 13 ।
(3) गुरु ग्रंथ साहिब, महला 1।
(4) दशम ग्रन्थ , पृष्ठ 14 ।

उनके प्रेम और भक्ति में सर्वथा अनन्यता है :--

तुमहि छाँडि कोई अवर न ध्याऊँ ।
जो वर चहौं सु तुमते पाऊँ ।[1]

अपने अनन्य आराध्य के प्रति उनके हृदय में अटूट विश्वास तथा आत्म समर्पण की भावना है :--

1- पोरवत है जल में थल में पल में कलि के नहीं करम विचारे ।
दीन दयाल दयानिधि दोखन देखत है पर देत न हरि।[2]

2- खड्ग केत में सरनि तिहारी
आपु हाथ दे लेहु उबारी
सरब ठौर मों होहु सहाई
दुस्ट दोखवते लेहु बचाई ।।[3]

3- धनवान धृतमान धराधर अनि विकार असिधारी
हौं मति मंद चरन सरणागति कर गहि लेहु उबारी।।[4]

गुरु गोविन्दसिंह स्वयं एक महान योद्धा, भक्त और दार्शनिक ही नहीं अपितु उच्चकोटि के कवि और कवियों के आश्रय दाता थे। 'दशम ग्रन्थ' की रचना ही उनकी महान कवित्व शक्ति का परिचायक है, जिसका मूल्यांकन हम अगले पृष्ठों में करेंगे ।उनके दरबार में 52 कवि विद्यमान थे।इन कवियों में सेनापति, मंगल, हरि, ब्रजभूराय, हंसराम, कुंवरेश, टहलकण, आलिम चन्दन, धन्नासिंह, सुदामा, शारदा और नन्दलाल आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। ऐसे समय में जबकि औरंगजेब ने अपने राज्य में साहित्य और संगीत की मनाही कर दी थी[5] गुरु जी ने इतने अधिक कवियों को आश्रयदेकर एक महान् साहित्य सेवाकी।

गुरु गोविन्दसिंह का व्यक्तित्व प्रत्येक क्षेत्र में महान् और दक्ष था ।चाहे सैनिक संगठन को लें या साहित्य को, दर्शन को ले अथवा भक्ति को प्रत्येक क्षेत्र में वे महान् थे। ---

---

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 1386 । (2) वही०, पृष्ठ 35 ।
3- वही०, पृष्ठ 1333 । (4) वही०, पृष्ठ 710 ।
5- डा० त्रिलोचनसिंह, संक्षिप्त जीवन गुरुगोविन्दसिंह, पृष्ठ 19 ।

भूमिका

खण्ड : 2

गुरु गोविन्दसिंह की आलोच्य रचनाओं की भाषा-- ब्रज :

एक व्याकरणात्मक विश्लेषण

::o:o:o:

भूमिका

गुरु गोविन्दसिंह की आलोच्य रचनाओं की भाषा -- ब्रज :
एक व्याकरणात्मक विश्लेषण

गुरु गोविन्दसिंह द्वारा प्रणीत दशम ग्रन्थ में `जापु,` `अकाल उस्तति ,` `ज्ञान प्रबोध,` `विचित्र नाटक,` `चंडी दी वार`, `शस्त्र-नाम-माला पुराण ,` `33 सवैये,` `शब्द हज़ारे `, `चरित्रोपाख्यान,` `जफ़रनामा` और `हिकायते ` संकलित हैं । इन रचनाओं में से `चण्डी दी वार` शुद्ध पंजाबी व `जफ़रनामा ` और `हिकायते ` शुद्ध फ़ारसी भाषा की कृतियां होने के कारण हमारे अध्ययन-क्षेत्र में नहीं आतीं । शेष रचनाओं की भाषा को भले ही मिश्रित भाषा के नाम से पुकारा जाए पर उनमें प्रधानता ब्रज भाषा की है ।इसीलिए हमने उन रचनाओं को ब्रज भाषा की कृतियां कहा है।व्याकरण की दृष्टि से इन रचनाओं की भाषा का अध्ययन करने पर हमें पता चलता है कि इन कृतियों में ब्रजभाषा की लगभग सभी विशेषतायें पाई जाती हैं । ध्वनिसमूह,संज्ञा, परसर्ग,सर्वनाम, क्रिया, क्रिया-विशेषण, शब्द-समूह सभी दृष्टियों से इन कृतियों में ब्रजभाषा-व्याकरण के नियमों का पूर्णतया पालन हुआ है । कहीं-कहीं अपवाद स्वरूप खड़ी बोली तथा पंजाबी की व्याकरण सम्बन्धी विशेषताओं का भी दिग्दर्शन होता है पर ऐसे स्थल बहुत ही कम हैं।कहीं कहीं फ़ारसी शब्दावली का भी प्रयोग हुआ है।इसका कारण यह प्रतीत होता है कि गुरु गोविन्दसिंह का जन्म बिहार राज्य के पटना नगर में हुआ था तथा पंजाब उनका कार्य-क्षेत्र रहा । उनका फ़ारसी भाषा का भी गहन अध्ययन था परन्तु समग्र रूप से उनकी रचनाओं में मुख्यतया ब्रजभाषा का ही प्रयोग है।निम्नलिखित व्याकरणात्मक

विश्लेषण हमारी उपर्युक्त संस्थापना का प्रमाण है ।

ध्वनि समूह :- ब्रजभाषा की सामान्य ध्वनियां हिन्दी की अन्य बोलियों की ध्वनियों से मिलती जुलती है ।[1]

ऋ :- 'ऋ' ब्रजभाषा के समान ही अप्रधान स्वर है ।[2] इसके स्थान पर ब्रजभाषा में 'रि' अथवा 'इर' का प्रयोग किया जाता है । यथा :-- 'कृपा' के स्थान पर 'रिचा' और 'ऋतु' के स्थान पर 'रितु' का प्रयोग मिलता है। गुरु गोविन्दसिंह की रचनाओं में भी 'रि' का ही प्रयोग मिलता है। यथा :--

हिन्दी। संस्कृत ।	गुरु गोविन्दसिंह की भाषा में प्रयुक्त शब्द।	उदाहरण
भृंद्	भ्रिंद्	भ्रिंद हास करी कर काल धुनं[3]
नृप	न्रिप	क्रिप्र चले कारबे न्रिप कारज होइ चले बनता सुत पाछे।[4]
भृंगलोचनी	भ्रिंगलोचनी	काल ही बास बने भ्रिंगलोचनी राजकारों तुम सो सुन लीजे।[5]
कृपाण	क्रिपाण	धर बान पान ।कटि कसी क्रिपान।[6]
घृणा	घ्रिणा	मात की एक ही बात कहे तजतात घ्रिणा बनवास निकारे।[7]
पृथ्वी	प्रिथमी	दहतन के इर तेज महँ प्रिथमी बहु मार ही मारी ।[8]
मृणाल	म्रिनाल	कट सम केहरि म्रिनाल काहे सन है।[9]
ऋणी	रिनी	जैसे धनी धन ते ऋ रिनी लोक मन तें।[10]
स्मृति	सिम्रिति	सिम्रिति सासत्र वेद सभै बहु भेद कहे हम एक न जानयो।[11]

1- डा० प्रेमनारायण टंडन, ब्रजभाषा व्याकरण की रूपरेखा, पृष्ठ 5।
2- " " 5, " " " " " " " "।
3- दशमग्रन्थ, पृष्ठ 133(4) वही, पृष्ठ 299 (5)वही, पृष्ठ207, (6)वही, पृष्ठ214,
7- वही, पृष्ठ 216(8) वही, पृष्ठ 299, (9)वही, पृष्ठ276, (10)वही, पृष्ठ319,
11-वही, " 254।

व्यंजन :-

ङ :-- शब्दों के आदि या अन्त में पूर्ण अक्षर की तरह `ङ` नासिक्य-ध्वनि का प्रयोग खड़ी बोली या ब्रज भाषा में नहीं होता।खड़ी बोली में शब्दों के बीच में अवश्य ही विशेष रूप से संस्कृत के तत्सम शब्दों में अथवा नए शब्दों में इन्हीं के अनुकरण पर,यह वर्ण वर्ग की चार ध्वनियों-- क,ख, ग ,घ, के पूर्व प्रयुक्त होता है। परन्तु ऐसा प्रयोग प्राय: उन्हीं लेखकों अथवा कवियों ने अधिक किया है,जो संस्कृत के विद्वान थे ।ब्रजभाषा काव्य में प्राय: `ङ` `ञ` के स्थान पर अनुस्वार-बिन्दु से काम चलाया गया है,यथा गंगा,पतंग,भृंग आदि [1] । गुरु गोविन्दसिंह के काव्य में भी हमें `ङ` और `ञ` के स्थान पर अनुस्वार बिन्दु का प्रयोग ही अधिक मिलता है।

हिन्दी।संस्कृत	गुरु गोविंदसिंह द्वारा प्रयुक्त शब्द	उदाहरण
~~कुङ्म~~ कुरङ्ग	कुरंग	कमल सो आनन कुरंग ताके बांके नैन ।[2]
~~गङ्गा~~ गङ्गा	गंगा	दांत गंगा जमुना तन सिआम सो लोहू बहिओ तिन माहि त्रिवेणी ।[3]
चन्द्रिका	चंद्रका	जपहु चंद्रका को सब जामा ।[4]

ज और य :- ब्रजभाषा वर्णमाला में `य` के स्थान पर सर्वत्र `ज` का प्रयोग होता है[5]। गुरु गोविन्दसिंह की कृतियों में भी `तत्सम` `य` साधारणतया `ज` में परिवर्तित हुआ है । यथा :--

हिन्दी।संस्कृत	गुरु गोविंदसिंह द्वारा प्रयुक्त शब्द	उदाहरण
यज्ञ	जग	सकल बिधंस जग का डारा ।[6]
यदुपति	जदुपति	करतक एक बिचार जदुपति गुरत एक धरी गिर बाकी ।[7]

1- डा० प्रेम नारायण टंडन,ब्रज भाषा व्याकरण की रूपरेखा,पृष्ठ 11 ।

2- दशम ग्रन्थ ,पृष्ठ 276 ।

3- वही०, पृष्ठ 33 ।

4- वही, पृष्ठ 131 ।

5- वही, पृष्ठ डा० प्रेमनारायण टंडन,ब्रजभाषा व्याकरण की रूपरेखा,पृ०11

6- दशमग्रन्थ,पृष्ठ177 (7) वही०,पृष्ठ 243 ।

युवती	~~जद्पत्ति~~ जुवती	त्रिगनी जुवती छलबे कहु घंटक हेर बनाया।[1]
युवराज	जुवराज	इत अंगद जुवराज दुतीय दिसबीर अंकपन[2]
दुर्योधन	दुरजोधन	वीर बहे दुरजोधन आदिक जाहि भराइ हरे रन छत्री ।[3]
सत्ययुग	सतजुग	आदि सतजुग के भुरके गढ़ तोर दर सभ जिउ कल बंगा ।[4]
कार्य	कारज	छिप्र चले करवे त्रिप कारज छोड चले बनता सुत पाछे ।[5]
सरयू	सरजू	बान पान कमान ले बिहरंत सरजू तीर ।[6]

अपवाद :- गुरु गोविन्द सिंह के काव्य में सर्वत्र ही `य` `ज` में परिवर्तित नहीं हुआ ।कुछ स्थानों पर अपवाद स्वरूप `य` का भी प्रयोग है ।`य` जहां अर्द्धस्वर के रूप में प्रयुक्त हुआ है वहां `ज ` नहीं हुआ। संयुक्ताक्षर का `य ` भी `ज` में परिवर्तित नहीं हुआ ।`ज` के पश्चात् आने वाला` य` भी `ज ` में परि-वर्तित नहीं हुआ है । यथा :--

कर कोप बली बरख्यो बिसख ।[7]
कोक काव्य पढ़ै कहुं व्याकरन बेद बिचार ।[8]
राम राज उठी जयत धुनि भूम भूर बिसाल ।[9]

इसके अतिरिक्त एक स्थान पर `युधिष्टर का `य` भी `ज ` में नहीं बदला । यथा :--

`अथ कानजू कोपराजा युधिष्टर स्थापन करत भए ।[10]

1- दशमग्रन्थ ,पृष्ठ 311। (2) वही०,पृष्ठ 213 ।
3- वही, पृष्ठ 305 । (4) वही, पृष्ठ 299 ।
5- वही, पृष्ठ 299 । (6) वही, पृष्ठ 193 ।
7- वही०,पृष्ठ 175 । (8) वही, पृष्ठ 203 ।
9- वही, पृष्ठ 203 । (10) वही०,पृष्ठ 151।

ण :-- संस्कृत का `ण ` अधिकतर ब्रजभाषा शब्दों में `न ` हो जाता है।[1]

गुरु गोविन्दसिंह की रचनाओं में भी ऐसा ही हुआ है। यथा :--

संस्कृत। हिन्दी ।	गुरु गोविंदसिंह द्वारा प्रयुक्त शब्द	उदाहरण
प्रणाम	प्रनामा	आइ पिता कहु कीन्ह प्रनामा।[2]
शोणित	स्रोनत	अंग भंग परे कहु सरबंग स्रोनत पूर।[3]
करुणानिधि	करुनानिधि	हे करुनानिधि हे जग के पति अच्युत हे बिनती सुन लीजे।।[4]
प्रवीण	प्रवीन	दूत राम चीन। भुन मन प्रवीन।[5]
रण	रन	रन राजकुमार बिराजहिंगे।।[6]
रावण	रावन	रावन ह्वै उत ते जुगिया सीअ लेन चलयो जनु भीच चलायो।[7]
प्राण	प्रान	पहरेक्क लउ फिर प्रान फिरे।[8]
वाणी	बानी	नभि बानी बाच कंस सों।[9]

अपवाद :- ऐसे भी स्थल दशम ग्रन्थ में है जहाँ `ण `` न ` में परिवर्तित नहीं हुआ है। संभवतया पंजाबी अथवा हिन्दी क्षेत्र के प्रभाव के कारण ऐसा हुआ है। यथा :--

रणबीर - गूंजत है रणबीर महां मन।[10]

रण = रण रंगहि राम बिराजहिंगे।।[11]

रावण - हण्यो असुर रावण तराणा।।[12]

1-डा०दीनदयाल शर्मा, ब्रजभाषा एवं खड़ीबोली के व्याकरण का तुलनात्मकअध्ययन, पृष्ठ134।
2- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 200।
3- वही०, पृष्ठ 174।
4- वही०, पृष्ठ 476।
5- वही०, पृष्ठ 214।
6- वही, पृष्ठ 215।
(7) वही०, पृष्ठ 216।
(8) वही , पृष्ठ 217।
(9) वही , पृष्ठ 253।
(10) वही ,पृष्ठ 214।
(11) वही०,पृष्ठ 215।
(12) ,, ,, 213।

यहां `हण्यो ` में `न ` का परिवर्तन `ण ` में दर्शनीय है ।संभवत: यह पंजाबी प्रभाण के कारण हुआ है ।

ब और व :- खड़ी बोली का `व ` ब्रज भाषा में प्राय: `ब ` लिखा जाता है । विशेष कर शब्द के आदि का `व ` तो ब्रजभाषा में `ब` हो ही जाता है। परन्तु शब्द के मध्य में आने वाले `व ` को भी अधिकांशत: `व ` हो जाता है ।[1] गुरु गोविन्दसिंह के काव्य में भी इस नियम का पालन हुआ है।यथा ---

हिन्दी।संस्कृत	गुरु गोविंदसिंह द्वारा प्रयुक्त शब्द	उदाहरण
वर	बर	जबै भइ वहि कनिका सुन्दर बर के जोग्।[2]
वसुदेव	बसुदेव	दूत पठयो तिन जाइकै निरखयो है बसुदेव।[3]
वधु	बधु	भृंग इंदन इन्द्र बधु भुनसार उटा रवि- की जीअ जानी।[4]
वरदान	बरदान	रछ को इह की हरि जी तुम पै बरदान इहै हम पावे ।[5]
विमान	बिमान	त्रिबान पुरख ध्यावहीं। बिमान अति पावहीं ।[6]
विचार	बिचार	कोक काव्य पढ़ै कहूं व्याकरण बेद- बिचार।[7]
विधाता	बिधाता	सभो लोक ख्याता बिधाता पछानयो।[8]

अपवाद :- दशम ग्रन्थ में ऐसे भी उदाहरण मिल जाते है जहां `व ` `ब ` में परिवर्तित नहीं हुआ। यथा :--

---

1- डा० गेन्दालाल शर्मा, ब्रजभाषा एवं खड़ीबोली के व्याकरण का तुलनात्मक - - अध्ययन,पृष्ठ 134 ।

2- दशम ग्रन्थ ,पृष्ठ 256 । (3) वही०,पृष्ठ 256 ।

4- वही०, पृष्ठ 209 । (5) वही, पृष्ठ 230 ।

6- वही,दशम ग्रन्थ ,पृष्ठ135 । (7) वही,पृष्ठ 203 ।
(8) वही,पृष्ठ 243 ।

वीर - हकार वीर संभिड़े तुकार धार दुधा[1]।

रवि = रवि भारत तिनको विवि नाना[2]।

र और ल :-- ब्रजभाषा में शब्दान्त और कहीं कहीं मध्यका 'ल' भी 'र' में परिवर्तित हो जाता है[3]। गुरु गोविन्दसिंह जी की भाषा में भी ऐसा ही हुआ है। यथा :--

हिन्दी।संस्कृत	गुरु गोविन्दसिंह द्वारा प्रयुक्त शब्द	उदाहरण
दयाल्	दयारा	निरख दीन पारहोत दिआरा[4]।
डारे	डारे	सभै मार डारे गए बीर जेते[5]।
रखवाली	रखवारी	बांध निखंग चले कटि सो कही भ्रात इहां कमी जै रखवारी[6]।
ससुराल	ससुरार, जात भए ससुरार नरेसा।[7]	
उलझाना	उरझाना	जग आपन आपन उरझाना[8]।
जलावे	जरावे	अधि निसादिन भान् जरावे[9]।
तलवार	तरवार	झल हलत तरवार बजत बाजंत्र महाधुन[10]।
बालक	बारक	बारकजे जनमे इह देस मे ताहि को जाइ के सीघ्र संहारो[11]।

अपवाद :- इसके साथ ही साथ दशम ग्रन्थ में कुछ ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं जहां 'ल' को 'र' नहीं हुआ है। यथा :--

संभाल -- हाथ संभाल के ढाल दई तब ही सोऊ आवत ही सु बचाई[12]।

बलकल :-- बलकल धरतन भूसन तोरे[13]।।

ग्वाल -- किधो बनार त्रिनक मे बहुरे संगि ग्वाल[14]।

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 212। (2) वही, पृष्ठ 135।

3- डा० प्रेमनारायण टंडन, ब्रजभाषा व्याकरण की रूपरेखा पृष्ठ 13।

4- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 156। (5) वही, पृष्ठ 171।

6- वही, पृष्ठ 176। (7) वही, पृष्ठ 216।

8- वही, पृष्ठ 157। (9) वही, पृष्ठ 137।

10- वही, पृष्ठ 213। (11) वही, पृष्ठ 263।

12- वही, पृष्ठ 456। (13) वही, पृष्ठ 210।

14- वही, पृष्ठ 275।

होली :- अथ गोपन सो होली खेलवो ।[1]

तलवार :- तीर तुही तेंधी तुही तुही तवर तलवार[2] ।

श, ष और स :- ब्रजभाषा में सही बोली की ऊष्म ध्वनियों, श, ष और स तीनों के स्थान पर केवल दन्त्य 'स' ही प्रयुक्त होता है।[3] सम्पूर्ण दशम ग्रन्थ ऐसे सहस्रों उदाहरणों से भरा पड़ा है ज जहाँ 'श' और 'ष' के स्थान पर 'स' का प्रयोग हुआ है। यथा :-

हिन्दी। संस्कृत	गुरु गोविंदसिंह द्वारा प्रयुक्त शब्द	उदाहरण
सुरेश	सुरेस	कितेक भाज चालीय सुरेस लोक को गए।[4]
शोभा	सोभा	अनंत दान मान लै किसेहू सोभा पावही।[5]
महेश	महेस	महेस जीत के सभै सु अस्त्र पत्र डारियं।[6]
निशा	निसा	निसा चंद जानयो ।[7]
पिशाच	पिसाच	जंबुक गिध पिसाच निसाचर फूल - फिरेरन मौ एहानै।[8]
सहनाई	सहनाइ, मेर धनी सहनाइ संगै रन दुंदभ अतुरहीन बजे के।[9]	
रोष	रोस रोस भाख्यो तजहोस निसाचर ।।[10]	
दृष्टि	द्रिसटि	आज मारो तरै द्रिसटि तेरे।।[11]
दोष	दोस	पुनर दोस दीजे ।[12]
दुष्ट	दुसट	दुसट अदिसट निवारके लीनो सकल-सभाजा ।।[13]

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 831 (2) वही, पृष्ठ 717 ।

3- डा० गेन्दालाल -ब्रजभाषा और सही बोली व्याकरण का तुलनात्मक अध्ययन, पृष्ठ134।

4- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 136। (5) वही, पृष्ठ192।

6- वही, पृष्ठ 192 । (7) वही०, पृष्ठ 196 ।

8- वही, पृष्ठ 837 । (9) वही०, पृष्ठ 906 ।

10- वही, पृष्ठ 837 । (11) वही०, पृष्ठ 819 ।

12- वही०, पृष्ठ 839 840 । (13) वही, पृष्ठ 392 ।

अपवाद :-- दशम ग्रन्थ में ऐसे भी अनेक स्थल हैं,जहाँ श,ष का प्रयोग हुआ है ।उसका अपेक्षित परिवर्तन `स ` में नहीं हुआ। यथा :--

प्रवेश :- अथ गोपन सहित मथरा प्रवेश कथन ।[1]

शस्त्र -- सस्त्र सेल समागत करि सिपाहि सभोर ।।[2]

बिसन :-- तूही बिसन तू ब्रम्ह तू रुद्र राजे ।[3] (संस्कृत में बिसन<विष्णु)

क्रिसन -- तुमी क्रिसन हवै कंस केसी बिहंडयो।[4] (संस्कृत में क्रिसन<कृष्ण)

ष और ख :- ब्रज भाषा काव्य के कुछ संस्काणों में `ष ` के स्थान पर कहीं कहीं `ख ` लिखा मिलता है।[5] गुरु गोविन्दसिंह के काव्य में भी `ष ` के स्थान पर `ख ` का प्रयोग मिलता है । यथा :--

हिन्दी। संस्कृत	गुरु गोविन्दसिंह द्वारा प्रयुक्त शब्द	उदाहरण
हर्ष	हाखे	लख कउतक साध सभै हाखे ।[6]
वर्ष	बाख	बाख हजार पंच परमाना ।[7]
विशेष	बिसेख	अनंत दान मान ले बिसेख सोभ पावही।[8]
भूषित	भूखित	किंकणीन के जाल भूखित बाज अडगजराज।[9]
ऊषा	ऊखा	अथ ऊखा को बिआह कथनं ।[10]
मनुष्य	मनुख्य	तुम हम पै कोऊ ना पठयो पूरन कुसल-मनुख्य ।[11]

इ - इ:की ध्वनि ब्रजभाषा में नहीं है ।यह खड़ी बोली की निजी सम्पत्ति है । ब्रज भाषा में इसके स्थान पर `र ` का प्रयोग हुआ है ।[12] गुरु गोविन्दसिंह की कृतियों में भी `इ ` के स्थान पर `र ` का ही प्रयोग हुआ है । यथा :--

---

1- दशम ग्रन्थ ,पृष्ठ 362 । (2) वही, पृष्ठ 713 ।

3- वही, पृष्ठ 309 । (4) वही, पृष्ठ309 ।

5- कहीं डा० प्रेमनारायण टंडन,ब्रजभाषा व्याकरण की रूपरेखा,पृष्ठ13।

6- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 173 । (7) वही, पृष्ठ 132 ।

8- वही, पृष्ठ 192 । (9) वही, पृष्ठ 193 ।

10- वही,पृष्ठ 530 । (11) वही,पृष्ठ 852।

12-डा० गेन्दा लाल शर्मा,ब्रजभाषा एवंखड़ीबोली के व्याकरणकातुलनात्मकअध्ययन पृष्ठ135।

हिन्दी।संस्कृत	गुरु गोविंदसिंह द्वारा प्रयुक्त शब्द	उदाहरण
पड़ी	परी	जग कोइ महि परी उदा का।[1]
लहहु	लाहु	ना तरसूल संभारके संग लाहु भुआइ।[2]
ताड़का	तारका	राह भारत राखी जिह तारका गनि नामा।[3]
उखाड़के	उखारके	मन माहि इहै बात भली डारो जरही उखारके।[4]

संयुक्ताक्षर :- हिन्दी में जिन संयुक्ताक्षरों का प्रयोग होता है, उनमें प्रमुख हैं 'क्ष' 'त्र' और 'ज्ञ'। ब्रजभाषा में 'क्ष' का परिवर्तन 'छ' में हो जाता है। गुरु गोविन्दसिंह की भाषा में भी प्रा० ऐसा ही हुआ है। यथा :--

हिन्दी संस्कृत	गुरु गोविन्दसिंह द्वारा प्रयुक्त शब्द	उदाहरण
क्षुधा : क्षुधा	छुधा	जिसन नाम को धाम छुधा तर।[5]
लक्ष्मी	लछमी	लछमी पाव पलोसत वा के।[6]
त्रिचक्र	त्रिचछ	भए तातर भात त्रिचछ परे।[7]
दक्षिणा	दछना	कारो कोर दछना जिजेक ऐक कछु दई।[8]
लक्ष्मण	लछमन	भाथ लछमन सत्र धन पुन भए तीन कुमार।[9]

परन्तु आश्चर्य की बात है कि संयुक्ताक्षर 'त्र' और 'ज्ञ' में परिवर्तन नहीं हुआ जैसा कि अपेक्षित था। अपवाद स्वरूप ज्ञ अवश्य ही 'गिअ' में परिवर्तित हुआ है। यथा :--

---

1-दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 177 । (2) वही, पृष्ठ 179-80 ।
3- वही, पृष्ठ 194 । (4) वही, पृष्ठ 253 ।
(5 - वही, पृष्ठ 130 । (6) वही, पृष्ठ 132 ।
7- वही, पृष्ठ 190 । (8) वही, पृष्ठ 191 ।
(9) वही, पृष्ठ 192 ।

त्र, पुत्र - निरख पुत्र आनंद मन भरे ।[1]

चित्र = चित्र बरधा चार चरधा ।।[2]

त्रिसूल = करि सूल त्रिसूल प्रभावहगे ।।[3]

ज्ञ, ज्ञान -- ज्ञान ज्ञाता ।[4]

ज्ञाता -- आत्र ज्ञाता ।[5]

ज्ञाता -- सासत्र ज्ञाता ।।[6]

रूप तत्व

संज्ञा :- गुरु गोविन्दसिंह की भाषा में संज्ञाओं के विकारी और अविकारी रूपों में विशेष अन्तर नहीं है । बहुवचनीय रूप न, नि, अन, आ प्रत्यय जोड़ कर बनाए जाते हैं । यथा :--

कुछ आकारान्त शब्दों के अन्त में `न ` जोड़ कर । यथा :-- अनन्त, छत्र , सन्त एक वचनीय रूपों के क्रमश: अनन्त- न : अनन्तन[7] , छत्र- न : छत्रन[8], सत्र- न : सत्रन[9] बनेंगे ।

अकारान्त या इकारान्त एक वचन के अन्त में `नि ` जोड़ कर । यथा:-- और दण्ड एक वचनीय शब्दों से छत्र- नि - छत्रनि[10] दण्ड- नि - दण्डनि[11] । इसी प्रकार कुछ रूप `अन ` या `आ` प्रत्यय जोड़ कर बनाए जाते हैं :-- मन्त्रनि, एक वचन से मन्त्रिअन[12], अवतार एक वचनीय से अवतारा[13] आदि । कुछ आकारांत शब्दों में हिन्दी के समान ए लगा कर भी बनाए जाते हैं। यथा :-- नगारा एक वचनीय रूप से नगारे[14] ।

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 200 । (2) वही, पृष्ठ 198 ।

3- वही, पृष्ठ 198 । (4) वही, पृष्ठ 198 ।

5- वही, पृष्ठ 198 । (6) वही, पृष्ठ 198 ।

7- वही, पृष्ठ 156 । (8) वही, पृष्ठ 393 ।

9- वही, पृष्ठ 393 ,छंद 24 (10) वही, पृष्ठ 573, छन्द 14 ।

11- वही, पृष्ठ 74 । छंद 3, (12) वही, पृष्ठ 396 ।

13- वही, पृष्ठ 156 । (14) वही, पृष्ठ 177 ।

परसर्ग :- गुरु गोविन्दसिंह के काव्य में हमें ब्रजभाषा के ही परसर्गों का अधिकतर प्रयोग मिलता है ।

कर्ता :- क गुरु गोविन्दसिंह के काव्य में हिन्दी के समान बिना परसर्ग के ही कर्ता का प्रयोग हुआ है । यथा :--

जिन प्रेम कियो तिनही प्रभ पायो ।[1]
बात सुनी प्रभ की सब सेनहिं सूर मिले इक मन्त्र कियो है ।[2]
तिह तच्छही बिसनहि हिर लयो ।[3]

कर्म :- गुरु गोविन्दसिंह के काव्य में कर्म-कारक का मुख्य परसर्ग तों`को` है पर `सिउं ` और `सो ` का प्रयोग भी हुआ है जैसे हिन्दी में भी`से ` का प्रयोग `को ` के स्थान पर हो जाता है जैसे `उसने राम से कहा` आदि ।खड़ी बोली में केवल`को` ही है ।पुरुषवाची सर्वनामों में `हि `विभक्ति चिन्ह का प्रयोग भी मिलता है । यथा :--

कोऊ बुतान <u>को</u> पूजत है ।[4]
नमस्कार तिनहि को हमारी ।[5]
रामसिंह गोपाल सिउं कहा ।[6]
राखि लियो हमको जगदाई ।[7]
विभीषण वाच राम सों ।[8]
देहि सिवा वर मोहि इहै ।[9]
कहूँ महाराजन को दीजत अनन्तदान ।[10]

कहीं कहीं `को ` परसर्ग सम्बन्ध कारक के रूप में भी प्रयुक्त हुआ है । जैसे :--

अन्त काल सब जग को काला ।[11]
सब को काल सबन को कालो ।[12]

1- दशम ग्रन्थ,पृष्ठ 14 । (2) वही,पृष्ठ 77 ।
3- वही, पृष्ठ 156 । (4) वही,पृष्ठ 14 ।
5- वही, पृष्ठ 1337। (6) वही,पृष्ठ 69 ।
7- वही, पृष्ठ 69 । (8) वही,पृष्ठ 222।
9- वही, पृष्ठ 99 । (10)वही,पृष्ठ 12 ।
11- वही, पृष्ठ 156। (12)वही,पृष्ठ 11 ।

करण और अपादान :- करण कारक के विशिष्ट उदाहरण गुरु गोविंदसिंह की रचनाओं में नहीं मिलते । परन्तु जैसा अपेक्षित है गुरु काव्य में करण और अपादान के लिए एक से ही चिन्ह `सों ` और `ते` प्रयुक्त हुए हैं। खड़ी बोली में दोनों कारकों के लिए केवल `से` ही प्रयुक्त होता है । `सहित ` का प्रयोग भी यत्र-तत्र हुआ है । यथा :--

कुकरम करम सो फरसै ।[1]
का दस दुा मूअ ते अनाथ ।[2]
लव कुस दोऊ पुत्रनि सहित श्री रघुनाथ नरेस ।[3]

सम्प्रदान :- सम्प्रदान कारक के लिए दशम ग्रन्थ में अधिकतर `को ` और `कौं` परसर्गों का ही प्रयोग हुआ है । खड़ी बोली में भी `को` परसर्ग सम्प्रदान के लिए है । `हेत ` का प्रयोग भी यत्रतत्र मिलता है ।यथा :--

नैन की काल को बीचल देखि सु सुन्दरि घात चितै बे को कीनो ।[4]
बतन भारन हेत चले अपने संग ले सभ ही भट दानी ।[5]

सम्बन्ध :- सम्बन्ध कारक के लिए गुरु काव्य में `को `परसर्ग का ही प्रयोग हुआ है । जिसका उदाहरण हम `कर्म ` कारक के अन्तर्गत देख आए हैं ।खड़ी बोली में का,के, की का प्रयोग सम्बन्ध कारक के लिए होता है ।

अधिकरण :- अधिकरण कारक के लिए गुरु गोविन्द सिंह के काव्य में `पर ` `मही ` `बिखै ` `मो ` परसर्गों का प्रयोग हुआ है । खड़ीबोली में अधिकरण के लिए केवल 'में 'पर ' परसर्ग है । ब्रजभाषा में भी इनका ही प्रयोग अधिकांशत: पाया जाता है । `हि ` प्रत्यय कर्म कारक का सूचक है । पर अधिकरण के में प्रयुक्त हुआ है ।

1- दशम ग्रन्थ , पृष्ठ 574 ।
2- दशम ग्रन्थ , पृष्ठ 614 ।
3- दशम ग्रन्थ , पृष्ठ 851 ।
4- दशम ग्रन्थ , पृष्ठ 933 ।
5- दशम ग्रन्थ , पृष्ठ 394 ।

सभै सन्त पर होत सहाई ।[1]
रामहि मही राम रह्यो अलेखा ।[2]
मैं न चलो तिह ठउर विखे ।[3]
खुले खेत भौं खग खुनी खिभके ।[4]
अन्तहि काल करत है नासा ।[5]

सर्वनाम :- गुरु गोविंदसिंह के काव्य में प्रयुक्त सर्वनामों के विभिन्न रूप इस प्रकार हैं :--

पुरुष वाचक :-

उत्तम पुरुष :- 'मैं, 'हौं' एक वचन तथा 'हम' बहुवचन रूप है ।

ब्रज भाषा के अनुसार 'हौं' का प्रयोग केवलकर्ता कारक एक वचन में ही होता है ।गुरु गोविन्दसिंह के काव्य में उत्तम पुरुष सर्वनाम के जो विभिन्न रूप प्राप्त हैं वे इस प्रकार हैं :--

कारक	वचन	खड़ी बोली	ब्रज रूप	गुरु जी द्वारा प्रयुक्त उदाहरण
कर्ता	एक वचन	मैं	मैं	खड्ग के तू मैं सरण तिहारी ।[6]
	एक वचन	मैं	हौं	स्त्री को पुत हौं बाभन को नाहीं ।[7]
	बहु वचन	हम	हम	तब हम जनम कलू महि लीआ ।[8]
कर्म, सम्प्रदान,	एक वचन	मैंने	मोहि	तप साधत हरि मोहि बुलायो ।[9]
	एक वचन	मुझे	मोको मोकों	मोको मोकोदास तवन का जानो ।[10]
	एक वचन		मुहि	दास जान का क्रिया का हू मुहि ।[11]

1- दशम ग्रन्थ ,पृष्ठ 156 । (2) वही, पृष्ठ 158 ।
3- वही, पृष्ठ 344 । (4) वही, पृष्ठ 159 ।
5- वही, पृष्ठ 156 । (6) वही, पृष्ठ 1338 ।
7- वही, पृष्ठ 370 । (8) वही, पृष्ठ 55 ।
9- वही, पृष्ठ 56 । (10) वही, पृष्ठ 57 ।
(11) वही, पृष्ठ 310 ।

	बहु व०	हमने	हमैं	हमैं न गज सेना मो दीजै।[1]
	,, ,,	हमको	हमको	राख लिये हमको जगदाइ।[2]
	,, ,,	हमें	हमनै	अकाल पुरख की रछा हमनै[3]
संबंध :-	एक वचन	मेरा	मोरो	सुखी बसै मोरो परिवारा।[4]
	,, ,,	मेरी	मोरी	लिव लागी मोरी पग इन सिउं।[5]
	,, ,,		मेरो	मेरो कह्यो साच कर मानो।[6]
	बहु वचन	हमारा	हमारो	महाकाल रखवार हमारो।[7]
	,, ,,	हमारे	हमरे	हमरे दुसट सभै तुम घावहु।[8]
	,, ,,	हमारी	हमारा	तब चरनन मन रहै हमारा।[9]
	,, ,,		हमारी	पूरन होई हमारी आसा।[10]
करण, अपादान :			हमरी	हमरी करो हाथ दै रछा[11]
	एक वचन	मुझ से	मोसों	भूलनहार कहूँ कोऊ मोसो।[12]
	बहु वचन	हमसे	हमते	देस चाल हमते पुनि भई।।[13]
	,, ,,		हमसो	लोह परा हमसो बिन काजा।[14]
अधिकरण,	,, ,,		हम मैं	अब को बलवंड बड़ो हम मैं चलि आगै ही जाइ लरौं दल सौं।[15]

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 1036।
2- वही, पृष्ठ 69।
3- वही, पृष्ठ 11।
4- वही, पृष्ठ 1336।
5- वही, पृष्ठ 310।
6- वही, पृष्ठ 474।
7- वही, पृष्ठ 310।
8- वही, पृष्ठ 1336।
9- वही, पृष्ठ 1336।
10- वही, पृष्ठ 1336।
11- दशम ग्रन्थ पृष्ठ 1336।
12- वही, पृष्ठ 45।
13- वही, पृष्ठ 60।
14- वही, पृष्ठ 60।
15- वही, पृष्ठ 393।

मध्यम पुरुष :- गुरु गोविन्दसिंह के काव्य में 'तू' 'ते' एक वचन तथा 'तुम' बहु वचन में प्रयुक्त हुआ है। ब्रजभाषा में भी मध्यम पुरुष एक वचन में 'तू', 'तू,' 'तैं,' तथा बहुवचन में 'तुम' का प्रयोग होता है।

कारक	वचन	खड़ी बोली	ब्रज रूप	गुरु काव्य में उदाहरण
कर्ता	एक वचन	तू	तू	तुहि विसणु तू ब्रहम रुद्र राजे।[1]
	,, ,,	तुम	तैं	तुहि देव तू दैत तैं जए उपाए।[2]
	,, ,,	तूने	तुअ	रचौं चरित्र विचित्र तुअ को सुबद्ध प्रकासु।[3]
	बहु वचन	तुम, तुमने	तुम	जो वर चहो सो तुम ते पाऊं।[4]
कर्म, सम्प्रदान :-				
	एक वचन	(तुझको, तुम्हें तुझको)	तोहि	तोहि बचाय सकै कहु कैसे।[5]
			ताहि	नमस्कार है ताहि हमारा।[6]
	बहु वचन	तुझको, तुम्हें	तुमै	एक बार जिन तुमै संभारा।[7]
	,, ,,		तुमहि	तुमहि छाड़ी कोई अवर न ध्याऊं।[8]
			तुमको	तुमको तात मात दुखहि है।[9]
सम्बन्ध :-	एक वचन	तेरा, तेरे	तुमरि	तुमरि महिमा अपर अपारा।[10]
	,, ,,	तेरी	तुहि	महिमा तोर तुहि प्रभु जाने।[11]
	,, ,,		तुमरो	तुमरो तोऊ न पावत पारा।[12]
	,, ,,		तुमरे	तुमरे सिर पर काढि के ठाउ है तरवारि।[13]
			तोर	तोर भजन की रहे पिपासा।[14]
	,, ,,		तुहारो	सगल दुआर को छाडिके गह्यो तुहारो दुआर।[15]
	बहु वचन	तुम्हारा	तिहारो	तिहारो, जिन जिन नाम तिहारो ध्याया।[16]

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 309 | (2) वही, पृष्ठ 309 (3) वही, पृष्ठ 74 |
4- वही, पृष्ठ 1386 | (5) वही, पृष्ठ 46, (6) वही, पृष्ठ 1387
7- वही, पृष्ठ 1333 | (8) वही, पृष्ठ 1386 (9) वही, पृष्ठ 1270
10- वही, पृष्ठ 47 | (11) वही, पृष्ठ 47 (12) वही, पृष्ठ 47 |
13- वही, पृष्ठ 391 | (14) वही, पृष्ठ 1386 (15) वही, पृष्ठ 254 |
16- वही, पृष्ठ 57 |

कारक	वचन	खड़ी बोली	ब्रज रूप	गुरु काव्य में उदाहरण
सम्बन्ध :	बहु वचन	तुम्हारे	तुमरे	जे जे तुमरे ध्यान को नित उठ ध्यावैं संत।[1]
		तुम्हारी	तुम्हार	बांह गहे की लाज अस गोविंददास तुम्हार।[2]
	,, ,,			
कारण, अपादान :				
	एक वचन	तुझ से	तोसों	जगै जंग तोसों भजै भूप भारी।[3]
	बहु वचन	तुमसे	तुमतें	जो वर चहो सो तुमतें पाऊं।[4]
अधिकरण :				
	एक वचन	तुममें	ताहितें) ताहि) ताहिमें)	ताहितें उपज सब ताहि में समाहिंगे।[5]

अन्य पुरुष :- निश्चयवाची, निकटवर्ती 'यह' दूरवर्ती 'वह' तथा 'सो' 'को' 'जो' गुरु गोविंद सिंह की रचनाओं में प्राप्त हैं, वे इस प्रकार हैं :--

यह :-

कारक	वचन	खड़ीबोली	ब्रज रूप	गुरु काव्य में उदाहरण
कर्म सम्प्रदान				
	बहु वचन	इसको,)) इसे)	इनहिके	जुध जित इनहिके प्रसादि।[6]
संबंध :	एक वचन	उसका	यहि	यहि सेना चतरंग जरासिंध नृप की बनी।[7]
		के, की	इनमहि	इनमहि त्रिसटि सुदस अवतारा।[8]
अधिकरण :	एक वचन	इसमें	यामें	या में भेद न रंच पछानो।[9]

वह :-

कर्ता :	बहु वचन	वह, वे	वै	सुलह निभित वै उतहि सिधाए।[10]
	,,		ते	ते बन ले निजी धाम सिधाने।।[11]

1-दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 119(2)वही, पृष्ठ204(3)वही, पृष्ठ 809(4)वही, पृष्ठ1336,
5-दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 20 (6)वही, पृष्ठ716(7)वही, पृष्ठ 393(3)वही, पृष्ठ156,
9-दशम ग्रन्थ, पृष्ठ357, (10)वही, पृष्ठ804(11)वही, पृष्ठ66।

कारक	वचन	खड़ीबोली	ब्रज रूप	गुरु जी द्वारा प्रयुक्त उदाहरण
कर्म, सम्प्रदान				
	एक वचन	उसने, उसको, उसे	ताहि	जिने रतन बांटे तुम्हें ताहि जानो। [1]
	बहुवचन	उन्हें, उनको	तिन	तिन जो धन आने सो साथा। [2]
संबंध:	बहुवचन	उनका	तिनको	तिनको काल बहा वध करा। [3]
		के की		
करण अपादान :				
	एक वचन	उससे	वासो	बली होइ वासो भिरे आन सोउ। [4]
	,, ,,		तिहते	तिहते चमक प्रगट दिखाई दीन। [5]
	बहुवचन	उनसे	तिनते	तिनते होत बहुत नृप आर। [6]
अधिकरण :		उसमें	ता में	रतन प्रभुद का वचन चीनता में गयो। [7]
सो				
कर्ता	वचन	खड़ीबोली	ब्रज रूप	गुरु जी द्वारा प्रयुक्त उदाहरण
	एक वचन	सो	सो	सो धुन पूर जात भो रहा। [8]
	,, ,,		सोउ	बली होइ वासो भिरे आन सोउ। [9]
	,, ,,		सोई	सोई भवानी नाम कहाई। [10]
	,, ,,		तिन	प्रिथमै ओंकार तिन कहा। [11]
	बहु वचन	सो	ते	ते नर फेर न देह धरेंगे। [12]

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 102 (2) वही, पृष्ठ 66 ।
3- वही, पृष्ठ 47 । (4) वही, पृष्ठ 163।
5- वही, पृष्ठ 164। (6) वही, पृष्ठ 43 ।
7- वही, पृष्ठ 74 । (8) वही, पृष्ठ 153।
9- वही पृष्ठ 163। (10) वही, पृष्ठ 153।
11- वही, पृष्ठ 153 । (12) वही, पृष्ठ 14 ।

कर्म, सम्प्रदान

एक वचन	तिसके	ताहि	ताहि पछानत है न महापसु । [1]
,, ,,	तिसे	ताको	ताको करी पाछन अनुमानत । [2]
,, ,,		ताको	कहा नाम ताको कहा के कहावै [3]
,, ,,		तिसहिको, नमस्कार	तिसहि को हमारी। [4]
बहु वचन	तिनको तिन्हें	तिनै	तिनै अन्त के अन्त को काल लहुरयो [5]
,, ,,		तिनहि	तिनहि परम तत कह जाना।। [6]
,, ,,		तिनो	भिंन भिंन कर तिनो सपाया। [7]
सम्बन्ध: एक वचन	तिसका के-की	ताको	कहां बास ताको फिरै कोन भेखं । [8]
,, ,,		ताका	ताका मूढ उचारत भेदा। [9]
,, ,,		ताकहु	ताकहु मन माया ठहरावत । [10]
,, ,,		तिसकी	तिसकी धुनि को सुनि मोहि जाइ रहे । [11]
		ताकी	कहे कवि स्याम ताकी महिमा न लखी जाइ। [12]
बहुवचन	तिनका के की	तिनके	तिनके बार न बांकन पाए । [13]
,, ,,		तिनको	तिनको काल बहुर वध करा। [14]
,, ,,		तिनको	तीतर जेउडिके नभि ओर गए तिनको प्रभ बाज चलाए । [15]

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 46 । (2) वही, पृष्ठ 1337 ।

3- वही, पृष्ठ 20 । (4) वही, पृष्ठ 1337 ।

5- वही, पृष्ठ 47 । (6) वही, पृष्ठ 157 ।

7- वही, पृष्ठ 153 । (8) वही, पृष्ठ 20 ।

9- वही, पृष्ठ 1337 । (10) वही, पृष्ठ 153 ।

11- वही, पृष्ठ 282 । (12) वही, पृष्ठ 153 ।

13- वही, पृष्ठ 72 । (14-) वही, पृष्ठ 47 ।

(15) वही, पृष्ठ 513 ।

करण अपादान :

एक वचन	तिनसे	नाते	ताते नाम विख्यत कहाया।[1]
बहु वचन	तिनसे	तिनसों	जुध करियो तिनसो भगवंत।[2]
अधिकरण: बहुवचन	तिनमें	तिह मधि, अंत समै तिह मधि मिलायो।[3]	
,,	तिह	मै	नग मानहु नाग बड़े तिह मै मधुरी पुनि पैदल की बल जेती।[4]

आप :-

गुरु गोविन्दसिंह की भाषा में 'आप' निज वाचक सर्वनाम एक वचनीय है। इसके रूप 'आपु' और 'आपन' भी उपलब्ध हैं। यथा :--

आप निरालभ रहा न पाया।[5]
आपु अपनी बुधि है जेती।[6]
आपन एक निरालभ जग ते।[7]

हिन्दी में 'आप' आदर सूचक बहुवचनीय है तथा मध्यम पुरुष के लिए प्रयुक्त होता है। 'ही' बल सूचक क्रिया विशेषण के साथ आपन ही, आपहि तथा पंजाबी के समान 'आपे' भी उपलब्ध हैं। यथा :--

आपन ही परमेस कहाए।[8]
आपहि दें तरबूज तरायो।[9]
आप एवे आपे कल धारे।[10]

सम्बन्ध कारक में हिन्दी के समान स्त्रीलिंग रूप 'अपनी' तथा पुल्लिंग रूप 'अपने' बनते हैं। यथा :--

अब मैं अपनी कथा बखानौ।[11]
रन में अपने पितु भात अनाथ न कीजै।[12]

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 156 । (2) वही, पृष्ठ 74 ।
3- वही, पृष्ठ 153 । (4) वही, पृष्ठ 393 ।
5- वही, पृष्ठ 156 । (6) वही, पृष्ठ 1337।
7- वही, पृष्ठ156 । (8) वही, पृष्ठ ?? ।
9- वही, पृष्ठ 906 । (10)वही, पृष्ठ 156।
11- वही, पृष्ठ ?4 । (12) वही, पृष्ठ 443।

254122

अधिकरण कारक के में - बिंदु-सह परसर्ग के साथ भी `आपहि ;`आपु` तथा `आप ` रूप प्रयुक्त हुए हैं । यथा :--

आपहि मध तीन गुन कर ही ।[1]
पायो आपु में लोहि क्रोह अपार ।।[2]
मिलिगो मट आप बिखै दोऊ यों ।।[3]

कौन :- हिन्दी `कौन` के समकक्ष गुरु गोविन्दसिंह की भाषा में `को,` `कौन ` तथा`कवन` रूप उपलब्ध हैं। यथा :--

को आत्मा सरूप है कहा सृस्टि को विचार ।[4]
कौन कर्म को कर्म है कहो सकल विस्थार ।[5]
कहि जीवित कहि भारन है कवन सुरग कहि नाक।[6]

हिन्दी `किस ` के स्थान पर गुरु गोविन्द सिंह की भाषा में एक वचन में `काइ` और बहुवचन में `किन्हु ` का प्रयोग हुआ है । यथा :--

जो इहु पेट न काहु होता।[7]
अकल रूप किनहुं नहीं जाना ।[8]

अनिश्चय वाचक `कोई `के स्थान पर `कोउ ` का प्रयोग मिलता है ।यथा :--

कोउ बलान को पूजत है ।[9]

जो :- सम्बन्ध वाचक सर्वनाम `जो ` के गुरु गोविन्द सिंह की भाषा में `जो ``जौन`, `जवन तथा `जे ` अधिकारी तथा `जिन ` विकारी रूप मिलते हैं । यथा :--

जोवर चहो सु तुम ते पाऊं ।जौन[10] त्रिलोक को राज करेंगे।[11]
जे जे तुमरे ध्यान को नित उठ ध्यै हैं संत ।जवनकाल सभ जगत-[12]
जिन सिगरी यह स्रिस्टि बनाई ।[14] बनायो।[13]

कर्म और सम्प्रदान में एक वचनीय रूप`जाको ``जाहि`तथा बहु वचनीय `जिनके ` मिलता है । यथा :--

---

1- दशम ग्रन्थ,पृष्ठ 156 । (2) वही, पृष्ठ 161 । (3) वही,पृष्ठ165 ।
4- वही, पृष्ठ 30 । (5) वही, पृष्ठ 30 । (6) वही,पृष्ठ 30।
7- वही, पृष्ठ 157 । (8) वही ,पृष्ठ 115 । (9) वही,पृष्ठ 14।
10- वही, पृष्ठ 1336 । (11) वही,पृष्ठ 14 । (12) वही,पृष्ठ 1337,
13- वही, पृष्ठ 119 । (14) वही,पृष्ठ 158 ।

जाको भूड न पावत भेदा ।[1]
जाहि निभिख पढ़े सुनि है नर ।[2]
जिन नाम लाको उचारा उबारे ।[3]

सम्बन्ध कारक में को के-की परसर्गों के साथ 'जा' का प्रयोग हुआ है । यथा :-

जाको प्रताप तिहूं पुर माहि ।[4]
सीस पटकत जाके कान मे खजूरा बसे ।[5]
जैतहूं न जात जाकी ।[6]

अधिकरण में बहुवचनीय रूप 'जिन' के साथ 'महि' परसर्ग लगा है । हिन्दी में जिनमें होता है ।

जिनमहि रमिआ राम हमारा ।।[7]

सब :- गुरु गोविन्दसिंह की भाषा में 'सब' सर्वनाम के कर्ता में 'सबै', 'सभ' और 'सरब' रूप प्राप्य है ।यथा :--

मानस की जात सबै एक पहचानबो ।[8]
जात कीट बिखे बसयो सभ ऊपर मैं निरधार ।[9]
सरब ठौर बिखे रभ्यो ।[10]

कर्म तथा सम्प्रदान में 'सभ-हूं', 'सभ-न', 'सभ-हि', रूप मिलते हैं । यथा :--

भिन भिन सभहूं उपजायो ।[11]
काल सभन को देख तमासा ।[12]
सभहि जग भरमे सब रायं ।[13]

करता तथा अपादान के लिए परसर्ग सहित 'सभ-ते' तथासम्बन्ध परसर्ग सहित 'सभन-का' रूप दसम ग्रन्थ में प्राप्य हैं :--

सभते जुदो न किनहूं पायो ।[14]
काल सभन का काल पसारा ।[15]

1- दसम ग्रन्थ,पृष्ठ 1336। (2)वही,पृष्ठ99। (3) वही,पृष्ठ 41(4)वही,पृष्ठ46।
5- वही,पृष्ठ 13 । (6)वही,पृष्ठ37। (7)वही, पृष्ठ156(8)वही,पृष्ठ 19।
9- वही,पृष्ठ 28 । (10)वही,पृष्ठ28(11)वही,पृष्ठ158(12)वही,पृष्ठ155।
13- वही,पृष्ठ 156। (14)वही,पृष्ठ153(15)वही,पृष्ठ156 ।

क्रिया :- दशम ग्रन्थ में ब्रजभाषा के क्रिया रूपों का ही प्रयोग मिलता है । वर्तमान काल, भूत काल तथा भविष्यत् काल के विभिन्न क्रिया रूपों के जो रूप दशम ग्रन्थ में प्राप्य हैं वे इस प्रकार हैं :--

वर्तमान काल:- गुरु गोविन्दसिंह की भाषा में क्रिया के जो वर्तमान कालिक रूप उपलब्ध हैं वे इस प्रकार हैं :--

|| धातु + क्रिया- प्रत्यय ||

अन्य पुरुष तथा मध्यम पुरुष	एक वचन	दे- ते	जान को देत अजान को देत जमीन को देत जमान को दे है।[1]
		धा- ही	आपन रूप अनंतन धा ही।[2]
		रच्- ऐ	आप रचे आपे कल धारे ।[3]
		अकुला - वै	संतन दुखी देख अकुलावै ।[4]
		देख - ०	काल सभन को देख तमासा ।[5]
	बहु वचन	दिखा- हीं	पटे हेत नर डिंभ दिखाहीं।[6]

उत्तम पुरुष : एक वचन, बचान्-यौं अब मैं अपनी कथा बखानौं।[7]

हिन्दी के समान नकारात्मक वर्तमान काल में- 'ता' वाला रूप भी मिलता है । यथा :--

जो यह पेटन काहू होता ।[8]

भूतकाल:- दशम ग्रन्थ में भूतकाल में एक वचन के लिए सभी पुरुषों में आ, इया, नो-यो तथा बहु वचन में- ए आदि प्रत्ययों का प्रयोग मिलता है । यथा :--

धातु +क्रिया- प्रत्यय

एक वचन	लख्-आ	जिह विध तिनका लखा अखारा[9]
	रख्-खया	जिन मंहि रखिया राम हमारा ।[10]
	दी- नो	देवे बुलायो राज बिठायो छत फिरायो सुख-दीनो।[11]
बहु वचन	उचार्-ए कि - ए	संतापुर मांहे वेद उचारे सत्र संघारे--जसु लीनो।[12] करो जु तिन तिन किए अकाल।[13]

1-दशम ग्रंथ, पृष्ठ35 (2)वही, पृष्ठ156 (3)वही, पृष्ठ156 (4)वही, (5)वही, पृष्ठ155, 6-वही, पृ157 (7)वही, ,, 54 (8)वही, पृष्ठ157 (9)वही, 155, 10-वही, पृ156 (11)वही, 159 (12)वही, ,, 159 (13)वही, पृष्ठ 156।

कर्मवाच्य में एक वचन तथा बहु वचनीय रूप `या ` और `ए ` के साथ मिलते हैं । यथा :--

धातु- कर्म वचनीय - भूतकालिक क्रिया प्रत्यय

(कहा- य- या । ताते नाम विक्रम कहाया ।[1]
।कहा- य-- ए । जो चउबीस अवतार कहाए ।[2]

सहायक क्रिया `थी ` के साथ स्त्रीलिंगी रूप भी उपलब्ध हैं ।संभवत: इसी प्रकार था -- थे लगा का पुलिंग रूप भी बनते होंगे।यथा :--

ताहि समै हम कान्ह के संग खेलत थी अति प्रेम बढ़ाई।[3]

भविष्यत काल:- भविष्यत काल में गुरु गोविन्दसिंह की रचनाओं में एक वचनीय रूप हो-सी प्रत्यय लगा का बनाए गए है।बहु वचन में `हैं ` और गे प्रत्यय लगाए गए हैं तथा स्त्री लिंगी - गी प्रत्यय लगा का भी रूप बनाए गए हैं ।यथा :--

|कहि- हौं| जो प्रभ जगति कहा सो कहिहौं ।[4]
| | त्रिति लोक ते भौन न रहिहौं।[5]
|हो-सी | जिते देव होसी समै अंत जासी ।[6]
|है - ० | जिते किसन ह्वै हैं समै अंत जै हैं।[7]
|लौ-गे | राजन चिंत करो मन में हम हैं दोऊ भ्रात सुजाइ लगे।[8]
|हो- गी | जोबन को जु गुमान कर तिह जोबन की सुध्द सा, होगी।[9]
|जै-गी | के बिख लाइ मरैगी कहो नहि बूड़ मरै नही जाइ जरैगी।[10]

कवि गुरु गोविन्दसिंह ने आज्ञा सूचक रूप- औ, - हो, हु प्रत्यय जोड़ कर बनाए हैं यथा :--

देख- औ अब राता देखौ उहि है।[11]
कर- हो माता सुभ राम करहो घरिहो क्रित में।[12]

1-दशम ग्रन्थ ,पृष्ठ 156। (2) वही,पृष्ठ 156(3) वही,पृष्ठ 370 ।
4-वही,पृष्ठ 57 । (5) वही,पृष्ठ 57 (6) वही, पृष्ठ44 ।
7-वही,पृष्ठ 44 । (8) वही,पृष्ठ 394(9)वही, पृष्ठ 347 ।
10-वही,पृष्ठ 361 । (11) वही,पृष्ठ 74 (12) वही,पृष्ठ 74 ।

बुफ-इ बुफइ जाइ तिनै तुम साध ।[1]

गुरु गोविन्दसिंह की भाषा में तुमुन्नन्त (Infinitive) रूप-न तथा वें प्रत्यय जोड़ कर बनाए गए हैं ।यथा :--

चलाव - न चलावन संत उबारन ।[2]

भज- बे भजबे कहुं चित कायौं ।[3]

जबकि हिन्दी में केवल- ना या - न का प्रयोग होता है ।

- का पूर्ण- सूचक क्रिया प्रत्यय के स्थान पर- कै तथा इ, ले तथा - दै का प्रयोग मिलता है ।

होई- के त्रास कुटंब के होइ के उदास श्वास को तियागि-
बसिओ बनाई।[4]

ला - इ	।	बेर बढ़ाइ लाइ सुरासुर आपइ देखत बैठ तमासा ।[5]
ले	।	सार सुती तट लै भट लोथ स्रिगाल कि सिध बनावत कंथा।[6]
दै	।	राभ भनो रन जीत के भालक दै सिरपाउ सबै पहराए।[7]

क्रिया विशेषाण :- गुरु गोविन्दसिंह ने अपनी कृतियों में अधिकतर ब्रजभाषा के ही क्रिया विशेषाणों का प्रयोग किया है।कहीं कहीं कुछ हिन्दी के भी रूप प्राप्त हैं। यथा :--

ब्रजभाषा के क्रिया विशेषाण :-

कहूँ :- कहूँ त्रिगुण अतीत कहूँ सरगुन समेत हो ।[8]

इत उत -- कोप के चंड प्रचंड चढ़ी इत क्रुध की धुम चढ़ै उत सैनी।[9]

जितातित-- अति फिरत दिवाने डोलत जित तित-ही[10]

निश्र :-- इक निश्र है सुनिराभ ।[11]

जबै -- जबै जंग हारिओ किओ बिखान मंत्र ।[12]

1- दशम ग्रन्थ ,पृष्ठ 74 । (2) वही, पृष्ठ 57, (3) वही, पृष्ठ 343।
4- वही, पृष्ठ 74 । (5) वही, पृष्ठ 74 (6) वही, पृष्ठ 75।
7- वही,पृष्ठ 75 । (8) वही, पृष्ठ12(9)वही,पृष्ठ 33,
10- वही, पृष्ठ 82 । (11) वही ,पृष्ठ 194 (12) वही,पृष्ठ 162।

तबै - करुणानिधि तबै उचारहैं ।[1]

जबही- गरजयो नर सिंघ रुप जब ही।[2]

तबही - तिह तबही किसनहि हिर लियो ।[3]

अबही- बेग किसोर मनोहरि मूरति आनन में अब ही भग भीजे ।[4]

कबहुं - कबहुं सन्यास भेस बन के दिखावहैं ।।[5]

नेकु - सुध वाह तहां रथ जाइ परे धुजनी पति ते नहीं नेकु डरे।[6]

कतहुं - कतहुं भयानव ऊख कहुं भद पान हो ।[7]

कहा - कहा भयो दोऊ लोचन मूंद के बैठ रह्यो बक ध्यान लगाए।[8]

किधौं - रोग सोग के भिटिया किधौं भानी महाभान हो।[9]

कैसे =- एक ज्ञान के विहीन हीन कैसे के तरत है।[10]

याते -- याते प्रसंनि भए देव ।[11]

हिन्दी के रुप :-

जहां तहां :- ऊंचे द्रुमाल जहां लांबे बटसाल तहां ।[12]

ऊपरि -- लाइ विभूत फिरयो मुख ऊपरि ।[13]

दूर -- राम ते दूर रमन ते नेरा ।[14]

जब जब - जब जब होत अरिस्ट अपारा ।[15]

तब तब - तब तब देह धरत अवतारा ।।[16]

1- दशम ग्रन्थ ,पृष्ठ 156 । (2) वही, पृष्ठ 164

3- वही, पृष्ठ 101 । (4) वही, पृष्ठ 443

5- वही, पृष्ठ 19 । (6) वही, पृष्ठ 395 ।

7- वही, पृष्ठ 13 । (8) वही, पृष्ठ 14 ।

9- वही, पृष्ठ 13 । (10) वही, पृष्ठ 17 ।

11- वही, पृष्ठ 133। (12) वही, पृष्ठ 211 ।

13- वही, पृष्ठ 715 । (14) वही, पृष्ठ 11 ।

15- वही , पृष्ठ 155 । (16) वही, पृष्ठ 155 ।

आज - आज लगे तप साधत है शिव ।[1]

कोए - ते नर कोए न देह धरैंगे ।[2]

सदा - सदा रहै कंचन सी काया ।[3]

निसदिन - निसदिन घात करत दिज देवन ।[4]

नितप्रति - काण प्रजंत बहुत नितप्रति तन ।[5]

बहे - तीर अपार बहे वरिआर अविचार ही सार की धार मधैया[6]

शब्द समूह :- गुरु गोविन्दसिंह ने गुरु परम्परा के अनुसार अपने शब्द-भण्डार की पूर्ति भी विभिन्न भाषाओं के शब्दों से की है ।ये शब्द उनकी भाषा में कहीं सहज रूप में आए हैं और कहीं प्रयत्न सिद्ध होकर किन्तु भावपक्ष की सबलता के कारण उनकी शब्दावली का चयन सर्वत्र उपयुक्त,समर्थ एवं स्वाभाविक प्रतीत होता है । उनकी शब्दावली पर विभिन्न भाषाओं का प्रभाव है।यथा :--

संस्कृत के शब्द :-- संस्कृत भाषा समस्त भारतीय भाषाओं की जननी है । उसकी निधि पर सभी का समान अधिकार है।सभी सभ्य समय पर उससे दाय ग्रहण करती रही है । गुरु गोविन्दसिंह की ब्रजभाषा भी इसका अपवाद नहीं है,उसने बड़ी प्रचुरता से इस दाय पर अपना अधिकार जताया है। उनकी भाषा में संस्कृत के अनेक तत्सम शब्द पाए जाते हैं ।यथा:--

तत्सम शब्द :- रंक (द.ग्रं. पृष्ठ 11) भवानी (पृ० 11) भयंक (पृ.13) भृंग (पृ.13) गजान् (पृ.14) ध्वाराज(पृ.15) निगम (पृ.15), खल(पृ. 39) क्रूर (पृ० 115) ,कुरंग(पृ. 176) कंठ (पृ.176) कीट (पृ० 176) मृग-लोचनी(पृ. 207) अग्रज (पृ .304) दिनकर (पृ .624) जयंती(पृ.810) सत्कार (पृ .810) आदि प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं ।

अर्द्धतत्सम एवं तद्भव शब्द :-- दशम ग्रन्थ में बाहुल्य अर्द्धतत्सम एवं तद्भव शब्दों का ही है ।

1- दशम ग्रन्थ ,पृष्ठ । 2- वही ,पृष्ठ 14 ।

3- वही, पृष्ठ 714 । 4- वही, पृष्ठ 136 ।

5- वही, पृष्ठ 136 । 6- वही, पृष्ठ 14 ।

परमेसर[1] (परमेश्वर) सिवा[2](शिवा) तीरथ[3] (तीर्थ) , संजम[4] (संयम)(विस्व[5] (विश्व) हान[6] (स्नान) सुदेस[7] (सुदेश) निवास[8] निवास) पुरख[9] (पुरुष) अन्तरजामी[10](अन्तर्यामी) सीस[11] (शिक्षा) पुहप[12] (पुष्प) बिधंस[13] (विध्वंस) फुनि[14] (पुनः) बैराह[15] (वाराह) आदि ।

पंजाबी भाषा का प्रभाव :- गुरु गोविन्दसिंह का कार्य क्षेत्र पंजाब रहा। उनका शिष्य वर्ग तथा सैनिक समूह पंजाब का ही रहने वाला था।इस स्थिति में उनकी रचनाओं का पंजाबी भाषा से प्रभावित होना स्वाभाविक ही था । पंजाबी भाषा पर उनका कितना अधिकार था, यह दर्शाने के लिए उनकी 'चंडी' दी वार 'एक रचना पर्याप्त है।दशम ग्रन्थ की शब्दावली पर भी पंजाबी भाषा का प्रभाव पर्याप्त मात्रा में हुआ है । यथा :- सिलारना(फैलाना,पृष्ठ 110) साहा (हमारा ,पृष्ठ 300) भरथ(कबूल पृष्ठ 306) दाज (दहेज ,पृष्ठ033) आदि ।

कहीं कहीं तो पूरा छन्द ही पंजाबी भाषा में है ।यथा :--

मित्र पियारे नू हाल मुरीदां दा कहणा,
तुध मित्र पियारे नू हाल मुरीदां दा कहणा
नाग निवांजा दे रहणा ।

सुत सुराही संजफ पियाला विंग कसाइयां दा रहणा।
यारड़े दा सानू सथफ चंगा मठ देहियां दा रहना।[16]

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 10 (2) वही,
3- वही, (4) वही,
5- वही, (6) वही ,
7- वही,पृष्ठ 130 (8) वही, पृष्ठ 196 ।
9- वही,पृष्ठ 11 (10) वही, पृष्ठ 11 ।
11- वही, पृष्ठ 92 (12) वही, पृष्ठ 130 ।
13- वही, पृष्ठ 277 (14) वही, पृष्ठ 278 ।
15- वही, पृष्ठ103 । (16) वही, पृष्ठ 711 ।

इसी प्रकार रामावतार, निष्कलंकी अवतार तथा चरित्रोपाख्यान के कतिपय छन्द भी पंजाबी भाषा में है। यथा :--

घुटे वीर हुंकारे धगां वजीयां ।वजे नाद कारे दला भुराइयां।
हुके काण्हयारे संधर सूधे ।छुटे बाण हारे धणी धारेवारी।
वजे संगती वाले हाठा छुटीयां।तेत वहे मुठाले कहा तातारबे
डिगे वीर हुंकारे हुंगा फुटीयां ।बके बाण भतवाले भंगा साइके(1)(रामावतार)

वजे नाद तुरंगी कला घोरीआ ।नचे बाण फिरंगी बजे धुंधकु ।
गदा त्रिशूल निखंगी भुसुन्ड वा।सावण बाण उभंगी धर हरावनी।(2)

(निष्कलंकी अवतार)

सितता विभूत अते मेखुली निभेख सदी
अंजन दी से लीदा सुभाव सुभ भाखना।
भगवासु भेस साहे नैणा दी ललाई
सहयो सारा दा धयान ऐहो छंद भूल वासना।
रौदन दा भजनु सु पुत्री पत्र गीत गीता,
देखण दी भिक्षा धयान धुयां वाल राखणा।
आली सेना गोपियां दीयां अखियां दा।
जोगु सारा नंद दे कुमार नूं जरुर जाइ आखना।।(3)

(चरित्रोपाख्यान)

विदेशी शब्द :- गुरु गोविन्दसिंह के समय तक भारत वर्ष पर लगभग सात सौ वर्ष यवनों का शासन रहा। फलत: आक्रान्ताओं की मान्य भाषाएं होने के कारण अरबी-फारसी का ज्ञान ही उस समय लोगों के पंडित होने का प्रतीक बन गई थी।गुरु गोविन्दसिंह अरबी-फारसी के अच्छे विद्वान थे।इन भाषाओं के ज्ञान का लाभ उन्होंने ब्रजे भाषा की रचनाओं में भी उठाया है और फारसी शब्दों का मन चाहा प्रयोग किया है । यथा :---

---

1- दशम ग्रन्थ , पृष्ठ 226-27 ।
2- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 434-435 ।
3- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 340 ।

तेरहठ :

बुलान (पृष्ठ 14) सिजदे (पृष्ठ 13) राजक (पृष्ठ 19) गुनार(पृष्ठ14)
सुतह (पृष्ठ 14) सिरताज(पृष्ठ 35) गाजी(पृष्ठ106) जहान (पृष्ठ135)
आकल(पृष्ठ140) तरतीब (पृष्ठ 146) दोजक (पृष्ठ184) आदि ।

कहीं कहीं तो पूरे पूरे वाक्य और छन्द फारसी भाषा के आगए हैं। यथा :--

1- जाम शराब लीने ।जानूक सराव पीने
फूलसा जहान तावां वह गुल बदन कहां है । (रामावतार)[1]

2- जंग ब दराइद कालबभन बगोइद की मन फौज को शाहम ।
वा मन जंग बुगो कुन बिया हरगिज दिल भो न जाफ्तन
रोज भगां दुनीआ अफलाबभ स्याम शबे बदती राव शाहम।
कान्ह गुरूजी मकुनत् ब्याकुस मात् कुनेय जिजंग गुशाहम। (श्रीकृष्णावतार)[2]

अनेक स्थलों पर तो स्थिति इस सीमा तक पहुँच गई है कि पूरा पद्य केवल छन्द के पारिभाषिक को देखते हुए ही ब्रज होने का नाम पा सकता है ।शब्दों के कारण नहीं। यथा :--

गनीमुल सिकस्ते ।गरीबुल परस्ते ।
बिलं दुल मकानें। जिमीकुल जमानें।[3]

यहीं पर बस नहीं कवि ने अनेक स्थलों पर अरबी-फारसी के शब्दों का संस्कृतिकरण भी किया है। यथा निम्न लिखित पद्य में 'तेग' को 'असभाणं'।

मम प्रति पारण जे तेग[4] ।
दिसा विदिसायं जिमी असभाणं[5] ।

कवि ने संस्कृत शब्दों के साथ कहीं कहीं कुछ अरबी -फारसी के प्रत्यय भी जोड़े हैं ।यथा :---

---

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ सं 241 ।
2- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 497 । (4) वही, पृष्ठ 39 ।
3- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 7 । (5) वही, पृष्ठ 40 ।

सभस्तुल तताम है। सदैवुल अकाम है ।[1]
अनिकुल तंग है । सबुल गवंग है।[2]

यहां सभस्त के साथ उल व सदैव के साथ उल प्रत्यय फारसी के हैं ।इसी प्रकार अनिकुल साबुल आदि भी हैं ।

इसी प्रकार व्याकरण की दृष्टि से गुरु गोविन्दसिंह की कृतियों का अध्ययन करने पर यह निष्कर्ष सहज ही निकाला जा सकता है कि दशम ग्रन्थ में संकलित अधिकांश रचनाएं ब्रजभाषा में रची गई हैं यह भाषा मोटे रूप से ब्रजभाषा व्याकरण के सभी नियमों का पालन करती है ।अपवाद के स्थल दूसरी भाषाओं के प्रभाव के कारण है। श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध लिखते हैं -- गुरु गोविन्दसिंह की भाषा साहित्यिक ब्रजभाषा है, इसमें कोई सन्देह नहीं ।उसमें ब्रजभाषा सम्बन्धी नियमों का अधिकतर पालन हुआ है। कोई शब्द पंजाबी ढंग पर व्यवहृत हुए हैं ।इसका कारण प्रान्तिकता ही है।परन्तु इस प्रकार के शब्द इतने थोड़े हैं कि उनसे ब्रज भाषा की विशेषता नष्ट नहीं हुई ।[3] परन्तु आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रीतिकाल की भाषा के विषयमें जो कुछ लिखा ,वह भी गुरु गोविन्दसिंह की भाषा पर पूर्णतया लागू होता है।[4]

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 7 (2) वही, पृष्ठ 7 ।
3- अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, हिन्दी साहित्य का विकास, पृष्ठ 333।
4- भूषण अच्छे कवि थे।जिस रस को उन्होंने लिया,उसका पूरा आवेश उनमें था पर भाषा उनकी अनेक स्थलों पर सदोष है।यदि शब्दों के रूप स्थिर हो जाते और शुद्ध रूपों पर जोर दिया जाता तो शब्दों को तोड़ मरोड़ कर विकृत करने का साहस कवियों को न होता।पर इस प्रकार की कोई व्यवस्था नहीं हुई जिससे भाषा में बहुत कुछ गड़बड़ी बनी रही। -भाषा की गड़बड़ी का कारण ब्रज और अवधी इन दोनों काव्य भाषाओं का कवि की इच्छानुसार सम्मिश्रण था। पृष्ठ 233।

"भक्तिकाल की प्रारंभिक अवस्था में ही... मुसलमानों के संसर्ग से कुछ फारसी के शब्द और चलते भाव मिलने लगे थे।..... नामदेव और कबीर आदि की तो बात ही क्या तुलसीदास ने भी गनी, गरीब, साहिब उमरदराज आदि बहुत से शब्दों का प्रयोग किया..... सूर में ऐसे शब्द अवश्य कम मिलते हैं, फिर मुसलमानीराज्य की दृढ़ता के साथ साथ इस प्रकार के शब्दों का व्यवहार ज्यों ज्यों बढ़ता गया त्यों त्यों कवि लोग ~~उन्हें अधिकाधिक~~ उन्हें ~~अधिकता~~ अधिकाधिक स्थान देने लगे।... रीतिकाल में ऐसे शब्दों की संख्या कुछ और बढ़ी। --आ०रामचन्द्रशुक्ल, हिन्दीसाहित्य का इतिहास, पृष्ठ 233 ।

प्रथम अध्याय

संप्रेषणीयता -पाश्चात्य दृष्टिकोण

:0:0:0:

सम्प्रेषणीयता -- पाश्चात्य दृष्टिकोण

पाश्चात्य समीक्षा-शास्त्र के अनुसार सृजनात्मक काव्य के परीक्षण का महत्त्व पूर्ण मानदण्ड उसकी सम्प्रेषण-योग्यता है । यद्यपि सम्प्रेषण या कम्युनिकेशन के सिद्धान्त की स्थापना आई.ए. रिचर्ड्स ने की किन्तु उससे पहले भी कुछ आलोचकों ने इस सिद्धान्त की ओर संकेत किए हैं।

लेसिंग ने कला का क्षेत्र व्यापक स्वीकार करते हुए सत्य और अभिव्यंजना-शक्ति को उसका आवश्यक गुण स्वीकार किया,[1] जिसके कारण प्रकृति की कुरूप से कुरूप वस्तु भी सुन्दर कलाकृति में परिवर्तित हो जाती है।" कला की अभिव्यंजना -शक्ति कलाकार की चेतना अथवा उसके आध्यात्मिक सन्तोष तक ही सीमित नहीं ।वह तभी सफल कही जा सकती है जब वह बोध गम्य हो और कलाकार अपने विचारों को दूसरों तक पहुँचा सके ।कलाकार के लिए अभिव्यंजना शक्ति सम्प्रेषण है।[2] अर्थात् कलाकार की मानसिक स्थिति दर्शक या श्रोता के समक्ष स्पष्ट होनी चाहिए । यदि ऐसा न हो,तो आलोचक उसकी कलाकृति का मूल्यांकन कैसे कर सकेगा ?

बी.आई. ओगैसन के मतानुसार भी यथार्थवादी कलाकार रूप को पराभूत करके, प्रकृति पर विजय पाने से आनन्द को प्राप्त करके अपनी अनुभूति को पाठक तक पहुँचाता है ।[3]

कला का सूत्रपात कब होता है ? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए तालस्ताए ने लिखा है कि जब कोई व्यक्ति अन्य किसी व्यक्ति को या एक

1- Scott James- The Making of Literature P. 174-75

2- वही,पृष्ठ 131 ।

3- Notes on Artist, Societ Art 16 November 1945, Jorge Rabby soviet Literature today London 1946 P. 21.

से अधिक व्यक्तियों को अपने साथ एक ही भावना में मग्न करने के लिए किसी भाव को बाह्य संकेतों द्वारा व्यक्त करता है, तो कला का सूत्र पात होता है।[1] उसकी दृष्टि में कला एक मानवीय क्रिया है, जो इस बात में सन्निहित है कि कोई व्यक्ति चेतन-मन से कतिपय बाह्य संकेतों के माध्यम से स्वानुभूत भावनाओं को दूसरों तक पहुँचाता है तथा दूसरे इन भावनाओं से प्रभावित हो कर उनका अनुभव करते हैं।[2]

एल. एबर क्रौम्बी ने भावनाओं से प्रभावित होकर उनका अनुभव करने के सिद्धान्त को सम्प्रेषाण का सिद्धान्त (Theory of Communi-Cation) के रूप में स्वीकार किया है। उसका कहना है कि संप्रेषाण योग्यता के बिना किसी रचना को साहित्य कहा ही नहीं जा सकता। लेखक तथा पाठक के बीच जो तादात्म्य-स्थापना है वही कला है। लेखक अपनी भाषा के माध्यम से पाठक तक अपनी अनुभूति का सम्प्रेषाण करता है और पाठक उसे ग्रहण कर लेखक के साथ तादात्म्य स्थापित करता है।[3]

आर. जी. कालिंगवुड के अनुसार, -- "लेकिन भाव खाद्य या पेय पदार्थ की भाँति बाँटे नहीं जा सकते और न ही फटे वस्त्रों की भाँति दूसरों को दिए जा सकते हैं। यदि हम भावनाओं के सम्प्रेषाण की बात करते हैं तो उसका केवल एक ही अर्थ हो सकता है और वह यह कि किसी और व्यक्ति को भावों की वही अनुभूति हो जो मुझे हुई है।"[4]

इन पूर्ववर्ती आचार्यों के उपरांत पाश्चात्य साहित्य शास्त्र में सम्प्रेषाण को सिद्धांत रूप में प्रस्तुत करने का श्रेय आई. ए. रिचर्ड्स को है। उन्होंने अपने से पूर्ववर्ती आलोचनाओं को अस्पष्ट माना है। उनकी दृष्टि से

1- जगदीशचन्द्र जैन, पाश्चात्य समीक्षा दर्शन, पृष्ठ 307 ।

2- वही० पृष्ठ 307 ।

3- L. Ebercrombie- Principles of Literary Criticism P. 24-25

4- आर-जी- कालिंगवुड, प्रिन्सीपल्ज आफ आर्ट, पृष्ठ 249 ।

आलोचना का कोई भी सिद्धान्त ठीक नहीं हो सकता जब तक कि वह किसी कलाकृति का पूर्ण मूल्यांकन न कर सके और कोई भी मूल्यांकन अनुभूति के प्रकार तथा सम्प्रेषण की क्रियाओं समझे बिना नहीं हो सकता।[1] रिचर्ड्स की दृष्टि से आलोचना-शास्त्र में मूल्य का बहुत महत्व है, जो कि साधारणतया सौन्दर्य-शास्त्रियों ने छोड़ दिया है।[2] मूल्यों पर विचार करते हुए रिचर्ड्स कहते हैं कि यद्यपि पूर्ववर्ती सौन्दर्य शास्त्रियों ने सौन्दर्य तथा सौन्दर्यानुभूति को अति अस्पष्ट रखा है और यह भी कहने का प्रयत्न किया है कि व्यक्ति का यह अनुभव एक विशिष्ट प्रकार का अनुभव ही है, जिसकी व्याख्या नहीं हो सकती तथापि मेरे विचार में सौन्दर्य शास्त्र तथा सौन्दर्य वादी आलोचना शास्त्र की यह सब से बड़ी त्रुटि है। इसीलिए सौन्दर्य को स्पष्ट करने के लिए रिचर्ड्स ने मूल्य के सिद्धान्त पर बल दिया तथा मूल्य को आंकने के लिए सम्प्रेषण सिद्धांत का प्रतिपादन किया है।

किसी वस्तु के साक्षात्कार से उत्पन्न हुई हमारी आन्तरिक अनुभूति का जो स्पष्ट रूप से मूल्यांकन कर सके रिचर्ड्स उसी को आलोचना मानते हैं।[3] इस आलोचना के रिचर्ड्स के अनुसार दो भाग है। अनुभूति के महत्व को प्रकट करने वाला आलोचनात्मक भाग तथा वस्तु का वर्णन करने वाला शास्त्रीय भाग।[4] और इन दोनों भागों में उसने एक मूलभूत अन्तर बताया है।

1- We can not do this without some understanding of the nature of experience, or without theories of valuation and communication (Principles Page-2)

2- A more serious defect in aesthetics in the avoidance of considerations as to value. (P. 20)

3- But often the critic goes further and affirms that the effect in his mind is due to special particular features of the object. In this case he is pointing out something about the object in addition to its effect upon him and this fuller kind of criticism what we desire. Before his in sight can greatly benefit, how ever a very clear demarcation between the object, with it features and his experience which is the effect of contemplation, it is necessary. The bulk of critical literature is unfrtunately made up of examples of these confusing
Page-23.

4- The part which describes the value of the experience we shal call the critical part. That which describes the object. We shall call the technical part (Page - 23)

महत्व की दृष्टि से रिचर्ड्स आलोचनात्मक भाग को प्रधानता देते हैं।[1] वे कहते हैं कि हम बाहर की बातों की ओर तभी ध्यान देते हैं, जब हमें किसी कविता के विषय में और कुछ कहना नहीं होता।[2]

इस प्रकार रिचर्ड्स के मत से आलोचना के सम्बन्ध में कृति का मूल्यांकन ही महत्वपूर्ण है। "कोई भी वस्तु जो हमारी किसी ऐषणा को बिना किसी दूसरी समान या अधिक महत्वपूर्ण ऐषणा को बाधित किये सन्तुष्ट करती है मूल्यवान है।[3] रिचर्ड्स का यही मूल्य सूत्र है। यह स्वत: स्पष्ट है कि कोई भी व्यक्ति अपनी अधिकतम ऐषणाओं की अधिकतम सन्तुष्टि के लिए प्रयत्नशील रहेगा। अत: सर्वाधिक मूल्यवान मन:स्थिति वह होगी जो अधिकतम ऐषणाओं की अधिकतम संतुष्टि करे। ऐषणाओं में परस्पर विरोध होता है इसलिए उन्हें व्यवस्थित करना और उनमें सामंजस्य स्थापित करना अनिवार्य हो जाता है। अत: मनुष्य सदा उस सामंजस्य की अवस्था को प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील रहता है।

अब प्रश्न उत्पन्न होता है कि कवि की यह मूल्यवान मन:स्थिति पाठक में कैसे संचरित होती है? वैसे तो अपनी मनोदशा का ज्यों का त्यों दूसरे में पहुँचा देना कठिन कार्य है। इसका उत्तर रिचर्ड्स ने इस प्रकार दिया है कि सम्प्रेषण तब होता है जबकि एक मन अपने वातावरण को इस

१- ~~The part which describes the value of the experience we shall Call the critical part. That which describes the object we shall call the technical part (Page 23)~~

1 वही पृष्ठ - 23

२- We pay attention to externals when we do not know what else to do with a poem. Page - 24

3- Any thing is valuable which will satisfy an appetency without involving the frustration of some equal or more important appetency, in other words, the only reason which can be given for not satisfying a desire is that more important desires will there by be thwarted. P. 48.

भान्ति प्रभावित करता है कि एक दूसरा मन प्रभावित हो जाता है और उस दूसरे मन में एक ऐसा अनुभव उत्पन्न होता है जो कि पहले मन के अनुभव जैसा और आंशिक रूप से उसी के द्वारा उत्पन्न किया गया है।[1] इस प्रकार सम्प्रेषाण एक अनुभव का एक मन से दूसरे मन को हस्तान्तरण नहीं है। अपितु वह कुछ ऐसी परिस्थितियों का हस्तान्तरण है जो कि पाठक के मन में मौलिक से अनुभव को उत्पन्न कर सके।

हम सम्प्रेषाण की क्रिया का अभ्यास बचपन से ही करते रहते हैं।यह सत्य है कि पहले हमें अनुभूति होती है और उसके बाद उस का सम्प्रेषाण। परन्तु फिर भी हम सभी कुछ तो अभिव्यक्त नहीं करते। अपनी इच्छानुसार ही हम अपनी अनुभूति को छांटते हैं और फिर उसे अभिव्यक्त करते हैं।इसलिए सम्प्रेषाण का अपना महत्व है।[2]

इस प्रकार सम्प्रेषाण सभी कलाकृतियों में होता है किन्तु सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या सम्प्रेषाण मुख्य उद्देश्य है या फिर सृजनात्मक रचना का प्राकृतिक परिणाम। आनन्द कांतीश कुमार स्वामी का मत है कि एक कलाकृति चार निश्चित सोपानों को पार करके ही अस्तित्व में आती है।ये चार सोपान क्रमश: है-1 - मौलिक कलाकार कवि या कृतिकार में एक सौन्दर्यात्मक प्रवृत्ति का जागरण , 2- इस प्रवृत्ति की आन्तरिक अभिव्यक्ति सौन्दर्य का सच्चा निर्माण या दर्शन , 3- सम्प्रेषाण के उद्देश्य से

1- Communication , we shall say , takes place when one mind so acts upon its environment that another mind isinfluenced, and in that other mind on experience occurs which is like the experience in the first mind ,and is caused in part by that experience (Principles of Literary Criticism,Page 177)

2- We do not sufficiently realise how great a part of our experience takes the form it does , because we are social beings and accustomed to communication from in fancy ..... Communication from in r ability is our whelming

(Principles Page -25)

बाह्य चिन्हों द्वारा इसका संकेत (भाषा) - तकनीकी क्रियाशीलता और 4- आलोचक या रसिक की परिणाम जन्य प्रेरणा मौलिक या इस जैसी प्रवृत्ति के पुनर्निर्माण के लिए।[1]

उपर्युक्त सूत्र स्पष्ट रूप से इस बात की ओर इंगित करता है कि इससे पूर्व किसी कविता या कलाकृति को बाह्य चिन्हों द्वारा पूर्ण आकार दिया जाए, ये निर्माता के मन में आकार ग्रहण करती है और दूसरे बाह्य चिन्हों में इसको पूर्ण आकार एक विशेष उद्देश्य से मिलता है और वह है सम्प्रेषण। आर. बी. पातंकर क्रोचे की भी इसी विश्वास में आस्था की ओर संकेत करते हैं। वे लिखते हैं --- क्रोचे का विचार है कि कलाकृति मानसिक होती है और जिसे हम सामान्य रूप से कलाकृति कहते हैं, वह केवल स्मरण शक्ति और सम्प्रेषण के सिद्धान्तों की सहायक मात्र है।[2] एक और विख्यात आलोचक बोसांके लिखते हैं --- यह कहना कि चूंकि सौन्दर्य की सत्ता से मन का अस्तित्व अभिप्रेत रहता है इसलिए यह एक आन्तरिक अवस्था है और कि इसकी कलेवरीकृत अभिव्यक्ति गौण और आकस्मिक है और यह केवल स्थायित्व और सम्प्रेषण के लिए ही अस्तित्व में लाई जाती है, ऐसा कहना झूठे सिद्धांत की एक बहुत बड़ी त्रुटि और एक झूठा आदर्शवाद प्रतीत होता है।[3]

जैसा भी हो कला और साहित्य के क्षेत्र में सम्प्रेषण किसी भी कलाकृति का महत्वपूर्ण पहलू है। किसी भी कलाकृति का मूल्यांकन उसकी सम्प्रेषण सामर्थ्य के आधार पर होता है किन्तु कलाकार स्वयं अपनी कृति को इस दृष्टिकोण से नहीं देखता।

संसार की विभिन्न भाषाओं के महान् कवियों ने भी अपनी काव्य-साधना का प्रयोजन आत्म-तुष्टि ही माना है जैसे हिन्दी के कवि सम्राट् गोस्वामी तुलसीदास ने लिखा कि:-

---

1- Ananda Kentish Coomaraswamy - The Dance of Shiva Page-48

2- R.B. Patankar - Aesthetics and Literary Criticism Page.159

3- Bosanquet - Three Lecture Page 67.

स्वान्त:सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा ।
भाषा निबन्ध मति मंजुल मातनोति ।[1]

तथापि रिचर्ड्स के मत में कवि का यह कर्तव्य अवश्य रहता है कि वह अपनी अनुभूति को ठीक प्रकार से व्यक्त कर सके और उसकी अनुभूति महत्त्वपूर्ण हो ।[2]

यह भी ठीक है कि कलाकार अपनी कला में सम्प्रेषण की योग्यता लाने के लिए सजग और सतर्क होकर अलग से कोई चेष्टा नहीं करता तथापि सम्प्रेषण का गुण उसकी कला में अचेतन प्रक्रिया से आपसे आप आ जाता है । कवि-प्राय: अपनी रचना को स्वान्त:सुखाय मानता है तथापि उसकी रचना को दूसरे भी पढ़ेंगे और उससे अनुभूति प्राप्त करेंगे यह उसके लिए आकस्मिक और गौण विषय रहता है।कवि अपनी कला के प्रति अन्य व्यक्तियों की या विशिष्ट पाठकों की प्रतिक्रिया को प्राय: रचना करते समय अलग ही रखता है । रिचर्ड्स यह भी मानते हैं कि जो कलाकार अपनी कला में सम्प्रेषण की योग्यता लाने के लिए अलग से अध्यान देता है वह प्राय: निम्नस्तर पर स्खलित हो जाता है ।[3] यह लालसा कवि के लिए अनुभूति के मार्ग में अड़चन हो सकती है । तो भी रिचर्ड्स के मत में इस बात से सम्प्रेषण क्रिया का महत्व नहीं घटता ।क्योंकि यदि हमारा सम्बन्ध केवल हमारी सचेतन क्रिया से ही होता तब तो यह बात सत्य होती परन्तु जब कोई कलाकार यह

1- रामचरित मानस ।

2- That the artist is not as a rule consciously concerned with communication , but with getting the work , the poem or play or statue or painting or what over it is , 'right', apparently regard less of its communicative efficacy , is easily explaine To make the work 'embody', accord with , and represent the precise ~~preoccupation in difficult cases an over mastering preoccupation~~ (~~principles P-26~~) experience upon which its value depends is his major pre-occupation, in difficult cases an over mastering preoccupation - - - - (Principles of Literary Criticism Page -26

3- Those artists and poets who can be suspected of close separate attention to the communcation aspect tend to fall in to subordinate rank . P. 27.

प्रयत्न करता है कि उसकी अनुभूति की अभिव्यक्ति ठीक प्रकार से हो तो इसमें सम्प्रेषाण का महत्व आ ही जाता है। यह आवश्यक है कि श्रोता, पाठक अथवा दर्शक में किसी कलाकृति के श्रवण, पठन अथवा दर्शन से उसी प्रकार की प्रतिक्रिया हो जिस प्रकार की लेखक के मन में थी और इसी में सम्प्रेषाण का महत्व सन्निहित है।

मनोविज्ञान के आधार पर आगे चल कर रिचर्ड्स ने इस बात का भी खण्डन किया है कि कवि अथवा कलाकार के मन में इस बात की लालसा नहीं होती कि लोग उसकी कविता या कलाकृति का कैसा स्वागत करेंगे ? उसके चेतन मन में यह भावना न भी हो तो भी उपचेतन मन में यह लालसा अवश्य रहती है। संस्कृत के महाकवि भवभूति ने तो लिखा ही है कि इस रचना के प्रति मेरा प्रयत्न उन लोगों के लिए नहीं है, जो केवल दूसरों के दोष-दर्शन में ही अपनी बुद्धि की कृतार्थता समझते हैं। मैं तो इस विश्वास के साथ ग्रन्थ रचना करने लगा हूँ कि कभी न कभी मुझ जैसा सहृदय भी कोई उत्पन्न होगा ही क्योंकि समय की कोई सीमा नहीं और यह धरती भी बड़ी विशाल है[1]। महाकवि कालिदास ने मालविकाग्निमित्रम् के प्रारंभ में ही लिख दिया था कि पुराना होने के कारण न सब कुछ अच्छा होता है और न नया होने के कारण सब कुछ निंद्य ही होता है। विद्वान लोग दोनों की परीक्षा करके अच्छे को ग्रहण कर लेते हैं केवल मूर्खों की बुद्धि दूसरों के विश्वास पर चला करती है[2]।

इसलिए रिचर्ड्स की दृष्टि में कवि के लिए आवश्यक है कि वह पाठक, द्रष्टा, अथवा श्रोता के मन में उसी प्रकार की अनुभूति उत्पन्न करे जिस प्रकार की अनुभूति अपनी कविता अथवा कलाकृति की रचना के समय उसमें

1- तान्प्रति नेष यत्नः
उत्पत्स्यते मम कोऽपि समान धर्मा
कालोऽयं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी। (मालती माधव) ।

2- पुराणमित्येव न साधु सर्वं
न चापिकाव्यं नवमित्यवद्यम् ।
सन्तः परीक्ष्यान्तरद्भजन्ते ।
मूढः पर प्रत्ययनेय बुद्धिः । (मालविकाग्निमित्रम्) ।।

होती है।यही समानुभूति उत्पन्न करने का प्रयास सम्प्रेषण है। जिसे रिचर्ड्स ठीक प्रयत्न कहता है और इसी ठीक प्रयत्न पर उसने काव्य के महत्व अथवा कलाकृति के मूल्यांकन का सिद्धान्त आधारित किया है।[1]

अपने सिद्धान्त की व्याख्या करते हुए रिचर्ड्स ने मन को स्नायविक संगठन कहा है।[2] उसका कहना है कि प्रत्येक मानसिक क्रिया किसी बाह्य उद्दीपक अथवा उत्तेजक (stimulus) का और उसकी हमारे स्नायविक संगठन द्वारा प्रत्युत्तर का परिणाम है।यह मानसिक क्रिया कई बार अचेतन होती है और कई बार सचेतन। किसी प्रक्रिया को जो किसी उत्तेजक (stimulus) से आरंभ होकर एक शारीरिक चेष्टा व कर्म में समाप्त होती है उसे भाव(Impulse) कहते हैं (क) हमारे मन में साधारणतया जो भाव उठते है वे मिले जुले या संश्लिष्ट होते हैं। कोई भी भाव शुद्ध रूप में हमारे मन में जाग्रत नहीं होता।[3] उत्तेजक विषाय अथवा उद्दीपन विभाव की प्रतिक्रिया हमारे मन में तभी होती है जब हमारे शारीरिक अथवा स्नायविक संगठन को उसकी आवश्यकता होती है। यह बहुत कुछ उद्दीपन विभाव की प्रकृति पर भी निर्भर करता है।[4] रिचर्ड्स के अनुसार हमारी मानसिक धारणाएं अथवा विचार भी जो समय समय पर बदलते रहते हैं वे हमारी शुद्ध मानसिक क्रिया ही नहीं होते अपितु उनका आधार भी कोई न कोई उत्तेजक विषाय अथवा उद्दीपन विभाव ही होता है।ये विचार साधारण-तया हमारी किसी न किसी वासना की तृप्ति ही करते हैं।[5]

1- Principles of Literary Criticism Page 28-29.

2- That the mind isthe nervous system ,or rather a part of its activity. (Principles Page 35)

3- In actual experience single impulses of course never occur. Even the simplest human reflexes are very intricate bundles of mutually dependent impulses and in any actual human behaviour the number of simultaneous and connected impulses occurring is beyond estimation (वही पृ॰ 86)

4- वही, पृष्ठ 37।

(क) हमने Impulse का अनुवाद 'भाव' आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार किया है।शुक्ल के अनुसार प्रत्ययबोध, अनुभूति और वेगयुक्त प्रवृत्ति इन तीनों के गूढ़ संश्लेषणका भाव है(भाव या मनोविकार , शुक्ल)

5- Such variation shows that the view belief or opinion is not a purely intellectual product is not due to thinking in the narrower sense of response that is governed by stimuli ,present or past but is an attitude adopted to satisfy some desire temporary or lasting (Principles page 87-88)

किसी सचेतन अथवा अचेतन क्रिया का कारण मनोविज्ञान में केवल उत्तेजक विषय अथवा उद्दीपन विभाव ही नहीं होता उसके कुछ अन्य कारण भी होते हैं जैसे हमारे शरीर का रक्त संचालन अथवा शीर्ष आदि की स्थिति। हमारी इन्द्रियों के द्वारा जो मानसिक क्रिया हम पर होती है उसी को हम संचेतन मानते हैं[1] और इसलिए कलाकृति अथवा काव्य रचना के बाह्य रूप का भी विशेष महत्व है।

मनोविज्ञान के आधार पर रिचर्ड्स के मत में मूल्यवान अनुभूति वह है जो मनुष्य की किसी उत्कट लालसा की संतुष्टि करती है।[2] परन्तु इसमें उसकी साधारणतया महत्त्वपूर्ण लालसाओं का हनन नहीं होता क्योंकि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी होने के नाते कई प्रकार की इच्छाओं की सन्तुष्टि साथ ही साथ करता रहता है। अन्तर केवल इतना ही है कि किसी क्षण विशेष में कलाकार किसी कलाकृति के द्वारा अपनी उत्कट लालसा की पूर्ति कर लेता है। रिचर्ड्स के मत से कलाकार और साधारण व्यक्ति में यह अन्तर है कि कलाकार अपने मनोवेगों को बड़ी सरलता से सुगठित तथा व्यवस्थित कर सकता है और इस प्रकार किसी भी उत्कट लालसा की अनुभूति को ठीक प्रकार से अभिव्यक्ति करने में समर्थ होता है।[3] इस सुगठन की क्रिया का क्या मतलब है उसकी व्याख्या भी रिचर्ड्स ने स्वयं ही कर दी है। उसने लिखा कि --

> The most valuable states of mind then are those which involve the widest and most comprehensive Co-ordination of activities and the least curtail ment, conflict, starvation and restriction. States of mind in general are valuable in the degree in which they tend to reduce waste and furstrution. (Principles of Literary Criticism p.5

अर्थात् मन की सब से मूल्यवान स्थितियाँ वे हैं जिनमें मानसिक व्यापारों का सर्वाधिक और व्यापक संयोजन होता है तथा जिसमें इन चेष्टाओं को कम से कम कटौती, संघर्ष, अवरुद्धीकरण तथा संयन्त्रण होता है। मनःस्थितियाँ ही अंशों में मूल्यवान होंगी जितने अंशों में वह अतिरेक या कालातृप्ति और हताशा को घटाती है।

1- The condition of the blood and the position of the head are typical instances. Only that part of the cause of a mental event which takes effect through incoming (sensory) impulses or through effects of past sensory impulses can be said to be thereby known. (वही Page 29)

2- वही, पृष्ठ 43।

3- The artist is concerned with the record and perpetuation

(अगले पृष्ठ पर देखिए)

रिचर्ड्स ने नैतिकता की परिभाषा भी इसी मानदण्ड के अनुसार मनोवैज्ञानिक आधार पर की है। उसकी दृष्टि से नैतिकता वही है जो मनुष्य को सामाजिक अथवा व्यक्तिगत जीवन में सुगठित तथा व्यवस्थित मनोवेगों के द्वारा प्राप्त होती है[1]। इसलिए रिचर्ड्स की दृष्टि में महान् कलाकार ही सब से महान् नैतिकता वादी होते हैं (नन्ददुलारे वाजपेयी[2] का यह कथन कि-- महान कलाकार अश्लील हो ही नहीं सकता। वास्तव में रिचर्ड्स की मान्यता की ही प्रतिध्वनि मात्र है।

टालस्टाय का खण्डन भी रिचर्ड्स ने इसी आधार पर किया। रिचर्ड्स ने यह स्वीकार नहीं किया कि किसी कलाकृति के मूल्य को जांचने के लिए उसकी अन्तरंग प्रवृत्ति को जांचना आवश्यक है जिसका अर्थ है उस

(पिछले पृष्ठ का शेष)

of the experiences which seem to him most worth having. For reasons which we shall consider in chapter xx II, he is also the man who is most likely to have experiences of value to record. He is the point at which the growth of the mind shows it self ..... Principles Page . 61.

1- The problem of morality then, the problem of how we are to obtain the greatest possible value from life.... incidently help greatly to give unnecessary stifness and fixity to obsolescent codes. (Principles of Literary CriticismP.58-59.

2- नन्ददुलारे बाजपेयी, हिन्दी साहित्य- बीसवीं शताब्दी।

युग की धार्मिक चेतना को आंकना[1]। उसने टालस्टाय का मज़ाक उड़ाते हुए कहा कि टालस्टाय के लिए तो एक परिहास भी परिहास नहीं हो सकता जब तक कि सारे लोग उसमें सहभागी न हों। टालस्टाय के लिए हास्य के आनन्द से अधिक उसका सहभागी होना अधिक महत्व पूर्ण है।[2]

रिचर्ड्स ब्रैडले के 'कलाकला के लिए' सिद्धांत से भी सहमत नहीं। ब्रैडले के अनुसार कविता का लक्ष्य स्वयं कविता ही है[3] और उसकी महत्ता, आन्तरिक महत्ता पर ही निर्भर है। यदि उसका कोई बाह्य मूल्य है तो वह यही है कि वह धर्म या संस्कृति की साधक है, उपदेश देती है, वासनाओं का परिष्कार करती है, किसी अच्छे कार्य की सहायिका सिद्ध होती है और कवि के लिए यश, धन और शान्त अन्तःकरण का कारण बनती है। आगे चल कर ब्रैडले ने यह भी कहा है कि यह बाह्य मूल्य शुद्ध काव्य के मूल्य को नहीं बता सकते अपितु यदि इनको ध्यान में रख कर कविता की रचना की जाती है, तो काव्य का मूल्य घट जाता है क्योंकि इससे कविता अपने वातावरण से बाहर आ जाती है और उसकी प्रकृति बदल जाती है क्योंकि कविता की प्रकृति यह नहीं है कि वह जगत की प्रतिकृति हो बल्कि क वह तो अपने आप में पूर्ण और स्वायत्त है।

रिचर्ड्स ब्रैडले की इस मान्यता से तनिक भी सहमत नहीं। उसके मत से यदि काव्यानुभूति संस्कृति, धर्म, उपदेश ग्रहण, वासनाओं के परिष्कार अथवा किसी अच्छे कार्य के लिए सहायक सिद्ध नहीं होती तो काव्य का होना व्यर्थ है।[4]

1- Any Art which is infective, as he uses that word in the quotation above, is pure Art ..... men with God and with one another. (Principles Page 64-65)

2- Even a joke, for Tolstoy, is only a joke solong as all men may share in it,.... the sharing is more important than the merriment. (वही Page 65)

3- First, this experience is an end in it self ... let it be value for these reasons too. (वही P. 73-74)

4- Culture, religion, instruction in some special senses, softening of the passions and the further ang of good causes ..... the word 'poetic' becomes useless (Principles Page- 74)

6

ब्रैडले की इस युक्ति का कि काव्यानुभूति के निर्णय के लिए हमें काव्यानुभूति का अंग ही बनना पड़ता है रिचर्ड्स ने यह कह कर उत्तर दिया है कि हमें काव्यानुभूति का मूल्यांकन करने के लिए भी अपने आपको उससे अलग करना ही पड़ेगा।[1] और ऐसा करने में मानव-जीवन में उसका क्या स्थान है उसको भुलाया नहीं जा सकता। अभिप्राय यह है कि किसी प्रकार की काव्यानुभूति के मूल्यांकन के लिए बाह्य मूल्यों को ध्यान में रखना भी आवश्यक है।[2] बाह्य उद्देश्यों से कलाकृति का मूल्य घटता है ब्रैडले के इस कथन के प्रत्युत्तर में रिचर्ड्स का कथन है कि कुछ कलाकृतियों में बाह्य उद्देश्य भी सहायक होता है। संसार की ऐसी बहुत सी कला-कृतियां हैं जिनमें कवि के सम्मुख बाह्य उद्देश्य ही रहे थे।[3] क्या बाह्य उद्देश्यों से कलाकृति अथवा काव्यानुभूति का मूल्य घटता है? इसका उत्तर रिचर्ड्स ने इस प्रकार दिया है कि कुछ काव्य कृतियों पर तो यह सिद्धान्त लागू होता है परन्तु कुछ पर नहीं क्योंकि सारे संसार की काव्य कृतियों को एक ही मानदण्ड से नापा जा सकता है। कुछ में बाह्य उद्देश्य सहायक होते हैं और कुछ में नहीं।[4] काव्यानुभूति अपने में पूर्ण और स्वायत्त है का खण्डन करते हुए रिचर्ड्स ने लिखा है कि -- यदि ब्रैडले की युक्ति ठीक मानी जाए, तो जीवन और कला में कोई अन्तर न रहेगा और उनका दूर का ही नाता मानना पड़ेगा। रिचर्ड्स के अनुसार कोई भी काव्यानुभूति जीवन के सत्य से भिन्न नहीं होती और न ही इसके कोई विशेष नियम होते हैं।[5]

1- As a rule we had to come out in order to judge it .....be no indices to its value . (Page 75)

2- If by judging it in the experience ..... account of everything and of the way things hang together . (Page 75)

3- It will not be denied that for some kinds of poetry the intrusion ..... universal satire , Swift , Valtaire Byron (Principles 75-7

4- .... that poetry is of more than one kind, and that the different kinds are to be .... poetic experience will justify (वही P. 77)

5- The world of poetry has in no sense any different reality from the rest of the world and it has no special laws and no other worldly peculiarities (वही P. 78)

इस प्रकार रिचर्ड्स ने साधारण अर्थ में नैतिकतावाद तथा कलाकला के लिए सिद्धान्त का खण्डन करते हुए कलाकृति अथवा काव्य का मूल्यांकन शुद्ध मनोवैज्ञानिक आधार पर किया है। पाठक श्रोता अथवा दर्शक के मन में इस प्रकार की स्थिति उत्पन्न करना कि वह अपनी एषणाओं की अधिक से अधिक तृप्ति कर सके तथा मानसिक व्यापारों का ठीक संयोजन कर सके यही कलाकार की कलाकृति का उद्देश्य है ।

सम्प्रेषण और भाषा:- मूल्य का यह मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त साहित्य और भाषा पर किस प्रकार लागू होता है इस पर विचार रिचर्ड्स ने 'मीनिंग आव मीनिंग' नामक पुस्तक तथा 'प्रेक्टीकल क्रिटीसिज़्म' में किया है ।

कविता में भाषा प्रेषण का माध्यम और साधन है अत: उसकी प्रकृति और प्रयोगों पर विचार करते हुए रिचर्ड्स ने भाषा के प्रयोग के दो भेद किए हैं --- प्रतीकात्मक (Symbolic) तथा संवेगात्मक (Emotive)[1] । उनका कथन है, -- व्यवहार में शब्द दो प्रकार से प्रयुक्त होते हैं : प्रतीकात्मक और संवेगात्मक । शब्द के प्रतीकात्मक प्रयोग में कोई कथन होता है अथवा किसी तथ्य का अंकन या फिर किसी सूचना का सम्प्रेषण ।इसके विपरीत शब्द के संवेगात्मक प्रयोग में वक्ता या तो किसी संवेग, अनुभूति, वृत्ति , अभिप्राय आदि की अभिव्यक्ति करता है या फिर वह किसी श्रोता में इस प्रकार के किसी संवेग, अनुभूति,वृत्ति या अभिप्राय को उद्बुद्ध करना चाहता है । प्रतीकात्मक प्रयोग विज्ञान या शास्त्र में होता है जबकि संवेगात्मक प्रयोग प्रधानत: काव्य में होता है ।[2]

1- But here a two fold division is more convenient, the division between symbolic use of words and the emotive use. (The Meaning of Meaning, P P 149)

2- A statement may be used for the sake ..... emotive use of language .

The Principles of Literary Criticism. P. 267 .

`प्रैक्टिकल क्रिटिसिज़्म` नामक पुस्तक में रिचर्ड्स `संवेगात्मक भाषा` के अर्थात तत्वों पर विचार किया है। रिचर्ड्स के अनुसार समस्त भाषा-गत प्रयोगों पर चार दृष्टियों से विचार किया जा सकता है।[1] 1-वाच्यार्थ (Sense) 2- अनुभूति (Feeling)3-स्वर भंगिमा(Tone) 4- अभिप्राय (Intention) । पहला कोशगत अर्थ या अभिधा है। दूसरे शब्द प्रयोग के पीछे वक्ता की कोई न कोई अनुभूति रहती है।तीसरे अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिए वह खास तरह की स्वर भंगिमा (टोन) अख्तियार करता है। चौथे वह जो विशेष प्रभाव उत्पन्न करना चाहता है वही उसका अभिप्राय या इन्टेंशन होता है। वैज्ञानिक शब्दावली में अभिधा की प्रधानता होती है जबकि काव्य में वह गौण होती है।

काव्य में वाच्यार्थ और भाव व्यंजना को रिचर्ड्स ने परस्पर निर्भर माना है।उनका विचार है कि नियमत: वे परस्पर घनिष्ठ रूप से संबद्ध रहते हैं और एक से दूसरे को अलग कर पाना असंभव होता है।[2] वाच्यार्थ और अनुभूति के बीच यह सम्बन्ध रिचर्ड्स ने तीन प्रकार का माना है[3] :--

1- पहले प्रकार का सम्बन्ध सब से अधिक स्पष्ट होता है, जहाँ अनुभूति की उत्पत्ति और नियमन वाच्यार्थ द्वारा होता है। इस दशा में उद्‌बुद्ध अनुभूति गृहीत वाच्यार्थ का सहज परिणाम होती है।

2- दूसरे प्रकार का सम्बन्ध वहाँ होता है, जहाँ शब्द पहले किसी अनुभूति को अभिव्यक्त करते हैं और वाच्यार्थ का ग्रहण तदुपरान्त अनुभूति के माध्यम से होता है।

3- तीसरे प्रकार के सम्बन्ध में वाच्यार्थ और भाव व्यंजना परस्पर घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध नहीं रहते ,उनकी संधि सन्दर्भ द्वारा सम्पन्न होती है।

रिचर्ड्स ने अर्थ व्यंजना को भाषा का आवश्यक और

1- Practical Criticism , p. 181 .

2- प्रैक्टिकल क्रिटिसिज़्म ,पृष्ठ 209 ।

3- वही, पृष्ठ 209-10 ।

महत्त्वपूर्ण व्यापार माना है। वे काव्य में अनिश्चित अर्थवत्ता का विरोध करते हैं।उनका कथन है -- ' भाषा जहाँ एक ओर सामाजिक तथ्य है दूसरी ओर व्यक्तिगत अनुभव भी।इसलिए काव्य गत भाषा का प्रयोग भी एकान्ततः अनिश्चित नहीं होना चाहिए।उसके प्रयोग के सम्बन्ध में सामान्य सहमति आदान-प्रदान का आवश्यक अनुबन्ध है[1]।'

अर्थ मीमांसा का विवेचन करते हुए रिचर्ड्स ने प्रसंग-गर्भता का सिद्धान्त प्रस्तुत किया है।उनके अनुसार शब्दों के कुछ अर्थ मौजूद होते हैं और कुछ प्रसंग के कारण उपस्थित हो जाते हैं। रिचर्ड्स के अनुसार शब्दों का एक सामान्य स्थिर अर्थ होता है परन्तु कवि के अभिप्राय और अनुभूति के अनुसार उनमें नवीन अर्थ भरा जाता है।इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि उन्हें सम्पूर्ण सन्दर्भ में देखा जाए।विगत के सन्दर्भों से प्राप्त शब्दों की शक्ति या संकेत ग्रहण नवीन सन्दर्भों में ताजा हो जाते हैं।नए आलोचक काव्यात्मक संदर्भों को उद्घाटित करने के लिए सूक्ष्मतर और जटिल अर्थों का विवेचन करते हैं।एक विशेष प्रसंग में शब्द परस्पर इस प्रकार सम्बद्ध होते हैं कि वे एक दूसरे को अनुप्राणित करते रहते हैं।इनका अर्थापन करना आवश्यक होता है।इसी सिलसिले में रिचर्ड्स ने रूपक (मेटाफर) को विशेष महत्वप्रदान किया है क्योंकि वह दो सन्दर्भों को मिलाता है,उन्हें आकर्षक रंग देता है।फलस्वरूप पूरे संदर्भ को नवीन अर्थवत्ता प्राप्त होती है।रूपक को उसने आरगेनिक पैटर्न का अनिवार्य अंग माना है[2]।

इसके साथ ही रिचर्ड्स ने अभिव्यंजना के अन्य उपादानों लय आदि का प्रभाव अर्थ से भिन्न नहीं माना। यद्यपि सामान्यतः हम सोचते हैं कि लय का प्रत्यक्ष प्रभाव हमारे संवेगों पर पड़ता है परन्तु यदि किसी कविता की लय पर हम विचार करना चाहें,तो अर्थ से अलग करके वैसा कर ही नहीं सकते।

1- फिलॉसफी आफ रटेरिक ,पृष्ठ 40 ।

2- फिलॉसफी आफ रटेरिक ,पृष्ठ 35 ।

उसका तो यहाँ तक कहना है :--- " हम जिस लय का अनुभव करते हैं और सोचते हैं कि यह लय वर्ण ध्वनियों में निहित रहती है, वस्तुत: उसे हम वर्ण-ध्वनियों पर बाद में प्रक्षेपित कर देते हैं ।[1]

लय की ही भाँति छन्द को भी रिचर्ड्स ने शब्द गत नहीं माना ।उनके अनुसार छन्द के मूल तत्व का अस्तित्व उद्दीपन में न होकर अनुक्रिया में है ।[2] उनके अनुसार छन्द लय का निर्माण करने वाली विविध परिणामयुक्त आकांक्षाओं को कालिक रूप विधान (पैटर्न) प्रदान करता है और इसका प्रभाव हम से बाहर की किसी वस्तु में किसी रूप विधान का प्रत्यक्षीकरण प्राप्त करने में न देख कर हमारे मन के ही विशिष्ट रूप विधान प्राप्त करने में देखा जाना चाहिए ।[3] रिचर्ड्स ने कठिन और सर्वाधिक सूक्ष्म कथनों के लिए छन्द को अनिवार्य साधन माना है ।[4]

रिचर्ड्स का प्रतीकवाद :- रिचर्ड्स के मत से हमारे मन पर जो संस्कार पड़ते हैं, जिन्हें हम प्रतीक (Signs) कहते हैं, वे केवल स्वावलम्बी ही नहीं होते ,वे उन संस्कारों पर भी निर्भर करते हैं, जो अतीत काल में हम पर कभी उससे मिलते जुलते होने के कारण पड़े थे ।रिचर्ड्स की परिभाषा में प्रतीक वह वस्तु है, जो किसी समय ऐसे प्रसंग में हमारे सामने कोई रूप (consideration) धारण करके आया था, जिसने हम पर उस समय पूर्ण अधिकार कर लिया था ।[5]

1- प्रेक्टिकल क्रिटिसिज़्म ,पृष्ठ 229 ।

2- प्रिन्सिपल्स आफ लिटरेरी क्रिटिसिज़्म ,पृष्ठ 139 ।

3- वही, पृष्ठ 139 ।

4- वही, पृष्ठ 146 ।

5- Principles of literary criticism P. 00

रिचर्ड्स का बिम्बवाद :- काव्यानुभूति का विश्लेषण करते हुए रिचर्ड्स ने बिम्ब पर भी विचार किया है। रिचर्ड्स ने प्रत्येक शब्द का एक विशेष प्रकार का बिम्ब जो हमारे में उत्पन्न होता है, इस पर विचार करते हुए इसकी व्याख्या इतनी सूक्ष्म तथा व्यापक की है कि मुद्रित शब्द की आकृति का भी मन पर प्रभाव पड़ता है यद्यपि इसको उसने इतना महत्व नहीं दिया।[1] शब्दों की चाक्षुष संवेदनाएं साधारणतया अपने आप उत्पन्न नहीं होतीं। उनके साथ नियमित रूप से कुछ संगी होते हैं जिन्हें उनसे बड़ी कठिनाई से अलग किया जा सकता है। इन संलग्नों में मुख्यत: श्रुति-बिम्ब (मन के कानों में शब्दों की ध्वनि) तथा शब्दों के बोलने जैसी स्थिति में ओंठ, मुंह तथा कंठ में प्राप्त होने वाले अनुभव मुख्य हैं।

बिम्बों की संवेगी विशेषताएं-- जैसे, सजीवता, स्पष्टता चटकीलापन, व्योरों की पूर्णता आदि बिम्बों के प्रभाव से कोई स्थायी सम्बन्ध नहीं रखतीं।[2] अत: यह नहीं मानना चाहिए कि बिम्ब जितना सजीव चटकीला और स्पष्ट होगा, उसकी प्रभावोत्पादकता भी उतनी ही अधिक होगी। रिचर्ड्स के अनुसार बिम्ब का महत्व चित्रात्मकता की दृष्टि से नहीं, विचार और भावना को प्रभावित करने की दृष्टि से है।

सम्प्रेषण में कठिनाइयां :- रिचर्ड्स ने सम्प्रेषण का विवेचन करते हुए सौन्दर्यानुभूति में उन विघ्नों की भी चर्चा की है, जिन्हें वे ग्राहक की काव्यानुभूति के मार्ग में बाधक मानते हैं। ये विघ्न जिन्हें रिचर्ड्स ने 'कठिनाई' (डिफिकल्टी) का नाम दिया है सात हैं।[3]

1- The individual character of the letters, their size and spacing have only a minor effect upon the whole response (Principles- Page 115

2- The sensory qualities of images, their vivacity, clearness fullness of detail and so on, do not bear any constant relation to their effects. वही Page 119.

3- डा० निर्मला जैन, रस सिद्धान्त और सौन्दर्य शास्त्र, पृष्ठ 256।

1-काव्यार्थ को ग्रहण करने की क्षमता का अभाव :- रिचर्ड्स का विचार है कि एक बड़ी संख्या में पाठक भले ही उनकी काव्य में कितनी भी रुचि क्यों न हो सही काव्यार्थ को समझने में असमर्थ रहते हैं। इस प्रकार कविता में अन्तर्निहित भावना, कवि के अभिप्राय और उसकी कथन भंगिमा संबंधी उनकी समझ भी गलत होती है।

2- ऐन्द्रिय ग्रहण संबंधी कठिनाई :- ऐन्द्रिय ग्रहण सम्बन्धी कठिनाई के कारण भी कई बार काव्यार्थ के ग्रहण में बाधा होती है। प्रत्येक काव्य-कृति का प्रभाव हमारी विभिन्न इन्द्रियों पर पड़ता है। अत: वही पाठक जो सहज रूप में तत्काल अपनी ऐन्द्रिय, बौद्धिक और संवेगात्मक, सभी ग्राहक शक्तियों के साथ समवेत रूप में ग्रहण करता है, काव्य का सही अधिकारी है। यही बात बिम्ब-ग्रहण के सन्दर्भ में भी कही जा सकती है।

3- स्मृतिगत अप्रासंगिकताएं :-- ये भी बहुधा पाठक की काव्यानुभूति में बाधित होती है। काव्य पाठ के समय काव्य से पूर्णत: असंबद्ध व्यतीत घटनाओं और संबंधों की स्मृति भी वर्तमान में हस्तक्षेप कर काव्यानुभूति में बाधा उपस्थित करती है।

4- अभ्यासजन्य प्रतिक्रियाएं :- कभी कभी ऐसा होता है कि पाठक किसी कृति -विशेष की अपनी विशिष्टता का पता लगाने के लिए प्रयास करने की अपेक्षा उसकी सामान्य विशेषताओं के आधार पर रूढ़ प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। अभ्यास जनित प्रतिक्रिया प्राय: समूहगत धारणाओं एवं संवेगों का सुरक्षित अनुकरण मात्र होती है। उदाहरणार्थ देश-प्रेम संबंधी बहुत सी साधारण कविताएं केवल कुछ ऐतिहासिक स्थान और पुरुषों की नाम गणना के द्वारा पाठकों में प्राय: अभ्यास जनित रूढ़ प्रतिक्रिया उत्पन्न करने में सफल हो जाती है।

5- भावुकता :- भावुकता वह प्रतिक्रिया कही जाती है जो मात्रा में अवसर की मांग से अधिक होती है। किसी कृति में जितनी अनुभूति जाग्रत करने की क्षमता हो और पाठक उससे अधिक अनुभूति व्यक्त करे, तो उसे भावुकता का परिणाम समझना चाहिए। भावुकता में एक प्रकार का अनौचित्य होता है। बाधा यह इसलिए है कि भावुकता पाठक की दृष्टि को आंसुओं से

3 :

धुंधला देती है और वह प्रस्तुत कृति को यथातथ्य रूप में देखने में असमर्थ रहती है।

6- वर्जना :- यह बाधा भावुकता के विपरीत एक प्रकार की कठोर हृदयता और भाव शून्यता को जन्म देती है। किन्तु जैसा कि रिचर्ड्स ने कहा है कि वर्जना भावुकता का ही एक रूप है। वर्जना का मूल स्रोत किसी दु:खद अनुभव से होता है, जिसके कारण पाठक जीवन के किसी अप्रिय प्रसंग के काव्यगत अनुचिंतन से बचने के लिए अपने चित्त को उस विषाय के प्रति कठोर बना लेता है। इसलिए वर्जना प्राय: एक क्षेत्रीय होती है। एक ही पाठक विषाय विशेषा के प्रति भावुक हो सकता है और किसी अन्य के प्रति कठोर हृदय।

7- सैद्धांतिक पूर्वाग्रह :- कभी कभी ऐसा होता है कि काव्य में वर्णित विचार पाठक के अपने विचारों से बिल्कुल मेल नहीं खाते। ऐसी स्थिति में पाठक अपने सैद्धान्तिक पूर्वाग्रहों के कारण काव्यगत भावों से पूर्णतया तादात्म्य स्थापित करने में असमर्थ रहता है।

इस प्रकार रिचर्ड्स का सम्प्रेषाण बहुमतवाद तथा भारतीय रस सिद्धान्त -सिद्धान्त के समान अपने आप में सम्पूर्ण है। इसके अन्तर्गत भाषा, प्रतीक बिम्ब, तथा सम्प्रेषाण में बाधाएँ आदि सभी का समावेश है।

:0:0:0:0:0:0:

--

द्वितीय अध्याय

भारतीय काव्य शास्त्र में सम्प्रेषणीयता के तत्व

:o:o:o:o:

भारतीय काव्यशास्त्र में सम्प्रेषणीयता के तत्व

'एक: शब्द: सम्यग्ज्ञात: सुप्रयुक्त: स्वर्गलोके कामधुग्भवति'[1] पतंजलि ने कहा है कि एक भी शब्द यदि सुप्रयुक्त हो तो वह इस लोक में और परलोक में कामधेनु (मनोरथ पूर्ण करने वाला) होता है। अत: शब्द का सम्यक् ज्ञान और उसका उचित प्रयोग अभीप्सित अर्थ के सम्प्रेषण के लिए आवश्यक है। जो कवि शब्द के यथार्थ को जान कर उसकी शक्ति को पहचानते हुए उसका यथातथ्य प्रयोग करते हैं वे श्रोता या पाठक के हृदय में अपना अभीष्ट भाव यथेष्ट प्रभाव के साथ पहुँचाने में समर्थ होते हैं।

शब्द और अर्थ का सम्बन्ध :- महाकवि कालिदास ने रघुवंश के आदि में वाक् और अर्थ की प्रतिपत्ति के लिए वाक् और अर्थ की भान्ति सम्पृक्त जगत् के मातापिता पार्वती और परमेश्वर की वंदना की है[2]। शब्द और अर्थ का यह नित्य सम्बन्ध वाहक और वाह्य का है। शब्द वाहक है और अर्थ वाह्य। अपने उच्चरित यद्वा लिखित रूप में शब्द वक्ता या लेखक के आशय को श्रोता या पाठक के हृदय में सम्प्रेषित करता है। 'अनेकार्थका: शब्दा:' अर्थात् शब्द अनेकार्थक होते हैं। वे अपने सभी अर्थों के सम्प्रेषण में समर्थ है किन्तु प्रकरणादि, परिस्थितिवशात् सर्वत्र समान रूप से नहीं। एक अर्थ के द्योतक शब्द भी अनेक होते हैं किन्तु स्थल-विशेष में अभीष्ट अर्थ का सम्प्रेषण सभी समान रूप से नहीं करते। इस प्रकार एक शब्द अपने अनेक अर्थों में से स्थल विशेष पर जिस विशेष

1- साहित्य दर्पण-- विमला टीका सहित षष्ठ संस्करण, पृष्ठ 11।

2- वागर्थाविवसम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगत: पितरौ वंदे पार्वती परमेश्वरौ ।। रघुवंश 1-1)

अर्थ को तथा एक अर्थ के द्योतक अनेक शब्दों में से जो स्थल विशेष पर अभीष्ट अर्थ को अधिक प्रभाव पूर्ण ढंग से सम्प्रेषित करता है, उससे उसकी अर्थ-- सम्प्रेषण क्षमता का बोध होता है। संस्कृत काव्य-शास्त्र के लक्षण-ग्रन्थों में यद्यपि सम्प्रेषण शब्द का व्यापक और रूढ़ प्रयोग इस प्रक्रिया के सम्बन्ध में नहीं हुआ तथापि शब्द प्रयोग करते समय उसके केवल व्याकरण सम्मत अर्थ को न देख कर लोक-प्रचलित अर्थ को देखने पर बड़ा बल दिया गया है। साहित्य-दर्पणकार ने शब्द की लक्षणा शक्ति का विवेचन करते हुए `कर्मणि कुशल:`[1] प्रसंग में शब्द के व्युत्पत्ति-निमित्तक तथा प्रवृत्ति-निमित्तक अर्थों में प्रवृत्ति-निमित्तक को ही ग्राह्य बताया है।[2] पर्याय होते हुए भी स्थान विशेष पर दूसरा शब्द अभीष्ट अर्थ के सम्प्रेषण में असमर्थ रहता है। अपने अर्थ के प्रति जिस शब्द की सम्प्रेषण - क्षमता जितनी घट जाती है उतना ही दूर का शब्द और अर्थ का सम्बन्ध बन जाता है। अत: आचार्यों ने कवियों को शब्द को अप्रयुक्त अर्थ में प्रयुक्त करने से रोका है।[3] साहित्य दर्पणकार ने भी `कुंज हन्ति कृशोदरी`[4] प्रयोग दुष्ट माना है। क्योंकि `हन्ति` का अर्थ यहाँ `जाती है` है जो साधारण व्यक्ति की समझ में नहीं आ सकता। इसी प्रकार अपुष्टार्थ,[5] निहितार्थ,[6] नेयार्थ[7] आदि दोषों की मान्यता के पीछे भी इन शब्दों की अर्थ-सम्प्रेषण क्षमता का अभाव ही है।[8] यही नहीं गूढ़ व्यंग्य

1- केचित् कर्मणि कुशल: इति रूढावुदाहरन्ति.... तदन्ये न मन्यन्ते। कुशग्राहि रूपार्थस्य व्युत्पत्ति लभ्यत्वेऽपि दर्भा रूपस्यैव मुख्यार्थत्वात्। .... व्युत्पत्ति लभ्यस्य मुख्यार्थत्वे गोप: शेते `इत्यत्रापि लक्षणास्यात्। `गमेर्डो:` इति गमधातो डेप्रित्ययेन व्युत्पादितस्य गो शब्दस्य शयन काले प्रयोगात्।

(साहित्य दर्पण विमलाटीका सहित पृष्ठ 31)

2- अन्यद्धि शब्दानां व्युत्पत्तिनिमित्तम् अन्यच्च प्रवृत्ति निमित्तम्। -- वही, पृष्ठ31

3- नाऽप्रयुक्तं प्रयुंजीत चेत: संभोहकारिणम्।
तुल्यार्थत्वेऽपिहि ब्रूयात् को हन्ति गतिवाचिनम्।, भामह, भारतीय काव्यशास्त्र की परंपरा, पृष्ठ 46 ।

4- अत्र हन्तीति गत्यर्थपठितमपिनतत्समर्थम्। (साहित्य दर्पण, पृष्ठ 235)

5- अपुष्टत्वं मुख्यानुपकारित्वम्। -- वही, पृष्ठ 244

6- निहितार्थत्वमप्रयार्थस्य शब्द स्याप्रसिद्धे अर्थे प्रयोग:, वही, पृष्ठ230 ।

(शेष अगले पृष्ठ पर देखिए)

और गूढ़व्यंग्य[1] काव्य को मध्यम श्रेणी के काव्य में परिगणित करने का कारण बहुत कुछ यही है। गूढ व्यंग्य में प्रतिपाद्य अर्थ को समझना समस्या बन जाता है तथा तथा गूढ व्यंग्य में वह अर्थ इतना कुंठित हो जाता है कि पाठक या श्रोता उसके मर्म को नहीं सम कूपाता । कहने की आवश्यकता नहीं कि शब्द सम्प्रेषक है अर्थ सम्प्रेष्य है तथा इन दोनों का सम्बन्ध, सम्प्रेषणीयता का है।

प्रेषण काव्यापार बहा जटिल है। उसमें स्वभावत: कठिनाइयां होती हैं। लेखक किसी वस्तु को अपने विशिष्ट दृष्टिकोण से देखता है। लेखन काल में उसके सामने प्रमुख समस्या यह होती है कि वह अपने पाठकों को ठीक उसी दृष्टिकोण से देखने की प्रेरणा कैसे दे ? इस समस्या के सफल समाधान द्वारा ही लेखक पाठकों में उस रागात्मक स्पन्दन को जन्म दे सकता है जिसका अनुभव वह स्वयं कर रहा होता है। प्राचीन साहित्य-शास्त्र में एक विशेष रागात्मक स्पंदन के उन्मेष की अवस्था को रसानुभूति की स्थिति कहा गया है। इस स्थिति को पैदा करने के लिए साहित्यकार उपयुक्त विभावों, अनुभावों और व्यभिचारियों की योजना करता है। अभिप्राय यह है कि साहित्यकार उन वस्तुओं के विशिष्ट चित्र उपस्थित करता है जिन्हें वह सार्थक समझता है। वे चित्र पाठकों में सम्बद्ध भावनाओं को उत्पन्न या जाग्रत करते हैं और इस प्रकार भावनाओं के सफल सम्प्रेषण या उनकी उत्पत्ति से रस परिपाक की स्थिति निष्पन्न हो जाती है। लेखक तथा पाठकों की अन्त: प्रकृति में तात्विक समानता ही इस स्थिति का मूल कारण मानी गई है।

(पिछले पृष्ठ का शेष)

7- नेयार्थत्व रूढि प्रयोजनाभावाद्व्यक्ति कृतलक्ष्यार्थ प्रकाशनम् । --वही, पृष्ठ230।

8- सन्धौ सर्वस्वहरणं विग्रहे प्राण निग्रह:
अल्लावदीन नृपतौ न संधिर्न चविग्रह:
अत्रा ल्लावदीनाख्ये नृपतौ दानसामादिमन्तरेणान्य:प्रशमोपायशतेव्यंग्यं व्युत्पन्न, मपि फटित्यस्फुटम्।वही, पृष्ठ 153 ।

1- अनेन लोक गुरुणा सतां धर्मोपदेशिना
अहं व्रतवती स्वैरमुक्तेन किमत: परम।
अत्रप्रतीयमानोऽपि शक्य मुने स्तिर्यंग्योक्ति बलात्कारोपभोग:
स्फुटतया वाच्य मान इत्यगू।साहित्य दर्पण, पृष्ठ153 ।

यदि लेखक का दृष्टिकोण, इतना अधिक व्यक्तिगत हो जाए कि उसका सम्बन्ध साधारण लोगों की मूल अन्तःप्रकृति से न जुड़ सके तो वह लेखक अपनी सम्प्रेषण क्रिया में असफल रह जाता है। यह अवस्था लेखक द्वारा स्थिति-विशेष को केवल बौद्धिक तथा व्यक्तिगत धरातल वैशिष्ट्य से पूर्ण निराले व विरल ढंग से देखने पर उत्पन्न होती है। महान् लेखक अपनी साधारण प्रतीतियों को भी कुछ इस प्रकार मानव प्रकृति की गहराईयों से संबंधित कर लेते हैं कि वे पाठक के लिए संवेद्य बन जाती हैं। इसके विपरीत साधारण लेखकों की असाधारण प्रतीतियाँ भी केवल हल्का चमत्कार उत्पन्न करके रह जाती हैं।

इस प्रकार लेखक और पाठक के बौद्धिक धरातलों अथवा विचारों की पृष्ठभूमि में अधिक दूरी होने पर सम्प्रेषण में बाधा उपस्थित हो जाती है। दोनों एक दूसरे के लिए दुर्बोध बने रहते हैं।

कोई भी पाठक उसी वस्तु विषय को ग्रहण कर पाता है जिसे वह ग्राह्य समझे या जिसे कवि उसके लिए ग्राह्य बनादे। शुष्क और निरर्थक बातें रात-दिन सुनाई जाने पर भी पाठक या श्रोता के हृदय में नहीं पैठतीं। अर्थ के संचालन या प्रवर्त्तन के लिए उसका रसभ्य होना अपेक्षित है। यह शोध नाट्य शास्त्र के आदि आचार्य भरत ने कर ली थी।[1]

नीरस अर्थ का सम्प्रेषण नहीं किया जा सकता। अतः काव्य द्वारा प्रतिपादित अर्थ सरस होना चाहिए। भरतमुनि ने रस-निष्पत्ति पर विचार करते हुए लिखा कि भाव-विशेष (रत्यादि) के ऐसे आलम्बन (नायिकादि) और उद्दीपन (तद्चेष्टादि) उपस्थित किए जाएं जो उसके बनने वाले आश्रय (नायकादि में प्रतिक्रिया स्वरूप अनुभावों अर्थात् सात्विक तथा चेष्टादि) को प्रदर्शित कराते हुए आवेगादि (व्यभिचारी भावों) को संचरित कर सकें। विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों का ऐसा संयोग ही किसी अर्थ को रसभ्य बना सकता है।[2]

भट्ट लोल्लट ने रस-निष्पत्ति के इस सूत्र की जो सरल व्याख्या उपस्थित की उससे विषय और भी स्पष्ट हुआ।

1- नहिरसादृते कश्चिदप्यर्थः प्रवर्तते। भरत (भारतीय काव्य शास्त्र की परंपरा पृष्ठ 17।

2- विभावानुभाव व्यभिचारि संयोगाद्रसनिष्पत्तिः। भरत

भट्ट लोल्लट के उपरान्त श्री शंकुक इस सूत्र की अपनी दृष्टि से व्याख्या करते हुए इस तथ्य पर पहुँचे कि अभिनेता के आनन्द का अनुभव पाठक या श्रोता अपने अनुमान द्वारा कर लेता है।[1] परन्तु भट्ट नायक ने इस सूत्र की व्याख्या करते हुए सम्प्रेषाण की क्रिया पर विशेष प्रकाश डाला उसने यह सिद्ध किया कि भोजकत्व क्रिया द्वारा प्रेक्षक, पाठक या श्रोता वर्ण्य विषय अथवा विभावादि का उपयोग करता है।[2]

अभिनवगुप्ताचार्य ने रस की वास्तविक व्याख्या की। आस्वादात्मक एवं निर्विघ्न प्रतीति से ग्राह्य स्थायी भाव ही रस है और स्थायी भाव आदिवासना के रूप में प्रभाता अर्थात् श्रोता पाठक या दर्शक के चित्त में विद्यमान रहता है।नाट्य तथा काव्य में प्रस्तुत विभावादि का सम्पर्क होने से वह अभिव्यक्त होकर रसनीय बन जाता है या रस में परिणत हो जाता है।[3] सहृदयों के हृदय में स्थित रत्यादि स्थायीभाव जब विभाव, अनुभाव और संचारियों द्वारा व्यक्त होता है तो उस सहृदय के चित्त में वासना रूप में स्थित रति आदि उद्दीप्त होकर रस रूप में परिणत हो जाते हैं।

इस प्रकार साधारणीकरण भी सम्प्रेषाण -प्रक्रिया का दूसरा नाम है। श्रीमती निर्मला जैन के शब्दों में --- साधारणीकरण का संबंध काव्य सम्प्रेषाण की प्रक्रिया से है। काव्य-निबद्ध विशिष्ट अनुभूति जिस प्रक्रिया

1- नगेन्द्र , रस-सिद्धान्त, पृष्ठ 154 ।

2- न तावत्स्थेन नात्मगत त्वेन रस: प्रतीयते,नोत्पद्यते नाभिव्यज्यते अपितु काव्ये नाट्ये चाभिधातो द्वितीयेन विभावादिसाधारणीकरणात्मना भावकत्वव्यापारेण भाव्यमान: स्थायी सत्वोद्रेक प्रकाशानन्द मयसंविद्विश्रान्तिसतत्त्वेनभोगेन भुज्यते इति भट्टनायक:।

-- काव्यप्रकाश, चौखंबा सीरीज़,

पृष्ठ 72 ॥

3- डा० नगेन्द्र, रस-सिद्धान्त और सौन्दर्य शास्त्र,

--पृष्ठ 174 ॥

के द्वारा सहृदय समाज की अनुभूति हो जाती है, उसी को संस्कृत काव्य शास्त्र में साधारणीकरण की अभिधा प्रदान की गई है।[1] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में -- जब तक किसी भाव का कोई विषय इस रूप में नहीं लाया जाता कि वह सामान्यत: सब के उसी भाव का आलम्बन हो सके तब तक उसमें रसोद्बोधन की पूर्ण शक्ति नहीं आती। इसी रूप में लाया जाना हमारे यहां साधारणीकरण कहलाता है।..... सच्चा कवि वही है जिसे लोक हृदय की पहचान हो।[2] डा० नगेन्द्र ने भी इसी की पुष्टि की है।[3] इस प्रकार जब लेखक अपनी व्यक्तिगत प्रतीति को भी मानव मात्र की मूल अन्त:प्रकृति के साथ सम्बद्ध कर अपनी प्रतिपादन शैली या अभिव्यक्ति द्वारा साधारण बना देता है, तो उसके अपने भाव पाठक या श्रोता के भाव बन जाते हैं। इस प्रकार लेखक या कवि अपने अभीष्ट को पाठक के हृदय में सम्प्रेषित करने के लिए जिस प्रणाली का आश्रय लेता है वह रस प्रणाली है। रसमय वाक्य कोरा वाक्य न रह कर काव्य बन जाता है।[4]

परन्तु भारतीय आचार्यों के मतानुसार कवि की भाँति सहृदय को भी व्युत्पन्न, विदग्ध, सम्वेदनशील तथा रसभरी होना चाहिए। सहानुभूति पूर्ण मननशीलता उसका गुण विशेष है अन्यथा उसे अरसिक की संज्ञा दी जाएगी। महाकवि वररुचि ने ब्रह्मा से अरसिकों के प्रति काव्य निवेदन करने से स्वयं को मुक्त रखने की प्रार्थना की।[5] इस प्रकार काव्य के अनुशीलन के लिए सहृदय या पाठक को भी

1-डा० निर्मला जैन, रस-सिद्धान्त और सौन्दर्यशास्त्र, पृष्ठ171।

2-आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, चिन्तामणि भाग 1, पृष्ठ 227।

3-जब कोई व्यक्ति अपनी अनुभूति की इस प्रकार अभिव्यक्ति करता है कि वह सभी के हृदय में समान अनुभूति जगा सके, तो पारिभाषिक शब्दावली में हम कहते हैं कि उसमें साधारणीकरण की शक्ति वर्तमान है। डा० नगेन्द्र, भारतीय काव्यशास्त्र की परम्परा, पृष्ठ 607।

4- राजशेखर, काव्य मीमांसा, पृष्ठ34 चतुर्थ संस्करण, डा० गंगासागरराय संपादित।

5- अरसिकेषु कवित्व निवेदनं। शिरसि मा लिख मालिख मालिख।

सौन्दर्य-बोध तथा जीवन सम्वेदन की वैसी ही क्षमता प्राप्त रहनी चाहिए, जैसी कि कवि से सामान्यत: अपेक्षित है। राजशेखर ने इसीलिए सहृदयों के लिए भावयित्री प्रतिभा का होना आवश्यक माना है।[1]

सम्प्रेषण के अन्य आवश्यक उपादान :-

1- रीति :- जिन व्यक्तियों में काव्य के ग्रहण की सामर्थ्य है, जो इसके अधिकारी अर्थात् सहृदय हैं उनमें भी अपने काव्य के प्रति जिज्ञासा शुश्रूषा या ग्रहणेच्छा उत्पन्न करने के लिए कवि को अपना काव्य आकर्षक रूप में प्रस्तुत करना होता है, उसे सजाना पड़ता है।[2] उसे ऐसे वर्णों का चयन करना पड़ता है जो काव्य के बाह्य रूप को भी आकर्षक बना सके।[3] वर्णों से बने पदों को वह एक विशिष्ट रूप में संयोजित करता है।[4] काव्य में पदों का यथास्थान प्रयोग करना इतना महत्व पूर्ण है कि इसी आधार पर वामन ने काव्य रचना में 'पद-संघटना' अर्थात् रीति को ही महत्वपूर्ण माना और इसे काव्य की आत्मा घोषित किया।[5] पद संघटना विशिष्ट गुणों को जन्म देती है। इसीलिए काव्य में समवाय रूप से रहने वाले ओज प्रसाद और माधुर्य गुण[6] तथा श्रुतिकटुत्वादि दोष भी काव्य की सम्प्रेषणीयता में साधक और बाधक बन जाते हैं।[7] गुण संघटना के आश्रित रहते हैं। संघटना अथवा पद रचना ही रीति है। वैदर्भी, गौड़ी और पांचाली इन तीनों रीतियों में वैदर्भी रीति इसीलिए ग्राह्य मानी जाती है कि उसमें ओज, माधुर्य और प्रसादादि सभी गुणों का समावेश संभव है।[8] काव्य की रसनीयता में अत्यधिक साधक या बाधक होने के कारण मम्मट ने तो काव्य के लक्षण में ही इनकी उपस्थिति और अनुपस्थिति को अनिवार्य घोषित किया था।[9]

1- भारतीय काव्य शास्त्र की परम्परा, पृष्ठ 175।
2- काव्यं ग्राह्यमलंकारात्। (भारतीय काव्यशास्त्र की परम्परा, पृष्ठ 85)।
3- सुवरन को खोजत फिरत। कवि व्यभिचारी चोर। केशव, वही, पृष्ठ 395।
4- विशिष्ट पद रचना रीति:। वही, पृष्ठ 87।
5- रीतिरात्मा काव्यस्य। वामन।
6- माधुर्यौजोऽथ प्रसाद इति ते त्रिधा। साहित्य दर्पण, पृष्ठ 264।
7- संघटनाश्रया: गुणा:। वही, पृष्ठ 67।
8- तासां तिसृणां ~~रीतिनां~~ रीतीनां वैदर्भी ग्राह्य गुणानांसाकल्यात्। वही, पृ 89।
9- तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृति पुन: क्वादि। काव्य प्रकाश।

औचित्य :- आचार्य क्षेमेन्द्र के अनुसार कवि जिस अभीष्ट अर्थ को पाठकों के लिए प्रतीतिगम्य बनाना चाहता है तदनुकूल औचित्य[1] का ध्यान रखे क्योंकि ऐसा ही वाक्य सज्जनों के लिए ग्राह्य होता है।[2] ध्वनिकार आनन्द वर्द्धन ने भी औचित्य बन्ध को रस की परोपनिषत् कहा है।[3] इसीलिए औचित्य के क्षेत्र में भाषा, भाव, शैली आदि सभी का समावेश हो गया है।

वक्रोक्ति :- इसी प्रकार कुन्तक ने वक्रोक्ति के सिद्धान्त की स्थापना की। वक्रोक्ति किसी स्वाभाविक तथ्य को ऐसे ढंग से प्रस्तुत करने का नाम है ताकि उसकी प्रभावात्मकता बढ़ जाय अर्थात् पाठक को सुग्राह्य हो जाए। वक्रोक्ति और कुछ नहीं केवल प्रसिद्ध मार्ग की व्यतिरेकी अभिधा ही है। यह विदग्ध जनों के बोलने का एक ढंग है। इसके द्वारा कवि कर्म का कौशल देखा जाता है।[4] 'सुग्रीव भी भृत्य पथ पर जा सकता है' यह न कह कर वह रास्ता संकुचित नहीं है जिससे बालि मर कर गया है वक्रोक्ति का सुन्दर उदाहरण है।[5] वक्रोक्ति द्वारा पाठक, श्रोता या प्रेषक तक किसी काव्य को प्रभाव शाली ढंग से संप्रेषित कर दिया जाता है।

रसानुभूति :- वैसे आचार्य कुन्तक भी काव्यामृत में रस को ही महत्व देते हैं क्योंकि रस द्वारा ही सहृदय के अन्तस् में चमत्कार का स्फुरण या अलौकिक आनन्द का संचार किया जाता है।[6] यह अन्तश्चमत्कार या आनन्द-संचार

1- उचितं प्राहुराचार्याः सदृशं किलयस्यतत्।
उचितस्य च यो भावः तदौचित्यं प्रचक्षते। (औचित्य विचार चर्चा)

2- औचित्य रचितं वाक्यं। सततं सम्मतं सताम्।

3- प्रसिद्ध औचित्यबन्धस्तु रसस्योपनिषद् परा। (भारतीय काव्यशास्त्र की परंपरा, पृष्ठ135।

4- वक्रोक्तिः प्रसिद्धाभिधान व्यतिरेकिणी विचित्रैवाभिधा। कीदृशी,
वैदग्ध्य भंगी भणितिः। वैदग्ध्यं विदग्धभावः। कविकर्मकौशलं, तस्य भंगी विच्छित्तिः।
तथा भणितिः। विचित्रैवाभिधा वक्रोक्तिरित्युच्यते। (भारतीय काव्य शास्त्र की पर-
परा, पृष्ठ 360।

5- न स संकुचितः पन्था येन बाली हतोगतः। --वाल्मीकि रामायण किष्किंधाकांड 30।81।

6- काव्यामृतरसेनान्तश्चमत्कारो वितन्यते। भारतीय काव्य शास्त्र की परंपरा, पृष्ठ 253।

(क) 'अर्थालंकार रहिता विधवेव सरस्वती'। अग्निपुराण (346।2)
ऐसा कहने वाले अग्निपुराण की

(शेष अगले पृष्ठ पर देखिए)

ही वास्तव में कवि का सम्प्रेषण और सहृदयों की रसानुभूति है। काव्य शास्त्र के सभी सम्प्रदायों ने इसी की साधना किसी न किसी रूप में प्रधान मानी है।

अलंकार :- 'अलम् करोतीति अलंकार:' इस व्युत्पत्ति के अनुसार भूषित करने वाले उपादान को अलंकार कह सकते हैं। जिस प्रकार कुण्डल आदि आभूषण लोक जीवन में व्यवहृत होकर शरीर को अलंकृत करते हैं, उसी प्रकार काव्य में अनेक ऐसे तत्त्व प्रयुक्त होते हैं, जो उसके सौन्दर्य का वर्धन करते हैं। काव्य के सौन्दर्यवर्धक साधनों को अलंकार कहते हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि रस आदि साध्य और अलंकार साधन हैं, किन्तु उनकी स्थिति कुण्डल आदि आभूषणों की तरह सर्वथा बाह्य नहीं होती। भावाभिव्यक्ति के समय में उसमें अंतर्भूत हो जाते हैं। रस आदि के उपकारक होने के कारण उन्हें सौन्दर्य का बाह्य उपादान नहीं कहा जा सकता। अलंकारत्व के अभाव में काव्य आकर्षण हीन हो जाता है। काव्य की उत्कृष्टता इसी में मानी गयी है कि वह प्रबल भावानुभूति कराये। अलंकार इस उद्देश्य पूर्ति के सशक्त साधन हैं।[1] अलंकार केवल वाणी की सजावट के लिए नहीं, वे भाव की अभिव्यक्ति के

(पिछले पृष्ठ का शेष)

वाग्वैदग्ध प्रधाने पि रसएवाभजीवितम्। अग्निपुराण 337।33। -- यह मान्यता है।

(ख) शब्दार्थौ सहितौ वक्रकविव्यापार शालिनि।
बंधे व्यवस्थितौ काव्यं तद्विदाह्लादकारिणी। वक्रोक्तिजीवितम्(1/8)
इस रूप में काव्य की परिभाषा देने वाले कुन्तक :--
निरन्तर रसोद्गारगर्भ सौन्दर्य निर्भरा:
गिर: कवीनां जीवन्ति न कथामात्रमाश्रिता:(वक्रोक्तिजीवितम् उन्मेष 4)।
कह कर रस के महत्व पर बल देते है।

(ग) 'दीप्त रसत्वं कान्ति:' (काव्यालंकार सूत्र 3।2।15)
इस सूत्र के आधार पर रीति को काव्य की आत्मा मानने वाले वामन ने भी रस के प्रभाव को स्वीकार किया।

(घ) ध्वनि को काव्य की आत्मा स्वीकार करने वाले आचार्य आनन्दवर्धन ने भी
'दृष्ट पूर्व अपिह्यर्थं काव्ये रस परिग्रहात्।
सर्वे नवा इवाभान्ति मधुमासइव द्रुमा' (ध्वन्यालोक 4।4)।
कह कर रस को ही सर्वाधिक महत्व दिया।

1-वस्तु या व्यापार की भावना चटकीली करने और भाव को अधिक उत्कर्ष पर पहुँचाने के लिए कभी किसी वस्तु का आकार या गुण बहुत बढ़ाकर दिखना पड़ता है, कभी उसके रूप रंग या गुण की भावनो को उसी प्रकार के और रूप रंग मिला कर तीव्र करने के लिए समान रूप और धर्म वाली और वस्तुओं को रखना पड़ता है। कभी कभी बात को घुमा फिरा कर कहना पड़ता है। इसतरह के भिन्नभिन्न विधान और कथन के ढंग अलंकार कहलाते हैं। -- चिन्तामणि भाग, 1, पृष्ठ181।

विशेषाधार है।भाषा की पुष्टि के लिए,राग की परिपूर्णता के लिए, आवश्यक उपादान है ।वे वाणी के आचार-व्यवहार,रीतिनीति है ।पृथक् स्थितियों के पृथक स्वरूप,भिन्न अवस्थाओं के भिन्न चित्र हैं।[1] अलंकार हमारी भाषा में जीवन भरते है,एक प्रकार के ताप का संचार करते है, हमारे अभिमंतव्य को प्रभविष्णु तथा प्रभावोत्पादक बनाते हैं ।हमारे कथ्य में ज्यादा स्पष्टता, बारीकी और शक्ति के साथ सम्प्रेषित करने की क्षमता, भरने वाले मे अलंकार ही है।[2] स्पष्ट है कि अलंकार सम्प्रेष्य नहीं सम्प्रेषण के माध्यम है । ये अभिव्यंजना को सशक्त बनाने की विशिष्ट विधियां हैं।अत: विधि रूपेण ही इनका प्रयोग ग्राह्य है।

मस्तक पर लालबिंदीलगाए तथा केसर की खौंट चन्द्रवदनी की प्रभावाधिक्य को रूपक द्वारा निम्नांकित दोहे में बिहारी कितना सम्प्रेष्य बना सके साधारण रूप में यह संभव नहीं था :--

मंगल बिन्दु सुरंग,मुख ससि केसर आड़ गुरु ।
इकनारी लही संग, रसमय किय लोचन जगत् ।।

इसमें ज्योतिष्य के उस सर्वमान्य सत्य का विशिष्ट कथन भंगी में लक्ष्यार्थ स्फुट है जिसमें यह कहा गया है कि मंगल, बृहस्पति और चंद्रमा एक ही नाड़ी (नारी) में हों तो पृथ्वी पर जल का अटूट समुद्र उमड़ पड़े ।इन तीनों नक्षत्रों के एक राशि में योग होने से पृथ्वी पर जलयोग माना गया है।यहाँ नायक नायिका की सखि से अपना मन्तव्य कह रहा है कि नायिका का मुख तो चन्द्रमा है ही उसके भाल पर लगा हुआ रोली का बिन्दु मंगल नक्षत्र है और केसर का बांका टीका बृहस्पति है। ये तीनों नक्षत्र इस नायिका के शरीर पर एकत्रित हैं।इसलिए इन तीनों के एकत्र सपुंजन पृथ्वी के मनुष्यों के नेत्र जलमय हो उठे हैं।अर्थात् उस नायिका को देखने से उतने सुन्दर सज्जित रूप में देखने से आँखों में आनन्द की आर्द्रता आती है। और न देखने से भी आँखों में शोकजन्य परावार लहरा उठता है।[3] इस प्रकार

1- सुमित्रानन्दन पन्त, पल्लव, पृष्ठ 32 ।

2- मुरलीमनोहर प्रसादसिंह,अलंकार मीमांसा,पृष्ठ 1 ।

3- वही, पृष्ठ 21 ।

अलंकार हमारे सम्मुख एक प्रकार का बिम्ब उत्पन्न कर काव्य की शोभा को बढ़ाते हैं और पाठक की कल्पना को उर्वरा । इसीसे अलंकार एक प्रकार से सम्प्रेषण में सहायक सिद्ध होते है ।

'नहीं पराग नहीं मधुर मधु' तथा 'स्वार्थ सुकृत न श्रम वृथा' इन दोहों की सम्प्रेषणीयता अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार द्वारा किस सीमा तक पहुँची है सभी सहृदय सुपरिचित है। विशेष प्रकार की व्यंजना कवि ने अलंकार के माध्यम से व्यंजित अथवा सम्प्रेषित की है।

सभी रस सिद्ध कवियों ने अपना भाव सम्प्रेषणीयता के साफल्य के लिए अलंकारों को अमोघ उपादान मान कर उनका आश्रय लिया है । प्रसाद ने रूप के रेखांकन में [1] कबीर [2] और महादेवी [3] ने रहस्यवाद की अभिव्यक्ति के लिए और हरिकृष्ण प्रेमी [4] ने हृदय की तड़पन को अलंकारों के माध्यम से बड़ी ही सफलता पूर्वक अभिव्यक्ति दी है।

जबकि उपमा और रूपक जैसे सर्वसामान्य अलंकारों में भाव सम्प्रेषण को बढ़ाने की इतनी सामर्थ्य है फिर अपन्हुति, अतिशयोक्ति प्रतीप जैसे अलंकारों का तो कहना ही क्या । अभिप्राय यह है कि अलंकार रसोत्कर्ष में और भाव सम्प्रेषण में अपना विशेष स्थान रखते है, उनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

सम्प्रेषणीयता में छन्दों का योग :- छन्द शब्द की व्युत्पत्ति छद् धातु से मानी गयी है, जिसका अर्थ आवृत्त करने या रक्षित करने के साथ साथ प्रसन्न करना भी होता है। प्रसन्न करने के ही अर्थ में निघंटु में

1- फिर रहे थे घुंघराले बाल अंस अवलंबित मुख के पास ।
नीलघन शावक से सुकुमार सुधा भरने को विधु के पास। कामायनी -- ।

2- जल में कुंभ-कुंभ में जल है बाहर भीतर पानी।
फूटा कुंभ जल जल हि समाना यह तथ कथ्यो ज्ञानी। -- कबीर ।

3- सिंधु का क्या परिचय देव बनते बिगड़ते वीचि विलास।
दृढ़ है मेरे बुदबुद् प्राण तुम्हीं में सृष्टि तुम्हीं में नाश । महादेवी।

4- हृदय शलभ जब रूप शिखा के पास गया तन प्राण जले।
प्यास बुझाने को पहुँचा पर प्राणों के अरमान जले। --आँखों में ।

छन्द धातु भी मिलती है।इसी से छन्द शब्द को सम्बद्ध मानना अधिक युक्ति संगत है।[1] छंद काव्य को ग्राह्य और सम्प्रेषणीय बनाते हैं।छन्द के सौन्दर्य से सामान्य रस दोष भी छिप जाता है और काव्य सुन्दर वेशभूषा वाली सामान्य रूपवती स्त्री की तरह पाठकों के हृदय को आकर्षित करने की क्षमता पा लेता है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में -- अच्छे अर्थ का द्योतक न होकर भी कोई पद्य अपनी मधुरता ही से पढ़ने वालों के अन्त:करण को द्रवीभूत कर देता है ।[2] पद्य की यह मधुरता छन्द प्रदत्त माधुरता होती है,इसमें कोई सन्देह नहीं ।

संस्कृत के कवियों ने अपने काव्य में छन्दों के औचित्य का बड़ा ध्यान रखा है क्योंकि जिस प्रकार गले के वस्त्र गले में ही शोभा देते हैं उसी प्रकार विशेष रसों के लिए विशेष प्रकार के छन्द फबते हैं।विपरीत स्थिति में छन्द भी सम्प्रेषण की सामर्थ्य खो बैठते हैं, दोष बन जाते हैं।हतवृत्त नामक दोष छन्दों के इस औचित्य के कारण ही जन्म लेता है ।[3] आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में वर्णन के अनुकूल वृत्त प्रयोग करने से कविता का आस्वादन करने वालों को अधिक आनन्द मिलता है।गले में डाली हुई मेखला के समान वृत्त रूपिणी हार लता को अनुचित स्थान में विनिवेशित करने से कवि की अज्ञान दर्शित होता है ।.... काव्य के मर्मज्ञ-निपुण कवि स्वयंमेव जान सकते हैं कि कौन छन्द कहां विशेष शोभा-वर्द्धक होगा।प्राचीन संस्कृत कवि इसका पूरा पूरा विचार रखते थे।इन्होंने ऋतुओं का वर्णन प्राय: उपजाति छन्द में किया है,नीति का वंशस्थ में किया है,वर्षा और प्रवास का मंदाक्रान्ता में किया और स्तुति,शौर्य आदि का शार्दूलविक्रीडित व शिखरिणी में किया है ।[4]

स्पष्ट है कि भाषा के समान छन्द में भी अभिव्यक्ति की शक्ति है।कुशलकवि अपने व्यक्तित्व की शक्ति से भाषा तथा छन्द की अभिव्यंजना-

---

1- हिन्दी साहित्य कोष प्रथम भाग,पृष्ठ 321 ।

2- भारतीय काव्य शास्त्र की परम्परा,पृष्ठ 450 ।

3- हतवृत्तं लक्षणानुसरणेऽपि ... रसाननुगुणम्... यथा
अयिभयिभामिनि मा कुरुमानम् ।
इदं वृत्तं हास्यरस रूपैवानुकूलम् ।साहित्यदर्पण ,पृष्ठ 237।

4- भारतीय काव्य शास्त्र की परम्परा,पृष्ठ 447।

शक्ति का मेल कर काव्य की अभिव्यंजना और सम्प्रेषणीयता को कई गुना बढा देते हैं। श्री लक्ष्मीनारायण सुधांशु ने काव्य में छन्द प्रयोग की चर्चा करते हुए यह बात स्पष्ट कर दी है।[1] बाबू गुलाबराय ने भी छन्दों के महत्व के बारे में ऐसे विचार प्रकट किये हैं।उनके शब्दों में, 'साधारण काव्य में जो प्रवाह और क्षमता लक्षित नहीं होती वह छन्द व्यवस्था से पैदा कर ली जाती है।परस्पर की बातचीत में बिना पूछे ही दाल भात में मूसरचन्द बनना और उपदेश दे बैठना कितनी अशिष्टता है पर छन्दों की ओट में यह कहना -- ' बिना पूछे ही कहता हूं सज्जन हित के बैन ' - दोष का कितना परिहार कर देता है।[2]

संस्कृत कवियों के समान हिन्दी के कवियों ने भी काव्य की संप्रेषणीयता के विचार से छन्दों के औचित्य का ध्यान रखा है। ' हिम आंखिन प्रेम की पीरत की ' के समझने योग्य कविता को घनानन्द ने सवैये में बांधा ' हिमाद्रि तुंग शृंग से ' जैसी वीर रस की कविता प्रसाद ने पंच चामर में की तथा अपने मस्तक में छायी घनी भूत पीड़ा ' को बरसाने के लिए तदनुरूप आँसू छन्द का आविष्कार किया। जिसकी पूर्ण साथकता वेदना की देवी[3] ने उसी छंद को अपनाकर की।

इसलिए कविवर सुमित्रानन्दन पन्त का यह कथन पूर्णतः सत्य पर आधारित है कि कविता और छन्द में घनिष्ठ सम्बन्ध है।कविता हमारे प्राणों का संगीत है। हृत्कंपन कविता का स्वभाव ही छन्द में लयमान होना है। जिस प्रकार नदी के तट अपने बन्धन से धारा की गति को सुरक्षित रखते हैं जिसके बिना

1- सच्ची बात यह है कि प्रत्येक छन्द जिसकी कुछ मर्यादा निश्चित कर दी गई है विषय तथा कवि के व्यक्तित्व के साथ एकान्त रूप से बदल जाता है।भाषा की अर्जित शक्ति के साथ कवि के व्यक्तित्व की शक्ति मिल जाने से छन्दगत अभिव्यक्ति का सौन्दर्य बढ़ जाता है।(भारतीय काव्यशास्त्र की परम्परा,पृष्ठ 530)।

2- वही,पृष्ठ 532।

3- उस सोने के सपने के देखे कितने युग बीते।
आंखों के कोष हुए हैं मोती बरसाकर रीते ।।-- महादेवी ।।

वह अपनी ही बंध्य हीनता में अपना प्रभाव खो बैठती है -- उसी प्रकार छन्द भी अपने नियंत्रण से राग को स्पंदन कंपन तथा वेग प्रदान कर निर्जीव शब्दों के रोंडों में एक कोमल सजल कलख भर कर उन्हें सजीव बना देते हैं ।वाणी की अनियंत्रित साँसें नियन्त्रित हो जाती हैं। ताल युक्त हो जाती हैं।उसके स्वयं में प्राण,रोमों में स्फूर्ति आ जाती है ।राग की असम्बद्ध फूंकारें एक वृत्त में बंध जाती है उनमें परिपूर्णता आ जाती है ।[1] अत: यह कहना अतिरंजित नहीं कि पद्य स्वत: ही छन्दों बद्ध होता है।छन्द काव्य की न केवल सम्प्रेषणीयता का वर्द्धक है अपितु उसकी हृदयता और स्थायिता का भी । पश्चिम में सम्प्रेषण सिद्धांत के प्रवर्त्तक रिचर्ड्स को भी संभवत: इसीलिए उसकी अनिवार्यता के पक्ष में तर्क देने पड़े ।रिचर्ड्स ने छन्द की अनिवार्यता के पक्ष में पुरानी युक्तियों का पिष्टपेषण न कर नवीन तर्क दिए हैं।उनका कथन है कि शान्त करना, उद्दीप्त करना, उल्लसित करना जैसे कार्यों की दृष्टि से ही छन्द का महत्व नहीं है बल्कि अन्य दृष्टियों से भी है। उक्त कार्यों के रूप में छन्द के प्रभाव की व्याख्या करना यह सूचित करता है कि छन्द के प्रभाव की व्याख्या करना यह सूचित करता है कि छन्द में संवेगों को नियंत्रित करने की शक्ति है।पर,इन कार्यों की अपेक्षा छन्द के सामान्य प्रभाव अधिक महत्वपूर्ण है ।छन्दों की स्पष्ट प्रतीत होने वाली कृत्रिमता एक ऐसे ढाँचे का निर्माण करती है जिसके कारण काव्यानुभूति में उन आवश्यक और विरोधी अनुभूतियों का प्रवेश रुक जाता है जो छन्द के अभाव में संभव नहीं हो पाता।इस प्रकार एकान्तता का महत्व काव्यानुभूति के सम्यक् आस्वाद के लिए बहुत ज्यादा है ।[2]

रमणीयता :- पंडितराज जगन्नाथ ने इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए रमणीयक के प्रतिपादक शब्द को काव्य कह कर पुकारा ।[3] कवि अपनी

1- डा० शम्भुनाथ पाण्डेय,रस अलंकार और पिंगल,पृष्ठ 119।

2- रिचर्ड्स के आलोचना सिद्धान्त, (अनुवादक डा० शम्भुनाथ मिश्र)
--पृष्ठ 31 ।

3- रमणीयार्थ प्रतिपादक: शब्द: काव्यम्। (रस गंगाधर)

प्रतिभा के बल से काव्य घटना के अनुकूल शब्द और अर्थ उपस्थित कर लोकोत्तर आह्लाद की जिस अनुभूति को सहृदय-संवेद्य बनाता है, उसे रमणीयता कहा जाता है[1]। विषय वस्तु या विचार के सम्प्रेषण में रमणीयता का योगदान सर्वविदित है। पीयूषवर्ष जयदेव कवि ने काव्य का लक्षण देते हुए पद् पदांश, वाक्य, वाक्यार्थ रसगतादि काव्य के दोषों से शून्य, अलंकार सहेत्यादि लक्षणों से युक्त पांचाली, लाटी, गौड़ी, वैदर्भी नामक काव्य की रीतियों से भूषित, शब्दार्थगत अनुप्रासोपमादि अलंकारों से चमत्कृत तथा नाटकोपयुक्त कैशिक्यादि मधुरादि तथा अभिधादि शब्दा-वृत्तियों से सम्बद्ध वाक्य को काव्य कहा है[2]। वास्तव में यही एक प्रकार से रमणीयता का लक्षण है। वास्तव में सम्प्रेषण और ग्रहण की प्रक्रिया काव्य शास्त्र की उन प्रमुख समस्याओं में से है जिस पर भारतीय और पाश्चात्य काव्य शास्त्र में सब से अधिक विचार किया गया है। वस्तुत: सम्प्रेषण और ग्रहण एक ही प्रक्रिया के दो पक्ष हैं। कवि अपने अनुभव को पाठक तक सम्प्रेषित करता है और पाठक उस अनुभव को अपनी क्षमता के अनुसार ग्रहण करने का प्रयास करता है। सामान्य स्थिति में सम्प्रेषण और ग्रहण के मध्य किसी प्रकार के व्यवधान या अंतराल की आशंका के लिए स्थान नहीं है। काल जयी कृतियों की विशेषता ही यह मानी जाती है कि वे देश काल की सीमाओं को पार कर मानव मन को स्पर्श करने में समर्थ होती हैं[3]।

इस अध्याय के समस्त विश्लेषण के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि सम्प्रेषण के माध्यमों को संख्या या प्रकार की दृष्टि से किसी सीमा में आबद्ध नहीं किया जा सकता। जो बात स्थिति विशेष में पात्र

1- रमणीयता च लोकोत्तराह्लाद ज्ञान गोचरता तस्य च कारण कविगता केवला प्रतिभा। सा च काव्य घटनानुकूल शब्दार्थौ पस्थिति:। रस गंगाधर।

2- निर्दोषा लक्षणावती सरीतिर्गुणभूषणा।
सालंकार रसाने क्वृत्तिर्वा काव्य नाम भाक्(चंद्रालोक, पृष्ठ 9)।

3- डा० निर्मला जैन, रस-सिद्धान्त और सौन्दर्य शास्त्र,
-- पृष्ठ 197 ।।

विशेष को आँख के इशारे मात्र से समझाई या सम्प्रेषित की जा सकती है वह स्थिति और पात्र भेद से लम्बे व्याख्यान के पश्चात् भी दुर्बोध बनी रहती है। फिर भी सफल कवियों ने जिन साधनों को मुख्य रूप से अपनाया है, आचार्यों ने जिन साधनों की पुष्टि की है तथा हमें उनकी मान्यता का व्यवहार में विरुद्ध फल दिखाई नहीं दिया ऐसे साधनों को हम सम्प्रेषण के मुख्य घटक स्वीकार कर सकते हैं। ~~इन-घटकों-की~~ वे रसनिष्पत्ति के अतिरिक्त रीति अर्थात् भाषा शैली (जिसमें गुण दोष सम्मिलित हैं), अलंकार और छन्द विधान भी है। इसी लिए इनका समावेश प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में किया गया है।

:o:o:o:o:o:

11

तृतीय अध्याय

रस सिद्धान्त और रिचर्ड्स का सम्प्रेषण सिद्धान्त

--- : एक तुलनात्मक अध्ययन :--

:o:o:o:o:o:o:

रस सिद्धान्त और रिचर्ड्स का सम्प्रेषण सिद्धांत

----- : एक तुलनात्मक अध्ययन :---

भारतीय काव्य शास्त्र का रस सिद्धांत रिचर्ड्स के सम्प्रेषण सिद्धान्त से पर्याप्त रूप में मिलता जुलता है। भरत मुनि ने तो इसकी परिभाषा बड़ी सरल की थी कि रस का अर्थ है आस्वादन[1] परन्तु उन्होंने यह स्पष्ट करने का प्रयत्न नहीं किया था कि रस की स्थिति किसमें होती है वस्तु में, अभिनेता में, पाठक, दर्शक अथवा श्रोता में। परवर्ती आचार्यों ने विशेष कर लोल्लट, शंकुक, भट्टनायक और अभिनव गुप्त ने जब इस पर विस्तार से विचार किया तो नाट्य शास्त्र के सर्वमान्य आचार्य अभिनवगुप्त ने तथा कुछ कुछ भट्ट नायक ने भी यही निर्णय दिया था कि रस की स्थिति न तो विषय वस्तु में है और न ही अभिनेता में है अपितु वह तो प्रेक्षक में ही विद्यमान होती है। अभिनवगुप्त ने भरत के रस-सिद्धान्त की व्यवस्था करते हुए लिखा कि सहृदय में रति, क्रोध, शोक आदि स्थायी भाव वासना या संस्कार रूप में विद्यमान रहते हैं, जो अव्यक्त रहते हैं। विभाव, अनुभाव और संचारी भावों के संयोग से दबे हुए (अव्यक्त) स्थायी भाव व्यक्त हो जाते हैं। उन्हीं की आनन्दानुभूति 'रस' है।[2] इस प्रकार उद्दीपन अथवा आलम्बन विभाग प्रेक्षक के मन में सुप्त वासना को जागृत करने में समर्थ होते हैं जिसके कारण वह साधारणीकरण की स्थिति में पहुँच कर रस दशा को प्राप्त होता है। रिचर्ड्स की मान्यता भी यही है उसके अनुसार किसी वस्तु विशेष में

1- रस इति कः पदार्थः ? अत्रोच्यते। आस्वाद्यत्वात्। -भरत, भारतीय काव्य शास्त्र, की परम्परा, पृष्ठ 17।

2- काव्यप्रकाश (चतुर्थ उल्लास) पृष्ठ 60।

सौन्दर्य नहीं होता अपितु उस विषाय को उत्तेजक अथवा उद्दीपन-विभाव को देखते सुनने अथवा पढ़ने से दर्शक, श्रोता अथवा पाठक के मन में जो मानसिक प्रतिक्रिया होती है उसी प्रतिक्रिया को हम सौन्दर्यानुभूति कहते हैं और वह उसकी शारीरिक अथवा स्नायविक सगन में सुप्त किसी न किसी इच्छा की पूर्ति होती है।[1] रिचर्ड्स ने सौन्दर्यानुभूति के लिए appetency शब्द का प्रयोग किया है, जो अभिनव गुप्त की वासना शब्द का समकक्ष है।

रिचर्ड्स के अनुसार मूल्यवान अनुभूति वह है जो मनुष्य की किसी उत्कट लालसा की संतुष्टि करती है।[2] परन्तु इसमें उसकी साधारणतया मूल्यवान लालसाओं का हनन नहीं होता क्योंकि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी होने के नाते कई प्रकार की इच्छाओं की संतुष्टि साथ ही साथ करता रहता है। अन्तर केवल इतना ही है कि किसी क्षण-विशेष में कलाकार किसी कलाकृति के द्वारा अपनी उत्कट लालसा की पूर्ति कर लेता है। यह धारणा भरतमुनि के व्यभिचारी भाव तथा स्थायी भाव से मिलती है।[3] जिसमें भरतमुनि के अनुसार व्यभिचारी भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है परन्तु रसस्थायी भाव पर आधारित है और यह स्थायी भाव ही एक प्रकार से रिचर्ड्स की उत्कट लालसा का पर्याय वाची प्रतीत होता है। स्थायी भाव की व्यभिचारी भाव पुष्टि

1- Stimuli are only received if they serve some need of organism and the way in which the response to them takes depends only in the part upon the nature of the stimulus, and much more upon what the organism wants ... (Principles P. 57.

2- Any thing is valuable which will satisfy any appetency without involving the frustration of some equal or more important appetency ..... (Principles page 46)

3- तथा विभावानुभाव व्यभिचारिता: स्थायिभावानुपागता भवन्तीव्याश्रयत्वात् स्वाभिभूताश्चस्थायिनो भावा:। तद्वत्स्थायिनिवपुष्टिगुणी भूताअन्येभावा:।
--भरत, भारतीय काव्यशास्त्र की परम्परा, पृष्ठ 25।

करते हैं और यही स्थायी भाव रसावस्था को प्राप्त होता है । अन्तर केवल इतना ही है कि भरतमुनि ने स्थायी और व्यभिचारी भावों को शुद्ध माना है परन्तु आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने उसे संश्लिष्ट भाव की संज्ञा दी है ।

भरत ने रस की परिभाषा में 'विभावानुभाव व्यभिचारी संयोगाद्रसनिष्पत्ति' सूत्र का प्रयोग किया है । विभाव शब्द की व्याख्या करते हुए स्वयं भरतमुनि ने 'विभान्यन्ते नेन वागंगसत्त्वाभिनया इति विभाव:' लक्षण किया है ।[1] जो उद्दीपन और आलम्बन विभाग में विभक्त हो जाते हैं । आलम्बन और उद्दीपन विभाव ही रिचर्ड्स के [illegible] है जो प्रेषक, श्रोता अथवा पाठक के मन में एक विशेष प्रकार की प्रतिक्रिया उत्पन्न करते हैं । ये मानसिक क्रिया ही सौन्दर्यानुभूति है अथवा रिचर्ड्स के शब्दों में सर्वाधिक मूल्यवान मन:स्थिति है । मूल्यवान् मन:स्थिति वह होगी, जो अधिकतम एषणाओं की अधिकतम सन्तुष्टि करे । एषणाओं में परस्पर विरोध होता है इसलिए उन्हें व्यवस्थित करना और उनमें सामंजस्य स्थापित करना अनिवार्य हो जाता है । अत: मनुष्य सदा उस सामंजस्य की अवस्था को प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील रहता है । यही स्थिति हमारे यहाँ तल्लीनता अथवा तादात्म्य की स्थिति मानी गई है । शुक्ल ने इसे 'तदाकार परिणति' कहा है और अन्त में यही साधारणीकरण की अवस्था को प्राप्त होती है। जिसमें एक विशेष प्रकार का आनन्द रहता है। यही रस की स्थिति है जिसे भरतमुनि ने आस्वादन कहा है और रिचर्ड्स ने एक प्रकार से मूल्य (value) जो पाठक के मन में भी वही भाव उद्दीप्त करता है, जो कवि के मन में था ।

यद्यपि कविता अथवा कलाकृति की रचना के समय रिचर्ड्स के अनुसार कवि के मन में यह विचार नहीं होता कि उसकी कलाकृति अथवा काव्य रचना को कोई देखेगा, पढ़ेगा अथवा सुनेगा । वह साधारणतया आत्मानंद

1- बह्वो यो विभाव्यन्ते वागंगाभिनयाश्रिता: ।
अनेन यस्माते नायं विभाव इति संज्ञित: ।।

-- भारतीय काव्यशास्त्र की परम्परा,
-- पृष्ठ 84 ।

के लिए ही ऐसा करता है परन्तु रिचर्ड्स की दृष्टि से Communication अथवा सम्प्रेषण की भावना उसके उपचेतन मन में अवश्य रहती है।[1] परन्तु रस के आचार्यों ने ऐसा नहीं माना। रस के आचार्यों के अनुसार साधारणीकरण की अवस्था वही है, जहां प्रेक्षक, पाठक अथवा श्रोता अपने आपको बिल्कुल भूल कर इतना तल्लीन हो जाता है कि उसकी मानसिक स्थिति रस का अनुभव करने लगती है। शुक्ल के अनुसार 'साधारणीकरण की यह स्थिति तब तक नहीं आती जब तक प्रेक्षक श्रोता अथवा पाठक का अनुभव दूसरों के मन में भी समानुभूति का जागरण न करले'। शुक्ल ने साधारणीकरण को समाजीकरण भी कहा है परन्तु रिचर्ड्स ने ऐसा नहीं माना उसके अनुसार सौन्दर्यानुभूति व्यक्ति की अनुभूति है और वह प्रत्येक व्यक्ति की भिन्न हो सकती है। जो एक व्यक्ति के लिए अच्छा हो यह आवश्यक नहीं कि वह दूसरे व्यक्ति के लिए भी अच्छा ही हो। उसका विश्वास 'भिन्न रुचि हिलोक:' में है। और इसीलिए टालस्टाय का मजाक उड़ाते हुए लिखा है --- 'कि कोई परिहास परिहास हो ही नहीं सकता जब तक दूसरे उसके भागीदार न हो।' भला महत्व परिहास का है या भागीदार होने का।'

शुक्ल के पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा प्रतिपादित साधारणीकरण का दृष्टिकोण भी वह नहीं रहा जो शुक्ल ने प्रतिपादित किया है। रस का अनुभव साधारणतया सब के मन में इसलिए समान होना लगभग अवश्यंभावी है क्योंकि स्थायी भाव रति शोक, हास्य, उत्साह, जुगुप्सा, भय, विस्मय, क्रोध आदि सभी के मन में वासना रूप से विद्यमान होते हैं जो एक समान परिस्थिति में पड़ कर अथवा किसी आलम्बन विषय को देख कर पढ़ कर, सुन कर उसी प्रकार जाग्रत अथवा उद्दीप्त हो जाते हैं, जिस प्रकार कवि अथवा सहृदय व प्रेक्षक के मन में। वास्तव में यदि देखा जाए, तो रिचर्ड्स ने यद्यपि सौन्दर्यानुभूति को व्यक्ति की अनुभूति लिखा अवश्य है परन्तु उसके सम्प्रेषण के सिद्धान्त में यह सन्निहित है कि कवि के मन में जो वासना होती है अथवा जिस प्रकार की सौन्दर्यानुभूति होती है ठीक उसी प्रकार की अनुभूति का जागरण प्रेक्षक पाठक अथवा श्रोता के मन

1- Even a joke, for Tolstoy, is only a joke as long as all men may share in it. Principles P. 65

में होता है ।यदि यह अनुभूति सम्भव न होगी तो सम्प्रेषण की क्रिया हो ही नहीं सकती। इस दृष्टि से रिचर्ड्स ने लगभग वही बात लिखी है जो साधारणतया रस के आचार्यों ने मानी है।टालस्टाय ने लिखा था कि जो कला Universal वैश्व अथवा सभी में भ्रातृत्व भावना जगाए अर्थात् हम सभी भगवान के पुत्र हैं इस प्रकार की भावना का जागरण करे,वह कला उत्तम है ।[1] रिचर्ड्स ने इसकी आलोचना की है परन्तु हमारे आचार्यों ने भी रसानुभूति को ब्रह्मानन्द सहोदर कहा है। साहित्य दर्पण कार ने रस के स्वरूप का निरूपण करते हुए उसे अखण्ड,स्वयं प्रकाश, आनन्द स्वरूप, चिद्रूप, वेद्यान्तर स्पर्श शून्य, ब्रह्मानन्द सहोदर,लोकोत्तर चमत्कार प्राण आदि कहा है :--

सत्त्वोद्रेकादखंडस्वप्रकाशानन्द चिन्मय: ।
वेद्यान्तरस्पर्शशून्यो ब्रह्मास्वाद सहोदय: ।
लोकोत्तर चमत्कार प्राण: केश्चित् प्रमातृभि: ।
स्वाकार वदभिन्नत्वेनायमा स्वाधते रस: ।[2]

अभिप्राय यह कि जब रस का आस्वाद मिलने लगता है, तब विषयान्तर का अनुभव पास तक नहीं फटकने पाता मानो उस समय एक प्रकार से मुक्ति स्वरूप ब्रह्मानन्द की उपलब्धि होती है ।[3]

रिचर्ड्स सौन्दर्यानुभूति को Amusement शब्द से भिन्न माना है ।[4] उसके अनुसार यदि सौन्दर्यानुभूति एक प्रकार का आनन्द होती तो Tragedy (त्रासदी) को हम कभी भी ऐसा न मानते ।[5]

परन्तु भारतीय आचार्यों ने रस अथवा आनन्द की व्याख्या इतनी

1- Principles of Literary Criticism P. 66.

2- साहित्य दर्पण , 3।2।3 ।

3- राम दहिन मिश्र ,काव्यदर्पण पृष्ठ 54 ।

4- Principle of Literary Criticism P. 70

5- वही, पृष्ठ 69 ।

7

व्यापक तथा उदात्त रूप से की है कि इसमें जुगुप्सा तथा क्रोध आदि का भी उदात्तीकरण हो जाता है। वहाँ जुगुप्सा जुगुप्सा न रह कर एक विशेष प्रकार के आनन्द में बदल जाती है और इसीलिए साधारण रूप में सभी स्थायी भाव अलग अलग प्रतीत होते हुए भी एक उच्च कोटि के आनन्द के सूचक हैं। यहीं पर रस और रिचर्ड्स के सम्प्रेषण में कुछ अन्तर दिखाई देता है। रिचर्ड्स का संवेगवाद स्नायुओं के उद्दीपन एवं अनुक्रियाओं की व्यवस्था एवं संघटन के रूप में काव्यानुभूति की व्याख्या करता है जबकि रसवाद लोकोत्तर अनिर्वचनीय एवं ब्रह्मानन्द सहोदर आनन्द के रूप में। भारतीय रस सिद्धान्त टालस्टाय के समान ही Universal दृष्टिकोण के समीप जा पहुँचता है। ✓ वहाँ पर वास्तविक दु:खानुभूति दु:ख न रह कर रस की दृष्टि से सुख का अनुभव देती है। अहं का विसर्जन हो जाता है, व्यक्तित्व का परिहार हो जाता है। निर्वैयक्तिकता (Impersonality) स्थिति को आचार्यों ने तल्लीनता, तादात्म्य अथवा साधारणीकरण कहा है। ✓

आई.ए. रिचर्ड्स के भाषा सम्बन्धी विचारों में तथा भारतीय आचार्यों की भाषा सम्बन्धी विचारों में भी साम्य है। रिचर्ड्स की संवेगात्मक भाषा संस्कृत के 'रस ध्वनि' के तुल्य ही प्रतीत होती है। इस सम्बन्ध को देखते हुए ही आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है -- " आजकल के प्रसिद्ध समालोचक रिचर्ड्स हमारे यहाँ के शब्द शक्ति-निरूपण के ढर्रे पर अर्थ मीमांसा को लेकर चले हैं।[1] " रिचर्ड्स ने भाषागत प्रयोगों पर चार दृष्टियों से विचार किया है :-- 1 वाच्यार्थ (सेन्स) , 2- अनुभूति (फीलिंग), 3- स्वर भंगिमा टोन), 4- अभिप्राय (इंटेशन)। इन्हीं का उल्लेख करते हुए आचार्य शुक्ल लिखते हैं :-- " जिन्होंने अपने यहाँ के शब्द-शक्ति-निरूपण का अच्छी तरह मनन किया है, वे देख सकते हैं कि इन चारों में वास्तव में दो ही मुख्य हैं। तीसरे का समावेश हमारे यहाँ आर्थी व्यंजना के कारणों के अन्तर्गत हो जाता है, चौथे का समावेश अभिधामूलक ध्वन्यार्थ के अन्तर्गत हो जाता है। ..... हमारे यहाँ शब्द-शक्तियों के भेद निरूपण का जैसा स्वच्छ मार्ग है, वैसा यदि रिचर्ड्स को

1- चिन्तामणि भाग 2, पृष्ठ 164 ।

मिलता तो उन्हें उक्त पिछले दो प्रकार के अलग अर्थ न रखने पड़ते । उक्त चार प्रकार के अर्थों का उल्लेख करके रिचर्ड्स ने कहा है कि उक्ति में कभी किसी अर्थ की प्रधानता रहती है, कभी किसी अर्थ की । काव्य में अधिकतर व्यंग्य भाव की प्रधानता रहती है । पर वे कहते हैं कि इसका यह अभिप्राय नहीं कि काव्य में प्रस्तुत अर्थ या तथ्य ध्यान देने की वस्तु नहीं । कभी कभी सीधी सादी प्रस्तुत वस्तु या अर्थ ही से भाव की व्यंजना हो जाती है । क्या यह कहने की आवश्यकता है कि काव्य-मीमांसा की यह वही पद्धति है जो हमारे यहाँ स्वीकृत है ।[1]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रिचर्ड्स की भाषा की जो विवेचना की उसकी पुष्टि रिचर्ड्स द्वारा प्रतिपादित भाषा सम्बन्धी द्विविध प्रयोगों से हो जाती है । आचार्य शुक्ल ने भी इसे स्वीकार किया है : ' रिचर्ड्स भाषा के दो प्रकार के प्रयोग मानते थे -- सांकेतिक (सिम्बोलिक) या तथ्य बोधक तथा भाव-प्रवर्त्तक (इमोटिव)[2] ' ये दोनों भाषा प्रयोग क्रमशः अभिधा और व्यंजना के पर्याय कहे जा सकते हैं । भाषा की व्यंजना शक्ति का आधार भाव-प्रवर्त्तन की क्षमता है । काव्य में इसीलिए व्यंजक शब्द का महत्व स्वीकार किया जाता है क्योंकि काव्य का प्रयोजन तथ्य-बोध न होकर भाव प्रकाशन है । इस प्रकार काव्य भाषा की सार्थकता भावों को तीव्र रूप में व्यंजित करने में है इसी को रिचर्ड्स ने सम्वेगात्मक भाषा तथा अभिनव गुप्त और आनन्दवर्धन ने 'रस ध्वनि' कहा है ।

काव्य में बिम्ब विधान पर संस्कृत आचार्यों ने तो विचार नहीं किया परन्तु रस सिद्धान्त के प्रमुख आधुनिक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस पर विचार किया है । बिम्ब सृष्टि के महत्व के विषय में रिचर्ड्स और आचार्य शुक्ल के विचारों में पर्याप्त साम्य है । रिचर्ड्स ने बिम्ब का महत्व उसकी सजीवता, स्पष्टता या चित्रात्मकता में न मान कर विचार और भावना को प्रभावित करने की दृष्टि से माना है । रिचर्ड्स कविता में बिम्ब सृष्टि को साधन मानते हैं और संवेग तथा अभिवृत्तियों को साध्य । आचार्य शुक्ल ने भी बिम्ब विधान या रूप योजना का महत्व भावों को जगाने की दृष्टि से ही स्वीकार किया है । आचार्य शुक्ल के

1- चिन्तामणि भाग, 2 , पृष्ठ 164- 65 ।

2- वही , पृष्ठ 193 ।

शब्दों में अत: कल्पना की वही रूप योजना काव्य के अन्तर्गत आ सकती है जो श्रोता या पाठक के मन में कोई भाव जगाने में समर्थ हो ।[1] इस प्रकार दोनों समीक्षक कविता का मूल्य उसकी रागात्मकता में देखते हैं ।

परन्तु रिचर्ड्स जिन ध्वनि बिम्ब (ऑडिटरी इमेज) तथा दृष्टि मूर्ति (विजुअल इमेज) का वर्णन किया है, उस पर भारतीय काव्य-शास्त्र में परोक्ष रूप से वामन के रीति सिद्धान्त तथा शब्दालंकारों के अन्तर्गत विचार हुआ है । आचार्य वामन ने गौड़ी रीति (ओज: प्रकाशकैर्वर्णैर्वन्ध आडम्बर पुन: । समासबहुला गौड़ी)[2] अथवा रीति के भेदों पर विचार करते हुए शब्दों की कोमलता कठोरता तथा उनके गुणों ओज, माधुर्य तथा प्रसाद आदि पर पर्याप्त विचार किया है । शब्दालंकारों में अनुप्रास ,यमक आदि पर विचार होने के कारण अक्षर विन्यास पर बहुत विचार हुआ है। ओज गुण को उत्पन्न करने के लिए संस्कृत आचार्य कठोर वर्ण अर्थात् टवर्ग आदि का प्रयोग करते थे ।युद्ध वर्णन में इसका विशेष प्रयोग किया जाता था ।

रस सिद्धान्त के प्रतिपादक आचार्य भरत ने रस के संदर्भ में अलंकार, छन्द काव्य दोष पर भी विचार किया है । इसी का सम्बर्धन और स्पष्टीकरण वामन आचार्य के रीति सिद्धान्त से हुआ ।

आचार्य भरत ने नाटक के अन्तर्गत उपमा, रूपक दीपक और यमक इन चार अलंकारों का प्रयोग स्वीकार किया है ।[3] रिचर्ड्स ने भी रूपक (मेटाफर) के महत्व को स्वीकार किया है क्योंकि इसके प्रयोग से नवीन अर्थ -विवृत्ति होती है जिसमें हमारी कल्पना शक्ति एक नई भूमि ग्रहण करती है ।

भरतमुनि ने रस के संदर्भ में छन्द और लय का भी बड़ा महत्व स्वीकार किया है ।उनके अनुसार वीर, रौद्र और अद्भुत रसों (के वर्णन) में लघु

1- रस मीमांसा , पृष्ठ 272 ।

2- साहित्य दर्पण , 9।3।4 ।

3- उपमा रूपकं चैव दीपकं यमकं तथा ।
अलंकारास्तु विज्ञेया श्चत्वारो नाटकाश्रया:।।17।43, --भरत
भारतीय काव्य शास्त्र की परम्परा, पृष्ठ 29 ।

अक्षरों से तथा उपमा, रूपकादि अलंकारों से युक्त रचना का प्रयोग करना चाहिए। वीभत्स रस में गुरु अक्षरों का प्रयोग होना चाहिए तथा रौद्र और वीर रसों के द्वारा चित्रित घर्षण के कारण व्यक्त करुण रस के स्थल में भी कभी कभी गुरु अक्षरों का प्रयोग हो सकता है। वीर रस के काव्य में संयुक्त वर्णों का अधिकाधिक प्रयोग किया जाए और इसमें जगती, अतिजगती और शक्वरी छन्दों का प्रयोग करना चाहिए। युद्धों और उपद्रवों के वर्णन में उत्कृति छन्द का प्रयोग होना चाहिए तथा करुण रस में शकवरी और अति धृति का।[1]

रिचर्ड्स ने भी छन्द और लय के महत्व को स्वीकार किया है। उसके अनुसार छन्द में संवेगों को नियंत्रित करने की शक्ति है। छन्द एक ऐसे ढाँचे का निर्माण करते हैं जिसके कारण काव्यानुभूति में उन अनावश्यक और विरोधी अनुभूतियों का प्रवेश रुक जाता है, जो छन्द के अभाव में सम्भव नहीं। काव्यानुभूति के सम्यक् आस्वाद इसका महत्व बहुत अधिक है। रिचर्ड्स के मत से छन्द सूक्ष्म तथा कठिन कथनों के लिए करीब करीब अनिवार्य साधन सा है।[2]

सहृदय को निर्विघ्न रसात्मक प्रतीति का होना ही रस का लक्षण है। भारतीय काव्य शास्त्र में अभिनव गुप्त ने रस विघ्नों का विस्तार पूर्वक वर्णन किया है। अभिनव गुप्त ने सात रस विघ्न माने हैं :-- 1- संभावना विरह, 2- स्वपरगत देशकाल विशेषावेश, 3- निज सुख दुखादि विवशी भाव, 4- प्रतीत्युपायवैकल्य, 5- स्फुटत्वाभाव, 6- अप्रधानता, 7- संशय योग।[3] इनमें से प्रथम तीन रसिक गत एवं शेष काव्यगत या कवि एवं नटगत हैं। इन रस विघ्नों के अतिरिक्त भारतीय आचार्यों ने काव्य के और भी दोषों पर पर्याप्त विचार किया है इन दोषों की संख्या 74 के लगभग हो जाती है।

रिचर्ड्स ने भी ग्राहक के संदर्भ में उन कठिनाइयों (डिफिकलटी) का विस्तार से विवेचन किया है जिन्हें वे काव्यानुभूति के मार्ग में बाधक मानते हैं। इन कठिनाइयों की संख्या सात है।[4] (1) काव्यार्थ को ग्रहण करने

1- भारतीय काव्य शास्त्र की परम्परा, पृष्ठ 15।
2- प्रिन्सिपल्ज आफ लिटरेरी क्रिटिसिज्म, पृष्ठ 146।
3- अभिनव भारती भाग 1, पृष्ठ 230
4- डा० निर्मल जैन, रस सिद्धान्त और सौन्दर्य शास्त्र, पृष्ठ 256-57।

की क्षमता का अभाव, (2) ऐन्द्रिय ग्रहण सम्बन्धी कठिनाई (3) स्मृतिगत अप्रासंगिकताएं, (4) अभ्यास जन्य प्रतिक्रियाएं, (5) भावुकता, (6) वर्जना, (7) सैद्धान्तिक पूर्वाग्रह ।

इन `विघ्नों ` पर दोनों आचार्यों ने जितना बल दिया है उससे प्रकट होता है कि सामान्य पाठक ही नहीं, बल्कि विशिष्ट पाठक या सहृदय को भी किसी न किसी रूप में इन विघ्नों में से कुछ का सामना करना ही पड़ता है। रिचर्ड्स और अभिनव गुप्त के विघ्न विवेचन में पर्याप्त समानता भी है। रिचर्ड्स द्वारा निरूपित `ऐन्द्रिय ग्रहण सम्बन्धी कठिनाई , अभिनव गुप्त के `संभावना विरह` का स्मरण करा देती है। इसी प्रकार रिचर्ड्स ने `स्मृतिगत अप्रासंगिकता, `भावुकता,` `वर्जना ` आदि नामों से जिन तीन कठिनाइयों का उल्लेख किया है वे सभी अभिनव गुप्त द्वारा निरूपित `निज सुखादि विवशीभाव` के अन्तर्गत समविष्ट हो जाती है । इन समानताओं के अतिरिक्त रिचर्ड्स ने एक ऐसी कठिनाई का भी उल्लेख किया है जिस पर अभिनव गुप्त ने विचार नहीं किया वह है- `सैद्धांतिक पूर्वाग्रह `। कभी कभी ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है कि प्रस्तुत काव्य में व्यक्त विचार पाठक के अपने विचारों के साथ मेल नहीं खाता, और अपने विचारों के आग्रह के कारण पाठक काव्यगत भावों के साथ पूर्ण तादात्म्य स्थापित करने में असमर्थ रहता है । ऐसी स्थिति में `सैद्धान्तिक पूर्वाग्रह ` काव्यानुभूति के लिए विघ्न हो जाता है ।

रिचर्ड्स के `सम्प्रेषण सिद्धान्त ` और भारतीय काव्य शास्त्र पर विचार करने के पश्चात हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि काव्यानुभूति के जिन तत्वों पर आई .ए. रिचर्ड्स ने विशेष बल दिया है वे हैं :-- भाषा, बिम्ब, प्रतीक और छन्द । इसी प्रकार भारतीय आचार्यों ने रस, रीति (भाषा, गुण, दोष) छन्द और अलंकार पर विशेष बल दिया है । इसलिए दोनों में सामान्य तत्व लगभग एक ही हैं। इसीलिए हमने --

(क) (।) प्रतिपाद्य)
(।।) बिम्ब योजना) पाश्चात्य दृष्टिकोण
(।।।) प्रतीक विधान)

(ख) (।) रस)
( ) भाषा शैली)

(i) छन्द)
(ii) अलंकार) भारतीय दृष्टि

से मुख्य तत्त्व मान कर प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में गुरु गोबिंद सिंह की कृतियों पर विचार किया है। छन्द विधान पर ब्रजभाषा होने के कारण भारतीय छन्द शास्त्र की दृष्टि से ही विचार करना उपयुक्त था।

:o:o:o:o:o:o:o:

चतुर्थ अध्याय

भक्ति रस-- रसत्व स्थापना

:o:o:o:o:o:

भक्ति रस -- रसत्व स्थापना

साहित्य शास्त्र के आदि आचार्य भरतमुनि ने अपने नाट्य-शास्त्र में शृंगार, हास्य ,करुण, रौद्र,वीर, भयानक, वीभत्स और अद्भुत इन आठ रसों को ही मान्यता दी[1]। नाट्यशास्त्र के सर्वप्रधान व्याख्याता आचार्य अभिनव गुप्त ने भरत के रससिद्धान्त की व्याख्या करते हुए शान्त को तो नवाँ रससिद्ध कर दिया पर नव रसों के अतिरिक्त अन्य किसी रस की स्वतन्त्र स्थिति को स्वीकार नहीं किया। नौ रसों में ही सब का अन्तर्भाव मान लिया और -- 'स्वं भक्तावपि वाच्यमिति' लिख कर वही बात भक्ति पर भी लागू कर दी।भरत मुनि द्वारा भक्ति रस को पृथक् न मानने के विषय में आचार्य अभिनव गुप्त का कथन है कि संसार से वैराग्य उत्पन्न होना आदि शान्त रस के जो विभाव बोधा, शास्त्र का चिन्तन आदि अनुभाव और निर्वेद, मति, स्मृति, धृति आदि संचारी भाव हैं, वे ही स्मृति , मति, धृति एवं उत्साह आदि भक्ति-रस के भी व्यभिचारी होते हैं और ये शान्त रस के अन्तर्गत हैं यही कारण है कि भरत मुनि ने भक्ति को पृथक् रस नहीं माना है।[2] आचार्य मम्मट में भक्ति का शान्त रस के अन्तर्गत समावेश होना उचित नहीं समझा और इसीलिए उन्होंने भक्ति की मूल भावना 'देवादि विषयक रति' को व्यभिचारी भावों से पुष्ट भाव विशेष के रूप में स्पष्ट मान्यता दे दी :--

"रतिर्देवादि विषया व्यभिचारी तथाऽर्जितः। भावः प्रोक्तः"[3]

1- शृंगारहास्य करुण रौद्र वीर भयानकाः
वीभत्साद्भुत संज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्ये रसाःस्मृता।नाट्य शास्त्र, 6/15

2- अभिनव भारती व्याख्या, गायकवाड सीरीज़,पृष्ठ334-340।

3- काव्य प्रकाश, 4 : 35 ।

आचार्य मम्मट के समय में भक्ति वाद का प्रचुर प्रचार हो चुका था और संभवत: यही कारण था कि आचार्यमम्मट को साहित्यिक दृष्टि से भक्ति को पृथक् रस मानना आवश्यक प्रतीत हुआ। साथ ही उन्होंने भरत मुनि द्वारा निर्धारित रसों की नौ संख्या की मर्यादा का भी उल्लंघन करना उचित नहीं समझा । इसीलिए उन्होंने 'देवविषायक रति ' (भक्ति) को भावों के अन्तर्गत मानना उचित समझा ।परिणाम यह हुआ कि आचार्य मम्मट के आदर्श पर उनके परवर्ती सभी साहित्याचार्य भक्ति को भाव ही मानने चले आए हैं ।[1]

पंडितराज जगन्नाथ ने भक्ति को रस मानते हुए उसके विभाव, अनुभाव और व्यभिचारियों का भी उल्लेख किया है ।साक्षात् भगवान् उसके आलम्बन हैं, भागवत - श्रवण आदि उद्दीपन हैं, रोमांच, अश्रुपात आदि अनुभाव और हर्ष संचारी भाव हैं तथा इसका स्थायी भाव है भगवान के विषय में प्रेम रूप ' भक्ति '।[2] भक्ति का अन्तर्भाव शान्त में उन्होंने स्वीकार नहीं किया क्योंकि भक्ति रस का स्थायी भाव अनुराग है और शांत रस का वैराग्य (निर्वेद) जो दोनों परस्पर विरुद्ध हैं इसलिए 'भक्ति' और 'शान्त ' रसों में से कोई एक दूसरे के अन्तर्भूत नहीं हो सकता परन्तु मुनि-वचन का उल्लंघन न हो जाए,यह सोच कर भक्ति को रस न मान कर भाव मानने के पक्ष का ही उन्होंने भी अन्त में समर्थन कर दिया ।[3] इस विषय में उनका तर्क यह है कि यदि देवादि विषायक रति के आधार भक्ति को रस माना जाएगा तो पुत्रादि विषायक रति के आधार पर वात्सल्य रस को भी मानना पड़ेगा। यही नहीं,इससे आगे 'जुगुप्सा ' और 'शोक ' को स्थायी भाव न मान कर रुद्ध भाव ही मनवाने का आग्रह किया जा सकता है । जिस के परिणाम स्वरूप सारा रस शास्त्र ही विशृंखल हो जाने की आशंका होती है । अतएव मुनि वचन से नियन्त्रित रसों की नवत्वगणना ही मान्य होनी चाहिए ।[4]

1- भारतीय काव्यशास्त्र की परम्परा ,पृष्ठ 461-62 ।

2- रसगंगाधर, विद्या भवन ग्रंथ माला 11 पृष्ठ139 ।

3- वही, पृष्ठ 190 ।

4- वही, पृष्ठ 191 ।

मधुसूदन सरस्वती ने अपने 'भक्ति रसायन' में भक्ति के अलौकिक महत्त्व और रसत्व का विशद निरूपण करते हुए उसे दसवाँ रस स्वीकार किया तथा उसे ब्रह्मानन्द सहोदर बताया।[1]

श्री मधुसूदन सरस्वती का विचार है कि अन्य रसों में पूर्ण सुख का स्पर्श नहीं रहता, जबकि भक्ति रस नितान्त रूप से सुखमय है। यही कारण है कि इसके सम्मुख अन्य रस क्षुद्र प्रतीत होते हैं। इतर रस इसके सामने आदित्य के सम्मुख खद्योत के समान जान पड़ते हैं :--

कान्तादि विषया वा रसाद्यास्तत्र नेदृशम्।
रसत्वं पुष्यते पूर्ण सर्वास्पर्शित्वकारणात्॥
परिपूर्ण रसाद्क्षुद्र रसेभ्यो भगवद्रतिः।
खद्योतेभ्य इवादित्य प्रभेव बलवत्तरा॥[2]

गौड़ीय सम्प्रदाय के प्रतिष्ठित आचार्य रूप गोस्वामी ने अपने ग्रन्थ 'हरि भक्ति रसामृतसिन्धु' में भक्ति रस का विवेचन काव्य शास्त्रीय दृष्टि से किया है। 'भागवत' के पश्चात् भक्ति रस की मान्यता का सर्वाधिक श्रेय रूप गोस्वामी को ही है, रूप गोस्वामी ने तो समाधिजन्य ब्रह्मानन्द को भी भक्ति के सम्मुख परमाणु के तुल्य भी नहीं माना।[3] उन्होंने कर्म तथा ज्ञानयोग दोनों से इसे श्रेष्ठ सिद्ध किया और कहा कि मोक्ष भी इसके सम्मुख हीन ज्ञात होने लगता है। भक्ति प्राप्त व्यक्ति मोक्ष की कामना ही नहीं करता।[4] 'उज्ज्वल नीलमणि' में उन्होंने 'भक्ति रस राट्' की उपाधि से मंडित किया है।[5]

आधुनिक काल में अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, कन्हैयालाल पोद्दार, रामदिन मिश्र ने भक्ति रस को मान्यता दी है। अयोध्यासिंह

1- समाधिःसुखस्येव भक्तिः सुखस्यापि स्वतन्त्र पुरुषार्थत्वात् .... तस्मात्...
भक्ति योगः पुरुषार्थः पर मानन्द रूपत्वादिरिनिर्विवादम्(भक्तिरसायन'-1।6।।

2- भगवद्भक्ति रसायन 2।77-78।

3- ब्रह्मानन्दो भवेदेष चेत् पदार्द्ध गुणीकृतः।
नेति भक्ति सुखाम्भोकेः परमाणु तुलामपि॥ हरिभक्त रसामृत सिंधु 1।19-20

4- हरिभक्त रसामृतसिंधु पूर्व भाग 1, लहरी 11-13।

5- उज्ज्वलनील मणि 1।2।

उपाध्याय ने भक्ति रस का महत्व प्रतिपादित करते हुए लिखा --`परमात्मा का नाम रस है। श्रुति कहती है---`रसो वै स: ` । रस शब्द का अर्थ है --`य: । रसयति आनन्दयति स रस: ` । वैष्णवों को माधुर्य उपासना परम प्रिय है अतएव भगवदनुराग रूपा ` भक्ति को रस मानते हैं । मेरा विचार है कि वत्सल में उतना चमत्कार नहीं, जितना भक्ति में ..... ।[1] `

कन्हैया लाल पोद्दार ने भक्ति रस को अलौकिक रस मानते हुए लिखा है कि शृंगारादि अन्य रसों के स्थायी भाव और विभावादि लौकिक होते हैं किन्तु भक्ति रस के स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी सभी अलौकिक होते हैं[2] ।

स्थायी भाव :-- भगवद्विषायक अनुराग (रति) आलम्बन विभाव--भगवान राम , कृष्ण आदि के अखिल विश्व सौन्दर्यनिधि दिव्य निग्रह अलौकिक हैं ।

अनुभाव :- हर्ष, सुख, आवेग चपलता, उन्माद, चिन्ता, दैन्य, धृति स्मृति और मति आदि अलौकिक हैं । दु:ख और आश्चर्य है जिन साक्ष्याभास शृंगारादि रसों में चिदानन्द के अंशांश के स्फुरण मात्र से रसानुभूति होती है उनको `रस ` संज्ञा दी गई है और जो साक्षात चिदानन्दात्मक भक्ति रस है, उसे रस न मान कर `भाव `माना गया है[3] ।

आचार्य रामदहिन मिश्र का मत है कि भक्ति रस पुरुषार्थोपयोगी तो है ही , अधिक मनोरंजक भी है । व्यापकता और उत्कटता की दृष्टि से शान्त रस से भक्ति रस चढ़ा बढ़ा है। यह भक्ति रस सामान्य चित-वृत्ति से भिन्न होने के कारण स्वतन्त्र रूप से व्यक्त होता है । भक्ति और शान्त दोनों भिन्न रस हैं और अपने आप में पूर्ण हैं । भक्ति रस का शान्त में अन्तर्भाव नहीं हो सकता। भागवत की श्रीधरी टीका में भक्ति रस का स्वतंत्र

1- हिन्दी साहित्यकोष भाग1 पृष्ठ 577 ।

2- भारतीय काव्यशास्त्र की परम्परा, पृष्ठ 463 ।

3- क्व चिद्रुदन्त्य च्युतचिन्तया क्वचिद्धसन्ति नन्दन्ति वदन्त्य लौकिका:।
नृत्यन्ति गायन्त्यनुशीलयन्त्यजं भवन्ति तूष्णीं परमेत्य निर्वृता:।
श्रीमद्भागवत्1।3।32 ।

उल्लेख पाया जाता है :--

रौद्राद्भुतौ च शृंगारोहास्यं वीरोदयस्तथा ।
भयानकश्चबीभत्सः शान्तः सप्रेमभक्तिकः ।।

शान्त रस में शान्ति के उपासक एक प्रकार से भोक्ताकांक्षा रखते हैं पर भक्ति रस में भक्त कहता है कि ' न भोक्तास्य कांक्षा ' आदि । बिना भक्ति के ईश्वर का ज्ञान सहज सम्भव नहीं । ज्ञान की अपेक्षा भक्ति का मार्ग सुलभ है । इसी से तो तुलसीदास कहते हैं :--

अस विचार हरि भगति सयाने, मुक्ति निरादरि भगति लुभाने।

भक्ति रस में धार्मिक भावना ही कार्य करती है। विश्वनिर्माता की अपरिमित शक्ति ही उसकी भक्ति की प्रेरणा करती है । भक्त 'घट घट व्यापे राम' ही नहीं कहते ' हम में तुम में खड्ग खंभ में भी कहते हैं । सभी वस्तुओं में उसकी सत्ता मान कर भक्त पशु-पक्षी, पेड़-पौधे तक की पूजा करते हैं। इस पूज्य भावना का सादर भीति, आश्चर्य और श्रद्धा द्वारा निर्माण होता है ।[1]

मराठी काव्य शास्त्र में प्रो० भा०दा० अलतेकर भक्ति को शृंगार के अन्तर्भुक्त करते हैं तो प्रो श्री० वि० पराजपे शान्त के अन्तर्गत मानते हैं । श्री वा०ना० देशपाण्डे रहस्यवादी कविताओं पर ध्यान जमाते हुए अद्भुत रस में इसे अन्तर्भुक्त मानते हैं।[2] प्रो० द०सी० पंगु ने आक्षेप किया है कि निर्जीव मूर्ति के प्रति निवेदन होने के कारण वह रसके समान उत्कट नहीं हो सकता अतएव उसे भाव ही मानना चाहिए ।प्रो० रा० श्री० जोग ने इस पर दो आक्षेप किए हैं :--

(1) यह मूल भावना नहीं है ।
(2) यह व्यापक नहीं है ।

इस प्रकार अनेक पक्षों से इस रस पर आक्षेप किए गए जिनमें प्रमुख इस प्रकार हैं:--

---

1- रामदहिन मिश्र, काव्यादर्पण, पृष्ठ 283-84 ।

2- डा० आनन्द प्रकाश दीक्षित, रस सिद्धान्त, स्वरूप विश्लेषण, पृष्ठ282।

1- इसका अनुमोदन परम्परा की हानि करके नए प्रश्न उत्पन्न करता है ।

2- इसका अन्तर्भाव अन्य रसों में हो सकता है और इसे केवल भाव माना जा सकता है ।

3- निर्जीव मूर्ति के प्रति निवेदन होने के कारण यह उत्कट नहीं है।

4- मूल भावना नहीं है ।[1]

5- व्यापक नहीं है ।

परन्तु डा० आनन्दप्रकाश दीक्षित ने इन आपत्तियों का खण्डन किया है।उनका कहना है कि इन आपत्तियों में से पहली आपत्ति नितान्त महत्वहीन है क्योंकि साहित्य के विकसित क्षेत्र में पहले ही दिन अन्तिम बात कह देने का दावा नहीं किया जा सकता। साहित्य समाज और युगानुरूप परिवर्तित होता है उसमें भावनाओं की नई अभिव्यक्ति, अभिव्यक्ति के नए माध्यम तथा आलम्बन आते रहते हैं ।[2] इसी प्रकार यह कहना भी उचित नहीं कि मूल भावना न होने के कारण यह रस योग्य नहीं है ।साहित्य के क्षेत्र में मनोविज्ञान ज्यों का त्यों लागू नहीं किया जा सकता ।शोक मूल भावना न होते हुए भी इसे करुण रस के स्थायी भाव के रूप में अस्वीकृत नहीं किया जा सकता और करुण रस की उपेक्षा नहीं की जा सकती।फिर भक्ति रस की मूल भावना रति है, किन्तु सामाजिक व व्यापक सम्बन्धों को देखते हुए यह अनेक रूप धारण करती है और अपनी उत्कटता को कारण शृंगार रस से नितांत पृथक् स्थान बना लेती है । 'शृंगार' शब्द का प्रयोग ऐसे रूढ अर्थ में होता है कि भक्ति या वात्सल्य को शृंगार कह कर काम नहीं चलाया जा सकता ।[3] यही कारण है कि भक्ति शास्त्रकारों ने भक्ति के अनेक रूपों में एक शृंगार-परक मधुरा भक्ति को भी स्थान दे दिया है ।भक्ति के अन्तर्गत सभी रसों को समेट लेने की प्रवृत्ति उसी प्रकार उचित नहीं है, जिस प्रकार अन्य रसों में से किसी एक के अन्तर्गत दूसरे रसों को रख देना ठीक नहीं ।[4]

1- डा० आनन्दप्रकाश दीक्षित- रस सिद्धान्त: स्वरूप विश्लेषण, पृष्ठ 282
2- वही, पृष्ठ 282
3- वही, पृष्ठ 283
4- वही, पृष्ठ 283

प्रसिद्ध मराठी विद्वान् डा० वाटवे ने भक्ति रस के समर्थन में स्वयं मानस-शास्त्रीय विवेचन का सहारा लिया है और पूर्व कालीन अनेक संस्कृत और मराठी सन्तों के पदों को उद्धृत करके अपने विवेचन को पुष्ट किया है ।उनका कहना है कि भक्ति की भावना साधित (Derived) नहीं है । साधित भावना स्थिर वृत्ति नहीं बन सकती । ✓

भक्ति का आरम्भ आदि काल से ही है ।यहाँ तक कि वैदिक साहित्य स्वयं इसके प्रमाणों से युक्त है । मनुष्य ने पहले पहल प्रकृति को देख कर उसके वैचित्र्य और उपयोगिता अनुपयोगिता से प्रभावित हो कर उसमें कुछ शक्तियों का विचार करके अलग अलग देवताओं की कल्पना करली, जिसके फलस्वरूप इन्द्र, वरुण, उषा, पवमान, अग्नि तथा रुद्र आदि का नामकरण हुआ ।इनकी शक्ति के सामने मनुष्य को अपनी आत्महीनता का बोध हुआ और वह उसके परिणाम स्वरूप शरणागति के भावों से भर उठा ।उसने देवताओं से वरदान माँगना उनकी दया माँगनी प्रारम्भ कर दी । उनकी शक्ति से मनुष्य में जो उनके प्रति एक भय की भावना काम करती थी,उसका स्थान धीरे धीरे आदर ने ले लिया और फिर वही प्रेम मूलक बन गया ,जिसके कारण वह इन देवताओं में अनेक गुणों का आरोप करता हुआ, इन्हें ऐहिक तथा पारलौकिक जगत् का सहायक मानने लगा ।उसकी भावना शनैः शनैः उदात्त होती गई । इस प्रकार सगुण रूप से मनुष्य फिर निर्गुण निराकार का भी चिन्तन करने लगा ।उस रूप ने मनुष्य को भक्ति मार्ग से उठा कर ज्ञानमार्ग बना दिया ।संतो में जहाँ तहाँ दोनों भावनाओं का प्रकाशन दिखाई देता है। इस प्रकार सगुण भक्ति भावना में भय, आत्महीनता या शरणागति जिज्ञासा आदि कई प्राथमिक भावनाओं का मिश्रण दिखाई पड़ता है, जिससे प्रतीक पूजा आरम्भ हुई और रामकृष्ण आदि अवतार माने जाने लगे ।इस प्रतीक-पूजा ने मनुष्य के स्वरूप में देवता की कल्पना कराई ।मनुष्य ने प्रभु से सारे लौकिक प्रेम संबंध जोड़ लिए और इस प्रकार परमेश्वरानुराग की भावना संभिन्न बनती गई ।परमेश्वर की मूर्ति से आरम्भ करके मनुष्य उसकी मनोमय प्रतिमा के निर्माण में सफल हुआ है और संत काव्य के परिशीलन से ज्ञात होगा कि उसमें अनेक नाते रिश्तों की प्रतिष्ठा के कारण उत्सुकता, आनन्द, विषाद, दैन्य, चिन्ता, व्याधि, भय, गर्व,

व्रीडा तथा जिज्ञासा आदि अनेकानेक भावों का समावेश किस प्रकार सफलता पूर्वक हो गया है ।इसके फलस्वरूप उसमें नवरसों की छटा भी प्रस्फुटित हुई । इन सम्बन्धों में परमोत्कट रूप शृंगार की भावना का रहा ,जो कि मधुर रस के नाम पर परम उन्नयन को पहुँचा । कृष्ण गोपिकाओं के परमात्मा तथा आत्मा के सम्बन्ध के रूपक जोड़ लिए गए और लौकिक शृंगार भक्ति के उन्नत रूप में उपस्थित हुआ । वल्लभ , चैतन्य, राधावल्लभी आदि सम्प्रदायों में ही नहीं, राम सीता की भक्ति और सूफी सम्प्रदाय में भी यही भावना दिखाई देती है । यहाँ तक कि भक्ति की भावना इस रूप में व्यापक है कि तेरहवीं सदी में थामस-डी-हेल्स नामक लेखक ने अपने काव्य में हंसा का यही भक्ति परक रूप उपस्थित किया है।इतिहास इस प्रकार के भक्तों के प्रमाणों का साक्षी है कि भक्ति के सामने उनकी भूख जैसी सहज प्रवृत्तियां भी दब गईं । अत: भक्ति का मूलाधार देव विषायक रति को स्थायी भाव मानने में कोई हानि नहीं ।[1] यह विश्लेषण पश्चिमी-विचार से प्रभावित होते हुए भी देव-विषायक रति की स्थायी भाव के के रूप में स्थापना करता है।वास्तव में भक्ति है उस जगत्पिता सृष्टि कर्ता के प्रति आत्म ज्ञान होने पर कृतज्ञ भावना।उसी के प्रति अपने को समर्पित करके उसके व उसकी अनन्त शक्तियों -- देवों आदि के प्रति समर्पण भाव ।इसी समर्पण भाव को मनुष्य ने दास्य, सख्य, वात्सल्यादि भावनाओं से प्रकट किया । इस भावना की अभिव्यक्ति में जिस आनन्द का अनुभव होता है उसे हम भक्ति रस की संज्ञा दे सकते हैं।

डा० नगेन्द्र ने स्थायी भाव के निर्णय की कसौटी चतुर्मुखी स्वीकार की है :-- स्थायित्व,प्रबलता, पुरुषार्थ के प्रति उपयोगिता और साधारणीकृत होने की क्षमता।इनके अतिरिक्त मराठी विद्वान डा० वाटवे ने दो और गुणों की कल्पना की है : मूल वृत्ति से प्रत्यक्ष सम्बन्ध अर्थात् मौलिकता और औदात्य या परिष्कृति ।परिणामत: रस के मूल धर्म भी ये ही सिद्ध होते हैं --- अर्थात् रस के निर्णायक तत्व छह हैं :--

---

1- डा० आनन्द प्रकाश दीक्षित, रस सिद्धान्त : स्वरूप विश्लेषण,पृष्ठ 291-92।

1- अपेक्षाकृत स्थायी प्रभाव ।

2- सार्वभौम स्वीकृति ।

3- रंजनाधिक्य या उत्कट आस्वाद्यतमानता ।

4- मनुष्य की किसी न किसी मूल वृत्ति से प्रत्यक्ष सम्बन्ध ।

5- जीवन के परम पुरुषार्थों के प्रति उपयोगिता ।[1]

6- परिष्कृत अनुभूति ।

भक्ति रस के विषय में पहला प्रश्न यह है कि उसका आस्वादयिता कौन है -- सहृदय या भक्त ? अर्थात् उसके रसत्व का विचार अन्य काव्य रसों के समान सहृदय की दृष्टि से करना है या भक्त की दृष्टि से ? इसका स्पष्ट उत्तर है -- सहृदय की दृष्टि से क्योंकि रस शब्द हमारे लिए या काव्य शास्त्र के प्रसंग में, काव्य रस का ही वाचक है और इसलिए भक्ति रस की परीक्षा भी हमें काव्य रस के निष्कर्ष पर ही करनी है । अब प्रश्न उठता है कि क्या भगवद्रति भी रति , शोक आदि की भान्ति ही स्थायी भाव है, अर्थात् प्रत्येक सहृदय के चित्त में वासना रूप से विद्यमान रहती है ? आस्तिक (भक्त) के पास इसका अतवर्य उत्तर है और वह यह कि आत्मा का परमात्मा से नित्य सम्बन्ध है जो सांसारिक रागद्वेष के कारण धूमिल पड़ जाने पर भी मानव चेतना में स्थायी रूप से विद्यमान रहता है । किन्तु आज इसे यथावत् स्वीकार करना आसान नहीं है। किसी परोक्ष सत्ता के प्रति जिज्ञासा , विस्मय प्रश्न भय तथा अधीनता का भाव, महत्व स्वीकृति एवं तज्जन्य आदर भाव मानव संस्कार के अंग हो सकते हैं और सामाजिक अथवा आनुवंशिक परम्परा के कारण ये संस्कार मनुष्य की चेतना में दास्य, सख्य, वात्सल्य, दाम्पत्य आदि भावों का रूप भी धारण कर सकते हैं, किन्तु ये भाव मौलिक एवं स्थायी नहीं है, संसर्ग (परम्परा) तथा अभ्यास (साधना) आदि द्वारा अर्जित है-- परोक्ष आलम्बन पर प्रकृत० भावों के आरोपण का है । अत: वैष्णवों तथा अन्य भक्तों की भगवद्रति को मौलिक मानना कठिन है , भक्त के लिए यह प्रकृत भाव हो सकता है किन्तु सामान्य सहृदय के लिए नहीं जो रस का वास्तविक अधिकारी है।साम्प्रदायिक मधुर भाव आदि के साधारणीकरण की कठिनाई का यही मूल कारण है, इसीलिए जिन मधुर प्रसंगों के श्रवण मनन से

1- डा० नगेन्द्र, रस सिद्धान्त , पृष्ठ 265 ।

भक्त चिन्मय भक्ति रस से विह्वल हो जाता है उनमें सामान्य सहृदय केवल शृंगार रस का अनुभव करता है। वास्तव में डा० नगेन्द्र ने भगवान् को परोक्ष-सत्ता के रूप में माना और उसे संस्कार जन्य व आनुवंशिक कहा परन्तु जिन ऋषियों व भक्तों ने उस परम ज्योति :, आनन्द व शक्ति का साक्षात्कार किया वे ऐसा नहीं कहते। शंकर का सच्चिदानन्द तो सब में ही है क्योंकि मनुष्य ही ब्रह्म है। प्रश्न है केवल उसके अनुभव का। संस्कारों से परे जाकर ही वास्तव में मनुष्य को अपनी सत्ता या आत्मा अथवा परमात्मा का साक्षात्कार होगा फिर उस परम शक्ति को संस्कार जन्य कैसे कहें। हम अपनी वास्तविक सत्ता आत्मा से भी इन्कार कर सकते हैं? फिर अपनी स व्यक्ति चेतना का उस विश्व चेतना के प्रति आभार प्रदर्शन तो सब के मन में वासना रूप से रहता ही है। अत: डा० नगेन्द्र की युक्ति सारहीन है।

रस के अन्य तत्वों पुरुषार्थ के प्रति उपयोगिता, परिष्कृत अनुभूति आदि के विषय में तो शंका ही क्या हो सकती है, क्योंकि भक्ति का प्रत्यक्ष सम्बन्ध जीवन के चरम पुरुषार्थ मोक्ष के साथ है। किन्तु उत्कट आस्वाद्यमानता का प्रश्न फिर भी विचारणीय है : क्या प्रमाता काव्यगत भक्ति का आस्वादन उसी प्रकार उत्कट रूप में करता है जिस प्रकार कि रति, उत्साह आदि भावों का? सूर सागर के विविध प्रसंगों या मीरा के माधुर्य भाव से पगे गीतों की उत्कट आस्वाद्यता इसका प्रमाण है, केवल भक्त ही नहीं, प्रत्येक सहृदय इसका पूर्णत: आस्वादन करता है। पर क्या भक्त और सहृदय ~~समान-पूर्णतः~~ का आस्वादन समान होता है? मैं समझता हूँ-- नहीं क्योंकि भक्त को शुद्ध सहृदय नहीं माना जा सकता : उसकी सहृदयता विशिष्ट संस्कारों से 'वासित' होने के कारण काव्य शास्त्रीय अर्थ में शुद्ध नहीं रह पाती। अत: भक्त का अनुभव साधारणीकृत अनुभव नहीं होता, उसके अनुभव का साधारणीकरण भक्त वर्ग में तो हो जाता है किन्तु सामान्य सहृदय-समाज में नहीं हो पाता। फिर सूर के सरल प्रसंगों की आस्वाद्यता का क्या रहस्य है? विनय के पदों में पूर्ण आत्म-समर्पण की अभिव्यक्ति है। सहृदय के चित्र में भी अज्ञात विराट् शक्ति के प्रति समर्पण का यह भाव जो भय विस्मय-प्रेम - विश्वास मूलक होता है, वासना रूप में विद्यमान रहता है

4

और विनय के पदों में विभावादि के सजीव चित्रण से उद्‌बुध होकर रसत्व को प्राप्त हो जाता है। यहाँ शंका हो सकती है कि क्या यह समर्पण भाव स्थायी भाव है, हमारा निवेदन है कि -- हां, है।इसमें सन्देह नहीं कि यह मिश्र भाव है -- क्रोध भय आदि की भांति शुद्ध नहीं है किन्तु इससे कोई अन्तर नहीं आता क्योंकि हम सिद्ध कर चुके हैं कि काव्यगत समस्त स्थायिभाव 'शुद्ध' नहीं है -- शम, विस्मय और स्वयं रस राज शृंगार का स्थायी भाव रति भी मिश्र भाव है। अत: रसनीयता में किसी भाव का मिश्र रूप बाधक नहीं होता, किन्तु भाव मौलिक होना चाहिए, उसका सम्बन्ध मानव वासनाओं से होना चाहिए जिससे कि साधारणीकरण हो सके, अर्थात् प्रत्येक सहृदय चित्त की निर्विघ्न स्थिति में उसका आस्वादन कर सके। इस दृष्टि से विचार करने पर भक्ति के इस अन्य रूप का रसत्व सिद्ध हो जाता है, आज प्रभाता के बौद्धिक संस्कार रस- प्रतीति में बाधा उपस्थित करते हैं परन्तु मध्य युगीन कवि के अनुभव की तीव्रता प्रभाता के अनुभव की क्षति पूर्ति सहज ही कर लेती है। रूप माधुरी तथा शृंगार के पदों की रसनीयता का आधार है रति किन्तु अपार्थिव आलम्बन के प्रति होने के कारण शृंगार के पदों में आश्रय और आलम्बन दोनों ही अलौकिक है, यह साधान्य, लौकिक रति न होकर रति का उदात्त रूप है, उन्नयन की इस प्रक्रिया में आलम्बन के चिन्मय रूप के प्रभाव से ऐन्द्रिय तत्वों का क्षय हो जाने से अनुभूति का अत्यंत परिष्कार हो जाता है। अत: इस रति की आस्वाद्यता भी सर्वथा असंदिग्ध है। साधान्य रस प्रक्रिया में जहाँ विभावों की लौकिकता विघ्न रूप में रहती है और कवि को अपनी कल्पना द्वारा उसका निराकरण करना पड़ता है, वहाँ प्रस्तुत प्रसंग में विभावादि की अलौकिकता के कारण यह बाधा ही नहीं रहती और रस की सिद्धि अपेक्षाया सरल हो जाती है। अत: भक्ति का स्थायी चाहे भय-विस्मय प्रेम-विश्वास मूलक समर्पण भाव हो या चिन्मय (उदात्तिकृत) रति, उसकी आसवाद्यता और परिणामत: उसके रसत्व में सन्देह नहीं किया जा सकता। अन्य रसों में अन्तर्भाव भी इसलिए सिद्ध नहीं होता कि भक्ति का स्थायी न शुद्ध विस्मय है, न भय है, न शम है और न काम मूलक रति- इन सभी तत्वों के मिश्रण से निर्मित वह एक पृथक् भाव वृत्ति ही है। अत: उसके स्वतन्त्र अस्तित्व का निषेध भी संभव नहीं है -- न सिद्धान्तत: और न व्यवहारत:।

इस प्रकार व्यापक या सामान्य रूप में भक्ति रस की सिद्धि हो जाती है क्योंकि व्यापक रूप में वह सर्व (सहृदय)- गम्य है, किन्तु साम्प्रदायिक रूप में काव्य शास्त्र की दृष्टि से उसकी सिद्धि सम्भव नहीं होती क्योंकि एक तो वह साक्षात अनुभव की कोटि में ही आता है और दूसरे केवल भक्त गम्य होने के कारण उसका साधारणीकरण भी नहीं हो पाता।[1] परन्तु काव्य के रस का अनुभव क्या उस व्यक्ति को हो सकता है, जो सहृदय नहीं। यदि रस के अनुभव के लिए सहृदयता की अपेक्षा है, तो भक्ति रस के आस्वादन के लिए उस प्रकार के सहृदय की जिसमें भगवान के प्रति जिज्ञासा और प्रेम भाव हो। अत: डा० नगेन्द्र की अन्तिम युक्ति में भी कुछ बल नहीं रह जाता। हमें भक्ति रस को स्वीकार करने में कोई हिचकिचाहट नहीं होनी चाहिए।

डा० जगदीश गुप्त का मत है--' वस्तुत: भक्ति रस का आलम्बन लौकिक न होकर अलौकिक ही मानना समीचीन होगा। भक्ति शास्त्र में निराकार निर्गुण ब्रह्म की कल्पना की गई कि वह भक्ति भावना का वास्तविक आलम्बन बन सका। निश्चय भक्ति काव्य में भावना का जो विस्तार भारतीय साहित्य में मिलता है उसको देखते हुए भक्ति को रस न स्वीकार करना वस्तु-स्थिति की उपेक्षा करना है।'[2] इस प्रकार भक्ति रस की सर्वमान्यता सिद्ध हो जाती है।

भक्ति रस का शान्त में अन्तर्भाव करने का प्रयत्न भी हमारी दृष्टि में युक्ति युक्त नहीं कहा जा सकता। श्री मधुसूदन सरस्वती ने दोनों में भेद करते हुए बताया कि शान्त का सम्बन्ध मोक्ष पुरुषार्थ से है और उसके योग्य केवल 'अद्रुतचित्त' व्यक्ति ही हो सकते हैं, जबकि भक्ति रस में 'द्रुत चित्त' व्यक्ति का ही महत्व होता है। वस्तुत: शान्त और भक्ति में अनुराग और वैराग्य का ही अन्तर है। शान्त का मार्ग ज्ञान का मार्ग है। वस्तु के सम्बन्ध में नित्यानित्य वस्तु विवेक तथा मोक्ष-कामना ही शान्त का प्रधान लक्षण है। ज्ञान भाव-प्रधान भक्ति से भिन्न होता है। शान्त में निर्विकारण

1- डा० नगेन्द्र, रस सिद्धान्त, पृष्ठ 263-69।

2- हिन्दी साहित्य कोष भाग 1, पृष्ठ 573 ।

36

का महत्त्व है और भक्ति में लौकिक स्वार्थ सम्बन्धों को छोड़ कर भी पारलौकिक शक्ति से उसी प्रकार का सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। वियोग तथा संयोग का अनुभव उसी तीव्रता के साथ किया जाता है। शान्त में आत्मज्ञान का होना प्राथमिक आवश्यकता है किन्तु भक्ति में उसकी अनिवार्यता नहीं मानी जाती। शान्त जुगुप्सा से प्रबलता प्राप्त करता है किन्तु भक्ति का उससे ऐसा दृढ़ सम्बन्ध नहीं है। यों तो जुगुप्सा ही क्या स्वयं शान्त को रूप गोस्वामी ने भक्ति रस के अन्तर्भूत कर लिया है। शान्त में प्रयुक्त जुगुप्सा का महत्त्व यह है कि वह संसार से व्यक्ति का मन पूर्णतया हटाती है, उसे विरक्त करती है किन्तु भक्ति में उत्पन्न होने वाली जुगुप्सा का वर्णन भगवान् के सम्मुख अपने दोषों को रखने के विचार से किया जाता है और उनसे त्राण मांगा जाता है। शान्त की जुगुप्सा आत्म-ज्ञान का द्वार उन्मुक्त करती है। और भक्ति की जुगुप्सा अपनी हीनता का प्रदर्शन कराती है। भक्ति में श्रद्धा और विश्वास मुख्य होता है, अतः उस मार्ग पर चलना कठिन नहीं रहता। शान्त में होने वाली भाव-प्रतीति नियन्त्रित और संयमित भाव प्रतीति है, भक्ति का मार्ग सर्व सुलभ और सुआराध्य है। विषयापराङ्मुखता, नित्यानित्य वस्तु विवेक, वैराग्य तथा शम- दमादि रूप साधन दोनों में मात्रा भेद से ग्राह्य और साधक होते हैं। साधन भेद की एकता होने पर भी दोनों में परिणाम भेद अवश्य है। परिणाम भेद से हमारा अभिप्राय उत्कट अनुभूति, सर्वग्राहिता तथा प्रेरकता से है। प्रभाव की उत्कटता के सम्बन्ध में श्रीमद्भागवत के निम्न श्लोक प्रमाण कहे जा सकते हैं। इनमें भक्त के अनेकानेक भावों का परिगणन किया गया है, जो शान्त में किसी प्रकार भी संभव नहीं है। यथा:--

1- एवंव्रतः स्वप्रियानामकीर्त्या जातानुरागोद्रुतचित उच्चैः।
हसत्यथोरोदिति रौति गायत्युन्मादवन्नृत्यति लोक बाह्यः।11।2।40।

अर्थात् इस प्रकार के व्रत (आचरण) वाला पुरुष अपने परमप्रिय प्रभु के नाम संकीर्तन से अनुराग उत्पन्न हो जाने पर द्रवित चित्र होकर संसार की परवाह न कर कभी खिलखिला कर हंसता है कभी रोता है, कभी चिल्लाता है, कभी गाने लगता है और कभी उन्मत्त के समान नाच उठता है।

2- क्वचिद्रदन्त्यच्युत चिन्तयाक्वचिद्धसन्तिनन्दन्तिवदन्त्यलौकिकाः।
नृत्यन्ति गायन्त्यनुशीलयन्त्यज भवन्तितूष्णीं परमेत्य निर्वृताः।।11।3।32

अर्थात् ऐसा होने पर वे अलौकिक पुरुष भगवान् अच्युत का ध्यान करके कभी रोते, कभी हंसते, कभी आनन्दित होते और कभी बड़बड़ाने लगते हैं। तथा कभी नाचते, कभी भगवद्गुण-गान करते और कभी इन अजन्मा प्रभु की लीलाओं का चिन्तन करते हैं तथा फिर परम उपरति को प्राप्त होकर मौन हो जाते हैं। इस प्रकार शान्त में भक्ति को अन्तर्भूत करना उपयुक्त प्रतीत नहीं होता।[1]

इस प्रकार केवल भरत कथित न होने से भक्ति तिरस्करणीय रस नहीं है, क्योंकि साहित्य शास्त्र नित्य प्रयोग के साथ बढ़ता है। प्रेम या रति कान्ता-विषायक, देवतादि-विषायक और अपत्य विषायक होने से क्रमशः यदि शृंगार भक्ति तथा वात्सल्य रस कहलाती है, यदि उन्हें पृथक् स्थायी भावमान लिया जाए तो कोई हानि नहीं है।

सारांश यह है कि भक्ति रस को अन्य रसों के समान आस्वाद्य बहुजन सुलभ, वाङ्मय परिपुष्ट व संस्कृत साहित्य शास्त्र तथा मानस शास्त्र की कसौटी पर पूर्णतया खरा उतरने वाला रस न मानने का कोई कारण नहीं है। विपुल धार्मिक तथा साहित्यिक सामग्री भक्ति के सम्बन्ध में होते हुए भी जो रस को अस्वीकार किया जाता रहा है, उसका एक मात्र कारण परम्पराभिमान ही हो सकता है, अन्य नहीं।

--

1- डा० आनन्दप्रकाश, दीक्षित, रस-सिद्धान्त : स्वरूप विश्लेषण, पृष्ठ 286-87 ॥

पंचम अध्याय

सम्प्रेषणीयता की दृष्टि से गुरु गोविन्दसिंह की कृतियों का मूल्यांकन

(क) जापु

(ख) अकाल- उस्तुति

(ग) ज्ञान- प्रबोध

(घ) विचित्र नाटक

(ङ) तैंतीस सवैये

(च) शब्द हजारे

(छ) खालसा महिमा

(ज) शस्त्र नाम माला

(झ) चरित्रोपाख्यान

:o:o:o:o:

जापु

परिचय :- 'जापु' गुरु गोविन्दसिंह जी की प्रथम कृति है, जिसकी रचना उन्होंने 1684 ई० में यमुना नदी के किनारे स्थित पांवटा में की।[1] यह एक साहित्यिक गुणों से ओतप्रोत पवित्रतम रचना है, जिसका स्थान गुरु नानकदेव जी द्वारा प्रणीत 'जपुजी' के उपरान्त माना जाता है।

'जापु' वास्तव में एक स्तोत्र है। भारतीय भक्ति साहित्य में स्तोत्र की एक सुदीर्घ परम्परा विद्यमान है। महाभारत में विष्णु सहस्र नाम तथा संस्कृत में 'शिवमहिम्न स्तोत्र,' 'काली सहस्रनाम स्तोत्र,' 'श्यामास्तोत्र,' 'दुर्गादिनाम स्तोत्र' व शंकराचार्य की 'भजगोविंदम्' भी इसी प्रकार की रचनाएं हैं। स्तोत्र 'स्तु' धातु से व्युत्पन्न शब्द है जिसका व्यापक अर्थ स्तुति परक गुण कीर्तन है। किसी आराध्यदेव का छन्दोबद्ध स्वरूप कथन, गुण कीर्तन अथवा स्तवन स्तोत्र कहलाता है।[2] स्तोत्र की एक अन्य विधा नाम परिगणन भी है। स्तुत्य के विविध पक्षों अथवा विविध विशेषताओं को आधार मान कर विविध विशेषणों का प्रणयन भक्ति का एक अंग माना जाता रहा है। यही विशेषण-कलाप भगवान के लिए अभिधान या नाम बन जाते हैं। उन्हीं का प्रतिदिन प्रति क्षण स्मरण जाप के लिए श्रेयस्कर कहा गया है।

सम्प्रेषण पाश्चात्य दृष्टि से :-

प्रतिपाद्य :- 'जापु का प्रतिपाद्य अकाल पुरुष के रूप में निर्गुण ब्रह्म है।

प्राचीन काल से ही ब्रह्म के निर्गुण तथा सगुण रूप पर विचार होता रहा है। वेद में भी ब्रह्म के निर्गुण और सगुण दोनों रूपों का ही वर्णन मिलता

1- डा० तारनसिंह, दसम ग्रन्थ रूप ते रस, पृष्ठ 60।

2- 'प्रतिगीत मन्त्रसाध्यं स्तोत्रम्' हिन्दी साहित्य कोष प्रथम भाग, पृष्ठ940।

है :---

असच्च सच्च परमे व्योमन् ।[1]

उपनिषदों में भी ब्रह्म के इसी रूप का प्रतिपादन है :----

असन्नेव स भवति । असद्ब्रह्मेतिवेद चेत् ।
अस्तिब्रह्मेति चेद्वेद । संतमेनं ततो विदुः ।।[2]

गीता में भी कहा गया है :--

अनादिमत्परं ब्रह्म न सन्नासदुच्यते ।[3]

भक्तिकाल में ईश्वर के निर्गुण और सगुण दोनों रूपों को तत्कालीन कवियों ने अपनाया। सिक्खधर्म में ईश्वर के निर्गुण रूप को ही मान्यता प्राप्त है ।यद्यपि उसका वर्णन सगुणवत् भी हुआ है क्योंकि जनसाधारण के लिए निर्गुण ब्रह्म की कल्पना असाध्य व कठिन है ।

'जापु' में भी निर्गुण ब्रह्म का ही प्रतिपादन है ।जापु के प्रारम्भ ही उस ब्रह्म को चक्रचिन्ह, वर्ण, जाति, रूप रंग, आकृति के वेष से रहित और अवर्णनीय कहा गया है :--

चक्रचिह्न अरु वरण जाति अरु पाति नहिन जिह।
रूप रंग अरु रेख भेख कोऊ कहि न सकत किह ।[4]

वह करोड़ों इन्द्रों का इन्द्र, राजा-नाराज है।तीनों लोकों के सुर,नर तथा महीप उसे नेति नेति कहते हैं :--

कोटि इन्द्र इन्द्राणि।साह साहाणि गणिज्जे।
त्रिभुवन महीप सुर नर असुर नेत नेत बन त्रिण कहत।
तब सरब नाम कथै कवन करम नाम बरनत सुमति ।[5]

वह प्रभु धर्म, कर्म, नाम और धाम से परे है --

नमस्तं अकर्मं। नमस्तं अधर्मं।
नमस्तं अनामं।नमस्तं अधामं।[6]

1- ऋग्वेद, 10।5।7
2- तैत्तीय उपनिषद्, 2।6।
3- गीता 12।13
4- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 1 ।
5- वही, पृष्ठ 1 ।
6- वही, पृष्ठ 1 ।

इसके साथ साथ उस प्रभु को निष्कलंक, सौन्दर्यवान तथा राजाओं का राजा स्वीकार किया गया है :--

कलंक बिना ने कलंकी सरूपे ।
नमोराज राजेस्वर परम रूपे ।।[1]

इसके साथ ही उस प्रभु के भयंकर रूप का भी चित्रण है।वह अस्त्रशस्त्र धारी, कालोंकाकाल तथा क्रूर कर्मा है---

नमो ससत्र पाणे, नमो असत्र पाणे।[2]
नमो काल काले।[3]
नमो नित्त नाराइणे क्रूर करमे।[4]

गीता में भी भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन का मोह भंग करने के लिए ब्रह्म के इसी संहारक रूप का वर्णन किया है।[5]

वह प्रभु सत् चित् और आनन्द स्वरूप है--

सदासच्चदानंद सरबं प्रणासी
अनूपे अरूपे सभसतू निवासी।[6]

सारे जगत् का मूल वह प्रभु स्वयं है और सांसारिक क्रीड़ाओं को समाप्त करके वह स्वयं फिर अकेला ही रह जाता है :--

एक मूरति अनेक दरसन कीने रूप अनेक।
खेल खेल अखेल खेलन अंत को फिरि एक।[7]

वह प्रभु कालहीन, अकाल पुरुष है, गर्व गंजन ,दुष्ट भंजन और मोक्ष प्रदाता है:--

कालहीन कला सजुगति अकाल पुरख अदेस।
धरम धाम सु भरम रहत अभूत अलखअभेस।।
अंग राग न रंग जाकहि जात पात न नाम।
गरब गंजन दुसट भंजन मुकतिदाइक काम।[8]

'जापु' के 'अकाल' काव्य-कृतकरता भी एक विचारणीय विषय है। गुरु कवि की दृष्टि में अकाल ब्रह्म सर्वथा विलक्षण तत्व है।वह वेदान्तियों के ब्रह्म

1- दशम ग्रन्थ,पृष्ठ 3 । 2- वही ।
3- वही, पृष्ठ 2 । 4- वही,पृष्ठ 3 ।
5- कालोऽस्मि लोकक्षय कत्प्रवृद्धो।
लोकान् समाहर्तुमिह प्रवृत्त ।।गीता,11।32।
6- दशमग्रन्थ,पृष्ठ3। (7) वही,पृष्ठ5 । (8) वही,पृष्ठ 5 ।

से आपातत: भिन्न है । बौद्धों का शून्यत्व भी उसके सम्कक्ष नहीं । वह कोरे ज्ञान का विषय नहीं और न ही वह दैहिक साधनाओं द्वारा ग्राह्य है । वह तो घट घट वासी है। अकाल इसी संकल्पना में परिकल्पित किया गया दीखता है। इसी धारणा की अभिव्यक्ति प्रस्तुत पंक्ति में हुई है :--

अकाल मूरति अनभउ प्रकास अमितोजकहिज्जै ।।[1]

उस प्रभु को अनुभव से पाया जा सकता है थोथे ज्ञान से नहीं ।

हर जीव के आँख कान होते हुए भी उसकी कोई कामना नहीं, फिर भी वह जगत पालन के अपने कर्तव्य को भली भान्ति निभा रहा है --

चतर चक्रवरती ।चतर चक्र भुगते ।
सूयं भव सुभं । सरबदा सरब जुगते ।
दुकालं प्रणासी ।दइआलं सरुपे ।
सदा अंगसंगे ।अभंग बिभूते ।[2]

कवि ने यहाँ ब्रह्म के लिए 'चक्रवती' शब्द प्रयुक्त किया है । जिसकी भारतीय धर्म ग्रन्थों में विशेष परम्परा है । चक्रवती शब्द राजनीति और धर्म दोनों क्षेत्रों में प्रयुक्त होता रहा है । चक्रवती राजा से अभिप्राय सार्वभौम राजा है ।भारत में अनेक चक्रवती सम्राट हुए हैं :-- भारुत, भरत, पृथु, वेण आदि ।चक्रवती भरत के विषय में कहा जाता है कि जब वह युद्धक्षेत्र में शत्रु के विरुद्ध लड़ने के लिए जाता था तो उसके रथ के पहिये के मार्ग में कोई बाधा न आती थी ।[3] बौद्ध और जैन धर्म में चक्रवती से अभिप्राय सब से महान् आध्यात्मिक शक्ति है जो महात्मा बुद्ध और जिन स्वामी के पास थी ।बौद्ध धर्म में धर्म चक्र को 'पवितत्तम' कहा गया है अर्थात् धर्म का राज्य ।जब धर्म का चक्र चलता है,तो विश्व की कोई भी शक्ति उसे पीछे नहीं धकेल सकती । चक्र से अभिप्राय भगवान विष्णु का सुदर्शन चक्र भी है ।[4] गुरु जी ने जहाँ एक ओर अकाल पुरुष को चक्रवती सम्राट के समान स्वीकार किया है,उसी प्रकार जैन और बौद्धों की भान्ति उसे धर्म अवतार का महत्व प्रदान करने के लिए चक्रवती शब्द का प्रयोग किया है ।

1- दशम ग्रन्थ,पृष्ठ 1। (2) वही,पृष्ठ 10 ।
3- एनसाइक्लोपीडिया आफ रिलीजन एण्ड एथिक्स भाग।।।,पृष्ठ 336।
4- वही, पृष्ठ337 ।

43 चक्रवर्ती सर्व विजय का सूचक है । अकाल पुरुष दुष्टों का संहारक तथा सर्वत्र विजय प्राप्त करने वाला है इसलिए इस शब्द का विशेष महत्व है । विष्णु के सुदर्शन चक्र के समान सिक्ख सम्प्रदाय के शस्त्रों में चक्र का अत्यन्त महत्व है । चक्र शब्द चारों दिशाओं व काल चक्र का सूचक होने के कारण अकाल पुरुष की सर्वव्यापकता को भी सिद्ध करता है और काल चक्र को धारण करने वाला भी । इसलिए वह ब्रह्म, अकाल पुरुष अर्थात् कालातीत होता हुआ भी सृष्टि में व्याप्त होकर कालबद्ध व चक्रधारी या चक्रवर्ती हो जाता है ।

गुरु नानक देव ने `जपुजी ` के मूल मन्त्र में प्रभु को `निरवैरु ` कहा है पर गुरु गोविन्दसिंह ने ब्रह्म के दुष्ट संहारक रूप पर अधिक बल दिया है । वह प्रभु दुष्टों का, शत्रुओं का नाश करने वाला तथा प्रभु भक्तों की रक्षा करने वाला है :--

करुणालय है । अरिघालय है ।[1]
अरि गंजन है। रिपु तापन है ।[2]

ईश्वर का इतना दुष्ट दलन कटिबद्ध रूप भारतीय साहित्य में नया नहीं है । तुलसी के राम, सूर के कृष्ण शत्रु विनाशक और साधु पालक अवश्य है पर गुरु गोविन्द सिंह ने उक्त स्वरूप को और भी गहरा रंग दिया जो हिन्दी साहित्य में सर्वथा अद्वितीय है । ब्रह्म की निष्पक्षता व न्यायकारी वृत्ति धर्मावलंबियों के संरक्षणार्थ पक्षापात पूर्ण तो हो ही जाती है । पर दुष्टों का संहार करते हुए भी वे उन पर दया ही करते हैं। राम ने रावण को मार कर अपने अन्दर ही समाहित कर उसका उद्धार कर दिया था । यही उसकी कृपा है ।

बिम्ब और प्रतीक विधान :- प्रस्तुत रचना में अनेक बिम्बों के माध्यम से साधक अथवा पाठक के मानस पटल पर निराकार, अकथ्य और अनिर्वचनीय अकाल पुरुष की छाप लगाने का प्रयास किया गया है । जब कवि उसे `कोटि इंद्र इंद्राणि साह साहाणिगणिज्जे` कहता है, तो भक्त

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 9 ।
2- वही, पृष्ठ 10 ।

के सम्मुख सर्वशक्तिमान इन्द्र का बिम्ब प्रत्यक्ष हो उठता है जिसका वर्णन वेदों तथा पुराणों में किया गया है, जो स्वर्ग का एक छत्र सम्राट है तथा किसी को भी अपना साम्राज्य छीनने नहीं देता। कोटि इन्द्र इंद्राणि कह कर कवि ने उसकी महत्ता 'राजराजेस्वर' से भी अधिक कर दी है। साथ ही वह शाहों का शाह 'साहान साह' भी है, जो हमारे सम्मुख मुगल बादशाहों जैसे वैभवशाली बादशाहों का बिम्ब प्रस्तुत करता है। वह केवल शहंशाह ही नहीं चक्रवर्ती भी है 'चतर चक्रवरती चतर चक्र भुगते'। परन्तु कवि की कल्पना का वैचित्र्य हमें उस समय लगता है जब हम दो विरोधी बिम्बों को साथ साथ उपस्थित हुआ पाते हैं। एक ओर तो वह अकाल पुरुष 'राज राजेस्वर' है तो दूसरी ओर 'जोग जोगेस्वर' है। मानो उसने एक योगी का रूप धारण करके विभूति रमा रखी हो। गीता के भगवान श्री कृष्ण जिस पर योद्धा होते हुए भी योगिराज हैं उसी प्रकार का बिम्ब पाठक के हृदय पर अकाल पुरुष का उपस्थित होता है। परन्तु वह प्रभु केवल 'राजराजेस्वर' अथवा 'योगि-राज' ही नहीं है, वह नृत्यों का नृत्य और नादों का नाद भी है। उसे इसीलिए 'नटवर' और 'लीलाधर' की उपाधि से विभूषित किया गया है परन्तु 'नृत्त नृत्ते' और 'नाद नादे' शब्द अपनी स्वभाव सुलभ सरलता के कारण साधारण जनता के लिए अधिक अभिव्यंजना पूर्ण है। कवि जब उसे 'चंद्र चंद्र' और 'भान भाने' कहता है तो पाठक की आँखों के सम्मुख उसका अनन्त प्रकाश नाचने लगता है। इसी प्रकार वह एक अस्त्रशस्त्रधारी योद्धा भी है--' नभो ससत्र पाणे। नभो असत्र भाणे'। उसका ओज अखण्ड है। वह काल, मृत्यु, जरा काय से आमूल पृथक् हैजो 'क्रूर करमा' है जिसकी महत्ता से भक्त का हृदय आतंकित होने लगता है।

कवि ने पाठक के हृदय पर अकाल पुरुष के ऐसे स्वरूप को सफलता पूर्वक सम्प्रेषित किया है, जिसकी दया से द्रवित, जिसकी महत्ता से प्रभावित होकर भक्त उस प्रभु के चरणों में अपना सर्वस्व न्योछावर करने के लिए तत्पर हो जाता है। उसे अकाल पुरुष एक अपरिवर्तनीय आलम्बन दीख पड़ता है,, जिसकी शरण में जा कर वह सांसारिक विभीषिकाओं और जागतिक चिन्ताओं से परित्राण प्राप्त कर सकता है। कवि ने भाषा में अर्थग्राही शब्दों एवं मिथकों

का विन्यास इस प्रकार किया है कि उस अकालपुरुष का कोमल व उदार तथा विकराल रूप साथ ही साथ उसके हृदय को प्रभावित करता है। वह एक ओर तो 'रोज़ी दहिंद' 'राज़क रहीम', 'करम करीम' तथा सब को पोषित करने वाला है तथा दूसरी ओर 'कालानकाल' और 'क्षत्रम छत्री' है। इस प्रकार के के अर्थग्राह्य शब्द भी गुरु जी की भाषा में शब्दों के परम्परागत बिम्बों को उद्घाटित करने में असमर्थ हुए हैं।

उपनिषदों में ब्रह्म के स्वरूपाख्यान पर पन्ने के पन्ने लिखे गए हैं। ऋषि ब्रह्म के एक स्वरूप का आख्यान करता है और फिर अपने कथित लक्षण में उसकी सीमा न समाती देख उसका दूसरा, तीसरा, चौथा लक्षण करता है पर सब के अन्त में उसे यही कहना पड़ता है कि वह ऐसा नहीं है, ऐसा नहीं है। न इति, नेति। इस प्रकार 'नेति' शब्द ब्रह्म की अनिर्वचनीयता का द्योतक है, अभाव का नहीं। उसकी अनिर्वचनीयता के लिए यह 'नेति' शब्द एक महत्व पूर्ण प्रतीक बन चुका है और उसके स्वरूप वर्णन में अपना असामर्थ्य दिखाने के लिए इसका प्रयोग होता है। दर्शन के इस प्रसंग से परिचित पाठकों के लिए यह शब्द पूरे संवाद का द्योतक बन आता है।

त्रिभुवन महीप सुर नर असुर नेत नेत बन त्रिण कहत।
तब सरब नाम कथै कवन करम नाम बरनत सुभत।[1]

यहाँ 'नेत' शब्द उसी प्रसंग का उत्थापक है। जापु में कवि ने ब्रह्म वाचकत्व के लिए अनेक प्रतीकात्मक शब्दों का प्रयोग किया है अकाले, कृपाले, अरूपे, अजूने आदि शब्द परम्परागत हैं। अभेखे, अलेखे, अकार, अजाए आदि शब्द परम्परागत शब्दों के तद्भव रूप हैं तथा सरबगउणे, सरब भउणे, सभस्तुल निवासी आदि नए घड़े हुए प्रयोग हैं। इनमें से प्रत्येक शब्द में संबंधित कथानक को उठा देने की सामर्थ्य है।

भारतीय दृष्टिकोण से :-

रस :-

'जापु' विशुद्ध भक्ति प्रधान रचना है। प्रारम्भ से लेकर अन्त तक इसमें एक मात्र भक्ति रस की ही प्रधानता है।

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 1।

'जापु' का आलम्बन निर्गुण अकाल पुरुष है। आद्यान्त उसके विभिन्न नामों का स्मरण, कीर्तन ही इसमें किया गया है। उस प्रभु के अकाल कृपालु अरुप अभेख (अवेश) अनूप तथा अलेख रूप को कवि ने बारम्बार नमस्कार किया है।

नमसत्वं अकाले। नमसत्वं क्रिपाले।
नमसतं अरूपे। नमसतं अनूपे।[1]
नमसतं अभेखे। नमसतं अलेखे।
नमसतं अकाये। नमसतं अजाए।[2]

अकाल पुरुष के ऐसे अलौकिक रूप का गुणगान, उसकी कृपा तथा दया की चर्चा सम्पूर्ण रचना में व्याप्त है। वह प्रभु सर्वस्वदाता, सर्वज्ञानी, सब का प्राण तथा सर्वरक्षक है :--

सरब दाता। सरबं गिआता।[3]
सरबं प्राणं। सरबं त्राणं।[4]

वह अकाल पुरुष सब प्रकार की क्रिद्धिसिद्धि का दाता, अछेदी अभेदी अनाम तथा अकाम है। कृपा का स्वरूप तथा कुकर्मों का नाशक है :--

सदा सरबदा सिंघ दाता दइआल।
अछेदी अभेदी अनामं अकामं।
समतोपराजी सभसतसत धामं
क्रिपालं सरूपे कुकरमं प्रणासी[5]।।

वह प्रभु सृष्टिकारक है तथा फिर इसे अपने में ही समाहित कर लेता है :---

एक भूरति अनेक दासन कीन रूप अनेक।
खेल खेल अखेल खेलन अंत को फिर एक।[6]

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 1। (2) वही, पृष्ठ 3।
3- वही, पृष्ठ 4। (4) वही, पृष्ठ 4।
5- वही, पृष्ठ 4। (6) वही, पृष्ठ 5।

47

इस प्रकार कवि ने उस प्रभु के महान कार्यों का अनेक प्रकार से स्मरण किया है ।देव रति स्थायी भाव इससे उद्दीप्त होता है । कवि को उस महान् प्रभु पर अटूट विश्वास है, उसकी सर्वव्यापकता वह इन शब्दों में व्यक्त करता है :--

जैले है थले है ।
अभीत है । अभे है ।[3]

वह उस प्रभु के सत् चित और आनन्द स्वरूप पर मुग्ध हो जाता है --

सदा सचदानंद सरब प्रणासी ।
अनूपे अरूपे सभसतूल निवासी ।[2]

उसके अस्त्र शस्त्रधारी तथा कुकर्म विनाशी स्वरूप को देख कर आतंक का संचरण भी होता है :--

नभो ससत्र पाणे । नभो असत्र भाणे ।[3]
नभो नित्त नाराइणे कूरे करमे ।[4]

`भय बिनु होत न प्रीति` के आधार पर यह कहा जा सकता है कि यदि उस प्रभु का यह संहारक रूप न हो तो मनुष्य को उस प्रभु के प्रति अटूट आस्था हो ही नहीं सकती ।इस प्रकार यहाँ भय देवरति स्थायी का सहायक है ।

इस प्रकार विभाव, अनुभाव और संचारी भावों से देवरति स्थायी भाव पर्याप्त मात्रा में पुष्ट हो रहा है ।जिससे एक विशेष प्रकार की तल्लीनता उत्पन्न होती है ।जाप का उद्देश्य ही इष्ट देव में तल्लीनता उत्पन्न करना होता है । `जापु` से यह परिपाक पर्याप्त मात्रा में भक्ति रस का उत्पादक सिद्ध हुआ है ।

भाषा शैली :- भाषा भावों की वाहन है । कवि अपनी भावनाओं के अनुरूप ही भाषा का प्रयोग करता है ।`जापु` की भाषा निस्सन्देह ब्रज है परन्तु कवि ने संस्कृत के तत्सम और तद्भव रूपों के साथ फारसी और पंजाबी भाषा का प्रयोग किया है,वह `जापु` की भावना के तनिक भी प्रतिकूल नहीं लगती ।

कवि ने जप के अनुकूल ही छोटे छोटे विशेषणों का प्रयोग किया है ।`अ` `अन` तथा `आ` निषेधार्थक अव्यय लगा कर कवि ने नवीन विशेषणों का निर्माण

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 3 । (2) वही , ।
3- वही० । (4) वही , ।

किया है । उदाहरणार्थ `अभजबे ` शब्द को ही लीजिए `अ` संस्कृत प्रत्यय तथा `मजहब ` (फारसी) का सरल रूप `भजबे ` मिला कर कवि ने `अभजबे ` शब्द के माध्यम से जो भाव व्यक्त किया है,वह `अधर्मे ` अथवा इसी प्रकार के अन्य शब्द द्वारा प्रकट नहीं किया जा सकता था :-- ` नभसतं अभजबे नभसतसतु अजबे ।`[1] इसी प्रकार अकाले, अरूपे, अनूपे, अनरंज, अनभंभ , अनटूट, अनछुट आदि ऐसे विशेषण हैं जिनके द्वारा कवि ने मनोनुकूल भाव व्यक्त किए हैं ।

कवि ने केवल फारसी शब्दों के साथ संस्कृत प्रत्यय लगाए हों ऐसी बात नहीं इससे विरोधी प्रवृत्ति भी `जाप् ` में दिखाई देती है ।राज (संस्कृत) को फारसी की बहुवचन सूचक विभक्ति `आन ` के साथ समस्त पद `राजान राज` (राजाओं का राजा) प्रयुक्त किया है ।इसी प्रकार`भानान भान,`'देवानदेव' `बालान बाल,`'इंद्राण इंद्र ` प्रभृति समस्त पद जैसे शब्दों का निर्माण कवि ने किया है ।

संस्कृत शब्दों के साथ अरबी का `उल ` प्रत्यय लगा कर भी कवि ने नवीन शब्द निर्मित किए है :-- सदैवुल, अनेकुल ,साबुल, हमेशुल आदि ।किताब से `कतेब ` यद्यपि विकृत रूप है परन्तु कुरान के पर्याय के रूप में जिस अर्थ का ध्वनन `कतेब `शब्द से होता है वह न तो कुरान से हो सकता है और न किसी अन्य शब्द से ।

` देव भेव न जानहा जिह बेद अउर कतेब`[2]

कवि ने केवल अरबी फारसी प्रत्ययों या शब्दों का ही प्रयोग नहीं किया अपितु कई छन्द बिलकुल ही फारसी शब्दावली में रचे हैं :--

कि रोजी रजाके ।रहीमे रिहाके ।
कि पाक विरुब है कि गैबुल गैब है।[3]
कि हसनुल बजू हैं । तमामुल खुजू है ।
हमेशुल सलामे।सलीखत मुदामे।[4]

गुरु गोविन्दसिंह के शिष्यों में अनेक मुसलमान भी थे।पीर बुद्धशाह तथा

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ८ । 3- दशम ग्रन्थ ,पृष्ठ ६ ।
2- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ७ । 4- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 7 ।

उसके पुत्र पौत्रों का अपने अनुयायियों सहित भंगानी युद्ध में भाग लेना ऐतिहासिक तथ्य है।[1] फारसी के ये शब्द मुसलमान अनुयायियों और इस्लाम धर्मावलंबी जनता के लिए अपनी गरिमा दिखलाने में अवश्य ही प्रभावी सिद्ध हुए होंगे ।

'जापु'की भाषा ओज तथा प्रसाद गुण मिश्रित है। निम्नांकित पंक्तियों में यदि ओज गुण की प्रधानता है ---

अचल मूरति अनभउ प्रकास अमितोज कहिज्जै ।
कोटि इंद्र इंद्राणि साह साहाणि गणिज्जै ।[2]

तो 'नभसतं अकारं ।नभसतं अधारं ।
नभसतं अनामं ।नभसतं अधामं ।।[3]

में पंक्तियाँ प्रसादगुण युक्त हैं ।

'जापु'की भाषा में अद्भुत ध्वन्यात्मकता है ।एक ही वर्ण या शब्द से निश्चित लय में उपस्थित होने के कारण नाद सौन्दर्य में अद्भुत वृद्धि हुई है :--

नभसत अरूपे । नभसतं अनूपे ।
नभसतं अभेखे । नभसतं अलेखे ।
नभसतं अकार । नभसतं अजार ।
नभसतं अनामे । नभसतं अठामे ।[4]

इन पंक्तियों में कवि ने 'नभसतं' की पुनरावृत्ति तथा अ,प, ख, ए, ज,म आदि वर्णों के बार बार प्रयोग से जो लय और संगीतात्मकता उत्पन्न की है वह अवश्य ही प्रशंसनीय है।इसी प्रकार एक ही साँचे में ढले ,एक ही वजन के शब्दों के प्रयोग द्वारा भी कवि ने सम्प्रेषण दक्षता में वृद्धि की है :--

सरबं हंता । सरबं गंता ।
सरबं खिआता । सरबं गिआता ।
सरबं हरता । सरबं करता ।
सरबं प्राणं ।सरबं त्राणं ।
सरबं करमं ।सरबं धरमं ।
सरबं जगता । सरबं मुकता ।[5]

1- डा० प्रसिन्नी सहगल,गुरु गोविंदसिंह और उनका हिन्दी काव्य,पृष्ठ 63,
2-दशग्रन्थ,पृष्ठ1, (3) वही,पृष्ठ 1(4) वही,पृष्ठ 1 (5) वही,पृष्ठ 8।

यहां हंता गंता, खिआता गिआता, हता कता, प्राणं,त्राणं, कामं धामं, जुगता भुक्ता आदि शब्द युग्मों के प्रयोग से कवि ने अद्भुत सौन्दर्य की सृष्टि की है । शब्द ,शब्दांश तथा वर्णों की पुनरावृत्ति अपनी लय और संगीतात्मकता के कारण भक्त मानस में तल्लीनता का भाव उत्पन्न करती है ।

जापु की भाषा अनुस्वार बहुला है।कवि ने सभी प्रकार के शब्दों के साथ अनुस्वार का प्रयोग किया है । `पृथ्वीराज रासो ` में भी यही प्रवृत्ति पाई गई है ।आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसके कारणों का विवेचन करते हुए लिखा है---` वस्तुत: अपभ्रंश में दो प्रकार से अनुस्वार जोड़ने के उदाहरण मिल जाते हैं-- १-मूल संस्कृत में उस पद के साथ अनुस्वार रहा हो और छन्द की पाद पूर्ति के लिए उसकी आवश्यकता अनुभव की गई हो ।पावर्ती हिन्दी में `परब्रह्म ` जैसे शब्दों में यही प्रवृत्ति है । (८) अथवा छन्द में एकाध मात्रा की कमी रह गई हो और उसके लिए द्वित्व वाला विधान बहुत अच्छा नहीं दीख रहा हो जैसेणायं (सभान[1]` जापु की भाषा में अनुस्वार का प्रयोग भाषा में संस्कृत की गमक देने तथा छन्द निर्वाह हेतु ही हुआ है।अनुस्वार के कारण तुक पूर्ण होता है और उससे संगीतात्मकता भी उत्पन्न होती है,जो भक्त के हृदय में एक विशेष प्रकार का प्रभाव उत्पन्न करती है ।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने कबीर को `वाणी का डिक्टेटर`कहा है[2] । परन्तु कबीर से भी अधिक यह उक्ति गुरु गोबिन्द सिंह पर चरितार्थ होती है जिन्होंने शब्दों के द्वारा मनचाहा अर्थ-प्रकट कराया है ।

`जापु ` की भाषा सर्वथा निर्दोष नहीं कही जा सकती ।`जापु ` में शब्दों एवं वाक्यों की पुनरावृत्ति अनेकस्थलों पर हुई है ।`नमोराज राजेस्वर ` `नमो इंद्र इंद्र ` ,`अजिता जित है ` `करुणालय हैं ,` `करीमुलकमाल है ` आदि ऐसे वाक्य हैं जिनका प्रयोग `जापु ` में एक से अधिक स्थलों पर एक ही अर्थ में हुआ है ।परन्तु जपनीय होने के कारण यह पुनरावृत्ति अखरती नहीं। बार बार प्रभु का गुणगान साधक को शक्ति प्रदान करता है सम्भवत: इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए कवि ने वाक्यों की पुनरुक्ति की है ।इसी प्रकार विदेशी भाषा के शब्द

1- आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी-हिन्दी साहित्य का आदिकाल,पृष्ठ 45 ।

2- आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी,कबीर,पृष्ठ 216 ।

और देशी प्रत्यय या देशी शब्द और विदेशी प्रत्यय का गठबन्धन जो आज के आचार्यों द्वारा भाषा का गम्भीर दोष स्वीकार किया गया है, उस समय में एक फैशन बन गया था। इसकी अवतारणा अमीर खुसरो ने की थी और रीति काल पर्यन्त यह परम्परा चलती रही है। यद्यपि कुछ लोग ऐसी कलात्मकता (भले ही उपहास के लिए) आज भी दिखाया करते हैं। 'वंदे इंण्डियाम्। सुलाफनी सुभघुटाकिनीय नामक गीत सन् अड़तालीस के आस पास छात्र वर्ग में बड़ा लोकप्रिय रह चुका है। इस पृष्ठभूमि में गुरु गोविन्द सिंह के 'पर परम ईश है। 'सभस्तूल अदीस है। अदेसूल अलेख है। हमेसूल अभेख है।[1]' आदि पद्य आधुनिक दृष्टि में कितने भी बेतुके क्यों न दिखाई देते हों किन्तु अपने लेखन काल में ये न केवल निदोंष अपितु विशिष्ट कलात्मक माने जाते थे। आज की भाषा में हम इसे संकर भाषा कह सकते हैं।

'जापु' में ऐसे शब्द भी देखने को मिल जाते हैं जिन पर पंजाबी का स्पष्ट प्रभाव है। अभितोजि में अन्तिम इकार ऐसा ही है। पंजाबी में सत को सति बोलते हैं। इंद्राण, साहाण, कहण, आदि का णकार भी पंजाबी प्रभाव का सूचक है। इस प्रकार जापु की ब्रजभाषा कहीं पंजाबी भाषा के दबाव से और कहीं फारसी और अपभ्रंश के अस्वाभाविक मेल से विकृत हुई है।

'जापु' की शैली स्तोत्रात्मक है। स्तोत्र जैसी ही यहां गति और प्रवाह है। लम्बे स्तोत्रों में जिस प्रकार बीच बीच में छन्द परिवर्तन होता है उसी भांति जापु में भी छन्दों का परिवर्तन होता रहा है।

छन्द विधान :- 'जापु' की सम्प्रेषण शक्ति बढ़ाने में जहां बिम्बों ने तथा बिम्ब धर्मी शब्दयोजना ने अत्यधिक महत्वपूर्ण कार्य किया है वहां छन्दों का महत्व भी कुछ कम नहीं कहा जा सकता। छप्पय, भुजंगप्रयात, चांचरि, चरपट, मधुभार, रुआल, भगवती, रसावल, हरिबोलमना तथा एक अक्षरी जितने भी छन्दों का प्रयोग 'जापु' में किया गया है वे सभी छन्द 'जापु' की प्रकृति के अनुकूल हैं, जप के लिए सहायक हैं। छन्दों के वैविध्य तथा बीच बीच में परिवर्तन से 'जापु' की जपनीय गति प्रभविष्णुता तथा संप्रेषणीयता निस्संदेह

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 3।

बद्धी है । `जापु` के छन्दफौजी मार्च वाले हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि `जपुजी` के होते हुए भी `जापु` की रचना केवल सैनिक आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए ही की गई हो । जीवन यदि एक संग्राम है, तो `जापु` उस संग्राम के लिए कटिबद्ध होने के लिए एक अभ्यास है, जिसकी ओज पूर्ण तीव्र गति स्वयं ही शक्ति प्रदान करती है ।

`जापु` के छन्दों में कवि ने लय और तुक का विशेष ध्यान रखा है। जिसे देख कर यह कहा जा सकता है कि इस रचना का अवश्य ही समूह पाठ होता रहा होगा। इसकी गति में आरोह-अवरोह का सुन्दर निर्वाह हुआ है ।

नभसतं अभेखे । नभसतं अलेखे ।
नभसतं अकाए । न भसतं अजाए ।[1]

धीमी गति से चलते इस छन्द के पश्चात् कवि के स्वर की गति तीव्र हो जाती है, `अरूप है। अनूप है। अजे है अभे हैं।`[2] यही नहीं आगे चल कर तो कवि केवल उस प्रभु को विभिन्न नामों से ही पुकारता है मानो वह प्रभु उसके सम्मुख खड़ा हो--` अजै। अलै । अभै। अबै।`[3] छन्दों में क्षिप्र गति से होने वाले थे परिवर्तन भक्त की उकताहट को दूर करने में विशेष रूप में सहायक सिद्ध हुए हैं। इनका निरन्तर पाठ करता हुआ भी वह थकता नहीं

गुरुमुखी लिपि के कारण छन्दों में कहीं कहीं दोष आगए हैं । चार यगणों के योग से बनने वाले भुजंगप्रयात छन्द को देखिए :--

नमो सरब भाने । सभसती निधाने ।
I S I I I S S III S I S S
? ?

इसके स्थान पर चाहिए था :--

नमो सर्व भाने । सभस्ती निधाने ।
I S S I S S I S S I S S
य य य य

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 1। (2) वही, पृष्ठ 2 ।
(3) ,, ,, 2 ।

इसी प्रकार चांचरी छन्द में

न सतं । न मितं । न भमं । न मितं -॥१९॥

इसके स्थान पर चाहिए था :--

न सत्रं । न मित्रं । न भमं । न मित्रं ।

गुरुमुखी लिपि के कारण आए ये दोष केवल जापु में ही नहीं अपितु सम्पूर्ण दशमग्रन्थ में विद्यमान हैं।

ये दोष उन स्थानों पर भी वर्तमान है जहां गुरुमुखी लिपि की चोट नहीं पड़ी ।

हरीअं । करीअं । निरनामे । अकामे ।१५/-- ५४

यहां `निरनामे के स्थान पर `अनामे` शब्द अनुकूल रहता और वह गुरुमुखी लिपि में भी ऐसे ही लिखा जाता ।

अलंकार विधान :- `जापु` में शब्दालंकारों में अनुप्रास तथा अर्थालंकारों में मालोपमा, रूपक, विरोधाभास, उल्लेख और रूपकातिशयोक्ति का विशेष प्रयोग हुआ है।

अनुप्रास :- जापु में छेकानुप्रास, वृत्यानुप्रास, श्रुत्यानुप्रास और अंत्यानुप्रास सभी दृष्टिगोचर होते हैं।

छेकानुप्रास :- चक्र चिहन अरु बरन जात अरु पात नहिन जिह ।[1]

नभो काल कालं।[2]

यहां च च त त , का - का की सकृत आवृत्ति से पद्य के सौन्दर्य में वृद्धि आई है ।

वृत्यानुप्रास :-

रूप रंग अरु रेख भेख कोऊ कहि न सकत किह ।[3]

यहां `र` और `क` की आवृत्ति वृत्यानुप्रास का निदर्शन है यद्यपि ख की आवृत्ति के आधार पर छेकानुप्रास भी विद्यमान है।

श्रुत्यानुप्रास :-

नभो पान पानं। नभो वाद वादं ।[4]

यहां ओष्ठ्य व्यंजनों `प` और `ब` की आवृत्ति हुई है ।

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 1 । (2) वही, पृष्ठ 3 (3) वही, पृष्ठ 1 ।
(4) वही, ,, 3 ।

54 अन्त्यानुप्रास :-

सर्वान्त्यानुप्रास :-

कृपालं सरूपे कुकर्मं प्रणासी ।
सदा सरबदा सिध सिधं निवासी ।[1]

समान्त्यानुप्रास :-

इंद्राण इंद्र । बालान बाल ।
रंकान रंक । कालान काल ।[2]

सम विषमान्त्यानुप्रास :-

गुन गन उदार। महिमा अपार ।
आसन अभंग ।उपमा अभंग।[3]

अर्थालंकार :-

मालोपमा :- कि हुसनल वजू है ।तमामुल रुजू हैं।
हमेसुल सलामे। सलीखत मुदामे ।[4]

यहाँ एक अकाल पुरुष के अनेक फारसी उपमान प्रस्तुत किए हैं ।

रूपक :- अचल मूरति अनभउ प्रकास अमितोज कहिजे ।
कोटि इंद्र इंद्राणि । साहि साहरिण गणिजे।।[5]

यद्यपि अनेक उपमानों का प्रयोग इन पंक्तियों में भी है किन्तु यहाँ उपमेय में उपमानों का अभेदारोप है। अत: ऐसे स्थल रूपक या रूपक माला के क्षेत्र में आते हैं ।

उल्लेख :- एक मूरति अनेक दरसन कीन रूप अनेक ।
खेल खेल अखेल खेलन अंत को फिर एक ।[6]

यहाँ उस एक अकाल पुरुष का अनेकधा उल्लेख होने से उल्लेख अलंकार है।

विरोधाभास:-

नमो जोग जोगे । नमो भोग भोगे ।[7]
नमो सरब करता। नमो सरब हरता ।[8]

1- दशम ग्रन्थ,पृष्ठ 4 (2) वही,पृष्ठ 5 ।(3) वही, पृष्ठ 5 ।(4) वही,पृष्ठ 7।
5- वही, पृष्ठ 1 । (6)वही, पृष्ठ 51 (7) वही,पृष्ठ 8 ।(8) वही,पृष्ठ 2।

जोग जोगे-- भोग भोगे तथा सर्वकर्ता -सर्वहर्ता में विरोध का आभास प्रतीत होने से विरोधाभास अलंकार है।

'जापु' में कवि गुरु गोविन्दसिंह ने अकाल पुरुष का वर्णन इस ढंग से किया है, मानो वह अकाल पुरुष उनके सम्मुख खड़ा हो और वे उसे नमस्कार कर रहे हो। जिस भाषा के शब्द उनकी वाणी पर आते हैं वे उन्हीं से उस प्रभु को सम्बोधित करते हैं। पाठक को यह रचना पढ कर ऐसा विश्वास हो जाता है कि गुरु जी ने उस अकाल पुरुष का साक्षात्कार कर लिया है और यदि वह भी 'जापु' का जप करें तो उस अकाल पुरुष को पालेगा। इसी में 'जापु' की सफलता है।

अकाल उस्तुति

परिचय :- सिक्ख सम्प्रदाय में जापु के पश्चात गुरु गोविन्दसिंह रचित 'अकाल उस्तुति' को विशेष गौरव मिला है। 'अकाल उस्तुति' यह नाम इस रचना का सर्वसम्मत नाम है। परन्तु प्रतीत कुछ ऐसा होता है कि यह नाम गुरु गोविन्दसिंह जी द्वारा नहीं दिया गया यदि ऐसा न होता तो हस्तलिखित विभिन्न प्रतियों में इसका नाम भेद न बन पाता।[1] 'अकाल उस्तुति' यह नाम भाई मनीसिंह वाली प्रति में दिया हुआ है और गुरु काव्य के प्रति उनकी मान्यता के कारण यही नाम सर्वमान्य बन गया है। 'अकाल उस्तुति' या 'अकाल पुरुष की स्तुति' इन नामों में केवल इतना ही अन्तर है कि पहले नाम में दूसरे नाम के मध्यम पद का लोप है। अर्थ में कोई भेद नहीं है।[2] ग्रन्थ के आरंभिक वाक्य 'अकाल पुरुष की रक्षा हमने' तथा अन्तिम पंक्ति 'उसतुति सम्पूरण' होने के कारण प्रारंभिक तथा अन्तिम पदों को मिला कर इस रचना का नाम 'अकाल उस्तुति' मान्य हुआ।[3]

भाई रणधीरसिंह ने 'अकाल उस्तुति' के रचना काल को दो भागों में विभक्त किया है। उनके अनुसार गुरु गोविंद सिंह ने आनन्दपुर में इसकी रचना की तथा 11 से 200 तक के छन्द सम्वत् 1743 से 55 के बीच रचे गए। 200 के पश्चात् आने वाले सभी छन्द विचित्र नाटक की उत्थानिका (भूमिका) के रूप में संवत् 1755 के अन्तर रचे गए। इसकी प्रारम्भिकदस चौपाइयां 'विचित्र नाटक' पूर्ण करने के उपरान्त ज्येष्ट मास 1755 में रची गईं। डा० तारनसिंह का विचार इसके विपरीत है।

1- भाईमणिसिंह वाली प्रति में अकाल उस्तुति, पटना वाली प्रति में उस्तुति श्री अकालजी की, संगरूर वाली प्रति में उतारा खासे दसखत अकालपुरुख की उस्तुति तथा पटियाला वाली प्रति में उस्तुति अकाल जी की नाम इस रचना का दियागया है। (दसमग्रन्थ रूप तेरस-डा०तारनसिंह, पृष्ठ73)

2- वही, पृष्ठ73

3- भाई रणधीरसिंह, शब्द भ्रांति, पृष्ठ 85।

उनके मत से यह रचना सम्वत् 1755 तक लिखी जा चुकी थी ।वे इसे दो सभ्यों में लिखी हुई न मान कर एक ही सभ्य की रचना स्वीकार करते हैं ।[1] इस रचना में कुल 878 छन्द हैं अन्तिम छन्द अधूरा है ।इसलिए इसमें कुल दो सौ साढे इकहत्तर छन्द कहे जा सकते हैं।

सम्प्रेषण पश्चिमी दृष्टि से :-

प्रतिपाद्य :-

क्रम की दृष्टि से भी 'अकाल उस्तुति' जापु से आती रचना है ।धर्म में दो बातें मुख्य होती हैं ।प्रथम इष्ट का स्मरण चिन्तन तथा द्वितीय उस इष्ट की प्रसन्नता के लिए उसके द्वारा किए गए कार्यों का स्तवन ।'अकाल उस्तुति' में इन दोनों ही महत्त्वपूर्ण बातों का वर्णन है।गुरु जी ने अपना इष्ट अकाल पुरुष को स्वीकार किया और उसी की व्याख्या इस रचना में की है।उस इष्टदेव अर्थात् भगवान को प्रसन्न करने के लिए सभी मनुष्य जो अलग अलग कर्म करते हैं, उनका गम्भीर विश्लेषण करते हुए अन्त में समस्त मानव समूह के लिए प्रेम एवं विश्वबन्धुत्व की भावना के पोषण को सर्वोत्तम धर्म स्वीकार किया गया है ।

'एक ओंकार' का महत्त्व भारतीय मनीषी प्राचीन काल से ही स्वीकार करते आए हैं।ओ३म् ' यह पद तीन वर्णों से मिल कर बना है 'अ,' उ' 'म ' । ये तीनों ध्वनियां मानवोच्चरित सभ्य ध्वनियों का प्रतिनिधित्व करती हैं ।अ अवृत्ताकार स्वर ध्वनि है,उ वृत्ता कार स्वर तथा म नासिक्य ध्वनि भी है और व्यंजन भी।तीनों अथवा चारों प्रकार की ध्वनियों का प्रतिनिधित्व' ओ३म' पद में हो गया है।इसलिए ओ३म शब्द -ब्रह्म का प्रतीक बन कर ब्रह्म का ही श्रेष्ठ प्रतीक बन गया है। अ, उ, म ये तीनों ध्वनियां क्रमश: विष्णु शिव और ब्रह्मा इन तीन शक्तियों की एकता का भी प्रतिनिधित्व करती हैं :--

अकारो विष्णु रुद्रिष्ट उकारस्तु महेश्वर: ।
मकारस्तु स्मृतो ब्रह्मा प्रणवस्तु त्रयात्मक: ।[2]

ब्रह्म के ये तीनों रूप क्रमश: सृष्टि का पालन संहार एवं उत्पत्ति के प्रतीक हैं ।ब्रह्म में ये तीनों ही शक्तियां विद्यमान हैं।उसे ओ३म इसीलिए कहा गया है ।

1- डा० तारनसिंह,दसम ग्रन्थ रूप ते रस,पृष्ठ 74 ।

2- वी०एस० आप्टे, दी प्रैक्टीकल संस्कृत इंगलिश डिक्शनरी,पृष्ठ11 ।

कठोपनिषद् ` में भी ओ३म को परब्रह्म का ही प्रतीक माना गया है --

एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम् ।
एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत्।

एतदालम्बनं श्रेष्ठ मेतदालम्बनं परम् ।
एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्म लोकेमहीयते ।।[1]

इसी प्रकार श्वेताश्वेतरोपनिषद् में ओ३म् के जप को हृदय में स्थित रहने वाले परमात्मा के साक्षात्कार का सब से प्रमुख साधन माना गया है --

वह्नेर्यथा योनिगतस्य मूर्तिर्नदृश्यते नैव च लिंगनाश:
सभ्रय स्वेन्धनयोनिगृह्यस्त द्वोभयं वै प्रणवेन देहे।[2]

श्रीमद्भगवद्गीता में भी ओ३म् के महत्व का प्रतिपादन है--

ओमित्येकाक्षर ब्रह्म व्यवहरन्मामनुस्मरन् ।
य: प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमांगतिम् ।।[3]

मध्यकालीन भक्ति साधना के प्रमुख कवि कबीर के शब्दों में भी ओ३म ही लखने योग्य रहा है ।

ओ अक्षर आदि में जाना ।
लिखि और मेटै ताहि न माना ।
ओ अक्षर लखे जो कोई ।
सोई लखा मेटना न होई ।

गुरु नानकदेव जी ने `जपुजी ` के मूलमन्त्र में उस ब्रह्म को -- `ओंकार` कहा है:--

`ओंकार कर्ता पुरख निरभय निरवैर अकाल मूरति अजोनि सभं `।

इसी प्रकार प्रस्तुत रचना `अकाल उस्तति` के प्रारंभ में गुरु गोविन्दसिंह ने उस ब्रह्म को `ओंकार ` कह कर ही प्रणाम किया है।

प्रणवो आदि एकंकारा ।
जलथल महीअल की--ओ पसारा ।
आदि पुरुख अबगत अविनासी
लोक चत्र दस जोति प्रकासी ।[4]

1-कठोपनिषद(1.,2,16,17)
2- श्वेताश्वेतरे उपनिषद(1-13) ।
3- गीता
4- दशम ग्रन्थ,पृष्ठ 11 ।

गुरु नानक द्वारा वर्णित ब्रह्म की ही भाँति गुरु गोविंदसिंह का ब्रह्म भी निराकार और निर्गुण है। वह अनादि अजन्मा, अविगत तथा अविनाशी है। उसकी कोई रूपरेखा नहीं।

अलख रूप अरु अभेखा, राग रंग जिह रूप न रेखा।
बरन चिह्न समहूं ते नयारा आदि पुरख अद्वै अबिकारा।।[1]

उसका न कोई मित्र है न शत्रु, न माता न पिता और न कोई भाई बन्धु ही। वह काल से रहित है। इसीलिए वह अकाल है।

काल रहत अकाल सरूपा।
अलख रूप अबगत अवधूता।।[2]

वह निष्कलंक है, कर्म रहित है, फिर भी सब प्रकार के कर्म धर्म में प्रवीण है।

अकलंक रूप अपार।
सभ लोक सोक बिदार।
कल काल करम बिहीन
सभ करम धरम प्रबीन।।[3]

वह प्रभु सब प्रकार की ऋद्धि सिद्धि का दाता है फिर भी उसे जाना नहीं जा सकता। वह कहाँ रहता है? क्या उसका वेष है कुछ भी तो नहीं कहा जा सकता।

नहीं जान जाइ कछू रूप रेखं।
कहा बास ताको फिरै कउन भेखं।
कहा नाम ताको कहा के कहावै।
कहा के बखानो कहे मै न आवै।।[4]

वह अकाल पुरुष सभ प्रकृति का स्वामी कृपा का भंडार द्वैत से भिन्न, तत्वों से परे, निर्भय महानदाता तथा दुःखदोष रहित है।

करता करीम कादर क्रिपाल।
अद्वै अभूत अभै दिआल।
दाता दुरन्त दुख दोख रहत।।[5]

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 11। (2) वही, पृष्ठ 11।
3- वही, पृष्ठ 15। (4) वही, पृष्ठ 20।
(5) वही, पृष्ठ 33।

काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, रोग, शोक, भोग, भय से परे, देह विहीन पर सब से स्नेह करने वाला है।

काम न क्रोध न लोभ न मोह, न रोग न सोग न भोग न मै है।
देह विहीन सनेह सभी तन, नेह विरकत ओह अछै है।
जान को देत अजान को देत, जमीन को देत जमान को देहै।।[1]

वह ब्रह्म इस सृष्टि के कण कण में समाया हुआ है। हाथी से लेकर चींटी तक में जगत में जो कुछ दृश्य अदृश्य पदार्थ हैवह सभी में व्याप्त है। ये नाना रूपों को उसी ने धारण किया हुआ है। भिखारी भी वही है और वही दानी भी वही। कहीं वेद की रीति का संस्थापक है, तो कहीं उसका विरोधी वह त्रिगुणातीत भी है और सगुण भी।

कतहूं भिखारी ह्वै के मांगत फिरत भीख,
कहूं महादान ह्वै के मांगिओ धन देत हो।
.....
कहूं बेद रीत कहूं तासिउ बिपरीत
कहूं त्रिगुण अतीत कहूं सुरगुण समेत हो।[2]

कहीं देवता है तो कहीं दानव, कहीं यक्ष है तो कहीं गंधर्व कहीं हिन्दू होकर गायत्री जपता है तो कहीं मुसलमान होकर बांग देता है --

कहूं जछ गंधर्व उरग कहूं विद्याधर,
कहूं भए किन्नर पिसाच कहूं प्रेत हो।
कहूं ह्वै के हिन्दुआ गायत्री को गुप्त जप्यो,
कहूं ह्वै के तुरका पुकारै बांग देत हो।।[3] 8।12।।

अकालपुरुष निर्गुण है पर सरगुण समेत भी। इसीलिए ऐसा प्रतीत होता है कि गुरु गोविन्दसिंह जगत को माया नहीं मानते क्योंकि वह ब्रह्म सर्वत्र विद्यमान है।

जले हरि। थले हरि।। उरे हरि। बने हरि।।
गिरे हरि गुफे हरि।। छिते हरि नभे हरि।।[4]

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 35। (2) वही, पृष्ठ 12।
3- वही, पृष्ठ 12। (4) वही, पृष्ठ 16।

इतना सब होते हुए भी उस ब्रह्म को कोई जान नहीं सका। वह अव्यक्त है।वाणी में इतनी शक्ति ही नहीं कि उसका निरूपण कर सके । करोडों इन्द्र, ऋषि, मुनि, तपस्वी उस ब्रह्म का निरूपण ~~कर कर~~ करते थक गए और अन्त में उन्हें उसे 'नेति नेति' ही कहना पड़ा ।

ब्रहमा बिसन अंतु नहीं पाइओ ।
नेत नेत मुखचार बताइओ ।[1]

भले ही गुरु गोविन्द सिंह ने अकाल पुरुष को राम, रहीम करीम कृष्ण, ब्रह्मा, शिव, हरि ,चक्रधर, पद्मापति, नील कंठ आदि अनेक नामों से पुकारा ।पर वह उसे इन सब से भिन्न ही मानते हैं ।गुरु गोविन्दसिंह ने इन नामों का प्रयोग ऐतिहासिक या पौराणिक प्रसिद्धि के आधार पर न करके प्रतीक रूप में किया है ।पुराणों में वर्णित देहधारी अवतारों को वे अकाल पुरुष के समकक्ष नहीं समझते ।अत: अनेक स्थलों पर कवि ने अवतारवाद का खण्डन भी साथ साथ किया है।

एक शिव भए एक गए एक फेर भए ।
रामचन्द्र क्रिसन के औतार भी अनेक हैं।
ब्रह्म अरु बिसन केते बेद औ कुरान केते ,
सिद्धित समूह न कै हुइ हुइ बितए हैं।
मोनदी मदार केते अमनी कुमार केते,,
अंसा अवतार केते काल बस भए हैं ।
पीर और पिकाम्बर केते गने न परत ऐते।
भूम ही तेहुई कै कोर भूमि ही मिलए हैं।[2]

यहाँ पर पुराणों की यह वृत्ति भी दृष्टिगोचर होती है जिसमें कहीं शिवके समर्थकों ने शिवको ब्रह्मा और विष्णु से बड़ा कहा और विष्णु के समर्थकों ने विष्णु को शिव और ब्रह्मा से भी बड़ा बताया ।गुरु जी के मत इस जगत का कर्ता , पालक और संहारक अकाल पुरुष ही है ।

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 11 ।

2- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 13 ।

किते क्रिसन से कीट कोटि उपाए।
उसारे गढे फोरि मेटे बनाए ।
आधे अंभ आदि अंत अविनासी ।
परेअं परा परम पूरण प्रकासी ।।[1]

उसी ने अण्डज, उद्भिज , स्वेदज, जरायुज जगत का प्रसार किया है।

जिह अण्डज सेतज जेरजं ।रचि भूम अकास पताल जलं ।
रचि पावक पउन प्रचंडबली। बन जासु किओ फल फूल कली[2] ।

न केवल ये जीव अपितु करोडों इन्द्र और उपेन्द्र ब्रह्मा और रुद्र उसी ने बनाए और मिटाए हैं।चौदह लोकों का खेल उसी का रचाया हुआ है और इन लोकों को अन्त में वह अपने में ही लीन कर लेता है ।

कोटि इन्द्र उपइन्द्र बनाए ।
ब्रह्मा रुद्र उपाइ खपाए ।
लोक चतुर्दस खेल रचायो।
बहुर आप ही बीच मिलायो।[3]

जीवात्मा भी इस ब्रह्म से भिन्न नहीं है ।वह उस अकाल पुरुष का ही अंश है।ब्रह्म और जीव की स्थिति वही है,जो नदी और लहरों की । जिस प्रकार जल की तरंगों को जल से पृथक करके नहीं देखा जा सकता उसी प्रकार ब्रह्म से पृथक जीव की सत्ता नहीं है ।

जैसे एक नद ते तरंग कोटि उपजत हैं
पान के तरंग सबै पान ही कहाहिंगे ।
तैसे बिस्व रूप ते अभूत भूत प्रगट हुइ ।
ताही ते उपज सबै ताही मै समाहिंगे ।।[4]

नाम रूपों की पृथकता व अनेकता में भी मूल तत्व एक ही है । इसकी पुष्टि वेद भी करता है---

---

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 21 । (2) वही, पृष्ठ 25 ।
3- वही, पृष्ठ 11 । (4) वही, पृष्ठ 20 ।

एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति ,

ब्राह्मण ग्रन्थों में भी कहा गया है--

'एको हम बहुस्याम्'

प्राचीन संस्कृत साहित्य में शिव का संहारक रूप व्यक्त हुआ है, जो बाद में शिव की शक्ति के रूप में प्रकट हुआ। वेद में उसे रुद्र कहा गया है । मध्यकालीन भक्त कवियों ने इस संहारक रूप पर यद्यपि इतना बल नहीं दिया तथापि गुरु गोविन्दसिंह ने अपने काव्य में इस रूप का प्रतिपादन किया है। यद्यपि वह अकाल पुरुष का अवतार नहीं तथापि तुलसी के धनुर्धारी राम के प्रति प्रणाम की भान्ति गुरु जी ने भी अपने काव्य में उसके अस्त्रशस्त्र धारी रूप की वन्दना की है ।

दुर्जन दल दंडन असुर बिहंडन दुसट निकंदन आदि ब्रिते ।
चक्रासुर मारन पतत उधारन, नाक निवारन गूढ गते।
अति अखण्डे तेज प्रचण्डे खंड उदंडे अलख मते ।
जै जै होसी महिखासुर मारदन रंभ कपारदन छत्र ब्रिते।[1]

इसी प्रकार --

घुंघरु कंकण ससत्र झंकण फणीअर फुंकारन धरम बुजे
झाटाट प्रहासन, रिसट निवासन, दुसट प्रान प्रणासंन चक्रते
केसरी प्रवाहे सुव सनाहे, आम अथाहे एक ब्रिते ।
जै जै होसी महिखासुर मादन आदकुमार आघ ब्रिते ।।[2]

सूर, तुलसी , कबीर आदि भक्तकवियों के काव्य में ब्रह्म के इस संहारकारी रूप का अभाव है जबकि गुरु गोविन्दसिंह को अकाल पुरुष का यही रूप प्रिय है । इसका सब से बड़ा कारण यही प्रतीत होता है कि गुरु गोविन्दसिंह योद्धा थे उनका सारा जीवन युद्धों में बीता था। अकाल पुरुष के इस रौद्र रूप का प्रतिपादन करके वे अपने शिष्यों को युद्ध करने की प्रेरणा देना चाहते थे। गीता के अनुसार अर्जुन का मोह भंग करने के लिए भगवान श्रीकृष्ण ने भी अपना संहारक रूप ही दिखाया था ।

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 31 । (2) वही, पृष्ठ 31 ।

रूपं महते बहु बाहूपादम् ।बहुदर बहु दंष्ट्राकरालम्।
दृष्ट्वालोका: प्रव्यथितास्तथाहम् ।[1]

इष्ट की कल्पना के पश्चात् प्रश्न है कि उस इष्ट को कैसे प्रसन्न किया जाए । गुरु जी का इष्ट अकाल पुरुष देवाधिदेव 'राजान राज,' 'साहानसाह' है,उसे व्यर्थ के आडम्बरों द्वारा प्रसन्न नहीं किया जा सकता । किसी सम्प्रदायवाले मंदिरों में प्रभु की मूर्ति स्थापित करके उसे प्रसन्न करना चाहते हैं ,तो लिंगायत सम्प्रदाय वाले शिवलिंग गले में लटका कर किसी को बुतों की पूजा पसन्द है,तो कोई भूतकों को पूजता है, परन्तु इनमें से किसी को भी उस प्रभु की प्राप्ति नहीं होती ।[2]

यों तो सब बाह्याडम्बरों का खण्डन सभी भक्त कवियों ने किया है किन्तु गुरु गोविन्दसिंह के काव्य में इसका विश्लेषण बिलकुल नई पद्धति से हुआ है।इसका कारण यह है कि वे ऐसे व्यक्तियों की आवश्यकता अनुभव करते थे,जो युद्धक्षेत्र में अपना तन मन धन सभी कुछ न्योछावर करने के लिए प्रस्तुत रहे । बाह्याडम्बरों में विश्वास न रखने वाले और एक मात्रप्रभु की ही उपासना करने वाले व्यक्ति ही उन्हें अपने खालसा पन्थ में दीक्षित करने के लिए अपेक्षित थे ।अत: उनका यह कहना कि करोडों तीर्थों पर स्नान करके,दान देकर, व्रत धारण करके,वन में रह कर, जटाएं बढा कर और योग के विभिन्न आसनों द्वारा उस अकाल पुरुष को नहीं पाया जा सकता सर्वथा साभिप्राय था ।[3]

इन पाखंडियों पर अपने क्रोध को और भी अधिक तीखा करते हुए गुरु जी कहते हैं कि यदि दु:ख सहने से ही भगवान की भक्ति हो जाया करती तो उस भक्ति का पात्र घायल व्यक्ति भी हो जाता और वह भी उसे पा लेता।यदि

1- गीता, 11,23 ।
2- काहू ले पाहन पूज धरो सिर,काहू लेलिंग गरे लटकायो।
काहू लख्यो हरि अवाची दिसा महि,काहू पखाहं को सीस नवायो।
कोऊ बुतान को पूजत है पसु,कोउ मितान को पूजन धाइयो।
कूट क्रिया उरझियो सब ही जग,श्री भगवान को भेद न पाइयो।
दशमग्रन्थ,पृष्ठ14-15।

3- दशम ग्रन्थ,पृष्ठ 35 ।

प्रभु की कृपा जप करने से प्राप्त हुआ करती तो सदा तुही तुही करने वाला पूदना पक्षी भी उसे पा लेता । अग्नि में जलजाने से यदि मुक्ति मिलती तो विधवा नारी उससे वंचित नहीं रहती । परन्तु जिस प्रकार ये घायल, पूदना और विधवा प्रभु को नहीं मिल पाते, उसी भान्ति दूसरे पाखण्डी भी उस तक नहीं पहुंच पाते ।[1]

आडम्बरों के साथ साथ गुरु गोविंद सिंह ने दम्भ, अहंकार आदि को भी ईश्वर की प्राप्ति के मार्ग में बाधा स्वीकार किया है। बड़े बड़े योगी, ब्रह्मचारी छत्रधारी, राजा, सम्राट, इस संसार में आए और देखते ही देखते मिट्टी में मिल गए । आज यहां उनका कोई नाम लेवा भी नहीं है।

जोगी जती ब्रह्मचारी, बड़े बड़े छत्र धारी,
छत्र ही की छाया कई कोस लौं चलत है।
बड़े बड़े राजन के दाबति फिरति देस,
बड़े बड़े राजन के दर्प को दलत है।
मान से महीप औ दलीप कैसे छत्रधारी,
बड़ो अभिमान भुजदंड को करत है।
दारा से दिलीसर दुरजोधन से मान धारी,
भोग भोग भूमि अंत भूम में मिलत है।[2]

सब देशों को विजय करने वाले वे राजा जिनके द्वार पर सदा हाथी झूमते थे उन्हें भी प्रभु भजन के बिना अन्त में यमलोक को ही प्रस्थान करना पड़ा ।

जीत फिरे सब देस दिसान को,
बाजत ढाल मृदंग नगारे ।
गुंजत गूढ गजान के सुंदर
हंसत हैं स्यराज हजारे ।
भूत भविख भवान को भूपत
कौन गनै नहीं जात बिचारे।

1- ताप के सहे ते जो पै पाइए प्रतापनाथ,
तापना अनेक तन घाइल सहत है,
जप के किए ते जो पै पाइए अजाय देव,
पूदना सदैव तुही तुही उचरत है।
नभ के उड़े ते जो पै नारायण पाइयत
अमल अकास पंछी डोलबो करत है।
आगम जरे ते गत राँड की परत कट्ट
पताल के बासी किउ भुजंग तरत है। (दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 19)

2- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 18।

श्रीपति श्री भगवान भजे बिनु
अंत को अंत के धाम सिधारे ।[1]

'अकालउस्तुति' में ज्ञान, कर्म और उपासना का समन्वय भी मुख्य रूप से प्रतिपाद्य बनाया गया है ।ज्ञान की अग्नि से सारे बन्धन समाप्त हो जाते हैं।ज्ञान रहित प्रेम केवल भोग है । और ज्ञान रहित भक्ति अन्ध श्रद्धा है।प्रेम रहित ज्ञान को भी गुरु गोविन्द सिंह विशेष महत्त्व नहीं देते। उनकी साधना पद्धति में इन सभी को अनिवार्य स्वीकार किया गया है। ज्ञान का महत्त्व उनके शब्दों में इस प्रकार है :--

(1) गैन में उडंत केते जल में रहत केते ।
गिआन के बिहीन जक जारे इं मरत है।[2]

(2) आना अधीन काम क्रोध में प्रवीन
एक गिआन के बिहीन दीन कैसे के तरत है।[3]

(3) गिआन के बिहीन काल फास के अधीन सदा
जूनन की चाकरी फिरारहें फिरत है।[4]

परन्तु कोरा ज्ञान भी निरर्थक है।ज्ञान का महत्त्व श्रद्धा,प्रेम तथा अनन्यता से ही है।प्रेम को गुरु गोविन्दसिंह जी ने अपनी साधना पद्धति के मार्ग का सब से बड़ा पाथेय माना है :--

साँच कहौं सुन लेहु सबै,
जिन प्रेम कियो तिन ही प्रभ पायो ।[5]

इसी प्रकार --

कामना अधीन काम क्रोध में प्रबीन एक
भावना बिहीन कैसे मेटे पर लोक सौ।[6]

दूसरे सन्त कवियों के समान गुरु गोविन्दसिंह ने नामस्मरण की महत्ता को भी अपनी इस रचना का प्रतिपाद्य बनाया है।कवि का विश्वास है कि चाहे कोई वेद शास्त्रों को रटे, चाहे योगी सन्यासी होकर घूमे पर नामस्मरण के बिना सब धर्मविधर्म है :--

---

1- दशम ग्रन्थ,पृष्ठ 14 । (2) वही,पृष्ठ 20।
3- वही, पृष्ठ 13 । (4) वही,पृष्ठ 13।
5- वही, पृष्ठ 14 । (6) वही,पृष्ठ 13।

7

बिन एक नाम अधार
सब करम भरम बिचार।[1] (द० ग्र० पृष्ठ 16) ।

स्वयं गुरु गोविन्द सिंह ने भी उस प्रभु को अनेक नामों से स्मरण किया है।

ऊँच नीच की भावना का विरोध और समता की भावना भी 'अकाल उस्तुति' का प्रतिपाद्य बन कर प्रकट हुई है :--

एक ही एक सेब सब ही को गुरु देव एक
एक ही सरूप सबै एक जोति जानबो।[2]

तथा ----

देहरा मसीत सोइ पूजा और निवाज ओइ
मानस सबै एक पै अनेक को भ्रमाउ है।[3]

इन पंक्तियों में बड़ी ही स्पष्टता के साथ न केवल सब धर्मावलंबियों की एकता का अपितु सब में एक ही ज्योति का तथा सब के पूजा स्थलों की एकता का भाव विद्यमान है।

बिम्ब योजना :- 'अकाल उस्तुति' का विषय है निर्गुण ब्रह्म, अकाल पुरुष किन्तु निर्गुण या नेतिशब्द अपनी संदिग्धता अथवा व्याख्येयता के कारण पाठक के मन पर अभीष्ट प्रभाव नहीं डालते। इसीलिए कवियों ने उस अनिर्वचनीय के वर्णन का भी कुछ न कुछ प्रयास अवश्य किया है अमूर्त का मूर्तिकरण या बिम्बायन इसी प्रयत्न का फल है। इसी के द्वारा वे भक्त का यहाँ तक कि साधारण पुरुष का हृदय भी इसमें रम सके है। गुरु गोविन्द सिंह लोक नायक थे अतः उन्हें तो सर्वसाधारण को ही अकाल पुरुष की ओर उन्मुख करना था।

न रागं न रंगं न रूपं न रेखं।
न मोहं न कोहं न द्रोहं न द्वेखं।
न करमं न भरमं न जनमं न जातं
न मित्रं न सत्रं न पित्रं न मातं
न नेहं न गेहं न कामं न धामं
न पुत्र न मित्रं न सत्रं न धामं।
अलेख अभेख अजोनी सरूपं।
सदा सिद्धिदा वृधिदाविध रूपं।[4]

1- कबीर सुमिरण सार है और सकल जंजाल।
आदि अंति सब सोधिया, दूजा देखा अकाल (कबीरग्रंथावली सटीक, पुष्पपालसिंह पृष्ठ 37।

2-दशमग्रन्थ, पृष्ठ 19, (3) वही, पृष्ठ 19। (4) वही, पृष्ठ 20।

यहाँ अकाल पुरुष का निर्गुणत्व पूर्ण रूपेण सम्प्रेष्य है। बिम्बहीन का बिम्बायन इस से बढ़ कर क्या होगा। प्रथम छह पंक्तियां सर्वथा समासहीन हैं। न, न की ध्वनि नेतित्व की तथा लब्धार्थ निर्गुणत्व की प्रतीति को कितना संप्रेषणीय बना रहे हैं। यह सहज ही अनुभव किया जा सकता है। अन्तिम दो पंक्तियों में लघु समास भी आभास जैसे ही दिखाई देते हैं। 'न मित्रं न सत्रं न पित्रं न भ्रातं तथा 'न नेह ' न गेह ' जहाँ अभिज्ञ पाठक की अकाल पुरुष गुरु के विषय में यह धारणा पुष्ट कर देते हैं कि उस प्रभु का न कोई शत्रु है न मित्र न उसका कोई सम्बन्धी है-- पिता, भाता अथवा भ्राता। वहां उसे यह भी समझ में आ जाता है कि वह अजोनी है अर्थात् उसने कर्मयोनी में प्रवेश नहीं किया वह अजन्मा है। शब्दों की यह सरलता और अर्थ ग्राह्यता गुरु गोविन्द सिंह की कविता का विशेष गुण है। इन 'शब्दों द्वारा बिम्बों का स्पष्ट आयोजन न होते हुए भी विशेष अर्थ प्रकट हुए हैं क्योंकि भाता पिता भाई तथा 'योनि' जैसे शब्दों अथवा ध्वनि प्रतीकों से कौन परीचित नहीं।

अकाल पुरुष की सर्व व्यापकता तथा अनेक रूपता को भी कवि ने बड़े सुंदर बिम्बों द्वारा व्यक्त किया है --

कहूं जटाधारी कहूं कंठी धारे ब्रह्मचारी,
कहूं जोग साधी कहूं साधना करत हो।
कहूं कान फारे कहूं डंडी हूं पधारे,
कहूं फूंक फूंक पांवन कछु प्रिथी पे धरत है।
कतहूं सिपाही हूंके अरि मारत भरत हो।
कहूं भूम भार को उतारत हो महाराज,
कहूं भव भूतन की भावना भरत हो।[1]

पाठक के सम्मुख एक ओर जटाधारी साधु, कंठी धारण करने वाले ब्रह्मचारी कनपाड़े योगी, साधुओं की बिम्बमाला उपस्थित होती है, दूसरी ओर उस अकाल पुरुष का वीर रूप, सिपाही तथा क्षात्रिय के बिम्ब द्वारा उपस्थित किया गया है। गुरु गोविन्दसिंह ने 'सन्त सिपाही' का आदर्श सब के सम्मुख रखा फिर भला उनका भगवान या अकाल पुरुष केवल भक्त ही कैसे रह जाता। उसे भी तो योद्धा बनना ही था।

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 12।

बनना ही था ।

इस प्रभु के अनेक रूप हैं जो जिस रूप में चाहे उसे उसी रूप में देख सकता है।यहीं बस नहीं कवि इस जगत के कण कण में उस प्रभु की व्यापकता का प्रकटीकरण करता हुआ कहता है कि हरिजल में है, हरिथल में है। हरि हृदयस्थ है, हरि पर्वत पर है, हरि बन में है। हरि यहां है, हरि वहां है ---

जले हरि । थले हरि । उरे हरि।परे हरि ।
गिरे हरि। गुफे हरि।क्षिते हरि । नभे हरि ।
इहां हरि ।उहां हरि । जिमी हरि। जमां हरि ।।[1]

कवि का यह वर्णन हमें टैनीसन की'चार्ज आफ दी लाइट ब्रिगेड'की उन पंक्तियों की याद दिलाता है जिसमें कवि ने

[illegible]

शब्दों की सरलता और सम्प्रेषणीयता दर्शनीय है ।

यहां स्थानों का पृथक् पृथक् उल्लेख उसकी व्यापकता के विस्तार को सम्प्रेष्य बना रहा है और बार बार हरि कहना,सर्वनाम (वही आदि का) का प्रयोग न करना उसके एकत्व को ।यहां हरि वहां हरि ऐसी प्रतीति कराते हैं। मानो गुरु जी स्वयं हरि का साक्षात्कार कर रहे हैं ।कुछ स्थलों पर सर्वनाम का प्रयोग भी कवि ने ऐसी ही सम्प्रेषणीयता के साथ किया है।यथा:--

अभु तुही। अभे तुही । अछु तुही। अछे तुही ।
जतस तुही।व्रतस तुही।गतस तुही। भतसतुही।
तुही तुही।तुहीं तुही। तुही तुही।तुही तुही।।[2]

यहाँ उसके एकत्व के साथ साथ उस पर पक्का भरोसा, अटल विश्वास,तथा आत्मसम के भावों को भी सम्प्रेषणीय बनाया गया है।निम्नांकित पंक्तियों में यह विश्वास अटल निष्ठा में परिवर्तित हो गया है --

---

1- दशम ग्रन्थ,पृष्ठ 16 ।

2- वही, पृष्ठ16-17 ।

जान को देत अजान के देत जमीन को देत जमान को देहै ।
काहे को डोलत है तुमरी सुधि सुंदर श्री पदमापति लेहै ।[1]

क्या आवश्यकता है तुम्हें स्थान स्थान पर भटकने की । तुम्हारा ध्यान रखने वाले भगवान जो हैं । तुम सुन्दरता के पीछे भागते हो , वे सुन्दर हैं। तुम श्रीमान् बनना चाहते हो, श्री उनके पास है। लक्ष्मी को खोजते हो, तो उस पदमा के स्वामी वे हैं । वे अटूट दाता हैं। जाने अनजाने सभी को अपनी नियामतों का दान देते रहते हैं। सारी जमीन और पूरे जगत में कोई भी व्यक्ति उनके दान से वंचित नहीं रह पाता। फिर तुम्हारी सुधि पदमापति भला कैसे भूल सकते हैं? पद्मापति-विष्णु या श्री राम का विशेषाता है। पर गुरु गोविंदसिंह ने उसे अकाल पुरुष की कृपालुता व दयालुता के लिए प्रयुक्त किया है। उपर्युक्त पद्य में जहाँ दैन्य का आक्रोश है वहाँ उस अकाल पुरुष के चरणों में अटल भक्ति और विश्वास भी पल्लवित हुआ है ।

गुरु गोविन्दसिंह के चाक्षुष बिम्बों में गत्यात्मकता भी है । पाठक या श्रोता के नेत्रों के सम्मुख उपस्थित प्रतिभा की गतियाँ वस्तु विषय को चाहे वह खण्डन से संबंधित हो अथवा प्रतिपादन से बड़े ही प्रभावात्मक ढंग से उपस्थित कर देता है । प्राय: कीर्तन करने वाले अपने आपको भक्ति विभोर प्रकट करने के लिए गर्दन हिलाया करते हैं। उनके बिम्ब को प्रस्तुत करते हुए कवि फलाहारी, बनवासी आदि का भी बिम्ब प्रस्तुत कर देता है। प्रभु की प्राप्ति में श्रद्धा भावना की अपेक्षा का प्रतिपादन करते हुए गुरु जी कहते हैं कि यदि गर्दन हिला कर कीर्तन करने से प्रभु की प्राप्ति हो जाती तो वह व्यक्ति उसे कहीं पहले प्राप्त कर लेता जिसके कान में कान खजूरा धंस जाता है । यदि फल फूल और पत्ते खाने से ही ईश्वर मिला करता तो ईश्वर प्राप्ति का पात्र बकरे से बढ़ कर और कौन बनपाता । यदि मिट्टी खाने से प्रभु मिलता तो जोंक को मिलता ।

सीस पटकत जाके कान में खजूरा धसै,
मुंड लटकत मित्र पुत्र हूं के सोक सौं।।
आक को चबैया फल फूल को भखैया,

---

[1] दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 35 ।

सदा बन को भ्रमेया अठर दूसरो न बोक सौं ।।
कहा भयो भेड़ जो घसत सीस द्रिघन सौं ।
माटी के भैंसा बोल पूछ लीजै जोक सौं ।[1]

पठनीय वस्तु के विशेष महत्त्व के कारण अक्षरों के धुंधले होने पर भी पाठक आँखें गड़ा गड़ा कर उनका आस्वाद लेने को आतुर रहता है ।गुरु गोविंदसिंह के ऐसे सूक्ष्म बिम्बों के प्रति भी पाठक की स्थिति बहुत कुछ वैसी ही हो जाती है । विरोधी गुणों के बिम्बायन के लिए प्रयुक्त उनके बिम्ब इस दृष्टि से विशेष महत्त्व पूर्ण हैं ।

कतहूं सुचेत हुइके चेतना को चार कीओ ,
कतहूं अचिंत हुइके सोवत अचेत हो ।।
कतहूं भिखारी हुइ के मांगत फिरत भीख,
कहूं महादानि हुई के मांगिओ दान देत हो ।।
कहूं महाराजन की दीजत अनंत दान,
कहूं महाराजन ते छीन छित लेत हो ।
कहूं बेद रीत कहूं ता सिउं बिपरीत,
कहूं तिरगुन अतीत कहूं सुरगुन समेत हो।[2]

उपर्युक्त पंक्तियों में बेहोश व्यक्ति जैसा निश्चेत शयन भिखारी का भीख मांगते हुए फिरना,महादानी का यथेच्छ दान देना आदि परस्पर विरोधी बिम्बों द्वारा ब्रह्म के विरोधी गुणों को सम्प्रेषित किया गया है ।

उस महान अकाल पुरुष के दरवाजे पर न जाने कितने देवता हर समय हाथ बांधे खड़े रहते हैं।कवि इस तथ्य के मूर्तिकरण के लिए एक ऐसे महान् सम्राट् के बिम्ब को उतारता है, जिसके द्वार पर इन्द्र,ब्रह्मा विष्णु और राम जैसे अवतार,

---

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 13 ।
2- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 11-12 ।

शशि और सूर्य जैसे नक्षत्र, मुंडित और उदासी सब प्रकार के साधु, व्यास जैसे कवि, कुबेर और यक्ष ध्यान चिन्तन में लगे रहते हैं पर कोई पार नहीं पा पाता। उसकी आत्मता, सर्वशक्तिमत्ता तथा अलक रूपता इन बिम्बों में बड़े ही सुन्दर ढंग से व्यक्त हुई है।

केते इन्द्र द्वार, केते ब्रह्मा मुख चार,
केते बिसना अवतार केते राम कहीअत है।
केते सत रासी केते सूरज प्रकासी,
केते मुंडीआ उदासी जोग द्वार रहीअत हैं।
केते महादीन केते बिआस से प्रबीन,
केते कुबेर कुलीन, केते जछ कहीअत है।
करते हैं बिचार, पै न पूरन को पावे पार,
ताही ते अपार निराधार लहीअत है।[1]

ऐसे प्रभु को पाकर कोई व्यक्ति शक्ति का अनुभव क्यों न करेगा। गुरुगोविंदसिंह के शिष्यों ने भी इस शक्ति को अनुभव किया।

वसन्त ऋतु में अठखेलियां करते हुए खगों और मृगों के बिम्ब द्वारा लेखक ने अकाल पुरुष के व्यापक सौन्दर्य का वर्णन किया है --

जह तह महीप बन तन प्रफुल्ल।
सोभा बसंत जह तह पुहुल।
बन तन दुरंत खग म्रिग महान
जह तह प्रफुल्ल सुंदर सुजान।[2]

अकाल पुरुष क्योंकि निर्गुण है अत: उसके सम्बन्ध में आए बिम्ब स्पष्ट होते हुए भी सूक्ष्म है अत: एकाग्रता सापेक्ष है। किन्तु बाह्याडम्बरों के खण्डन से संबंधित बिम्ब व्यवहारिक होने के कारण ध्यान को बरबस एकाग्र बना लेते हैं। ये बिम्ब स्थूल हैं अत: सर्वग्राह्य हैं। धर्म के नाम पर या स्वर्ग के लोभ वश व्यक्ति बड़ी से बड़ी कठिनाइयों को झेलते हैं, असह्य कष्टों को सहते हैं। झुकते फिरना, वियोग व्यथा से रो रोकर मरना, जल में डूबना, आग में जलना, गंगा के किनारे या मक्का

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 36।
2- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 33।

मदीना तीर्थों पर जाकर बसना, काशी में आरे से चिरना आदि भीषणतम कष्ट इसी लक्ष्य के लिए न जाने कितने साधकों ने सहे हैं किन्तु उनका यह सारा प्रयत्न निष्फल है। अतः इन्हें गौरव का पात्र न बना कर गुरु कवि ने उपहास का ही पात्र बनाया है। पद्य पढ़ते समय इन सभी भूले भटकों के स्थूल बिम्ब अपनी अटपटी क्रियाओं के साथ पाठक की आँखों में उतर आते हैं।

कूकत फिरत केते रोवत भरत केते।
जल में डुबत केते आग में जरत हैं।
केते गंग बासी केते मदीना मक्का निवासी,
केतक उदासी के प्रभारइँ फिरत हैं,
कायत सहते केते भूम में गड़त केते,
सूआ पै चढ़त केते दूद कढ़ मरत हैं।
गैने में उडत केते जल में रहत केते।
ज्ञान के बिहीन जक जारे इमरत हैं।।19।39।[1]

गुरु गोविन्दसिंह का काव्य वीरता का काव्य है। युद्ध स्थली में उड़ती हुई धूल के कारण, चेहरे पर लगे हुए घाव या आँखों में समाए उच्च लक्ष्य के कारण बहुत बार प्रत्यक्ष दृश्य भी अदेखा रह जाता है। वीरों को ऐसे में अपने साथियों की हुंकार और शत्रुओं की कराह तलवारों की झनझनाहट, घोड़ों की धमक आदि ध्वनियाँ अपना बिम्ब प्रकट करती हैं। अकाल पुरुष के संहारकारी रूप का वर्णन भी कवि ने इस ढंग से किया है कि समाज में रहने वाले लोगों को वह अपना रक्षक प्रतीत हुआ उन्हें ऐसा लगने लगा कि वह अकाल पुरुष उनकी रक्षा करेगा तथा उनके विरोधी दुष्टों का संहार करेगा। विजय निश्चय ही उनकी होगी। यही विश्वास लेकर मुट्ठी भर सिख सैनिक भी सैकड़ों हजारों मुसलमानों से जूझ पड़ने के लिए निकल पड़ते थे। डमरू बजाते हुए ध्वजा लहराते हुए और भयंकर असुरों का विनाश करते हुए अकाल पुरुष का रौद्र रूप सचमुच ही दर्शनीय है। नाद और रूप के मिश्रण ने बिम्ब को बड़ा ही सुन्दर और अद्भुत बना दिया है। वर्ण, असुर

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ८० ।

फनं जिणं का सानुस्वार अन्त्यानुप्रास अथवा तुक डबंके, बबंके तथा चभंके झभंके आदि शब्दों के साथ मिल कर डमरु के नाद को उत्पन्न करने में समर्थ हुआ है, साथ ही डमरु बजाने वाले की `लंकुईया फांधे `आयुध बांधे ` शब्द मानो लांगे मारते हुए उछल उछलकर युद्ध करते हुए योद्धा का बिम्ब आँखों के समक्ष उपस्थित करते हैं ।

डाबरु डबंके बबा बबंके,
भुजा फरंके तेज बरं ।
लंकुईया फांधेआयुध बांधे ,
सैन विभादन काल असुरं
असटायुध चभंके भुखण दभंके,
अतिसित झभंके फुंक फनं ।
जे जे होसी भक्तासुर भादन
रंभ कपरदन देत जिनं ।।[1]

आठ प्रकार के अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित अकाल पुरुष के इस रूप का वर्णन कवि ने आरती शैली में प्रस्तुत किया है।इस प्रकार का वर्णन पढते ही भुजाएं फड़कने लगती है । जन साधारण को प्रभावित करने वाले यह चित्र अत्यन्त ही सम्प्रेष्य है ।

संस्कृत ग्रन्थों में कीर्ति व यश का रंग धवल माना गया है । क्योंकि धवलता सात्विकता का प्रतीक है।सात्विकता और शुचिता श्वेतरंग द्वारा प्रकट की जाती थी।मेघदूत में कवि कालिदास ने शिव के अट्टहास के वर्णन में ध्वन्यात्मकता तथा चाक्षुषता दोनों ही का बिम्बायन किया था ।[2] हिन्दी में भी इस परम्परा का पल्लवन होता रहा है,जो गुरु गोविन्दसिंह तक आते आते बड़ी व्यापक और पुष्ट हो गई थी।गुरु गोविन्दसिंह ने अकाल पुरुष के यश और

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 31 ।

2- गत्वा चोर्ध्वं दशमुख भुजोच्छ्वासित प्रस्थसंधेः
कैलासस्य त्रिदशवनिता दर्पणस्यातिथि स्याः ।
शृंगोच्छ्रायैः कुमुद विशदैर्यो वितत्यस्थितः खं
राशि भूतः प्रतिदिन मिव त्र्यम्बकस्याट्टहासः।। --मेघदूत,58।

धवलता की सर्वव्यापकता को जहाँ चाक्षुकता दी है, वहाँ सानुप्रासिक वर्ण योजना द्वारा उसमें अपूर्व ध्वन्यात्मकता का भी समावेश कर दिया है :--

हीर कैसी हीरावध धाइ कैसी छत्रानेर,
छपाकार कैसी छब कालहंदी के कूल के ,
हंसनी सी सीहा रूम हीरा सी हुसेनावाद,
गंगा के सी धार चली सातों सिंध रुल के ।
पारासी पलाऊ गढ़रेपा कैसी राम पुर
सोरा सी सुरंगावाद नीके रही फूलके ।
चंपा सी चंदोरी कोट चांदनी सी चांदागढ़ि
कीरति तिहारी रही भालती सी फूल के ।।[1]

खंडनात्मक वर्णन में चाक्षुष बिम्बों के समान भिक्षित (ध्वनि और चाक्षुष) बिम्बों में भी अधिक गहरापन है। पांच बार नमाज पढ़ने से काशी में कावत लेने से उस अकालपुरुष को नहीं पाया जा सकता । इस बात को कवि ने ऐसे सहज बिंब द्वारा पाठक के नेत्र और श्रवणगोचर किया है कि श्रोता के हृदय में घर कर जाती है :--

पांच गीदर पुकारेपरे सीत काल,
कुंचर और गदहा अनेकदा पुकार ही ।
कहा भयो जो पै कलवत्र लीओकांसी बीच
चीर चीर चोरटा कुठारन सौं मारही ।
कहा भयो फांसी डार बुड़ियो जइ गंगाधार।
डार डार फास ठग मार मार डारही।
डूबै नरक धार मूढ ग्यान के बिना बिचार।
भावना बिहीन कैसे ग्यान को बिचारही।।[2]

इन पंक्तियों में गीदड़ और गदहे की आकृति ही आँखों के सामने नहीं आती उनका हाउ, हाउं करना और रेंकना भी कानों में गूंज उठता है। इतना ही नहीं इस ध्वनि बिम्ब में एक ओर वज्रयानियों और नाथ पन्थियों की कटु उक्तियों

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 33 ।

2- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 19 ।

और दूसरी कबीर की फटकार की अनुगूंज भी सुनाई पड़ती है जो पाठक को अतीत में ले जा कर जहाँ दम्भ से दूर रहने की प्रेरणा देती है वहाँ उसमें प्रभु भक्ति के लिए उत्साह भी भरती है।

उस अकाल पुरुष को अनेक प्रकार से नमस्कार करके, सिजदे करके नहीं पाया जा सकता क्योंकि तोपची अनेक प्रकार से कपट से सिजदे करता है, पोस्ती व्यक्ति सदा ही अफीम की पीनक में सिर झुकाए बैठा रहता है पहलवान अनेक प्रकार से डंड पेलता है, रोगी ऊपर को मुख उठाए पड़ा रहता है पर इन सब चेष्टाओं से इन्हें परमात्मा की प्राप्ति नहीं होती। परमात्मा की प्राप्ति हृदय की भावना से होती है चेष्टा के प्रदर्शन से नहीं। तोपची पोस्ती, पहलवान तथा रोगी ~~क्या~~ ~~रोगी~~ के बिम्ब भक्त के हृदय को शुद्ध भक्ति की ओर प्रेरित करते हैं :--

सिजदे करे अनेक तोपची कपट भेस,
पोसती अफीम निबावत है सीस को।
कहा भयो मल जो पैकाढत अनेक डंड
सो तौन दंडौत असटांग अथतीस को।
कहा भयो रोगी जो पैडारिओ रहिओ ऊर्धमुख
भन ने न मुंडु निहारयो आदि ईस को।
कामना अधीन सदा दामना प्रबीन
एक भावना विहीन कैसे पावे जगदीस को।[1]

गुरु गोविन्दसिंह के उपर्युक्त बिम्बों को देख कर यह निर्णय निकालना पूर्ण सत्य नहीं होगा कि वे अपने बिम्बों में सर्वत्र पूर्ण सफल रहे हैं। कहीं अलंकारों के मोह ने और कहीं विषय प्रतिपादन की अनिवार्यता के कारण उनके बिंब खंडित होगए हैं--

निरजुर निरूप हो कि सुन्दर सरूप हो
कि भूपन के भूपहो कि दाता महादान हो।
प्रान के बचैया दुख पुंज के दिवैया
रोग सोग के मिटैया किधो भानी महामान हो।
बिदिआ के बिचार हो कि अद्भ अवतार हो।

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 19।

कि सिधता की सूरत हो कि सुधता की सान हो।
जो बन के जाल हो कि काल हूं के काल हो
कि सत्रु के सूल हो कि मित्र के प्रान हो।।[1]

तथा --

आंज आदि देव है अमंज मंज जानीए
अभूत भूत है सदा आंज गंज मानी ए।
अदेव देव है सदा अभेष भेव नाथ है।
सम्मत सिध ब्रिधदा सदैव सरब साथ है।।[2]

आदि उदाहरण इस तथ्य के स्पष्ट निदर्शन हैं।

प्रतीक योजना :- 'अकाल उस्तुति' की प्रतीक योजना बिम्ब योजना से भी बढ़ कर अधिक चुटीली और प्रभावशाली रही है --

काहू लै पाहन पूज धरो सिर,
काहू ले लिंग गरे लटकायो।
काहू लखयो हरि अवाची दिसाभहि।
काहू पछाँह को सीस नवायो।[3]

इन पंक्तियों में 'पाष्पाण पूजा, मूर्ति पूजा का, गले में लिंग लटकाना, लिंगायत सम्प्रदाय का, पूर्व की ओर हरि को देखना हिन्दू सम्प्रदाय का (पूर्व की ओर मुख करके सूर्य को तर्पण ,संध्या आदि करते हैं) पश्चिम को सिर निवाना इस्लाम का प्रतीक हैं। इसी प्रकार --

खुक अलाहारी गज गदहा विभूत धारी,
गिद्रा मसान बास करयो ई करत है।[4]

में सूअर, हाथी, गदहा, और गीदड़ जहाँ मदया मांस खाने वाले, विभूत रमाने वाले और शमशान में रहने वाले अघोर पन्थी सरभंग साधुओं के चरित्र स्पष्ट करने के लिए प्रयोग किए गए है, वहाँ गन्दगी, मोटापा, भूखता और कायरता के प्रतीक भी हैं। यदि ऐसे पदों में प्रतीकों का सहयोग न लिया जाता तो अधिक

1- दसम ग्रन्थ, पृष्ठ 13 । (2) वही, पृष्ठ 26 ।
3- वही, पृष्ठ 14-15 । (4) वही, पृष्ठ17।

शब्दों के प्रयोग से भी अभीष्ट अर्थ की सिद्धि नहीं हो सकती थी ।गुरु गोविंद सिंह ने यहां अधोरपन्थी साधुओं की साधना पद्धति का केवल खण्डन ही नहीं किया अपितु इन प्रतीकों की सहायता से उनके प्रति घृणा का भाव भी जगाया है । ऐसे साधु वास्तव में गीदड़ की तरह शमशान में मांस ~~का~~ भज्जा खोजते रहते रहते है,सूअर की तरह आप ~~इत्यादि~~ सगाद खा जाते हैं गदहे की तरह जहाँ तहाँ लोटते रहते हैं और हाथी की तरह ~~झुटि~~ आर जाते हैं। अत: किसी भी भान्ति ग्राह्य नहीं है । यह भाव इन प्रतीकों से स्पष्ट हो पाया है ।

आत्मा परमात्मा की एकता को भी कवि ने प्रतीकों द्वारा ही प्रकट किया है --

जैसे एक आग ते कनूका कोटि आग उठे,
निआरे निआरे ह्वैके केरि आग में मिलाहिंगे ।
जैसे एक धूर ते अनेक धूर पूरत है
धूर के कनूका फेर धूर ही समाहगें।
जैसे एक नदते तरंग कोट उपजत है,
पान के तरंग सभै पान ही कहाइंगे।
तैसे बिस्व रूप ते अभूत भूत प्रगट होइ,
ताही ते उपज सभै ताही मै समाइगे। [1]

ये सभी प्रतीक सर्व ग्राह्य हैं ।अग्नि स्फुलिंग , धूलि के कण, नदी की लहरें ये ऐसे प्रतीक हैं,जिनसे अपढ से अपढ़ व्यक्ति भी अपरिचित नहीं हैं। कवि ने इन्हीं का आश्रय लेकर आत्मा और परमात्मा की अभेदता का महान् दर्शन कितना सरल और सर्व साधारण गम्य बना दिया है।

'अकाल उस्तुति' के मध्य में आए हुए सवैयों में भी कवि ने प्रतीकों का प्रयोग बाहुल्य से किया है।उदाहरणार्थ---

"श्री भगवान की पाइकपाहू ते एक रती बिन एक रती के" । [2]
"ऐते भए तू कहा भए भूपति अन्त को नागे ही पाइं पधारे।" [3]

पउन अहार जतीजत धार सर्वसु विचार हजारक देखे [4]
भारी गुमान भरे मन में कर पर्वतपंख हले न हलैं।। [5]

1- दशम ग्रन्थ पृष्ठ 19,20 । (2) वही,पृष्ठ ,13।
3- वही, पृष्ठ 13 । (4) वही, पृष्ठ 13 । (5) वही, पृष्ठ ।

वहा भयो दोऊ लोचन मूंद के बैठ रह्यो वक ध्यान लगायो ।

में मूढ़ता हीनता के लिए एक रती, ऐश्वर्य वंचित के लिए नौमे पांडे, निराहार के लिए पउन अहार, ढोंग के लिए बकध्यान प्रतीक रूप में आए हैं। परन्तु पंक्ति पौराणिक संदर्भ भी है।

इसी प्रकार 'कहूं कोक काव इष्ट के पुराण को पढ़त मंत' -- में काग्भुषुण्डी ऋषि, 'कहूं निज नारि पर नारि के निवेल हों--' में राम और कृष्ण 'जाचक' से वाचन का ग्रहण प्रतीक पद्धति द्वारा हुआ है।

इस प्रकार 'अकाल उस्तुति' ~~ग्रन्थ~~ अपने सम्प्रेषण में प्रतिपाद्य की सहजता, बिम्बों की सघनता एवं स्पष्टता और प्रतीकों की मार्मिकता के कारण सर्वजन ग्राह्य बन गया है ।

भारतीय दृष्टि से

रस :- 'जापु' के समान 'अकाल उस्तुति' की गणना भी विशुद्ध भक्ति परक रचनाओं में ही की जाती है। यद्यपि इस रचना के सभी पद भक्ति रस के अंतर्गत नहीं आते उनका क्षेत्र शान्त रस है फिर भी परिणति को देखते हुए अथवा अंगांगिभाव के विचार से हमें इस रचना में प्रधान रस भक्ति तथा गौण रस शांत उपलब्ध होता है। इन रसों में परस्पर विरोध है भी नहीं क्योंकि ये स्वभाव से ही सहकारी हैं। अतः शान्त रस सहायक बना है भक्ति रस की पूर्णता में।

भक्ति रस :- रचना के इस मुख्य रस में कवि का आलम्बन निराकार और निर्गुण अकाल पुरुष है। यद्यपि 'जापु' में भी आलम्बन निराकार अकाल पुरुष ही था किन्तु यहाँ के चित्रण में उससे कुछ वैशिष्ट्य है। जापु में ब्रह्म के कोमल रूप का प्रतिपादन अधिक है और विकराल रूप का वर्णन नाम मात्र है, जबकि 'अकाल उस्तुति' में कवि ने अकाल पुरुष के कोमल रूप की अपेक्षा विकराल रूप को विशेष विशदता से वर्णित किया है। उस अकाल पुरुष की कोई रूप रेखा नहीं है। वह जन्म और मृत्यु के बन्धन से मुक्त है। उसका सौन्दर्य निष्कलंक और अपार है। किन्तु इसके साथ साथ वह अकाल पुरुष रौद्र भी है। दुष्टों, पापियों, और दुर्जनों

के विनाश का कारण भी है। इनमें कोई भी उसके पंजे से बच नहीं सकता। चंडासुर आदि दैत्यों को वह नष्ट करने वाला है--

चंडासुर चंडन मुंड बिखंडन खंड अखंडण खून खिते।
दामनी दमंकण भुजा फरंकण फाती फुंकारन जोधजिते।
सर धार बिबारण दुसट प्रकारण पुसट प्रहारण दुसट मथे।
जै जै होसी महासुर भादन भूप अकास तल उरध अधे।।[1]

इस वर्णन से उत्साह और भय इन संचारी भावों की निष्पत्ति हुई है। देवरति स्थायी भाव को पुष्ट करने में समर्थ हुए है। ओज गुण की प्रधानता उ, च, ण की पुनरावृत्ति से निष्पण हुई है।

आलम्बन रूप के चित्रण के साथ साथ कवि ने उस अकाल पुरुष के गुणों का गान, महानता के कार्य, कृपा, दया आदि भावों के वर्णन के द्वारा देव रति स्थायी भाव को उद्दीप्त करने का भी प्रयास किया है। वह प्रभु, अकाल पुरुष इस समस्त सृष्टि को उत्पन्न करता है। करोड़ों इन्द्रों, उपेन्द्रों, ब्रह्मा और रुद्र को भी उत्पन्न करता है।

कोटि इन्द्र उप इन्द्र बनाए।[2]

इतना ही नहीं ------

भूत भविख भवान कहानी
घट घट के पट पट की जानी।[3]

आदि गुण कीर्तन द्वारा एवं --

बिस्व पाल जगत काल दीन दयाल बैरी साल
सदा प्रतिपाल जम जाल ते रहतु है।[4]

आदि विशेषणों से उसकी कृपालुता के वर्णन द्वारा एवं अनेक प्रकार से प्रभु की जय जय कार करते हुए --

जै जै होसी महासुर भादन रूप अपारन सत्र छिते

तथा उसको बार बार नमन करते हुए--

प्रणवो आदि एकंकारा।
जल थल महीअल की ओपसारा।[5]

---

(1) दशम ग्रन्थ, पृष्ठ, 31। (2) वही, पृष्ठ 12। (3) वही, पृष्ठ 12।
(4) वही, पृष्ठ 17 (5) वही, पृष्ठ 11।

कवि ने देव रति स्थायी भाव को उद्दीप्त किया है ।

निम्न लिखित पद्यों में जिसमें निर्वेद, विस्मय, भय तथा विश्वास आदि संचारी भाव भी देवरति स्थायी भाव के सहायक ही सिद्ध हुए है।

कहूं देव कनिआ कहूं दानवी हो ।
कहूं जछ विदिआ धो भानवी हो।
कहूं राजसी हो कहूं राज कनिआ
कहूं ~~सिद्धी~~ सिद्धी की प्रिसट की दिसट पनिआ[1] ।

से विस्मय तथा निम्नलिखित पद्य से वैराग्य भावना

भातं भतंग जोए जर संगि ।
अूप उतंग सुरंग सवारे।
कोट तुरंग कुरंग से कूदत
पउन के गउन कउ जात निवारे।
भारी भुजान के भूप भली विधि,
निआवत सीसन जात विचारे।
ऐसे भए तो कहा भए भूपति ।[2]

और--

अंत को नांगे ही पाइ सिधारे।।[3]
~~भै~~कंपहु मेरु पयाल भुअं ।।[4]

से भय तथा निम्नलिखित पद्य से अटल विश्वास या आस्था की पुष्टि होकर देव रति स्थायी भाव का भक्ति रस में परिपाक हुआ है।

पोखत है जल में थल में पल में कलिके नहीं काम बिचारे।
दीन दयाल दयानिधि दोखन देखत है पर देत न हारे।।[5]

इसी प्रकार --

जान को देत अजान को देत ~~ब~~ जमीन को देत जमान को देहै।
काहे को डोलत है तुभरी सुध सुन्दर श्री पद्मापति लेहै।।[6]

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ८८ । (२) वही, पृष्ठ 13 ।
3- वही, पृष्ठ ८४ । (4) वही, पृष्ठ 34 ।
(५) वही, पृष्ठ 35 ।

शान्त रस :- इस रस को सहायक बना कर भी कवि ने अपरिपक्व नहीं रहने दिया । इसे भक्ति रस की दायीं भुजा का स्थान देकर पूर्ण उत्कर्ष तथा तक पहुँचाया है । बड़े की सहायता बड़े द्वारा ही सुकर और संभव है। अतः शान्त ७ जैसा महान रस ही भक्ति रस का सब से बड़ा सहकारी बन सका है।

प्राचीन आचार्यों ने तत्त्व ज्ञान जन्य निर्वेद को शान्त रस का स्थायी भाव माना है। लौकिकता, भौतिकता एवं संसार की क्षण भंगुरता तृष्णा, इच्छा, आशा, माया मोह का शमन करके उदासीन बनना ही शांत रस का आधार है। ब्रह्म का चिन्तन भी शान्त रस के अन्तर्गत आ जाता है। संसार की महान से महान वस्तु तथा बलवान से बलवान प्राणी भी नश्वर है। संसार शाश्वत नहीं है, शाश्वत केवल ब्रह्म है । अकाल उस्तुति में जहाँ उस ब्रह्म की भक्ति को मुख्यस्थान मिला है वहाँ उसका चिन्तन भी। यह चिन्तन तथा संसार से विरक्ति के अन्य वर्णन शान्त रस में समाहित होते हैं । कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं :--

न काम है न क्रोध है न लोभ मोह कार है ।
न आध है न गाध है न व्याध को विचार है ।
न रंग राग रूप है न रूप रेख रार है ।
न हाउ है न माउ है न दाउ को प्रकार है ।। 173।[1]

जोगी जती ब्रह्मचारी बड़े बड़े छत्रधारी। छत्र ही की छाया कई कोस लौं चलत है।
बड़े बड़े राजन के दावति किरति देस, बड़े बड़े राजन के दर्प को दलत है।
मान से महीप और दलीप के से छत्रधारी, बड़ो अभिमान भुजदंड को करत है।
दारा से दिलीसर दर्योधन से मानधारी, भोग भोग भूम अन्त भूम में मिलत है।[2]
।।173।

अत्र के चलैया छित छत्र के धरैया
छत्रधारी के छलैया महा सत्रु के साल हैं।
दान के दिवैया महामान के बढ़ैया,
अवसान के दिवैया है कटैया जम्मजाल है ।
जुध के जितैया और विरुद्ध के मिटैया
महा बुद्धि के दिवैया महाभान हूं के भान हैं।

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 87 ।(2) वही, पृष्ठ 13 ।

दान हूं के दाता महां बुद्धिता के दाता।
देव काल हूं के काल महां काल हूं के काल है।।[1]८०३ ।

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि यद्यपि इनमें शान्त रस का अजस्त्र प्रवाह है फिर भी न केवल भक्ति रस के पदों के साथ रहने के कारण अपितु विषय प्रतिपादन शैली द्वारा भी भक्ति रस के ही पोषक हैं।

भाषा शैली :- 'अकाल' उस्तुति' की भाषा संस्कृताभास बहुल है, जो बीच बीच में अरबी विदेशी शब्दों के मेल से वैविध्य पूर्ण बन गई है। कहीं कहीं देसी उर्दू और पंजाबी के प्रयोग ने भी 'अकाल उस्तुति' की शब्दावली को सम्पन्नता प्रदान की है। रचना की भाषा पूर्णतया भावानुसारणी है। ब्रस के कोमल रूप को के प्रतिपादन में जहाँ उसमें कोमलता है, वहाँ रौद्र रूप के चित्रण में वह पूर्ण ओजस्वी हो उठी है। उपनागरिका परुषा और कोमला इन तीनों वृत्तियों का कवि अवसर एवं प्रसंगानुकूल प्रयोग करता रहा है। यथा:--

उपनागरिका वृत्ति :-

न राय न रंकं न रूपं न रेखं ।
न लोभं न चोभं अभूतं अभेखं ।।[1]

एवं

न जन्मं न मरनं न बरनं न बिआधं।
न रोगं न सोगं अभै निर बिखाधं।।[2]

इन पंक्तियों में न , र और अनुनासिक वर्णों की अनेकधा आवृत्ति उपनागरिका के अनुकूल है और यह वृत्ति विषयानुकूल भाषा के निर्माण द्वारा कथ्य के सम्प्रेषण में सहायक बनी है।

परुषा :-

अटट
अटाट प्रहासन त्रिसट निवासन,
दुस्ट प्रणासन चक्र गते।[3]
चंडासुर चंडन भुंडु निमुंडन
खंड अखंडन खुन खिते ।।[4]

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 21 । (2) वही, पृष्ठ 21 ।
2- वही, पृष्ठ 31 । (4) वही, पृष्ठ 31।

4 :

यहाँ वर्णन रौद्र रूप का है। अतः ट, ड ऊष्म वर्ण और संयुक्ताक्षरों के बाहुल्य से उत्पन्न होने वाली परुषा वृत्ति भाषा को विषयानुकूल होने में सहकार कर रही है।

कोमला :-

कहूं गीत गान गान गंधरब रीत ।
कहूं बेद सासत्र विदिआ प्रतीत ।।[1]
कहूं गीत के गवैया कहूं बैन के बजैया ।[2]

इन पंक्तियों में स्वर, कवर्ग और पवर्ग के अल्पप्राण एवं अन्तस्थ वर्णों का प्रयोग कोमला वृत्ति का परिचायक है। इस वृत्ति का प्रयोग भी कवि दो भावानुकूल भाषा के निर्माण के लिए ही किया है।

जहाँ तक भाषा के गुणयुक्त होने का सम्बन्ध है कवि ने भाषा में रसानुकूल गुण व्यंजक वर्णों का प्रयोग किया है।

माधुर्य गुण :- 'अकाल उस्तुति' में माधुर्य का बाहुल्य तो नहीं है परन्तु फिर भी कुछ पद्य अत्यन्त मधुरता लिए हुए हैं। यथा :---

बाराज बिलोचन ब्रितन बिमोचन सोच बिसोचन कउच कसे ।
दाभनी प्रहासे सुक्सार नासे सु ब्रित सुबासे दुस्ट ग्रसे ।
चंचला प्रअंगी बेद प्रसंगी तेज तुरंगी खंड सुरं ।
जै जै होसी महखासुर मर्दन आदि अनादि आध उधं ।।[3]222।

प्रस्तुत पद्य में माधुर्य व्यंजक वर्णों अन्तस्थ एवं अनुनासिक वर्णों का बाहुल्य दुर्गा की सुन्दरता के भी माधुर्य का व्यंजक है।

ओज गुण :- भक्ति प्रधान रचना होने के कारण अकाल उस्तुति में ओज की प्रधानता तो नहीं परन्तु चंडी स्तुति के कतिपय छन्द ओज का उत्कृष्ट उदाहरण हैं। यथा :--

दुजंन दल दंडन असुर बिहंडण दुस्ट निकंदन आदि ब्रिते ।
चच्छासुर मारन पतित उधारण नरक निवारण गूढ गते।
अछय अछम अखंडे तेज प्रचंडे खंड उदंडे अलख मेते ।
जय जय होसी महखासुर मर्दन रूप कपर्दन सुत्र हिते।।[4]

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 83 ।(2) वही, पृष्ठ 13 ।(3) वही, पृष्ठ 36 (4) वही, पृष्ठ 30। 31

यहाँ उ, ण और संयुक्ताक्षरों के बाहुल्य ने न केवल शब्द रचना को ओद्धत्य प्रदान किया है अपितु इसके द्वारा महिषासुर मर्दिनी की विकरालता भी सम्प्रेषित हुई है ।

प्रसादगुण :- 'अकाल उस्तुति' रचना के स्तुति परक होने के कारण इसमें सर्वाधिक प्रधानता प्रसाद गुण की ही है । भक्त अपने भगवान के सामने पांडित्य का प्रदर्शन नहीं किया करता। वह कंठ से न बोल कर हृदय से बोलता है और हृदय का स्वर प्रसाद गुण द्वारा ही मुखरित हुआ करता है ।

हरि जनम मरण बिहीन
दस चार चार प्रबीन
अकलंक रूप अपार ।
अनछिज तेज उदार ।।[1]

प्रसाद गुण के लिए वर्ण योजना में समास के लघु होने की या समास रहित होने की शर्त होती है क्योंकि अर्थ की सुबोधता लम्बे समासों में अक्षुण्ण नहीं रह पाती । अकाल उस्तुति के अधिकांश पद्यों में इसी प्रकार की समास रहित या लघु समास वाली शब्दावली का प्रयोग हुआ है।

जहाँ तक अकाल उस्तुति में कवि की शब्द शक्ति भक्ता का सम्बन्ध है, यह अभिधा प्रधान है क्योंकि इसमें अकाल पुरुष के नाम की महिमा का ही गान किया गया है। फिर भी बीच बीच में लक्षणा और व्यंजना के भी सुन्दर उदाहरण मिल जाते हैं, जो भाषा की सम्प्रेषण क्षमता में वृद्धि करते हैं।

लक्षणा :- चंदन सी चंपावती चन्द्रभा सी चन्द्रागिर ।
कीरति तिहारी की उजियारी सोहियतु है।[2]

कीर्ति रूप है, उसका चन्दनवत सुगंधित होना अथवा चन्द्रभा समश्वेत होना संभव नहीं । लक्षणा द्वारा चंदन चन्द्रवत आनंद प्रदान करने की क्षमता ही यहाँ अभिप्रेत है।

व्यंजना :- ताप के सहे ते जो पै पाइए अताप नाथ,
तापना अनेक तन घायल सहत है।।
जाप के किए ते जो पै पायत अजाप देव,
पूदना सदीव तुही तुही उचरत है।

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 15 ।
2- वही, पृष्ठ 19 ।

नभ के उड़ैते जो पै नाराइण पाइयत,
अनल अकास धँसी डोलबो करत है ।
आग मे जरे ते गत रांड की परत का,
पताल के बासी किउं भुजंग न तरत है।[1]

यहाँ व्यंग्यार्थ है कि बिना श्रद्धा के उस प्रभु को नहीं पाया जा सकता ।

भाषा की एक और बड़ी विशेषता जो उसकी सम्प्रेषण क्षमता में वृद्धि करती है,वह है उसका नाद सौन्दर्य । अकाल उस्तुति में इस नाद सौन्दर्य ने भी भाव सौन्दर्य में वृद्धि करते हुए रचना को अधिक सम्प्रेषणी बनाया है ।यथा:--

पारा सी पलाउगढ़ रूपा कैसी रामपूर
सोर सी सुरंगाबाद नीके रही फूल के।
चंपा सी चंदेरी कोट चांदनी सी चांद गढ़
कीरति तिहारी रही मालती सी फूल के।।[2]

मालती पुष्प जैसी तुम्हारी शुभ कीर्ति, पलाउगढ़ पर पारावन का, राम पूर पर रूपा (चान्दी)वन का,सुरंगाबाद पर सुर्य वन का चंदेरी दुर्ग पर चम्पा बन का और चंदगढ़ पर चान्दनी बन का व्याप्त हो रही है।

उपर्युक्त पद्य में अलंकारिक सौन्दर्य की अपेक्षा नाद सौंदर्य अधिक स्फुट हुआ है ।निम्न लिखित पद्य में शब्द बिम्बों का सौन्दर्य अद्भुत है।घुंघरुओं की ध्वनि हमें सुनाई दे रही हो ।

घुंघरु घमंकात ससत्र झमंकारता ।
फनिराअर फुंकारराा धरम धुजे।
अखटाट प्रहारन त्रिसट निवारन
दुसट प्रणासन चक्र गते।
केसरी प्रवाहे सुध सनाहे,
आभ अथा है एकब्रिते।
जै जै होसी भइखासुर मादन
आदकुमार आाध व्रिते।[3]

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 19 । (2) वही०,पृष्ठ 33 । (3) वही,पृष्ठ 33 ।

पद्य में घुंघरूओं के लिए झंकार का प्रयोग न करके कवि ने `झंझकण` शब्द का प्रयोग किया है और फिर उसी के बल पर उसी जैसी ध्वनि में शस्त्रों की चमक को `झंझंकण` कहा है। इन दोनों के साथ सर्प की फुंकार का `फुंकारण` हो जाना नाद सौन्दर्य के सर्वथा अनुकूल है। सर्प के लिए फणिहर शब्द का प्रयोग भी उसने फुंकारण के सादृश्य पर किया है। इसी प्रकार शिव के अट्ठहास, दुष्टों के विनाश आदि के लिए प्रयुक्त शब्दों में भी अपूर्व नाद सौन्दर्य विद्यमान है।

> प्रावग सुद्ध समूह सिधान के देखि फिरियो घर जोग जती के
> सुर सुरादन सुद्ध सुधारिक संत समूह अनेक भांति के।[1]

उपर्युक्त पद्य में `स` वर्ण की आवृत्ति से अनुप्रास का सौन्दर्य दर्शनीय है, इसी प्रकार अनुस्वार के प्रयोग बाहुल्य द्वारा कवि ने एक विशेष प्रकार की संगीतात्मकता उत्पन्न करने की चेष्टा की है।

> कहूँ जछ गंधर्व उरग कहूँ विद्याधा
> कहूँ भए किन्नर पिसाच कहूँ प्रेत हो।
> कहूँ हुइके हिंदुआ गायत्री को गुप्त जप्यो
> कहूँ तुर्क के तुरका पुकारे बांग देत हो।
> कहूँ कोक कावे हुइके पुराण को पढत भत,
> कहूँ कुरान को निदान जान लेत हो।
> कहूँ वेद रीत कहूँ तासिउं विपरीत
> कहूँ त्रिगुण अतीत कहूँ सगुन समेत हो।[2]

इस कवित्त छन्द में `कहूँ` शब्द की पुनरावृत्ति से एक विशेष प्रकार का प्रवाह उत्पन्न हुआ है। `कहूँ` की एकता मानो ब्रह्म की एकता की सूचक है जिसने अनेक रूप गंधर्व, उरग, विद्याधर, किन्नर, पिशाच हिन्दू, तुर्क रूप धारण किए हैं। भाषा और भाव का यह सामंजस्य अद्भुत है।

`अकालउस्तुति` की शैली बहुत कुछ स्तोत्र शैली जैसी ही है। इसलिए इसमें खण्डनात्मक पक्ष कम और मण्डनात्मक अधिक है। विषयानुकूल कहीं इसमें दैन्य है और कहीं उपदेशात्मकता पर बाहुल्य गुण कथन का ही है। गुण कथन

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 13। (2) वही, पृष्ठ 12।

शैली में दैन्य भाव का प्राचुर्य रहता है जबकि 'अकाल उस्तुति' में ओजस्विता का आधिक्य है। शैली में प्रवाह और सजीवता है। जिसके कारण नवनिर्मित शब्द भी प्रवाह में आकर सहज लगने लगे हैं। वाक्यों की सुगठता शैली की प्रौढ़ता को प्रकट करती है।

कतहूं भिखारी ह्वै के भांगत फिरत भीख
कहूं महादानि ह्वै के भांगिओ दान देत हो ।[1]

यहां 'भांगत' और 'भांगिओ' का प्रयोग गुरु गोविंद सिंह के न केवल शब्द चयन अपितु चयित शब्दों के सुप्रयोग का भी सुन्दर निदर्शन है जो कि सुन्दर शैली का प्रथम उपादान कहा गया है ।

विषयानुकूल वाक्य विन्यास भी अकालस्तुति की शैली में सर्वत्र उपलब्ध है। 'अंत को अर्तक धाम सिधारे' एक रती बिन एकती के 'आदि सूक्तियों से समाप्त होने वाले पदों में प्रारंभिक पंक्तियाँ अपनी शब्द योजना के अनुसार उदात्त स्वर की है जिनका ढलान भाव के पर्यवसान के साथ साथ इस मन्द स्वर में हो जाता है ।

जले हरी। थले हरी.

तथा --

न राग नसोग

आदि का वाक्य विन्यास भी इस प्रकार विषयानुकूल है। वाक्य विन्यास की इस सुयोजना ने शैली में न केवल प्रवाह को उत्पन्न किया है अपितु उसकी प्रभविष्णुता को भी तीव्रता प्रदान की है ।

छन्द विधान :- 'अकाल उस्तुति' में कवि ने 12 प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है । इनमें से कवित, सवैया, नराज, लघुनराज, रूआमल, तोटक और भुजंग प्रयात वार्णिक छन्द है एवं चौपाई, तोभा, पाद्धड़ी, दोहरा और दीर्घ त्रिभंगी मात्रिक छन्द हैं। काव्य की भावनाओं के अनुसार छन्दों में परिवर्तन होता चला गया है। उदाहरणार्थ जहाँ कवि ने आडम्बरों का खण्डन किया है या अकाल पुरुष के रौद्र रूप का वर्णन किया है, वहाँ सवैया तथा कवित ये दो छन्द अधिक प्रयोग किए गए हैं । इस प्रकार जहाँ इन छन्दों की लय ने विषयवस्तु को लय प्रदान कर गेय बनाया है, वहां उत्साह का परिवर्द्धन भी किया है। पाठक पढ़ता है तो उसका रक्त हिलोरे लेने लगता है--

---

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 12 ।

दामनी प्रहासन सुरवि निवासन सृष्टि प्रकासन गूढ गते ।
रक्तासुर आचन जुद्ध प्रभाचन निर्दय निराचन धर्म हिते ।
स्रोणत अचिन्त अनंल विवन्ती जोग जयन्तो खड्ग धरे ।
जय जय होसी महखासुर मर्दन पाप विनासन धाम करे ।[1]

इस छन्द की लय में बिजली की सी तेजी है, तो --

अत्र के चलैया छित छत्र के धरैया,
छत्र धारी के छलैया महासत्रन के साल है।
दान के दिवैया, महामान के बढैया,
अवसान के दिवैया है कटैया जम जाल हैं।
जुध के जितैया औ बिरुध के भिटैया,
महां बुध के दिवैया महाभान हूं के भान है ।
गिआन हूं के गिआता महा बुधता के दातादेव
काल हूं के काल महां कालहू के काल है ।[2]

यहाँ ओज का प्राधान्य है। ये लय और ओज वर्ण या विषय गत न होकर छन्दगत ही हैं। किन्तु जब कवि प्रभु के जाप में तल्लीन हो जाता है, तो उसका छन्द भी उसी अनुसार बदल जाता है। ऐसे में कवि लघु नराज छन्द का प्रयोग करता है---

अलेख हरि। अभेख हरि। अदोख हरि। अद्वेख हरि ।
अकाल हरि। अपालहरि। अछेद हरी । अभेद हरि ।[3]

रचना में आए संस्कृत छन्द इसकी स्तुत्यात्मकता को और भी अधिक सार्थक कर देते हैं । जैसे निम्नांकित भुजंग प्रयात छन्द ।

न रागं न रंगं न रूपं न रेखं ।
न मोहं न क्रोहं न द्रोहं न द्वेखं ।
न कर्मं न भर्मं न जन्मं न जातं ।
न मित्र न सत्रं न पित्रं न भातं।।1।91 ।

न नेहं न गेहं न कामं न धामं ।
न पुत्र न मित्रं न सत्रं न भामं।।[4]।8।98 ।

1-दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 35 । (2) वही, पृष्ठ 36 । (3) वही, पृष्ठ (4) वही, पृ० ।

आदि छन्द जहाँ एक ओर तुलसी के 'नमामीशमीशान निर्वाण रूपम्' तथा शंकराचार्य के -- 'न तातो न माता न बन्धुर्न भ्राता' आदि स्तोत्रों का स्मरण कराते हैं, वहाँ ब्रह्म के निर्गुणत्व की व्यंजना में भी सहयोगी है। इस प्रकार अकाल स्तुति के सभी छोटे बड़े छन्द रचना के विषय तथा अपेक्षित प्रभाव के सर्वथा अनुकूल है। अभीष्ट वेश द्वारा समादरणीय व्यक्ति के समान उनके द्वारा इस रचना का विषय सामान्य जन के लिए भी सम्प्रेष्य हो उठा है।

अलंकार विधान :- अकाल उस्तुति में कवि गुरु गोविन्दसिंह ने अलंकारों का बड़ा ही स्वाभाविक प्रयोग किया है। शब्दालंकारों में अनुप्रास की ही बहुलता है। अर्थालंकारों में कवि ने मालोपमा, सन्देह, उल्लेख, विरोधाभास, विशेषोक्ति आदि का प्रयोग अत्यंत सफलता से किया है।

अनुप्रास :- निम्न लिखित पद्यांशों में विभिन्न प्रकार के अनुप्रास अलंकार का प्रयोग दर्शनीय है।

छेकानुप्रास:-

जोगी जती ब्रह्मचारी बड़े बड़े छत्र धारी।[1]

निरजुर निरूप हो कि सुंदर सरूप हो।[2]

इन पंक्तियों में ज, ब, निर और स की सकृत आवृत्ति हुई है।

वृत्यानुप्रास :-

श्रावग सुध सम्रह सिधान के देखि फिरिओ घर जोग जती के।
सुर सुरादंन सुध सुधादिक संत सम्रह अनेक भती के।[3]

यहाँ 'स' वर्ण की अनेक बार आवृत्ति हुई है।

श्रुत्यानुप्रास :-

कतहुं भिखारी हुइके मांगत फिरत भीख।
कहुं महादान हुइ के मांगिओ दान देत हो।[4]

यहाँ क, ख, ग कंठ्य वर्णों की आवृत्ति हुई है।

गजाधपी नराधपी करंत सेव है सदा
सित सुती तपसपती बन सपती जपस सदा।[5]

यहाँ त, द, ध की आवृत्ति हुई है। जो सभी दन्त्य हैं।

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ13। (2) वही, पृष्ठ 13 (3) वही, पृष्ठ 14 (4) वही, पृष्ठ12।
(5) वही, पृष्ठ 27।

अत्यानुप्रास:-

सर्वान्त्यानुप्रास :- सुध सिपाह दृंत दुबाह सु साज सनाह दुजोन दलैंगे ।
भारी गुमान भरे मन में का परबत पंख हले न हलैंगे ।
तोर अरीन मारोइ मवासन भाते भतंगन भान भलैंगे।
स्रीपत स्री भगवान भजे बिन त्याग जहानु निदान चलैंगे।[1]

यहां अन्तिम तुकें मिलती हैं ।इस कारण यहां सर्वान्त्यानुप्रास अलंकार है।

समविषमान्त्यानुप्रास :-

अनहद रूप अनाहद बानी
चरन सरन जिह बसत भवानी
ब्रह्मा बिसन अंतु नहीं पायो।
नेत नेत मुख चार बतायो।[2]

यहां पहली और दुसरी, तीसरी और चौथी पंक्ति में तुक मिलती है ।

पुनरुक्ति प्रकाश :-

अनाथ नाथ नाथ हैं।[3]

यहां 'नाथ' शब्द की पुनरावृत्ति है पर अर्थ वही है।इसी प्रकार ---

कहूं देस देस भाखा रटंत ।[4]

में 'देस' शब्द की पुनरावृत्ति है।

यमक :-

रोज़ी ही राज बिलोकत राजक
रोख रुहान की रोजी न टारै ।।[5]

यहां 'रोज़ी' शब्द की पुनरावृत्ति है।परन्तु पहले रोजी शब्द का अर्थ है हर रोज तथा दुसरे का रोटी ।

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 14 ।
2- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 11 ।
3- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 26 ।
4- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 23 ।
5 दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 34 ।

वीप्सा :-

जोगी जती ब्रह्मचारी बड़े बड़े छत्र धारी
छत्र ही की छाया कई कोस लौं चलत है।
बड़े बड़े राजन के दावति फिरति देस।
बड़े बड़े राजन के दर्प को दलत है।[1]

इस उद्धरण में 'बड़े' शब्द का प्रयोग छ वीप्सागत हुआ है जिससे अर्थ में वैशिष्ट्य आगया है।

अर्थालंकार

मालोपमा:-

पारा सी पलाउ गढ़ रूपा कैसी रामपुर
सोर सी सुरंगाबाद नीके रही फूल के।
चंपा सी चंदेरी कोट चांदनी सी चादगढ़
कीरति तिहारी रही भालती सी फूल के।[2]

यहां कीर्ति के अनेक उपमान प्रस्तुत किए गए हैं। भालती पुष्प जैसी शुभ्र कीर्ति पलाडगढ पर पारा बन कर, रामपुर पर रूपा (चांदी) बन कर, सुरंगाबाद पर सूर्य बन कर, चंदेरी दुर्ग पर चंदा, चंदगढ पर चांदनी बन कर व्याप्त हो रही है।

रूपक :-

रावुक भलहारी गज गदहा विभूतधारी
गिद्धा भसान वास करिओइ करत है।
घुग्घू भटवासी लगे डोलत उदासी
त्रिग तावर सदीव मौन साधे इ भरत है।[3]

यहां अघोट पन्थी साधुओं का सुअर, हाथी, गदहा और गीदड़ से रूपक बांधा गया है।

विरोधाभास:-

सब ते दूरि सबते नेरा
जल थल महीअल जाही बसेरा।[4]

जो सब से दूर है, वह सब से निकट कैसे ? यह विरोध है। परमात्मा सर्वव्यापक होने से निकटतम तथा अप्राप्य होने से सर्वाधिक दूर है। यह इस विरोध का परिहार है।

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 13। (2) वही०, पृष्ठ 33।
3- वही, पृष्ठ 15। 4) वही, पृष्ठ 11।

सन्देह :- तजहुं को ता है कि राजसी को सार है
कि सुधता को धरू है कि सिधता की सार है।[1]

यहां अकाल पुरुष के रूप में तेज के तरू, रजोगुण का सार, शुद्धता का आगर या सिद्धि का सार होने का संदेह प्रकट किया गया है।

उल्लेख :- कहुं ससत्र धारी कहुं बिदिआ को बिचारी,
कहुं भारत अहारी कहुं नार के निकेत हो।
कहुं देव बानी कहुं सारदा भवानी
कहु भंगला महानी कहुं सिआम कहुं सेत हो।
कहुं धाम धामी कहुं सरब ठउर गामी,
कहुं जती कहुं कामी कहुं देत कहुं लेत हो।
कहुं बेद रीत कहुं ता सिउं बिपरीत
कहुं त्रिगुन अतीत कहीं सुरगुन समेत हो।[2]

यहां एक ही ब्रह्म विषय भेद से अनेक रूपों में एक ही वक्ता द्वारा वर्णित हुआ है।

विनोक्ति:- सभ काम फोकट जान
सभ धाम निहफल मान
बिन एक नाम अधार
सब काम धाम विचार।[3]

यहां सारे पद का आकर्षण बिना शब्द पर केन्द्रित है।

विशेषोक्ति :-

तीरथ स्नान दइआ दम दानु हूं संजम नेम अनेक बिसेखे।
बेद पुरान कतेब कुरान जमीन जमान सबान के पेखे।
पढन अहार जती जत धार सबै सु बिचार हजारक देखे।
स्री भगवानभजे बिनु भूपति एक रती बिन एक न लेखे।[4]

योगी आदि जन परमात्मा की प्राप्ति के साधनों तीर्थ स्नान, दया दम, संयम नियम वेदादि शास्त्रों का प्रयोग करते हुए भी उसकीप्राप्ति रूपी फल से वंचित है।

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 37। (2) वही, पृष्ठ 12, (3) वही, पृष्ठ 16।
(4) वही, पृष्ठ 23।

उदाहरण :-

अंज आदि देव है अभंज भंज जानीऐ
अभूत भूत है सदा अंज गंज भानीऐ
अदेव देव हैं सदा अभेव भेव नाथ हैं।
सभक्त सिद्ध प्रियदा सदीव सरब साथ हैं।[1]

यहां वर्ण्य वस्तु की भव्यता के उदात्त चित्रण द्वारा कथ्य को अलंकृत किया गया है।

'अकाल उस्तुति' के संबंध में किए गए उपर्युक्त विवेचन पर विहंगम दृष्टि डालने से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि इस रचना में अकाल पुरुष का गुण स्तवन, भक्त का दैन्य एवं उसकी भक्ति की आवश्यकता प्रतिपादित की गई है। इस विषय के प्रतिपादन के लिए कवि द्वारा दिए गए बिम्ब यद्यपि अधिक उभरे प्रतीत नहीं होते पर इसका कारण कवि का अकौशल न होकर आराध्य का निर्गुणत्व है। प्रतीकों की भाविकता और प्रभविष्णुता सर्वथा निर्दोष है। शान्त रस इस रचना के अंगि भक्ति रस का सहकारी रहा है। जिसे कवि की संस्कृत भाषा एवं व्यवस्थित शैली ने उपयुक्त छन्दों और चुने हुए अलंकारों के सहयोग से सामान्यपाठक के लिए भी सम्प्रेष्य बना दिया है।

--

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ८८ ।

ज्ञान प्रबोध

परिचय :- 'ज्ञान प्रबोध' गुरु गोविन्दसिंह प्रणीत भक्ति प्रधान रचना है।प्रस्तुत रचना में दार्शनिकता और अनेक पौराणिक कथाओं का सम्मिश्रण है । इस रचना में कुल 336 छन्द प्राप्य हैं। ग्रन्थ के वर्तमान रूप को देखने से ज्ञात होता है कि यह एक अपूर्ण रचना है क्योंकि इसके अन्त में समाप्ति का कोई उल्लेख नहीं है।ऐसा लगता है कि गुरु जी को यह रचना पूर्ण करने का अवसर नहीं मिला ।उसकी छन्द संख्या काफी रही होगी और गुरु गोविन्दसिंह जी को युद्धों में व्यस्त होने के कारण या तो इसको समाप्त करने का अवसर नहीं मिला था इसके पन्ने बिखर गये होंगे।[1]

इस दिशा में यह अनुमान लगाया जा सकता है कि गुरु गोविन्दसिंह का बहुत सा साहित्य आनन्द पुर परित्याग के समय सरसा नदी में बह गया था अत: यह सम्भव हो सकता है कि प्रस्तुत रचना का शेषांश उस नदी में बह गया हो। डा० धर्मपाल अष्टा ने दोनों संभावनाओं का उल्लेख किया है।[2] इसके अपूर्ण होने का प्रमाण है चतुरवर्ग की व्याख्या की अपूर्णता। इस रचना का दो भागों में विभाजित किया जा सकता है :--

1- स्तुति भाग
2- पौराणिक कथा से पुष्ट तत्व ज्ञान भाग ।[3]

सम्प्रेषण पाश्चात्य दृष्टि कोण से:--

प्रतिपाद्य :-- 'ज्ञान-प्रबोध' के प्रथम 125 छन्दों में कवि ने अकाल पुरुष की स्तुति, उस प्रभु की प्राप्ति के लिए किए जा रहे व्यर्थ आडम्बरों की निस्सारता तथा चारधर्मों के विषय में प्रकाश डाला है।

1-डा० प्रसिन्नी सहगल,गुरु गोविन्दसिंह और उनका हिन्दी काव्य,पृष्ठ159।
2-डा० धर्मपाल अष्टा,दी पोयट्री आफ़ दसम ग्रन्थ, पृष्ठ141।
3- डा० महीपसिंह, गुरु गोविन्दसिंह और उनकी हिन्दी कविता,पृष्ठ191।

'जापु' और 'अकाल उस्तुति' के समान ही यहां भी कवि ने अकाल पुरुष को अछेद्य, अभेद्य, निष्कलंक तथा सम्पूर्ण बताया है। इस अकाल पुरुष को पाने के लिए व्यक्ति अनेक प्रकार से उसकी पूजा व अर्चना करता है। परन्तु गुरुकवि का विश्वास है कि जब तक प्राणी को अकाल पुरुष का पूर्ण ज्ञान नहीं हो जाता तब तक तीर्थाटन, विविध पूजन, वैराग्य, संन्यास व्रत-नियम और संयम आदि का कोई महत्व नहीं। ये सभी भ्रमों को जगाने वाले हैं।

अनन्त तीरथ आदि आसनादि नारद आसनं,
बैराग अरु संन्यास अरु अनादि जोग प्रासनं।
अनादि तीरथ संजमादि बरत नेम पेखिए,
अनादि आधि के बिना समस्त भरम लेखिए।।[1]

उनका विश्वास है कि अनेक प्रकार के दान, पवित्र स्थान के भ्रमण और दूसरे अनेक उत्तम कार्यों से भी उत्तम कार्य है प्रभु का नाम-स्मरण और यही व्यक्ति को करना है अभीष्ट है।

सुवरत आदि दानं, समुन्द्र आदि इसनानं,
बिसुवादि आदि भरमं सिरकता आदि करमं।
निवल आदि करण सुनील आदि बरणं,
अनील आदि ध्यान जपत ततप्रधानं।।[2]

इसके पश्चात् कवि ने महाभारत तथा पुराणों के अनुसार प्रश्नोत्तरी शैली में आत्मा परमात्मा का सम्वाद प्रस्तुत किया है। आत्मा परमात्मा से प्रश्न करती है कि वह कौन है जिसका अमित तेज है और जो अद्भुत विभूति है।[3] परमात्मा उत्तर देता है कि यह ब्रह्म है जो अमित तेजयुक्त, अविगत, अकाम, अभेद, अभ्रम तथा शत्रु मित्र रहित है, जो पानी में डूबता नहीं, वायु से जिसे सुखाया नहीं जा सकता काटने से काटा नहीं जा सकता अग्नि से जलता नहीं, सहस्रों शस्त्रों से भी जिसकी हानि नहीं होती।[4] गीता

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 136(2)वही, पृष्ठ136(3)वही, पृष्ठ137
(4)वही, पृष्ठ 138।

में भी आत्मा का ऐसा ही स्वरूप वर्णित है--

नैनं छिन्दंति शस्त्राणि नैनं दहति पावक:
न चैनं कलदेयन्त्यापो न शोषयति मारुत: ।।[1]

आत्मा के प्रश्नों के उत्तर में ही कवि ने चार धर्म राज-धर्म, दान-धर्म, योग-धर्म तथा मोक्ष-धर्म के विषय में बताया है। दान - धर्म का वर्णन करते समय कवि ने युधिष्ठिर के राजसूय तथा अश्वमेध यज्ञ का वर्णन किया जिसमें उन्होंने अपरिमित दान दिया। तत्पश्चात् परिक्षित के गजमेध यज्ञ तथा सर्प-राज तक्षक के डसे जाने से राजा परिक्षित की मृत्यु का वर्णन किया गया है। परिक्षित की मृत्यु के उपरान्त जनमेजय ने राजा बनने पर अपनेपिता के प्रतिकार के निमित्त सर्पमेध यज्ञ का आयोजन किया जिसमें अनेकों सर्प समाप्त हो गए। अन्त में एक ब्राह्मण ऋषि आस्तीक की प्रार्थना पर यह यज्ञ बन्द हुआ। जनमेजय द्वारा काशीराज की कन्याओं से विवाह, विवाह में मिली दासी के प्रति राजा की आसक्ति दासी को उपपत्नी के रूप में स्वीकृति, उससे अजयसिंह की उत्पत्ति तथा दोनों रानियों से क्रमश: अश्वमेध और अश्वमेधान पुत्रों की उत्पत्ति, राजा जनमेजय का अश्वमेध यज्ञ, ब्राह्मणों पर अत्याचार, राजा का कोढ़ी होना, महाभारत सुनना तथा राजा जनमेजय की मृत्यु आदि घटनाओं को कवि ने अति विस्तार से वर्णित किया है।

जनमेजय की मृत्यु के पश्चात् अश्वमेध की राजा अजयसिंह के हाथों उसकी पराजयउघोतराजा का पशुमेध यज्ञ तथा मुनीराजा द्वारा एक विशाल यज्ञ का आयोजन करने की मन्त्रणा का वर्णन कवि ने किया है। इसी मन्त्रणा के एक दम पश्चात ग्रन्थ समाप्त हो जाता है। यह इस बात की ओर संकेत है कि यह ग्रन्थ अपूर्ण है। कवि ने केवल दान धर्म का या थोड़ा सा राज्य धर्म का ही विवेचन किया है। शेष दो धर्मों भोग तथा मोक्ष का भी वर्णन इसमें अवश्य हुआ होगा। इसी कारण इसका नाम 'ज्ञान प्रबोध' रखा गया है। परन्तु वह भाग अब उपलब्ध नहीं।

1- गीता २। २३ ।

बिम्ब-विधान :-

अकाल-पुरुष के स्वरूप वर्णन की दृष्टि से 'ज्ञान-प्रबोध 'जापु ' तथा 'अकाल-उस्तुति ' से बहुत कुछ साम्य रखता है परन्तु 'ज्ञान-प्रबोध में चार धर्मों में से दान-धर्म का वर्णन विशेष है।उस वर्णन में कवि ने महाभारत तथा पुराणों की कथाओं से सहयोग लिया है । 'अकाल-उस्तुति' में इस प्रकार की कथाओं का अभाव है। 'अकाल-उस्तुति' में केवल भगवान की स्तुति, दम्भ का खण्डन तथा नाम स्मरण पर विशेष बल दिया गया है पर प्रस्तुत रचना में कवि ने चारों वर्गों की कथा पर अधिक बल दिया है इनमें से भी दान की महत्ता के वर्णन के माध्यम से कवि ने विविध यज्ञों का वर्णन किया है जो कि जन साधारण को आसानी से ग्राह्य हो सकते थे तथा गुरु गोविन्दसिंह को सैन्य संग्रह में विशेष सहायक सिद्ध हो सकते थे ।

ज्ञान प्रबोध में बिम्बों का बाहुल्य है।कवि ने अपनी अभिव्यक्ति के लिए इनसे बहुत काम लिया है । यों 'ज्ञान-प्रबोध ' के बिम्ब भी बिम्बों की आधुनिक परिभाषा पर सोलहों आने खरे नहीं उतरते और न आधुनिक वर्गीकरण के आधार पर बिम्बों के सभी भेद उसमें उपलब्ध हैं।पर फिर भी उनमें एक चित्र को चाहे वह पूर्ण न होकर अपूर्ण ही हो के प्रस्तुतीकरण की क्षमता है।अकाल-पुरुष सम्बन्धी बिम्बों ने उसके महान् रूप की अभिव्यक्ति में अपना पूर्ण सहयोग दिया है।

निर्गुण का मूर्तीकरण सहज संभव नहीं ।मूर्तीकरण होते ही उस पर सगुणत्व की छाप पड़ जाती है।गुरु गोविन्दसिंह ने इस छाप को पौराणिक संदर्भों की समन्वित योजना से इतना विलक्षण कर दिया है कि उपस्थित होने वाला बिम्ब किसी विशिष्ट देव की आकृति का मूर्तीकरण न करके उसकी महत्ता का पुंजीकरण रुपायित करता है।कवि ने उसके रूप को तारों की दीपमाला कहा है।सर्वत्र इसी की ज्योति की ज्वाला जगमगाती है ।यदि वह तेजस्वी है, तो दयालु भी ।उसकी कृपालु दृष्टि काम पर छोड़े हुए बाण के रूप में भयानक भी है।सिर पर शोभित होता हुआ मुकुट, विशाल आँखें, मनोज का मान-मर्दन करने वाला रूप, शीश के चारों ओर का प्रभा-मंडल घूमती हुई चारु चन्द्रिका, जगती हुई ज्योति की ज्वाला आदि उसके

ईश्वरीय महत्व, सौन्दर्य और लोकोत्तर प्रताप व तेज को प्रकट कर रहे हैं:--

जगत जोति जुआलिका जलंत दीप मालिका ।
क्रिपाल दयाल लोचनं मचंक बाण मोचनं ।
सिरं करीट धारीअं दिनेस क्रित हारीअं ।
बिसाल लाल लोचनं मनोज मान मोचनं ।
सुमंत सीस सु प्रभा चक्रत चारु चंद्रका ।
जगंत जोत जुआलका छकंत राज सुप्रभा ।
जगंत जोति जैतसी बदंत क्रित इंसुरी ।[1]

इस अलंकारिक बिम्ब के माध्यम से कवि ने उस अकाल पुरुष का प्रभामय रुप प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। इन पंक्तियों को पढ़ कर पाठक की आँखों के सामने भगवान विष्णु के समान मुकुट धारण किए लाल आँखों वाली सुन्दर प्रतिमा उपस्थित हो जाती है। जिसका सौन्दर्य कामदेव का भी मान-मर्दन कर रहा है तथा जिसके मुकुट चन्द्रिका की चक्रिका घूम रही है। आज के विवाहों की सजावट पर बिजली के ये चक्र पाठकों को भलीभान्ति स्मरण हैं। उस समय में भी प्रभु की ज्योति का इस प्रकार का अंकन अपने आपमें विशेष आश्चर्य मय तथा चकाचौंध करने वाला रहा होगा । राग रंग, रुप रेखा न होते हुए भी उस अकाल पुरुष में राजा को एक रंक और रंक को राजा बनाने की सामर्थ्य है। कहीं समुद्र कहीं कूप तथा कहीं सरिता के प्रतीकों के माध्यम से कवि ने उस अकाल पुरुष की व्यापकता का बिम्ब उपस्थित किया है :--

आदि अंभ अनगाधि सरुपं
राग रंगि जिह रेख न रुपं ।
रंक भयो रावत कहूं भूपं ।
कहे समुंद सरता कहूं कूपं ।[2]

इस बिम्ब में रेखाहीन अकाल पुरुष के समान ही कोई रुप रेखा नहीं है।

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 128 ।

2- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 129।

किन्तु राजा को रंक और रंक को राजा करने की क्षमता के आशय रूप में और समुद्र सरिता तथा कूप के प्रतीकों द्वारा एक विलक्षण बिम्ब की अनुभूति हो ही जाती है।ये प्रतीक परस्पर विरोधी होते हुए भी उस अकाल-पुरुष के सुसामंजस्य का बोध कराते हैं। गीता में श्रीकृष्ण की विभूतियां भी इसी प्रकार की हैं ।यथा:--

मृत्यु: सर्वहरश्चाहमुद्भवश्च भविष्यताम् ।
कीर्ति: श्रीर्वाक्य नारीणां स्मृतिर्मेधा धृति: क्षमा।।[1]

इसी प्रकार -- सरता कहुं कूप समुद्र सरुपं।
अलख विभूतं अमित गतं।।[2]

इन पंक्तियों में पूर्व बिम्ब के साथ साथ उसकी अलक्ष्य विभूति और अमित गति का भी रुपायन हुआ है ।

गुरु गोविन्दसिंह ने उस अकाल पुरुष में वे सभी लक्षण घटाएं हैं,जो किसी अवतार या देवी शक्ति के विषय में संस्कृत साहित्य में वर्णित है।वह महनीय शक्ति घुटनों तक लम्बी बाहों वाली है, हाथ में शंख, कमल और धनुष धारण करती है उसकी ज्योति अपरिमित है, विश्व ज्योति की वह आकर है, उसके हाथों में तलवार रहती है अपनी विशाल भुजाओं से समस्त विश्व का भरण पोषण करती है। अकाल पुरुष भी इसी प्रकार रुपवान है:--

आजान बाहु सारंग कर धरणं
अमित जोति जग जोत प्रकरणं ।
खडग पारिघ खलदल बल हरणं
महाबाहु बिसवंभर भरणं ।।[3]

वह दुष्टों का दलन ० कर्ता है इसलिए उसका नाम सुन कर दैत्यों का रोष बढ़ जाता है किन्तु दैत्यों के रोष से उसका कुछ बिगड़ता नहीं।वह इतना बलिष्ठ है कि दुष्टों के दल के दल नष्ट कर डालता है,उसका अमित प्रताप समस्त जगत द्वारा वन्दनीय है:--

---

1-गीता,10।34,(2) दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 129 (3)वही,पृष्ठ 130 ।

खल दल बल हरणं दुसट बिहरणं
अस रणासरणं अमित गतं।
चंचल चरव चारण मृग बिहारण
पाप प्रहारण अमित मतं।
आजानु सुबाहं साहन साहं।
महिमा माहं सरब महं ।
जल थल बन रहता बन त्रिनि कहता
खल दलि दहिता सुन रिसही।
अति बिलसट दल दुसट निकंदन ,
अमित प्रताप सगल जग बंदन।
सोहत चार चित्र कर चंदन
प्रहारण दुसट दल मंडन ।।[1]

यद्यपि उपर्युक्त पंक्तियों में केवल एक पंक्ति से राजा का चित्र हमारी आँखों के सम्मुख उभरता है परन्तु शेष पंक्तियों में उस राजाओं के राजा के प्रताप व तेज तथा बल और संहारक शक्ति का वर्णन कवि ने इस ढंग से किया है कि वह जन साधारण के लिए अत्यधिक ग्राह्य बन गया है ।

जंघाएं , हरिण की सी चंचलता तथा कपूर जैसी गंध वाला अकाल पुरुष के बिना भला कौन हो सकता है।

अकाल पुरुष के सिर पर सुन्दर मुकुट शोभा पाता है जिससे अनेकों चन्द्रमा लज्जित हो रहे हैं।उसकी दन्त पंक्ति कान्ति युक्त है । उसके सुन्दर रुप को देख कर काली घटाएं भी भीतर ही भीतर जल रही हैं।उसकी मेखला की घंटिकाएं भी अत्यन्त अनुपम हैं।उसकी शोभा को देख कर सूर्य की शोभा भी जल रही है ।सिर पर मुकुट ऐसे शोभा पाता है मानों घटाओं के मध्य में इन्द्रधनुष ऊंचा हो।इस प्रकार निम्नांकित पंक्तियों में उस प्रभु का अद्भुत रुप बिम्ब उपस्थित होता है:--

---

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 130 ।

सुमन्त दन्त पदुकं, जलंत साम सुघटं
सुमंत कुद्र घंटका, जलंत भार कट्टा ।
सिरी सु सीस सुभीयं, घटाक बान ऊभीयं
सुमंत सीस सिधरं, जलंत सिधरी निरं।।[1]

ज्ञान-प्रबोधं के कुछ बिम्ब तो अपने वर्ण्य विषय के कारण जापु और अकाल उस्तुति से इतने घुल मिल गए है कि यदि ग्रन्थ के मध्य में उन्हें न देख कर अलग से देखा जाए तो पहचानना कठिन हो सकता है ।

अच्युत अभे अभेद अभित आखंड अतुल बल,
अटल अनन्त अनादि अरूप अखंड प्रबल बल
अभित अभित अनतोल अभू अनभेद अभंजन।
अनबिकार आतम सरुप सुर नर मुन रंजन ,
अविकार रुप अभै सदा मुन जन गन बन्दत चरन,
भव भरन करन दुख दोख हरण अति प्रताप प्रभ मै हरण।[2]

इस रुप बिम्ब के अधिकांश विशेषण जापु और अकाल उस्तुति के बिम्बों का पुनरुपायन मात्र है क्योंकि अधिकांश शब्द कुछ क्रम-भेद से उसी रुप में प्रस्तुत हुए हैं।इतना होते हुए भी ज्ञान-प्रबोध के अधिकांश बिम्ब अकाल पुरुष के सगुणात्व को ही रुप देते हुए प्रतीत होते हैं ।यथा:--

मुख मंडल पर लसन जोति अदोत अमितगत
जटत जोत जगमगत लजत लख कोटि निखतिपति।
चक्रवरती चक्रवे चक्रत चउचक्र करि धरि।
पदमनाभ पदमाछ नवल नारायण नरहरि।
कालाव बिहंडण किल बिख हरणं सुरनर मुन बदंत चरण
खंडण अखंड मंडण अभै नभो नाथ भउभै हरण ।।[3]

उपर्युक्त पद्य में अकाल पुरुष की महत्ता का बिम्ब बहुत कुछ पूर्व बिम्बों के ही समान है।वह कालिमा को दूर करने वाला, कलियुग के पापो का हर्ता ,देव,मुनि और मनुष्यों द्वारा वंदनीय है। समस्त ब्रह्मांड को मंडित

1- दशम ग्रन्थ,पृष्ठ 134-35(2) वही,पृष्ठ130(3) वही ,पृष्ठ130।

करने वाला स्वयं अभय रूप वंदनीय है । समस्त ब्रह्माण्ड को मंडित करने वाला है । कवि ने यहां चक्रवर्ती पद्मनाथ, नारायण नरहरि आदि परम्परागत अभिधान प्रतीकों के माध्यम से जिस बिम्ब को रूपायित किया है, वह बहुत कुछ विष्णु के समान जान पड़ता है ।

उपनिषदों में ब्रह्म का स्वरूप लक्षण करते हुए उसे 'नेति नेति' कह कर पुकारा गया है । गुरु जी ने भी उसे अकालपुरुष को न जाने जा सकने वाले रूप वाला, जिसे देखा न जा सके, भूल रहित, तत्वों से परे किसी के आगे न झुकने वाला, प्रथम पुरुष विकार रहित, अजेय, अगाध, नाशरहित, द्वैत से बिना, माया रहित, भेद रहित अभंजन तथा अचंचल बताया है :--

अलख रूप अलेख अभै अभूत अभंजन ।
आदि पुरख अबिकार अजै अगाध अंजन ।
निरबिकार निरजुर सरूप निरदुख निरंजन ।
अभंजन भंजन अभेद अभूत अभंजन ।।[1]

परन्तु गुरु कवि ने उसके निराकार रूप पर ही बल नहीं दिया अपितु उसे रूपायित करने का भी प्रयत्न किया है । वह शाहों का शाह, सुन्दर शुभ मति, बड़े स्वरूप वाला, महाभाग्य शाली है। जैसे तख्त पर बैठे हुए सूर्य का तेज तपता है वैसे ही करोड़ों सूर्यों जैसा जिसका प्रताप धरती पर तप रहा है ---

साहानसाह सुन्दर सुमत बड सरूप बड़वे बखत
कोटिकि प्रताप भू मान जिम तपत तेज इस्थित तखत ।।[2]

बिम्ब की प्रभ विष्णुता के लिए चार हजार या करोड़ आदि संख्यावाचक शब्दों की ही नहीं अपितु दुगना चौगुना आदि आवृत्ति बोधक विशेषणों का भी प्रयोग किया गया है । यथा --

---

1- दशम ग्रन्थ, 131 ।

2- दशम ग्रन्थ, 131 ।

चक्रत चाट चक्रवे चक्रत चडकूंट चवगन ।
कोट सूर सम तेज तेज नहीं दुन चवगन ।
कोट चन्द चक परें तुल नहीं तेज विचारत ।
बिआस परासर ब्रस भेद नहीं बेद उचारत
साहानसाह साहिब सु घरि अति प्रताप सुन्दर सबल ।
राजान राज साहिब सबल अभित तेज अछे अछल ।।[1]

यहां चार कह कर ही कवि को सन्तोष नहीं हुआ चौगुनी चमक भी कहा और तेज को करोड़ों सूर्यों के समान बता कर ही वह नहीं रुका अपितु उससे भी दुगुनी चमक कह कर बिम्ब को अधिक उभारा है ।उसका तेज ऐसा है मानो चक्र घूम रहा हो और उससे आग्नेय स्फुलिंग निकल रहे हों । कवि ने उसके तेज को चन्द्रमा से तथा सूर्य से भी महान् बताया है ।चन्द्रमा शान्ति देता है,तो अकाल पुरुष भी सज्जनों को शान्ति प्रदान करता है सूर्य जलाता है तो अकाल पुरुष दुष्टों का नाश करने वाला है।इस प्रकार ~~अनेकों~~ द्विमुखी विशेषणों का महत्व विशेष दर्शनीय है जो सूर्य और चन्द्रमा के प्रतीकों द्वारा एक साथ ही व्यक्त हैं।

छत्र धारी छत्री पति छैल रूप छित नाथ,
छोणी कर धायिआ बर छत्रीपत गाइए ।
बिसु नाथ बिस्वंभर बेदनाथ बाला कर,
वाजी गरिबान धारी बन्धन बताइये
निउली करम दुधाधारी विधाधर ब्रतधारी
राजन के राजा महाराजन के महाराज
ऐसो राज छोडि अउर दूजा कउन ध्याइए ।[2]

वह अकाल पुरुष छत्रों को धारण करने वाले क्षत्रियों का पति है,छैल पुरुष ,सुन्दर रुप वाला पृथ्वीनाथ है ।पृथ्वी का कर्ता,श्रेष्ठ छाया वाला तथा छत्रपति (राजा) कह कर उसका गुणगान किया जाता है।संसार का स्वामी वेदों का नाथ और महान है।बाजीगर की भांति अनेक रुप धारण

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 131 ।
2- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 132 ।

करने वाला है यह उसका(बन्धन) नियम कहा जा सकता है ।न्योली कर्म करने वाले, दूध के आश्रय पर जीवित रहने वाले, विद्वान तथा ब्रह्मचारी उसी का ध्यान लगाते हैं पर फिर भी उसे रत्ती भात्र भी पा नहीं सकते।जो राजाओं का राजा, महाराजाओं का महाराज है उसे छोड़ अन्य किसका ध्यान किया जाए इत्यादि वर्णन के द्वारा कवि ने बिम्बों की माला ही प्रस्तुत कर दी है । यहां बिम्ब निरंग रहे हैं । निरंग रुपक का बिम्ब अधिक गहरा नहीं हुआ करता। परन्तु भिन्न भिन्न प्रकार के उपासकों की दुनिया का चित्र हमारी आँखों के सामने अवश्य उपस्थित हो जाता है ।इस कमी की पूर्ति कवि ने अनुप्रास अलंकार से कर दी है ।

अकाल पुरुष के स्वरूप वर्णन के अतिरिक्त ज्ञानप्रबोध में कवि ने कुछ युद्धों का भी वर्णन किया है जिनमें पर्याप्त विशुद्ध बिम्ब मिलते हैं। गुरु गोविन्द सिंह के अपने अनुभव के कारण ये बिम्ब अति सुन्दर बन पड़े हैं। इनमें रंग, गति और ध्वनि का सुन्दर संयोजन हुआ है।

महाराज जनमेजय काशीराज पर आक्रमण करते हैं। आक्रमण कर रही सेना का एक लघु बिम्ब प्रस्तुत है :--

चली सेन सूकर पराची दिसानं ।
चहे बीर धीरं हठे शस्त्र पानं ।
दुरयो जाइ मुरंग सुबा राण सीसं ।
घेरओ जाइ फउजं भजि उन्नो एक इसं ।।[1]

इन पंक्तियों में कवि यद्यपि सेना का वर्णन कर रहा है पर प्रभु के नाम को वहां भी नहीं भूला। भक्ति और शक्ति का अद्भुत समन्वय है।इसी प्रकार कवि ने युद्ध के भी कई गतिशील चित्र प्रस्तुत किए हैं।यथा --

मच्यो जुध सुधं बहे शसत्रं घात,
गिरे अध वधं स धं विपातं ।
गिरे हीर चीरं सुबीरं रजाणं ,
कटे अध अंघ छुटे सप्रध्यानं।।[2]

1- दशम ग्रन्थ पृष्ठ 143 ।
2- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 132 ।

युद्ध में भयंकर मारकाट चलती है हाथी चिंघाइते हैं।उनके दन्तवरम टूट कर गिर पड़ते हैं।वे सेनाओं का पददलन करते हुए भागते फिरते हैं,ढाल और कवच कुण्डल चूर चूर हो रहे हैं। बड़े धीर प्रवीर योद्धा शस्त्र वर्षा से धराशायी हो रहे हैं।

विभै दन्त वरमं प्रछे दंत नानं,
करे भरदनं अरदनं मरद मानं।
कटे चरम बरमं छुटे चउर चारं,
गिरे बीर धीरं छुटे शस्त्र धारं।।[1]

उपर्युक्त तीनों बिम्बों में गतिशीलता है।एक सजीव चित्र आँखों के सम्मुख साक्षात होने लगता है।

भीमसेन और दुर्योधन के मध्य हुए भयंकर युद्ध का भी कवि ने सजीव चित्र उपस्थित किया है।भीमसेन तथा दुर्योधन का युद्ध हुआ तो शिव की समाधि भंग हो गयी और उन्होंने नृत्य करना प्रारंभ कर दिया।योद्धाओं को चोटें लगने से खड़ाक का शब्द होता था तीरों से शरीर छलनी हो गए तथा सिर धड़ से पृथक हो गए।

तहां भीम कुरराज सिउ जुध मचिओ।
छुटी ब्रस तारी महां रुद्र नचिओ।
उठे सबद निरघात आघात बीरं।
भए संड मुंड तणं तछ तीरं।।[2]

मण्डलाकार में योद्धाओं का लड़ना, वीरों का एक दूसरे को ललकारना,आदि अनुभावों को भी कवि ने बिम्ब द्वारा प्रस्तुत कर दिया है --

बली मण्डलाकार जुझै बिराजे।
हसे गरज ठोकै भुजा हर दुगाजै।
दिखावे बली मण्डलाकार थानै।
उभारै भुजा अउ फटाकै कजानै।[3]

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 143
2- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 146
3- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 146

युद्धभूमि के भी कवि ने अनेक सजीव और वीभत्स बिम्ब रचे हैं । ऐसे लगता है मानो कवि ने चित्रों की एक लड़ी पिरो दी हो। चित्रों की एक रील आँखों को आगे घूमने लगती है ।यथा :--

जुगन देत फिरहि हरिखाने,
गीध सिवा बोलहि अपमाने ।
भूत प्रेत नाचहि अरु गावहि ।
कहूँ कहूँ सबद बेताल सुनावहि ।
चमकत कहूँ खगन की धारा,
बिध गए संड मुसंड अपारा,
चिंसत कहूँ गिरे गज भाते।
सोवत कहूँ सुभट रण ताते ।।
हिंसत कहूँ गिरे हैं धाए,
सोवत क्रूर सलोक पठाए ।
कटि गए कहूँ कटुट अरु चरमा।
कटि गज बाजन के बरमा।।[1]

इन पंक्तियों में गिद्धों ,भूत-प्रेत व बैतालों का तथा रुण्ड-मुण्ड व धराशायी वीरों का बड़ा ही पूर्ण चित्र उपस्थित होता है जिससे युद्धभूमि आँखों के सम्मुख आ जाती है और मन में जुगुप्सा उत्पन्न होने लगती है।इस बिम्ब में गति के अतिरिक्त आलोक और छाया भी है तथा गति के साथ साथ रंग और नाद का भी संयोजन हुआ है । समस्त बिम्बों में पूर्ण चाक्षुषता है ।

'ज्ञान प्रबोध' में यज्ञों का भी वर्णन हुआ है। कवि ने उनका निर्वाह भी बिम्बात्मक दृष्टि से किया है।यज्ञ कुण्ड का बिम्ब प्रस्तुत करते हुए कवि ने बताया है कि उसका आकार चार कोस में फैला हुआ है ।उसके हजार परनाले हैं , एक हजार ब्राह्मण यज्ञ कर रहे हैं।उसमें हाथी की सूंड के बराबर घृतधार पड़ रही है, और अनेक पदार्थ आहुति रूप में जल रहे हैं :---

---

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 149 ।

चतुर कोस बनाइ कुंडक सहस्र लाइ पर नार,
संख्य होम करे लगे दिज बेद बिआस अउतार,
हसत सूंड प्रमान घृत की परत धार अपार
होत भसम अनेक बिजन लपट झपट कराल ।[1]

यहां पर भले ही अत्युक्ति मालूम पड़ती है। पर महत्ता दर्शाने के लिए कई बार कवि इस प्रकार का वर्णन करते हैं ।जन साधारण को प्रभावित करने के लिए इस प्रकार वर्णन हुआ ही करता है।तुलसीदास ने भी इसी प्रकार का वर्णन धनुष यज्ञ के समय 'रामचरित मानस' में किया था । यथा:--

भूप सहस्र दस एक ही बार लगे उठावन टरहीन टारा ।।[2]

राजा जनमेजय की विवाह में प्राप्त दासी के रूप वर्णन के निम्नांकित बिम्ब में कवि ने अनेक रंगों को प्रयुक्त किया है,उससे यह चित्र नयनाभिराम बन गया है।कहीं वह फूलों की माला या चन्द्रमा के समान लग रही है। कहीं पद्मनी रूप है या मालती के समान बनी हुई है ।कहीं इसे फूलों ने तो पैदा नहीं किया ? उसके शरीर से चंपा की सुगंध निकल रही है --

किधौं फूलमाला लखे चन्द्र भासी
किधौ पदमनी मैं बनी मालती सी,
किधौ पुहप धनिआ फुली राइं बेलें ,
तजे आं ते बासु चंपा फुलेलें।।[3]

इस प्रकार समस्त रचना में कवि ने पर्याप्त सफल बिम्ब योजना की है।सफल बिम्ब योजना के दो गुण विशेष महत्वपूर्ण है।प्रत्यक्षता और परिचयात्मकता अर्थात् बिम्ब स्पष्ट उभार पूर्ण और जाने पहचाने हों।इस दृष्टि से ज्ञानप्रबोध के बिम्ब अत्यन्त उभार युक्त परिचित और प्रत्यक्ष हैं। इनके अतिरिक्त इन बिम्बों में गुरु कवि का प्रत्यक्ष दर्शन भी बोलता है ।

प्रतीक योजना:-

'ज्ञान प्रबोध' में कवि ने जितनी कुशलता बिम्बों में दिखाई है प्रतीकों में नहीं ।रचना में आए सभी प्रतीक न केवल परम्परा

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 139 (3)दशम ग्रन्थ पृष्ठ 143-44 ।
2- रामचरित मानस

गत है अपितु बे जान भी। पुरुष सौन्दर्य के प्रतीक रुप में मनोज, और स्त्री सौन्दर्य के लिए देवकन्या, यक्षानी, किन्नरी, नागकन्या, वासवी शंखणी, पद्मनी आदि को रखा है। कहीं कहीं कवि ने प्राचीन सौन्दर्य प्रतीकों के प्रयोग द्वारा भी अकाल पुरुष की सुन्दरता का चित्रण किया है :--

कंजलक नैन कंबू ग्रीवहि कटि केहरि कुंजर ज गवन ।
कदली कुरंग करपूर गत बिन अकाल दूजो कवन[2]

अन्य प्रतीकों में अजोनी और अछेदी[3] आदि शब्दों को लिया जा सकता है। किन्तु ये सभी प्रतीक इस रचना में दशम ग्रन्थ की दूसरी रचनाओं के समान प्रभावशाली नहीं बन पाए हैं।

नारी सौन्दर्य के चित्रण में कवि जहां पौराणिक प्रतीकों का आश्रय न लेकर उपमान प्रतीकों की [illegible] योजना करता है, वे स्थल अपेक्षाकृत अधिक मनोहारी बन पड़े हैं :--

लखी रूपवंती महाराज दासी
मनो चीरके चार चंद्रा निकासी ।
लहे लहे चंचला चार बिघाल तासी
किधौं कंज की मांफ सोभा प्रकासी ।[3]

यहां चन्द्रमा बिजली और कमल आदि प्रतीकों के माध्यम से दासी का रुप प्रस्तुत किया गया है। चंद्रमा को चीर कर निकली चाँदनी में तो व्यंजना भी है कि दासी का रुप चाँद से भी बढ कर है।

सम्प्रेषण भारतीय दृष्टि से

रस योजना :-

रसों के परस्पर सम्बन्ध-विरोध और अविरोध तथा विरोध परिहार का विवेचन करते हुए आचार्य विश्वनाथ ने शान्त रस के विरोधी रस

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 128 । (2) वही, पृष्ठ 144 ।
3- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 131 ।

वीर ,शृंगार,रौद्र, हास्य और भयानक गिनाए हैं।[1] पंडितराज जगन्नाथ ने शान्त और रौद्र तथा शांत औरशृंगार को परस्पर विरोधी रस स्वीकार किया है।[2] शान्त रस को वीर रस का विरोधी रस स्वीकार नहीं किया तथा महाभारत में शांत रस की प्रधानता स्वीकार की है।[3]

संस्कृत के अधिकतर आचार्यों ने भक्ति रस को शान्त रस के अन्तर्भूत माना है। देखना यह है कि क्या भक्ति रस का भी शृंगार ,वीर,रौद्र, अद्भुत, भयानक, वीभत्स रस से कोई विरोध है?

'श्रीमद्भागवत में श्रवण, कीर्तन, विष्णु का स्मरण ,पाद-सेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य,सख्य तथा आत्म निवेदन को नवधा भक्ति कहा गया है।[4] गीता में स्वयं भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा :--

'मामानुस्मर युद्ध च'

अर्थात् मेरा स्मरण कर और युद्ध करे।प्रभु नाम स्मरण में भक्ति है और युद्ध करने में कर्म अर्थात् वीर भाव की प्रधानता है।इस प्रकार गीता में सक्रिय भक्ति पर बल दिया गया है।महाभारत में इसी प्रवृत्तिमय भक्ति का रूप परिलक्षित होता है।इस प्रकार प्रवृत्तिमय भक्ति कर्म-प्रधान भक्ति है। गुरु गोविन्दसिंह के काव्य में भी भक्ति के इसी स्वरूप के दर्शन हमें होते हैं। गुरु गोविन्दसिंह से पूर्व गोस्वामी तुलसीदास ने भी शील,शक्ति और सौन्दर्य से युक्त भगवान राम को भक्ति का आलम्बन बनाया था।आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कथन है,--' गोस्वामी जी के भक्ति क्षेत्र में शील,शक्ति और सौन्दर्य तीनों की प्रतिष्ठा होने के कारण मनुष्य की सम्पूर्ण भावात्मिका प्रकृति के परिष्कार और प्रसार के लिए मैदान पड़ा हुआ है,वहाँ जिस प्रकार लोक व्यवहार से अपने को अलग करके आत्म-कल्याण की ओर अग्रसर होने वाले

1- साहित्य दर्पण (विमर्श टीका) पृष्ठ123-24।

2- रसगंगाधर(हिन्दी अनुवाद चौखम्बा विद्याभवन)पृष्ठ 192।

3- हिन्दी साहित्य कोष भाग 1',पृष्ठ 827।

4- श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पाद सेवनम्।
अर्चनं वंदनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्।।--(श्रीमद्भागवत,7:5:23)

काम, क्रोध आदि शत्रुओं से बहुत दूर रहने का मार्ग पा सकते हैं, उसी प्रकार लोक-व्यवहार में मग्न रहने वाले अपने भिन्नभिन्न कर्तव्यों के भीतर ही आनन्द की वह ज्योति पा सकते हैं जिससे इस जीवन में दिव्य जीवन का आभास मिलने लगता है और मनुष्य के वे सब कर्म, वे सबवचन और वे सब भाव क्या डूबते हुए को बचाना, क्या अत्याचारों पर शस्त्र चलाना, क्या स्तुति करना, क्या निन्दा करना, क्या दया से आर्द्र होना, क्या क्रोध से तमतमाना जिनसे लोक का कल्याण होता आया है, भगवान के लोक पालन करने वाले कर्म, वचन और भाव दिखाई पड़ते हैं।[1] इस प्रकार भक्ति-भावना निष्क्रिय अर्चन-पूजन न रह कर सक्रियता में परिवर्तित हो जाती है।

अत: भक्ति और वीरता के समन्वय के कारण वीर रस तो भक्ति रस का विरोधी रहता ही नहीं है रौद्र, भयानक तथा वीभत्स रस भी उसके सहकारी हो जाते हैं, क्योंकि युद्ध में कब उत्साह, क्रोध में परिवर्तित हो जाता है और कब नायक अपने युद्ध कौशल से शत्रुओं के हृदय में भय का संचार कर देगा तथा कब सैनिकों के नरमुण्ड कट कर पृथ्वी पर लोटने लगेंगे और जुगुप्सा को जन्म देंगे इसका प्राक् अनुभव नहीं हो सकता। क्रोध और उत्साह इस कारण भक्ति रस के पोषक सिद्ध होते हैं न कि बाधक। यही गुरु गोविन्दसिंह के काव्य में हुआ है। ये रस अवश्य ही शान्त या भक्ति के विरोधी होते यदि ~~भक्त~~ नायक में अहंकार भावना का प्रवर्धन होता अहंकार के कारण उत्पन्न क्रोध और तद्जन्य भय तथा जुगुप्सा सभी भक्ति के विरोधी हो जाएंगे पर जहां भगवान के नाम पर ही सब कुछ किया जाएगा-उससे युक्त होकर उसके लिए और उसकी सहायता से ही सब कुछ होगा उसमें अहंकार की गंध भी न रहेगी। अत: गुरु गोविन्दसिंह के काव्य में जहां एक नई ही परिपाटी का प्रचलन हुआ वहां सन्त सिपाही के दर्शन ने वीर, रौद्र भयानक और वीभत्स को भक्ति का सहायक बना दिया यहां तक कि शृंगार भी भक्ति का सहायक हो गया क्योंकि वह सर्वशक्ति मान अकाल पुरुष भी कभी कभी दयालुता के कारण कोमल रूप भी धारण कर लेता है। जिस प्रकार सूरदास ने शृंगार और भक्ति को सहयोगी बना दिया उसी प्रकार गुरु गोविन्दसिंह ने जहां कृष्ण-गोपिका सम्बन्धों का वर्णन किया है-- विशेष कर 'विचित्र नाटक' में

1- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, चिन्तामणि भाग 1, पृष्ठ 101।

वहाँ पर उनके वर्णन में भी भक्ति व शृंगार के इस विरोध का परिहार हो गया है।यदि इस बात को लेखक के नायक पूर्ण न भी कर पाए हों,तो भी लेखक गुरु गोविन्दसिंह के मन में अवश्य ही यह रहा होगा। इसीलिए यह विरोध सहयोग में परिवर्तित मानना पड़ता है।

'जापु' और 'अकाल उस्तुति' की भाँति 'ज्ञानप्रबोध' में भी भक्ति रस ही अंगिरस के रुप में आया है।इसके साथ साथ वीर और वीभत्स रस का भी परिपाक इसमें हुआ है।

भक्ति रस:-

'जापु और 'अकाल उस्तुति' के समान ही 'ज्ञान-प्रबोध' में भी भक्ति रस का आलम्बन निर्गुण अकाल पुरुष है।उसके नाम,धाम,गुण,ग्राम, गोत्र कुछ भी नहीं है।वह सिद्धि और बुद्धि का दाता है।यन्त्र मन्त्रों से अतीत तथा कर्मभ्रमों से विमुक्त है।

अछेदं अभेदं अनामं अठामं,
सदासरवदा सिधदा बुधिधामं।
अजंत्र अमंत्र अकंबं अपारमं,
अखेदं अभेदं अछेदं अकारमं।।[1]

परन्तु साथ ही साथ कवि ने उसके रुप का भी वर्णन किया है।उस अकाल पुरुष के नेत्रों की ज्वाला से कामदेव भस्म हो जाता है।उसने महातेज युक्त मुकुट धारण किया है।जिसकी शोभा से करोड़ों सूर्य भी मंद पड़ जाते हैं उस प्रभु के नेत्र विशाल और सौन्दर्य युक्त है जिन्हें देख कर कामदेव भी लज्जित होता है।मुख मण्डल की आभा को देख कर चन्द्रिका भी मन्द पड़ रही है।

क्रिपाल दयाल लोचनं, मयंक मान मोचनं।
सिरं करीट धारीयं, दिनेस कित हारीयं।
बिसाल लाल लोचनं, मनोज मान मोचनं,
सुमंत सीस सु प्रभा, चकृत चारु चंद्रका।।[2]

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 127 ।
2- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 128 ।

इस प्रकार के रूप वर्णन के द्वारा पाठक या श्रोता के हृदय में उस अकाल पुरुष के प्रति अगाध श्रद्धा उत्पन्न होती है। प्रभु का यह अनुपम रूप भक्ति भाव के लिए उद्दीपन विभाव है। इसी के साथ साथ कवि उस अकाल पुरुष का गुण गान भी करता है जिससे यह भक्ति भावना और भी उद्दीप्त होती है।

बिसवं चरणं जगत प्रकरणं अधरण धरणं स्रिसटिकरं।
आनंद सरुपी अनहद रुपी, अमित बिभूती तेज बरं।
अखंड प्रतापं सब जगथापं, अलख अतापं बिसुकरं।
अदवे अबिनासी तेज प्रकासी सरव उदासी एक हरं।[1]

वह अकाल पुरुष सारे विश्व का भरणपोषण करने वाला है, निराश्रितों का आश्रय, साक्षात, आनन्द और अनहद स्वरूप है। उसका प्रताप तेज महान है, वह सर्वथा निर्लिप्त और दुःख रहित है।

वह अकालपुरुष बड़ा ही विचित्र, अद्भुत, अनूठा और रहस्यमय है। प्रभु के अत्यन्त तेजवान, ज्योति पूर्ण स्वरूप को देख कर पाठक का मन विस्मय-विमूढ़ हो उठता है।

चक्रत चार चक्रवे चऊ कुंट चवगन,
कोट सूर सम तेज तेज नहीं दून चवगन,
कोट चंद चक पेर तुल नहीं तेज विचारत,
बिआसं परासर ब्रह्म भेद नहि बेद उचारत,
साहानसाह साहिब सु धरि अति प्रताप सुसुंदर सबल,
ए राजान राज साहिब सबल अमिततेज अरे अछल।।[2]

यहाँ विस्मय संचारी भाव है और अकाल पुरुष के इस अद्भुत रूप को देख कर नेत्र-विकास अनुभाव है। इस प्रकार यह भाव भी अद्भुत रस में परिणत न होकर भक्ति रस की ही पुष्टि करता है।

साथ ही वह अकाल पुरुष अनेक विरोधाभासों से भी पूर्ण है जो कि पाठकों के हृदय में अनेक जिज्ञासाएं जगाता है।

जात में न आवे सो अजात के के जानु जीअ,
पात मे न आवे सो अपात के बुलाईए।

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 129 ।। (2) वही, पृष्ठ 131 ।।

भेद में न आवे सो अभेद के के भाखीअतु ,
छेदयो जो न जामि सो अछेद के सुनाइए ।
खंडिओ जोन जायि सो अखंड जू को खिआलु कीजै।
खिआल में न आवे गभता को सदा खाइए ,
जंत्र में न आवे सो अजंत्र के के जापीअतु
धिआन में आवे ताको ध्यान की जे धियायिये।।[1]

यहाँ औत्सुक्य संचारी भाव है, जो भक्ति रस के परिपाक में सहयोगी सिद्ध हुआ है ।

वीररस :- 'ज्ञानप्रबोध' में नौ युद्धों का वर्णन हुआ है। ये युद्ध है जनमेजय और काशीराज का युद्ध, अर्जुन और भीष्म का युद्ध, द्रोण युद्ध, अर्जुन कर्ण युद्ध, युधिष्ठिर शल्य युद्ध, अश्वत्थामा युद्ध, भीम दुर्योधन युद्ध, अश्वमेघ, अश्वमेधान तथा अजयसिंह का युद्ध और रणचंडी का दैत्यमेघ । इन युद्धों के कारण इस रचना में वीर-रस का भी संचरण हुआ है ।

जनमेजय की सेना काशीराज पर आक्रमण करने के लिए प्रस्थान करती है । प्रयाण करती हुई सेना का बड़ा ही सुन्दर वर्णन कवि ने किया है। सेना वायु के प्रचण्ड प्रवेग की तरह पूर्व की ओर गमन करती है ।वीर सशस्त्र योद्धा हुंकारते हुए आगे बढ़ कर काशी के घेर लेते हैं।

चली सैन सुकर पराची दिसानं,
चढे वीर धीरं हठे ससत्र पानं ।
दरयो जाइ दुरंग सुबा राण सीसं ,
घेरयो जाइ फउजं भाजियो एक इसं ।।[2]

दोनों सेनाओं में भयंकर युद्ध होता है। सशस्त्र योद्धाओं के घातप्रतिघात और शस्त्रों के टकराने से भयंकर ध्वनियां उठती है ।

भचयो जुध सुधं बहे ससत्र घातं ।।[3]

यह घातप्रतिघात उद्दीपन विभाव का कार्य करता है ।

इसी प्रकार अर्जुन भीष्म युद्ध में जब भीष्म पांडवों को युद्ध में ललकारते है, तो अर्जुन उनको चुनौती देता है---

---

1-दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 131-32। (2)वही, पृष्ठ 143। (3) वही, पृष्ठ143 ।

कीओ भीखमें आसना समाजं,
महओ क्रुध जुधं समूह पंडराजं ।
तहां गरजियो आजनं परमबीरं
धनुरबेद ग्याता तेजेपरम तीरं ।[1]

अर्जुन ने युद्ध भूमि में वाण वर्षा से सारा आकाश आच्छादित कर दिया ।

महाभारत के विभिन्न प्रसंगों के वर्णन में कवि ने भीम और दुर्योधनके द्वन्द्व युद्ध को बड़े ही सुन्दर ढंग से वर्णन किया है । वे दोनों ही वीर थे । दोनों भयंकर शस्त्रों से सन्नद्ध थे और दोनों ने युद्ध वेष धारण किया हुआ था । दोनों ही महायुद्ध के अणी थे ।

दोऊ ससत्र धारं दोऊ परम दानं ,
दोऊ ढाल ढीचाल हिंदू हिंदानं ।
दोऊ ससत्रवरती दोऊ छत्रधारी ,
दोऊ परम जोधा महां जुध कारी।[2]

दोनों ही योद्धाओं के समूह में खड़े होकर लड़ रहे थे, और भुजाओं पर हाथ फेर फेर कर हुंकार रहे थे ।दोनों के हाथों में शस्त्र चमक रहे थे और चेहरे पर युद्ध की हिंसक प्यास चमक रही थी ।

दोऊ मंडलाकार जूझं विराजे ,
हथं हर दुठोंके भुजा पाइ गाजे ,
दोऊ खत्रहाणं दोऊ खत्र खंडं
दोऊ खग पाणं दोऊ क्षेत्र मंडं।।[3]

इस भयंकर युद्ध में दोनों वीर जूझते है और विजय भीम की होती है । इस प्रकार इन वर्णनों से उत्साह स्थायी भाव उद्दीप्त होकर गर्व, धृति, आवेग आदि संचारी भावों के साथ वीर रस के परिपाक में सहायक सिद्ध होते हैं ।

अश्वमेघ, अश्वमेघान और अजयसिंह के युद्ध वर्णन के द्वारा भी कवि उत्साह स्थायी भाव को परिपुष्टता की सीमा तक ले जाता है।इस प्रकार उत्साह स्थायी रस रूप में परिणत हो जाता है।

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 147 । (2) वही, पृष्ठ 147 ।(3) वही, पृष्ठ147 ।

वीभत्सरस :-

विभिन्न युद्धों के वर्णन द्वारा कवि नेजहां उत्साह स्थायी को पुष्ट किया है, वहां जुगुप्सा स्थायी भी परिपुष्ट हुआ है ।

जनमेजय और काशीराज की सेनाओं में भयंकर मारकाट चलती है । हाथी चिंघाड़ते है उनके दंतवरम टूट कर गिर रहे हैं । वे सेनाओं को कुचलते हुए भागते हैं ढाल और कवच कुंडल चूर चूर हो रहे है। बड़े बड़े वीर योद्धा शस्त्र वर्षा धराशायी हो रहे है ।

बिभेदंत वरमं प्रछेदंत नानं ,
करं मरदनं अरदनं मरद मानं ।
कटे चरम बरमं छुटे चउर चारं ,
गिरे बीर धीरं छुटे ससत्र धारं ।।[1]

भीम और दुर्योधन का युद्ध सब से भयंकर है । इस लोमहर्षक युद्ध में बड़े बड़े योद्धा धराशायी होने लगे । बड़े बड़े हाथी धरा पर डोलने लगे । घायल बेसुध तड़पते वीरों की रक्तरंजित देहों को देख कर गिद्ध मंडलियां प्रसन्न हो रही हैं ।

गिरे बीर एकं अनेकं प्रकारं ,
गिरे अधअधं धुवं ससत्र धारं ।
कटे कछुरव दुर सिंदुर खेतं ,
नचे गिध आवध सावंत खेतं ।।[2]

यहां कटे हुए शव आलम्बन है, गिद्धों का घूमना उद्दीपन विभाव है। ग्लानि संचारी भाव है ।

अश्वमेघ और अश्वमेधान के भयंकर के भयंकर युद्ध वर्णन में भी जुगुप्सा स्थायी पुष्ट हुआ है । युद्ध भूमि में हाहाकार मचने लगता है। भूत, प्रेत , पिशाच आनन्द मनाते है। वैताल प्रसन्नता से घूम रहे है। गीदड़ और गिद्ध प्रसन्न हो कर दौड़ रहे हैं। क्योंकि उनका प्रिय खाद्य मिल रहा है ।

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 143 ।

2- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 146 ।

जुगन देत फिरहि हरिखाने,
गीध सिवा बोलहि अपमाने
भूत प्रेत नाचहि अरु गावहि
कहूं कहूं सबद बेताल सुनावहि ।।[1]

कहीं शूरवीरों के मुंड कटे हुए गिरे पड़े हैं। कहीं पर हाथियों की खंडित सूंडे गिरी हैं। कहीं पर घायल हाथी चिंघाड रहे हैं और कहीं शूरवीर धराशायी हुए पड़े हैं ।

चमकत कहूं खगन की धारा,
बिंध गए रुंड मुंड अपारा ।
चिर्रंत कहूं गिरे गज माते,
सोवत कहूं सुभट रण ताते ।।[2]

कहीं पर जोगनियां किलकार रही हैं और कहीं भूतप्रेत नाच रहे हैं :--

जोगन देत कहूं किलकारी, नाचत भूत बजावत तारी ।[3]

इस प्रकार ज्ञान प्रबोध में जुगुप्सा स्थायी भाव वीभत्स रस में परिणत होकर वीर रस का सहायक सिद्ध हुआ है।

भाषा -शैली :-

गुरु गोविन्दसिंह ने अपनी कृतियों में भावानुकूल भाषा का प्रयोग किया है, यह तथ्य 'जापु' और 'अकाल उस्तुति' के अध्ययन से स्पष्ट हो ही गया है। 'ज्ञानप्रबोध' भी इसका अपवाद नहीं है । ज्ञान प्रबोध का वर्ण्य तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है:--

(क) अकाल पुरुष का स्वरूप विवेचन ।
(ख) पौराणिक प्रसंगों का वर्णन
(ग) युद्ध वर्णन ।

वैसे तो सम्पूर्ण रचना में कवि ने ब्रजभाषा का ही प्रयोग किया है पर उपर्युक्त तीनों प्रकार के वर्णनों में कवि ने तदनुकूल भाषा का प्रयोग किया है ।

भाषा ओज, माधुर्य और प्रसाद गुण युक्त है परन्तु इनके अनुपात में अन्तर है ।

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 149 । (2) वही पृष्ठ 149 ।
(3) वही, पृष्ठ 149 ।

ओजगुण :-

युद्ध वर्णन में ओज गुण की योजना है।वहां परभाषा अत्यंत प्रखर,प्रचण्ड, सशक्त और आवेग पूर्ण है यद्यपि कोमल वर्णों का प्रयोग भी हुआ है तथापि युद्ध की तुमुल ध्वनियों,वाद्य यन्त्रों,शस्त्रों की टंकार से सारी भाषा अत्यन्त ओजस्वी बन गई है ।यथा:--

बिभे दंत बरमं प्रछेदते नामं ।
करे भादनं आदनं भाद भानं ।
कटे चरम बरमं छुटे चउर चारं ।
गिरे बीर धीरं छुटे ससत्र धारं ।[1]

इसी प्रकार एक अन्य उदाहरण प्रस्तुत है :--

भचयो जुध सुध बहे ससत्र घातं,
गिरे अध वधं सनधं बिपातं ।
गिरे हीर चीरं सुबीरं रजाणं,
कटे अध अधं छुटे रुद्र ध्यानं ।।[2]

माधुर्य गुण :-

प्रस्तुत रचना में माधुर्य गुण केवल दासी तथा काशी राज की कन्याओं के रूप वर्णन में मिलता है। यह पद संख्या में बहुत अधिक नहीं है।कवि ने उनके रूप वर्णन के लिए कोमल, सुललित , मधुर एवं प्रांजल भाषा का प्रयोग किया है,जिससे भाषा अत्यन्त ही रससिक्त और स्निग्ध बन गई है ।दासी का रूप वर्णन उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत है :--

लखी रूप वंती महाराज दासी,
मनो चीरके चार चंद्रा निकासी ।
लहे चंचला चार बिछाल तासी,
किधों कंज की भांक सोभा प्रकासी ।[3]

कवि ने उसके रूप वर्णन में अनेक उत्प्रेक्षा मूलक उद्भावनाएं की है जिनमें माधुर्य की फुहार बरसती है।उसके रूप लावण्य से वह भाषा अत्यन्त रम्य बन जाती है :--

---

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 143
2- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 143 | (3) दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 143 ।

3

लसै चित्र रूपं बचित्रं अपारं,
महारूपवंति महां जोबनारं ।
महा ग्यानवंति सु बिगि आन कामं,
पढे कंठि विद्या सुविद्यादि धरमं ।।[1]

प्रसाद गुण :-
कवि ने अकाल पुरुष के स्वरूप विवेचन और पौराणिक प्रसंगों के सामान्य वर्णन में प्रसाद शैली को प्रयुक्त किया है, फलत: उसमें प्रसाद गुण आ गया है । ऐसे स्थलों पर कवि ने दुरूह, क्लिष्ट और समस्त शब्दों का प्रयोग कम किया है तथा उनमें व्यर्थ का आडम्बर नहीं है । यथा :-

अलख रूप अलेख अभे अभूत अभंजन,
आदि पुरख अविकार अजे अगाध अंजन ।
निरबिकार निरजुर सरुप निरदवेख निरंजन,
अभंजान भंजन अभेद अभूत अभंजन ।
साहान साह सुंदर सुभत बड सरुप बड वेबखत ।
कोटिक प्रताप भू भान जिम तपत तेज इस्थित तखत ।।[2]

इसी प्रकार साधारण प्रसंगों के वर्णन में भी कवि ने प्रसाद गुण का ही आश्रय लिया है । यथा :--

एक दिवस परीछतीय मिलि कीयो मंत्र महानु ,
गजामेध सुजग को किवो कीजिए सबधान ।
बोलि बोलि सुमित्र मंत्रन मंत्र कीयो बिचार,
सत दंत में गाइके बहु जगत सो अविचार।[3]

इस प्रकार कवि ने प्रस्तुत रचना में तीनों गुणों को संयोजित किया है। अनुपात की दृष्टि से प्रसाद और ओज गुण प्राय: समान रूप में प्रयुक्त हुए हैं और माधुर्य गुण अल्पमात्रा में ।

तीनों गुणों के अनुरूप ही कवि ने परुषा, उपनागरिका और कोमला वृत्तियों की योजना भी की है।

1- दशम ग्रन्थ , पृष्ठ 144 ।
2- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 131 ।
3- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 133 ।

परुषा वृत्ति :-

युद्ध वर्णन के प्रसंगों में कवि ने इस वृत्ति का प्रयोग किया है । यथा :--------

तहां भीम भारी भुजा ससत्र बाहे ।
भली भांति के के भले सूर गाहे ।
उते कउर पालं घरे छत्र घरमं ।
करे चित्र पावित्र बाचित्र करमं ।[1]

यहां प्रथम दो पंक्तियों में `भ ` वर्ण की तथा अन्तिम दो पंक्तियों में संयुक्ताक्षर `त्र ` की आवृत्ति हुई है ।

उपनागरिका :-

इस वृत्ति का आश्रय कवि ने रूप वर्णन आदि प्रसंगो में लिया है ।यथा :--

किधों रागमाला रची रंग रूपं ।
किधो इसत्रीराजा रची भूप भूपं ।
किधो नाग कनया किधों बासवी है ।
किधों संखनी चित्रनी पदमनी है ।[2]

यहां प्रथम दो पंक्तियों में `र ` अन्तिम दो पंक्तियों में `न ` की बार बार आवृत्ति तथा अनुस्वार का यथास्थल प्रयोग उपनागरिका वृत्ति का सुन्दर उदाहरण है ।

कोमला :-

इस वृत्ति का प्रयोग तो प्रस्तुत रचना में अनेक स्थलों पर हुआ है । यथा :--

1- नमो लोक लोके स्वरं लोक नाथे ।
सदेवं सदा सरब साथं अनाथे ।
नमो एक रूपं अनेक सरुपे,
सदा सरब साहंसदा सरब भूपे ।।[3]

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 146 ।
2- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 144 ।
3- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 127 ।

८- दोख के दलिंद , दीन दानस दिहंदा
दोख छु दुरजन दलिंदा घ्याइ दुजो करुन धिआइए ।।[1]

यहाँ प्रथम उदाहरण में क्रमश: `ल ` और `स ` वर्ण की बार बार आवृत्ति तथा दूसरे उदाहरण में `द ` वर्ण की आवृत्ति कोमला वृत्ति का सुन्दर उदाहरण हैं ।

` ज्ञान प्रबोध` की भाषा की एक अन्य विशेषता उसकी सानुनासिकता है ।कवि ने अनुनासिक ध्वनियों का प्रचुर प्रयोग किया है जिससे भाषा में एक विचित्र प्रकार की संगीतात्मकता आ गई है ।यथा:--

अछेदं अभेदं अनामं अठामं
सदा सरबदा सिधदा बुधिधामं ।
अजंत्रं अमंत्रं अकंत्रं अभरमं,
अखेदं अभेदं अछेदं अकरमं ।
अगाधे अबाधे अनंतं अनंतं ,
अलेखं अभेखं अभूतं अनंतं ।
न रागं न रूपं न जातं न पातं ।
न सत्रो न मित्रो न पुत्रो न भातं ।।[2]

उपर्युक्त उदाहरणों में कवि ने अधिकांश अनुनासिक शब्दों का प्रयोग किया है।इसी प्रकार के शब्दों का प्रयोग कवि ने युद्ध वर्णन में भी किया है। यथा :--

दोऊ खंड खंडी दोऊ मह मंडं ,
दोऊ चित्र जोती सुजोधा प्रचंडं ।
दोऊ भात बारनं बिक्रम समानं,
दोऊ सासत्र बेता दोउ ससत्र पानं।।[3]

भाषा में चित्रात्मकता की क्षमता को हमने बिम्ब विधान में देखा ही है।इस प्रकार कवि ने संस्कृत के तत्सम,तद्भव तथा फारसी शब्दों के प्रयोग से भावानुकूल भाषा का प्रयोग किया है,जो विषय की सम्प्रेषणीयता बढाने में अत्यंत सक्षम रही है।

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 132 । (2) वही, पृष्ठ 127 ।
(3) वही, पृष्ठ 147।

'ज्ञान प्रबोध' में शैली के चारों गुणों ओजस्विता, सजीवता, प्रौढ़ता और प्रभावशालिता की विद्यमानता है। अकाल पुरुष के रौद्र रूप का चित्रण करते समय कवि की शैली विषाय की अनुकूलता को देखते हुए ओजस्वी रही है। सिद्धान्तों के वर्णन तथा मन्तव्य के समर्थन के पद्य प्रौढ़ता अपनाये हुए हैं। केवल उन स्थलों को छोड़ कर जहां भाषा भावाभिव्यक्ति की अपेक्षा ध्वन्यात्मकता में उलझ गई है शैली सर्वत्र ही सजीव और प्रभावशाली है।

इतना होते हुए भी इस रचना में 'विचित्र नाटक' के समान प्रवाह प्राप्त नहीं हुआ और न 'तेतीस सवैये' तथा 'शब्द हजारे' की भांति इसमें मार्मिकता ही आ पाई है। रचना का नाम ही यह सिद्ध करता है कि ये बातें इस रचना में कवि के लिए साध्य भी नहीं है। उसे लालित्य की अपेक्षा यहां व्यवहारिकता ही अभीष्ट लगी है। रोचकता में व्याघात भी कहीं कहीं विषाय की दुरुहता और शुष्कता वश हुआ है इन वीरास स्थलों में भी संभावित जटिलता और संदिग्धता को स्थान नहीं मिला है। वाक्य विन्यास को सर्वत्र भले ही शुद्ध न कहा जा सके फिर भी वह प्रभावोत्पादक है। शैली चमत्कारक न होते हुए भी संयत है। शब्द यथार्थता के द्योतक हैं उनमें यथार्थता का द्योतन और भावपोषकता है।

छन्द विधान:-

'ज्ञान प्रबोध में वार्णिक और मात्रिक दोनों प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है। प्राप्त रचना में केवल 336 छन्द है जिनमें चौदह प्रकार के छन्द प्रयुक्त हुए हैं। हो सकता है कि पूर्ण रचना में अन्य छन्द भी प्रयोग किए गए हों। इस रचना में ~~अन्य छन्द भी~~ भुजंग प्रयात, नराज और चौपई छन्दों का ही बाहुल्य है। आधे के लगभग छन्द ये तीन है और आधे में शेष ग्यारह। शेष छन्दों में रुआल, तोमर, तोटक, बहिर तवील, रसावल और पाधड़ी प्रमुख हैं। बहिर तवील[1] फारसी का छन्द है जिसका प्रयोग गुरु कवि ने इस रचना में 19 बार किया है। अकाल पुरुष की महिमा गान के लिए कवि ने भुजंग प्रयात, नराज, त्रिभंगी, छप्पय, कवित्त, बहिर तावील, रसावल पाधड़ी आदि का प्रयोग किया है, जो कि सर्वथा विषायानुकूल है। पौराणिक प्रसंगों के वर्णन में चौपाई छन्द का ही अधिक प्रयोग किया है। सभी छन्द अपने लक्षणों पर पूरे उतरते हैं यदि कुछ दोष है भी तो गुरुमुखी लिपि के कारण ही है, देवनागरी में लिखे जाने पर छन्द पूर्णतया निदोर्ष हैं।

1- बहिर तवील फारसी भाषा का छन्द है, इसमें प्रति चरण एक सगण तथा

(शेष अगले पृष्ठ पर देखिए)

अलंकार :-

'ज्ञान-प्रबोध' में गुरु गोबिन्दसिंह ने अलंकारों का बड़ा ही स्वाभाविक, अप्रयत्नज और रमणीय वर्णन किया है। कवि की रुचि मुख्यतया अर्थालंकारों में ही रही है क्योंकि गुरु जी रीति कालीन अलंकारिक चकाचौंध से प्राय: विरक्त रहते थे। इस प्रकार उनका सौन्दर्य बोध तत्कालीन विकृत सौन्दर्य बोध से कहीं अधिक उदात्त और विशद् था। उनके सौन्दर्यबोध में न तो में न तो परम्परागत सौन्दर्य दृष्टि का विस्तार हुआ है और न ही सभकालीन सौन्दर्यबोध का विकृत अंश उनमें व्याप्ति पाता है। 'ज्ञान-प्रबोध' का कथ्य आध्यात्मिक और कथात्मक दोनों प्रकार का है। कवि ने इन दोनों प्रसंगों में अलंकारों का समुचित संयोजन किया है।

शब्दालंकार :- कवि ने शब्दालंकारों का बड़ा ही स्वाभाविक प्रयोग किया है। उनमें अनुप्रास की ही प्रधानता है जिससे उनकी पद रचना में सुचारु चमत्कार का प्रसार हुआ है, कहीं पर एक वर्ण की आवृत्ति होती है, कहीं पर दो वर्णों की और कहीं पर आधे शब्द की आवृत्ति हुई है।

छेकानुप्रास :- छेकानुप्रास का प्रयोग 'ज्ञान-प्रबोध' में अनेक स्थलों पर हुआ है।

यथा:-

(क) बचित्र चित्र चाप है।[1]

(ख) काल हुं के काल हैं।[2]

(ग) त्रिकाल काल हीन हैं, सदैव साध अधीन है।[3]

इन पंक्तियों में क्रमश: च, क और स की एक बार आवृत्ति हुई है। छ

(पिछलेपृष्ठ का शेष)

।।ऽ, ।, । होते है। इसका नाम नायक भी है(गुरु छन्ददिवाकर, पृष्ठ159 भाई कान्हसिंह)

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 128।

2- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 128।

3- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 128।

13: वृत्यानुप्रास :-

(क) अलख रूप अलेख अभै अभूत अभंजन [1] ।

(ख) नरवर नरेस नायक नृपन नमोनवल जल थल खणि [2] ।

(ग) चक्रत चार चक्वे चक्रत चऊ कूंट चवगन [3] ।

इन पंक्तियों में न और च की अनेक बार आवृत्ति हुई है ।

श्रुत्यनुप्रास :-

महान मान मान है, पेख परम प्रधान है [4] ।

यहां ओष्ठ्य वर्णों `म ` और `प` की एकाधिक बार आवृत्ति हुई है।

अन्त्य नुप्रास :-

अन्त्य नुप्रास का प्रयोग भी ज्ञान-प्रबोध में अत्यधिक हुआ है ।

सर्वान्त्यानुप्रास :-

क्रिपाल लाल अकाल अपाल दयाल को उचारीऐ ।
अधरम करम धरम भरम करम मे बिचारीऐ ।
अंत दान ध्यान गिआन ध्यान वान पेखीए।
अधरम करम के बिना सु धरम करम लेखीऐ [5] ।

सभान्त्य नुप्रास :-

जिह चाहे ताको हने, जो बाछे सो लेइ ।
जिह राखै सोई रहै जिह जानै तिह देइ।। [6]

विषमान्त्य नुप्रास:-

आतमा प्रधान जाह सिधता सरुप ताह,
बुधता बिभूत जाह सिधता सुभाउ है। [7]

सम विषमान्त्य नुप्रास:-

सल राजा जऊने दिन जूझा,कोरउहार तबन ते सूझा।
जूझत सल महओ असतामा, कूटिओ कोट कटक इकजामा। [8]

1- दशम ग्रन्थ,पृष्ठ131 । (2) वही,पृष्ठ 131(3)वही,पृष्ठ 132
4- वही, पृष्ठ 128 । (5)वही,पृष्ठ 136(6)वही,पृष्ठ 149।
7- वही, पृष्ठ 133 । (8) वही,पृष्ठ 1146।

यमक :-

बचित्र चित्र चाप है अखंड दुसट खाप हैं।[1]

यहां चित्र शब्द की आवृत्ति होने से यमक अलंकार हैं।

अर्थालंकार

अर्थालंकारों में कवि ने मुख्य रूप से उपमा परिवार के अलंकारों का ही प्रयोग किया है, जिसमें उसकी उत्प्रेक्षाण दृष्टि अत्यन्त प्रयोग शील रही है। उत्प्रेक्षा मूलक अलंकारों में कवि ने एक ओर अपने विशद् सौन्दर्य बोध का परिचय दिया है दूसरी ओर अलंकारोंचित शिल्प संयोजना का भी परिचय दिया है। ऐसे अलंकारों में कवि ने जिन अप्रस्तुतों का नियोजन किया है, वह अपने गुण, धर्म और आकार की दृष्टि से अपने प्रस्तुतों के सर्वथा अनुकूल हैं।

उत्प्रेक्षा अलंकार :-

सिरी सु सीस सुभीयं, घटाक बान उभीयं
सुभंत सीस सिधरं, जलंत सिधरी निरं ।।[2]

उपर्युक्त उद्धरण में कवि अकाल पुरुष के रूप का विवेचन कर रहा है। उसके शीश पर मुकुट ऐसे शोभा दे रहा है मानो घटाओं में इन्द्रधनुष खिंचा हुआ हो। कवि ने दासी के रूप वर्णन में उत्प्रेक्षाओं की एक सुन्दर माला सी प्रस्तुत कर दी है।

किधों देव कन्या प्रिथी लोक डोलैं
किधों जछनी किनरी सिउं कलोलैं
किधों रूप बीजं फिरैं मधि नाल
किधों पत्र पान नचै कउलनाल।
किधों पगमाला रची रंग रूपं
किधों ए इस्त्री राजा रची भूप भूपं ।
किधों नाग कन्या किधों बासकी है
किधों संखनी चित्रनी पदमनी है।[3]

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 128 । (2) वही, पृष्ठ 136 ।
(4) वही, पृष्ठ 144 ।

उपर्युक्त उद्धरण में कवि ने जिन उत्प्रेक्षाण पूर्ण संभावनाओं को अप्रस्तुत रूप में प्रस्तुत किया है, वह अत्यन्त विशद और कलात्मक सौन्दर्य बोध का परिचय देते हैं ।

युद्ध भूमि में घायल होकर गिर रहे योद्धा ऐसे लग रहे हैं मानों शराबी नशे में चूर होकर भूमि पर गिर रहा हो --

घूमहि घाइल लोट चुचाते
खेल बसंत मनों मदमाते ,
गिर गए कहूं जिरह अरु जुआना,
गरजत गिध पुकारत सुआन।।[1]

योद्धाओं के गुर्ज युद्धभूमि में चमक रहे हैं।उनका स्वर्ण जटित रूप ऐसे लगता है मानो प्रज्वलित अग्नि बिंदु हवा में लहरा रहे हों ।

सुभे सुवरन के पत्र बाँधे गजारे ,
महँ आनि सोभा लखी के धुजा से,
भिड़ा में भ्रमें मंडलाकार बाहे ,
अपो आप में नेक धाहं सराहे ।[2]

उपमा :-- उत्प्रेक्षा अलंकार की ही भान्ति कवि ने उपमा अलंकार का भी सुन्दर प्रयोग ज्ञान प्रबोध में किया है ।

कंजलक नैन कबु ग्रीवहि कटि केहर कुंजर गवन।
कदलीय कुरंग करपुर गत बिन अकाल दूजो कवन ।।[3]

उपर्युक्त उदाहरण में कवि ने अकाल पुरुष के भिन्न भिन्न अवयवों के लिए भिन्न भिन्न प्रकार के उपमान प्रस्तुत किए हैं।नयनों के लिए कमल, ग्रीवा के लिए शंख, कटि के लिए केहरी, चाल के लिए हाथी की चाल, जंघाओं के लिए कदली और देह गंध के लिए कर्पूर गंध आदि जो उपमान प्रस्तुत किए गए हैं, वे सभी गुण, धर्म, रूप, आकृति तथा अनुपात की दृष्टि से सर्वथा उपयुक्त हैं।

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ150 । (2) वही, पृष्ठ 146(3)वही, पृष्ठ 131।

युद्ध प्रसंगों में भी कवि ने उपमा अलंकार का प्रयोग किया है।कवि ने वीर की गर्जना को मेघ गर्जना के समकक्ष प्रस्तुत किया है ।इसी प्रकार खड्गों की चमक को बिजली की चमक और बाण वर्षा को जल वर्षा के समकक्ष माना है ।

मंदर तुर करूर कारोरा
गाज सरावत राग संदोरा ।
फमकसिदामन जिम करवारा,
बरसत बानन मेघ अपारा।।[1]

रूपक :- कवि ने कुछ स्थलों पर रूपकात्मक संयोजन भी किया है ।

निम्नांकित उद्धरण में कवि अकालपुरुष को बाजीगर का रूप मानता है । यथा :--

बिसुनाथ बिस्वंभर बेदनाथ बालाकर,
बाजीगरि बान धारी बंधन बताइ ।[2]

उल्लेख :- अकाल पुरुष के सर्व व्यापक रूप को प्रतिपादित करने के लिए कवि ने उल्लेख अलंकार को अपनाया है।यथा:--

रंक भयो रावत कहुं भूपं,
कहुं समुद्र सरता कहु कूपं ।
सरता कहुं कूपं समुद्र सरुपं ।
अलख बिभूतं अभित गतं।।[3]

व्यतिरेक :- अनेक स्थलों पर कवि ने उपमेय को उपमान से अधिक उत्कृष्ट और सुन्दर बताया है।अकाल पुरुष के आगे सभी उपमान लज्जित हो जाते हैं।उसकी दंत द्युति को देख कर मेघ मालाएं मन में जल रही हैं :--

सुभंत दंत पदुकं, जलंत साभ्सु घटं ।
सुभंत छुद्र घटंका, जलंत भार कट्टा।।[4]

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 150 ।
2- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 132 । (4) दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 134 ।
3- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 129 ।

अकाल पुरुष के भृकुट को देख कर चंद्रमा पानी पानी हो रहा है :--

सुमंत सीस सिधरं, जलंत सिधरी निरं ।।[1]

इस विश्लेषण से स्पष्ट है कि कवि ने रीति कालीन चकाचौंध मूलक अलंकार दृष्टि से प्रति विरक्ति दिखाई है तथा अपनी अलंकार योजना में परिष्कृत और शालीन सौन्दर्य बोध का परिचय दिया है।उन्होंने गुण, धर्म, प्रकृति और आकार की दृष्टि से जो अप्रस्तुत विधान किए हैं वे संघटन शिल्प की दृष्टि से भी उचित ही हैं ।

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 135 ।।

6

विचित्र नाटक

परिचय :- गुरु गोविन्द सिंह द्वारा विरचित दशम ग्रन्थ के अन्तर्गत 633 छन्दों की रचना विचित्र नाटक है। इसमें कवि की 'आत्मकथा' चंडी चरित्र (उक्ति विलास) 'चण्डी चरित्र द्वितीय', चौबीस अवतार', में हंदी मीर, '' ब्रह्मावतार' तथा 'रुद्रावतार', रचनाएं आती हैं। प्रत्येक रचना की समाप्ति पर 'इति श्री बचित्र नाटके चण्डी चरित्र सुंभ बधइं खसटमो धिआइं संपूरण भसतु ।।6 ।। अफजू[1]' लिखा मिलता है। ये सभी रचनाएं गुरु गोविन्द सिंह की जीवनी का अंश का आई है। इस ग्रन्थ की रचना 1700 में हुई होगी क्योंकि जो युद्ध गुरु गोविन्द सिंह उस समय तक लड़ चुके थे उनका वर्णन इस रचना में मिलता है।[2]

'विचित्र नाटक' नाटक न होकर विशुद्ध काव्य है। एक आध स्थान पर अकाल पुरुष और गुरु गोविन्द सिंह के भव्य संवाद अवश्य आता है पर इससे यह कृति नाटक कहलाने की अधिकारी नहीं। नाटक से यहां अभिप्राय उस लीला अथवा अभिनय से है, जो अकाल पुरुष के आदेश की पृष्ठभूमि में व्यक्ति को संसार के कर्मक्षेत्र में उतार देता है।

इस रचना का महत्व इस दृष्टि से बहुत अधिक है कि गुरु गोविन्द सिंह ने एक चेतनकलाकार की भांति पौराणिक कथाओं का प्रयोगजन-जागृति या क्रान्ति के लिए इस रचना में किया। उन्होंने स्वयं लिखा है --

दसम कथा भगौत की, भाखा करी बनाइ।
अवर वासना नाहिं कछु धरमजुध को चाइ।[3]

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 115 ।
2- डा० तारनसिंह, दशम ग्रन्थ, रूप ते रस पृष्ठ 98 ।
3- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 570 ।।

सम्प्रेषण पाश्चात्य दृष्टि से

प्रतिपाद्य :- श्री अरविन्द ने 'दिव्य जीवन' में उपनिषदों के आधार पर ब्रह्म का वर्णन इस प्रकार किया है, "वह ब्रह्म एक है, जो शक्ति प्रकृति के हाथों में निष्क्रिय रहने वाले बहु का स्वामी और नियंता है। वह कालातीत है और काल भी, वह देश है, और देश में जो कुछ है, वह सब भी, वह मनीषी और उसका मनन, योद्धा और उसका साहस, द्यूतकार और उसका द्यूत है। समस्त वास्तविकतायें समस्त रूप, समस्त प्रतीतियां ब्रह्म है, ब्रह्म निर्विशेष, विश्वातीत और अव्यवहार्य है जो समस्त भूतों का आधार है और ब्रह्म प्रत्येक व्यक्ति का आत्मा भी है, अंतरात्मा अथवा चैत्य सत्ता ईश्वर का सनातन अंश है, उसकी परा प्रकृति या चित शक्ति ही जीव लोक में जीव भूत हो गई है। एक मात्र ब्रह्म ही है और उसी कारण सब है, क्योंकि सब के सब ब्रह्म ही है, यह 'सद्वस्तु' ही हम आत्मा तथा प्रकृति में जो कुछ देखते हैं, उस सब का सत्य है। ब्रह्म ही, ईश्वर ही अपनी योगमाया द्वारा आत्माभिव्यक्ति में प्रकट की गई अपनी चित् शक्ति के द्वारा यह सब कुछ हुआ है। वह चिन्मय सत् है, अन्तरात्मा है, आत्मा है, पुरुष है और अपनी प्रकृति के द्वारा ही अपनी चिन्मयी स्वयं भू सत्ता की शक्ति के द्वारा ही वह सकल वस्तुएं है, वह ईश्वर है, सर्वज्ञ तथा सर्वशक्ति मान, सर्व शासक है और अपनी चित्-शक्ति द्वारा ही वह अपने आपको काल में व्यक्त करता है और विश्व पर शासन करता है।[1]

इसी प्रकार गुरु गोविन्दसिंह ने भी उस अकाल पुरुष को एक ओर तो कालातीत माना है तथा दूसरी ओर उसे काल रूप या महाकाल रूप में देखा है। काल की माया को उन्होंने भी शक्ति रूप में स्वीकार किया है। यही शक्ति माता के रूप में भी उनके सामने भगवती बन कर आई है। इस भगवती का प्रतीक खड्ग आगे चल कर भगवती बन गया।

नमो परम ग्याता। नमो लोक माता।[2]

1- श्री अरविन्द, दिव्य जीवन द्वितीय ग्रन्थ, पृष्ठ 34-35।

2- श्री दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 3।

यह माया शक्ति महाकाल का अपना ही तेज है। वे सारी सृष्टि को ही उत्पन्न करने वाली शक्ति को भवानी नाम से पुकारते हैं :--

प्रथम काल सभ जग को ताता। जाते भयो तेज विख्याता।
सोई भवानी नाम कहाई, जिन सिगरी यह स्रिसटी उपाई।[1]

इसी प्रकार भवानी को कवि ने चंडी, शिवा, चंडिका, चंड, दुर्गा, खड्गपाणी कालका, चतुर्बाही, अष्टबाहा, कपाली, भद्रकाली, बाणपाणी, ब्राजी वैष्णवी, वासवी, अम्बिका, भुंडमाली, मैरवी, जालपा आदि नामों से पुकारा है।

पुराणों के आधार पर शक्ति का सम्बन्ध शिव से है। वे अशिव का ~~स्वयं~~ ध्वंस उसी के बल पर करते हैं। इसलिए गुरु गोविन्दसिंह ने ईश्वर के लिए भी काल, महाकाल आदि शब्दों का प्रयोग अधिक पसंद किया है।

खड्ग को गुरु गोविन्द सिंह ने महाकाल की उस शक्ति भवानी के प्रतीक रूप में स्वीकार किया है। 'विचित्र नाटक' के प्रारम्भ में खड्ग की बंदना का यही रहस्य है।

नमस्कार स्री खड्ग को करो सुहित चित लाइ।
पुरण करो ग्रिन्थ इह तुम मुहि करहु सहाइ।[2]

यह तलवार शत्रुओं की विनाशक है, सन्तों के लिए सुखदात्री है और इस प्रकार पाप के समूह को मिटा कर सृष्टि का उद्धार करती है तथा कवि की भी रक्षा करती है।

चण्डी चरित्र द्वितीय में भी कवि अस्त्र शस्त्र धारिणी भवानी को ही नमस्कार करता है:--

नमो चापणी चरमणी खड्ग पाणं।
गदा पाणिणी चक्रणी चित्र माणं।
नमो सूलणी सेह धी पाणि माता
नमोगिआन बिगिआन की गिआन गिआता।[3]

खड्गवन्दना के पश्चात कवि ने इस रचना में भी 'जापु' और 'अकाल उस्तुति' की भांति अकाल पुरुष की वन्दना की है, उसे एक ज्योति, अजोनी, देवाधिदेव,

---

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 14। (2) दशम ग्रन्थ, ~~छह~~ पृष्ठ 39।
(3) वही, पृष्ठ 116।

राजाधिराज, महादेव देव, महाभूप[1] भूप आदि कह कर उसका स्तवन किया है। यों कवि की दृष्टि में उसका कोई नाम, ठाम, आकार तथा वेशभूषा नहीं है।[2]

इस अकाल पुरुष की महिमा बड़ी विचित्र है। वह सृष्टि के कण कण में व्याप्त है। विश्व में वह अनेक रूप धारण कर प्रकट होता है। कहीं वह फूल है, तो कहीं भँवरा, कहीं वायु है, तो कहीं नाद, फिर भी वह सर्वथा अनिर्वचनीय और अकथनीय ही है।[3] सब में समाकर भी वह निर्लिप्त है। वह तो दीनों का बन्धु और सब का सहायक है। फिर भी सब से अलग है। नाथों का नाथ तथा राजाओं का राजा होता हुआ भी सब से असम्पृक्त है।

न ताको कोई तात मात भाइयं ।
न पुत्रं न पौत्रं न दाया न दाइयं ।
न नेहं न गेहं न सैनं न साथं ।
महाराज राजं महानाथ नाथं ।[4]

यही खड्ग धारी महाकाल गुरु गोविन्दसिंह का इष्ट है। सृष्टि को इसी ने रचा है और यही उसका संहारकर्ता है। इसके बाएं हाथ में धनुष और दाएं में भयंकर तलवार है। वह अमित तेजस्वी है। संसार के सहस्रों जीवों को अपने दान्तों तले दबा कर नष्ट कर देता है, उसके हाथ में डमडम की ध्वनि करने वाला डमरू है और सिर पर श्वेत और श्याम छत्र है। उसके हाथों में भी शस्त्र देदीप्यमान रहते हैं। उसकी रौद्र ध्वनि बड़ी भयानक है।[5] उसके गले में पड़ी हुई मुण्डों की माला रुद्र को भी लज्जित करती है।

सिर माल राजं । लखे रुद्र लाजं ।[6]

गुरु गोविन्दसिंह ने 'काल पुरुष' को अपने 'विचित्र नाटक' में भी वही स्थान दिया है, जो पौराणिक साहित्य में विष्णु को दिया गया है। क्षीरसागर में शेषनाग की शैया पर वह विष्णु के समान ही शयन करता है।

शेष नाग पर सोइबो करे ।
जग तिह सेस साइ उचरे ।[7]

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 40 । (2) वही, पृष्ठ 40- 39 (3) वही, पृष्ठ 40।
3- वही, पृष्ठ 40। (5) वही, पृष्ठ 40 । (6) वही, पृष्ठ 40।
7- वही, पृष्ठ 47 ।

विपत्ति पड़ने पर देवता लोग क्षीर सागर में अकाल पुरुष के पास जाते हैं और अकाल पुरुष विष्णु को अवतार धारण करने की आज्ञा देता है, जब कि पुराणों के अनुसार देवता विष्णु के पास जाते हैं और विष्णु स्वयं अवतार धारण करता है। अवतार प्रकरण में ऐसी ७ घटनाओं का स्पष्ट उल्लेख आया है। वामनावतार में अकाल पुरुष विष्णु को अष्टम अवतार वामन के रूप में धारण करने की आज्ञा देते हैं और विष्णु उस आज्ञा को पालने इस भान्ति दौड़ते हैं मानों किसी दरिद्र को कोई खजाना मिल गया हो।[1] जगजीवन के विनाश के लिए वे रुद्रावतार धारण करने को कहते हैं और वह जगत् के जन्तुओं के संहार के लिए बड़े उत्साह के साथ तभी रुद्र का रूप धारण कर लेता है।[2] रामावतार की पृष्ठभूमि सारे देवताओं के इकट्ठे होकर क्षीरसागर में अकाल पुरुष के पास पहुंचने से बनती है। ब्रह्मा और विष्णु के साथ वे वहां बहुत समय तक बैठे रहते हैं। वे बार बार आर्त पुकार करते हैं और अन्ततोगत्वा उनकी यह पुकार महाकाल के कानों तक पहुंचती है। विष्णु आदि को उदास देख कर मन्द मन्द मुस्कराते हुए महाकाल विष्णु से राम का अवतार धारण कर अयोध्या में राज करने की आज्ञा देते हैं[3]।

१- दीयो आइसं काल पुरखं अपारं।
धरो भावना विसन अष्टमवतारं।
लई विसन आज्ञा चल्यो धाइ ऐसे
लह्यो दारिदी भूप मंडार जैसे ।।(द० ग्र० पृष्ठ १८७)।

२- सु कह्यो तुम रुद्र सरूप धरो।
जा जीवन को चलि नास करो।
तब ही तिह रुद्र सरूप धरयो।
जा जंत संघार के जोग करयो। (द०ग्र० पृष्ठ १७३)।

३- सकल देव इकठे तब भए। छीर समुद्र जहं यो तिंह गए।
बहु चिर बास भए तिह ठाभा। बिसन सहित ब्रह्मा जिह नाभा।
बार बार ही दुखत पुकारत। कान परी कल के धुनि आरत।
बिसनादिक देव लखे बिमनं। मुद हास करी का काल चुनं।
अवतार धरो रघुनाथ हनं। चिर राज करो सुख सो अवधं।।
(द०ग्र०पृष्ठ १३३)।

इसी प्रकार कृष्णावतार में ब्रह्मा को क्षीर सागर में अकाल पुरुष के सामने पहुंचना पड़ा है और अकाल पुरुष ने विष्णु को कृष्णावतार धारण करने के लिए कहते हैं।[1]

दुर्भाग्यवश मनुष्य इस काल पुरुष को पहचान नहीं पाता जिसका प्रताप तीनों लोकों में छाया हुआ है। वह बाह्याडम्बरों में लगा रहता है जबकि उसे इन आडम्बरों से नहीं पाया जा सकता योगसाधन भी उसे प्राप्त करने का सही उपाय नहीं है। उसे पाने का एक मात्र मार्ग केवल भक्ति और प्रार्थना ही है। काल कृपान बिना बिनती तउ तुम को प्रभ नेक रिझै हौं।[2]

कवि का कहना है कि उस प्रभु का गुणगान करने के लिए सातों समुद्रों की स्याही सारी वनस्पतियों की कलमें बना कर स्वयं सरस्वती के मुख से गाये जाते हुए उसके गुणगान को करोड़ों गणेश भी नहीं लिख सकते।[3]

कागद दीप सभै करिकै, अरु सात समुद्रन की मसि केहो।
काट बनासपती सगरी, लिखबे हूं के लेखन का जबनै हो।
सारसुति बकता करिकै जुगि, कोटि गनेस के हाथ लिखै हो
काल कृपाण बिना बिनती न, तऊ तुम को प्रभ नेक रिझै हो।[4]

(अपनीकथा, 1, 101)

कबीरदास ने भी अपनी साखी में इसी प्रकार की भावना व्यक्त की थी।[5] कोई भी उस प्रभु की कृपा और महिमा का पार नहीं पा सका। वह सर्वशक्ति सम्पन्न है, दयालु है यदि उसकी कृपा हो जाए, तो गूंगा वहाँ शास्त्रों को बोलने लगे, लंगड़ा पर्वतों को लांघ सकता है, अन्धा सब कुछ देख सकता है और बहरा सब कुछ सुन सकता है।

मूक उचरै शास्त्र खटपिंग गिरन चढ़ि जाइ।
अंध लखै बधरो सुनै जो काल कृपा कराइ।।[6]

सूरदास ने भी इसी प्रकार की भावना व्यक्त की है।

1-ब्रह्मा गयो क्षीर निधि जहां। काल पुरुष इसथित थे तहां।
कह्यो बिसन कह निकट बुलाई। किसन अवतार धारो तुम जाइ।। (दशमग्रन्थ, पृष्ठ 44)।
2- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 46। (3) वही, पृष्ठ 46।
4- तुलना कीजिए :-सात समंद की मसि करौं लेखनी सब बनराइ।
धरती सब कागद करौं हरिगुन लिखा न जाइ।। -- कबीर,
5- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 47।
6- तुलनाकीजिए-:- जाकीकृपा पंगुगिरि लंघै अंधे को सब कुछ दरसाई।
बहिरो सुनै मूकपुनि बोलै रंकचले सिरछत्रधराई।
सूरदास स्वामी करुनामय बार बार बलि जाई हौं

अकाल पुरुष का गुणगान करने के पश्चात कवि ने सृष्टि-उत्पत्ति, तदनन्तर सूर्यवंश की परम्परा और सूर्यवंश में लवकुश की उत्पत्ति का वर्णन करते हुए उसी वंश परम्परा के साथ सोढ़ी और बेदी वंश का सम्बन्ध जोड़ा है। बेदी का अर्थ देते हुए कवि ने कहा है:--

जिने वेद पठिओ सुबेदी कहाए।
तिनै धरम के करम नीके चलाए।।[1] 4।1

गुरु नानक का जन्म इसी बेदी वंश में ही हुआ जिन्होंने अपनी शिक्षा द्वारा अपने शिष्यों को सुख दिया। गुरु नानक की इसी परम्परा में नौवें गुरु तेग बहादुर हुए जिन्होंने हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए अपना बलिदान किया।[2] इस समस्त पृष्ठ भूमि का विवरण देकर कवि ने अपने जीवन की कथा को वाणी दी है। वे महाकाल अथवा अकाल पुरुष के आदेशानुसार उसी का पन्थ चलाने के लिए इस संसार में आए :--

मैं अपना सुत तोहि निवाजा
पंथ प्रचुर करवे को साजा,
जहां तहां तै धरम चलाइ।
कुबुधि कान ते लोग हटाइ।।[3]

कवि का उत्तर था --

पंथ चले तब जगत में जब तुम करहु साहाइ।[4]

संसार के दुःख दूर करने के लिए अकाल पुरुष ने अब तक जितने भी प्रयत्न किए वे सफल नहीं हो पाए थे। दैत्यों का निर्माण, देवों की उत्पत्ति ऋषि, मुनि, अवतार, पैगम्बर, साधु सन्त आदि सभी को जन्म देना निरर्थक रहा। ये सभी अपनी पूजा कराने लगे और स्वयं को ईश्वर बताने लगे। गुरु गोविंद सिंह को अकाल पुरुष ने इस विश्वास के साथ भेजा कि वह अपनी पूजा न

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 52।
2- तिलक जंञू राखा प्रभ ताका। कीनो बड़े कलू महीं साका।
साधनि हेत इती जिनी करी। सीस दिया पर सी न उचरी। (दशम ग्रन्थ 54)।
3- दशम ग्रन्थ पृ. 57
4- वही पृ. 57

कावा का उसका पन्थ चलवाएगा ।गुरु गोविन्दसिंह ने उस विश्वास की सार्थकता अपने इस कथन द्वारा की:--

जो हमको परमेसुर उचरिहै । ते सब नरक कुंड महि परि हैं।[1]

उन्होंने कहा कि मैं तो परम पुरुष का सेवक हूं और जगत में तमाशा देखने के लिए आया हूं।मैं प्रभु की बताई बात को ही जगत में कहूंगा और किसी से भय से चुप नहीं रहूंगा :--

जो प्रभु जाती कहा सो कहि हौं त्रिअ लोकते भौन न रहिहौं।[2]

इसके पश्चात कवि ने पटना में अपने जन्म, पंजाब में वापसी और अपने पिता गुरु तेगबहादुर के बलिदान का वर्णन किया है। प्रसंग वश उन युद्धों का वर्णन भी हुआ है,जो गुरुगद्दी पर उनके बैठने के बाद हुए ।इस प्रकार भंगानी और नादौन युद्ध, भिखा खां तथा अलफखां की पराजय, हुसैनी खां की मृत्यु,सैयदखां की हार तथा भिजो जाफर बेग का गुरु जी से शिष्य बनना आदि घटनाएं विस्तार पूर्वक वर्णित हुई है।अन्त में कवि ने उस अकाल पुरुष की स्तुति की है जिसकी कृपा से इतने युद्ध लड़ने के पश्चात भी उनका बाल बांका नहीं हुआ। इसके साथ ही नाटक के अन्तर्गत आने वाली आवान्तर रचनाओं की ओर भी संकेत किया है:--

जिह जिह विधि जन्मन सुधि आई।तिह तिह कहे गिरंथ बनाई।
प्रथमे सतजुग जिह विधि लहा ।प्रथमे देवी-चरित्र को कहा।
पहले चण्डी चरित्र बनायो।नखसिख ते क्रम भाख सुनायो।
सोइ कथा तब प्रथम सुनाई।अब चाहत फिर कौं बढ़ाई।[3]

आत्मकथा के पश्चात' विचित्र नाटक' में कवि ने चण्डी चरित्र, (उक्ति विलास) चण्डीचरित्र द्वितीय, विष्णु के चौबीस अवतार मैहदी मीर, ब्रह्मा के अवतार तथा रुद्रावतार की पौराणिक कथाओं को कहा है।यद्यपि इन सभी कथाओं का स्रोत पुराण साहित्य ही है तथापि पौराणिक कथाओं और गुरु जी द्वारा वर्णित कथाओं में कुछ अन्तर अवश्य है।

1- दशम ग्रन्थ,पृष्ठ 57 ।

2- वही, पृष्ठ 57 ।

3- वही,पृष्ठ 73 ।

अवतार कथा के वर्णन का उद्देश्य अवतार पूजा की भावना नहीं अपितु भारतीय इतिहास के उत्साह पूर्ण वर्णन द्वारा लोगों को प्रोत्साहन देना तथा धर्मयुद्ध के लिए प्रेरित करना ही था। अवतारवाद का खण्डन दशम गुरु ने बड़ी स्पष्टता से किया है। यथा :--

मैं न गने सहि प्रिथम भनाऊं। किसन बिसन कबहूं नहि आऊं।
कान सुने पहिचान न जिन सो। लिव लागी मेरी मन इन सो।
महां काल रखवार हमारो। महां मोह मैं किंकर धारो ।।[1]

इस दृष्टि से चौबीस अवतार की भूमिका बड़ी महत्वपूर्ण है क्योंकि इनके द्वारा कवि ने प्रभु विषयक अपनी भावनाओं और मान्यताओं को वाणी दी है। इसमें कवि ने अवतार जन्म का उद्देश्य बताते हुए कहा है:--

जब जब होत अरिस्ट अपारा।
तब तब देह धरत अवतारा ।[2]

इन अवतारों को जन्म देने तथा समाप्त करने वाली शक्ति काल पुरुष है। वह काल ही अनेक रूप धारण करता है और फिर सब कुछ अपने में ही लीन कर लेता है।

आपन रूप आपतन धारी
आपहि मध लीन पुन कारा ।।[3]

वह काल स्वयं सब कुछ करता है पर नाम दूसरों का होता है :--

काल आपनो नाम धपाई। अवरन के सिरि दै धरिआई ।[4]

अकालपुरुष के महत्व प्रदर्शन के लिए कवि ने एक ही बात को अनेकत्र भंग्यन्तर से दोहराया है फलत: आवृत्ति होने पर भी उसकी सटक पाठक अनुभव नहीं करता। उदाहरणार्थ :--

ब्रह्मादिक सम ही नचहाये बिसन महेसवर कउन बेचारे ।[5]

आदि पुरख जिन एक पछाना दूतीया भाव न मन महीं आना।[6]

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ... । (2) वही, पृष्ठ ... ।
3- वही, पृष्ठ ... । (4) वही, ... ।
5- वही, ,, ... । (6) वही, ... ।

परम रूप जो एक कहायो । अंत समै तिहि भवि भितायो ।[1]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
राम हि भवि रम रह्यो अकेला चौगिल भिन भिन से लेला ।[2]

पौराणिक कथाओं में लेखक ने चण्डी चरित्रों की रचना की है । इनकी कथावस्तु मार्कण्डेय पुराण अध्याय 81 से 93 तक में वर्णित 'देवी महात्म्य' (दुर्गासप्तशती) पर आधारित है। यथा :--

'इति श्री मार्कंडे पुराणे चंडी चरित्र उक्ति विलास भव कैटभ वधाई प्रथम विधाई ।।'[3]

इस प्रकार इसमें देवी के भव कैटभ, महिषासुर वधनयन, चंडमुण्ड, रक्तबीज, निशुंभ और शुंभ आदि दैत्यों से युद्धों का वर्णन है ।

दूसरे चण्डी चरित्र की कथा वस्तु और प्रतिपाद्य में कोई विशेष अन्तर नहीं है । अन्तर केवल शैली का है। प्रथम चण्डी चरित्र में वाणिक छन्द अपनाए गए हैं और दूसरे में मात्रिक ।

ब्रह्मा, विष्णु और महेश इस देवकथा में विष्णु प्रधान माने गए हैं । श्रीशिव कवि ने पहले उसके चौबीस अवतारों की कथाओं का वर्णन किया है । ये चौबीस अवतार --- मतस्य, कच्छ, नर, नारायण, मोहिनी, वराह, नरसिंह, वामन, परशुराम, ब्रह्मा, रुद्र चतुर्भुज, विष्णु, शेष साई, अहिन्तदेव, मनु, धनवन्तरि, सूर्य, चन्द्रमा राम, कृष्ण नर, बुद्ध, तथा निष्कलंकी ।

कवि ने इनमें से दस को प्रभुख तथा चौदह को गौण माना है ।

इन भवि सृष्टि मु दस अवतारा । जिन भवि तरिया राम हमारा ।
अरु चतुरदस गन अवतारा । कहौं सु तिन तिन कीए उधारा ।।[4]

किन्तु उनमें से दस प्रभुख कौन से हैं और चौदह गौण कौन से इसको कवि ने कोई संकेत नहीं किया। वर्णन विस्तार की दृष्टि से केवल तीन अवतारों को ही अधिक स्थान मिला है। रामावतार 384 छन्दों में, कृष्णावतार 482 छन्दों में तथा निष्कलंकी अवतार 183 छन्दों में वर्णित है। अन्य सभी अवतारों की कथा इतनी संक्षिप्त है कि संख्या पूर्ति दिखाई देती है।

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 153 । (2) वही, पृष्ठ 153 ।
3- वही, पृष्ठ 75 । (4) वही, पृष्ठ 156 ।

रामावतार की कथा का स्रोत वाल्मीकि रामायण है तथापि उस के सभी प्रसंगों को महत्त्व न देकर युद्ध वर्णन को ही महत्त्व दिया गया है। अप्रासंगिक उपाख्यान बिल्कुल छोड़ दिए गए हैं मार्मिक प्रसंग भी बड़े संक्षिप्त रूप में आए हैं। केवल कृष्णावतार में जिसकी कथा का स्रोत भागवत पुराण है कुछ मार्मिक प्रसंगों को भी स्थान मिला है। किन्तु मुख्य स्वर यहां भी वीरता का ही रहा है।

दशम कथा भागौत की भाखा करी बनाइ।
अरु वासना नाहि कछु धरम जुध को चाइ[1]।

कवि द्वारा यत्र तत्र दी गई पुष्पिकाएं भी इसी बात की पुष्टि करती हैं :----

इति श्री दशम स्कन्ध पुराणे बिचित्र नाटक पुराणे
जदु बिवाह समापतं।।

'कृष्णावतार' के महत्त्वपूर्ण चारों प्रसंगों के विस्तार को देख कर भी (बाललीला--440 छन्द, रास मंडल 3100 छन्द, गोपी बिरह 278 छन्द तथा युद्ध प्रबन्ध 1464 छन्द) युद्ध प्रबन्ध का ही अधिक महत्त्व प्रतिपादित होता है।

कृष्णावतार' में कवि ने वीरों के नामों की कल्पना भी युद्धोत्साह को जगाने वाली है। गुरु गोविन्दसिंह के समय में युद्ध भूमि में दो प्रकार के ही नाम उपलब्ध थे। एक राजपूती परम्परा के हिन्दू नाम जिनके साथ सिंह लगता था, दूसरे मुस्लिम परम्परा के नाम जिनके साथ खान लगता था। यहां इन दोनों प्रकार के नामों की कल्पना है। जरासंध के सहायक राजाओं तथा सेनापतियों के नाम नरसिंह गज सिंह, बनसिंह, हरिसिंह, रन सिंह बलसिंह, अभैसिंह, अजैसिंह, खड्गसिंह आदि हैं। जरासंध की ओर से काल यवन नाम के म्लेच्छ ने भी भाग लिया था। कृष्ण की सहायता के लिए पाण्डव अपने साथ जो सेना लेकर गए, उसमें भी दो अक्षौहिणी सेना म्लेच्छों की थी। इस प्रकार दोनों पक्षों की सेनाओं में दोनों प्रकार के नाम उपलब्ध होते हैं। म्लेच्छ सेनापतियों के नाम अजाइब खां, गैरखां, रोरखां, सैयद खां, मीरखां आदि हैं।

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 370। (2) वही, पृष्ठ 364।

महाभारत काल में हिन्दू मुस्लिम नामों की यह तालिका ऐतिहासिक दृष्टि से भले ही ठीक न जंचती हो किन्तु युद्धोत्साह के प्रतिपादन में इनकी उपयोगिता स्पष्ट है।

इन नामों के पीछे गुरु गोविन्दसिंह की एक दूरगामी भावना भी रही। उनके अपने सहायकों में भी पीर बुद्धू शाह तथा उसके पठान अनुयायी थे। और उनके विरोधियों में पहाड़ी हिन्दू राजा भी थे। अतः उन्होंने स्वपक्ष, पर पक्ष का विभाजन हिन्दू या मुसलमान होना न करके न्याय पक्ष का पृष्ठ पोषण रखा। इस प्रकार उन्होंने इस युद्ध कथा को समकालीन रंग देकर पूरा लाभ उठाना चाहा है और लोक जागरण रूपी सिद्धि में वे पूर्ण सफल रहे।

> जिसन युद्ध जो हुए करयो अति ही संग सनेह।
> जिह लाज इह मै रक्यो मोहि वहै वर देह।।[1]

कृष्ण के वीर रूप की प्रतिष्ठा गुरु गोविन्दसिंह की सब से बड़ी देन है और इसका प्रतिपादन कृष्णावतार द्वारा हुआ है।

तीसरे महत्वपूर्ण प्रसंग निष्कलंकी अवतार में उन्होंने आसुरी शक्तियों पर दैवी शक्तियों की विजय दिखाई है। इस कथा का आधार 'कल्किपुराण' है और घटनाओं में अन्यत्र के समान साम्य और वैषम्य है। वैषम्य की प्रधान घटना अभिमानी कल्कि का मीर भहंदी द्वारा वध है जबकि 'पुराण' के अनुसार कल्कि का स्वर्गारोहण राम और कृष्ण की भांति ही हुआ है।

चौबीस अवतारों के वर्णन के पश्चात् कवि ने ब्रह्मा के सात अवतारों में वाल्मीकि, कश्यप, शुक्र, वृहस्पति, व्यास षाट ऋषि और कालिदास का वर्णन किया है। ब्रह्मावतार के ये सातों रूप कवि कल्पना का ही परिणाम है। पुराणों में इनका कोई उल्लेख नहीं आता। इनमें सब से अधिक वर्णन व्यास अवतार का 4346 छन्दों में हुआ है।

इसके पश्चात कवि ने रुद्र के दो अवतारों में दत्तात्रेय तथा पारसनाथ का वर्णन क्रमशः 493 तथा 353 छन्दों में किया है। भागवत पुराण के अनुसार दत्तात्रेय विष्णु के अवतार हैं रुद्र के नहीं।

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 493।

दत्तात्रेय अवतार में कवि ने शैवों का विशेष कर योगियों के रीति - रिवाजों का वर्णन किया है। दत्तात्रेय ने घोर तपस्या की। उसे गुरु धारण करने के लिए आकाशवाणी हुई वह गुरु धारण करने के लिए निकला। मार्ग में जिससे भी उसे कोई शिक्षा मिलती रही। उस शिक्षा के आधार पर वह उसे गुरु मानता गया। इस प्रकार अकाल पुरुष से लेकर श्वान पर्यन्त चौबीस गुरु धारण किए। जिनमें बाला, मछली और चील जैसे गुरु भी है। दत्त की मृत्यु के पश्चात पारस नाथ का जन्म हुआ जिसने गुरु योग्य धर्म को समाप्त कर राजयोग चला गया।

वास्तव में भारतीय भक्ति लहर में सब से प्रथम नाम वैष्णवों का आता है। उसके पश्चात शैव और योगी आए। इन सब का प्रतिपाद्य त्याग था। गुरु गोविंद सिंह ने इनकी चर्चा रुद्रावतार में की। और अन्त में जप तप का खण्डन करके नाम स्मरण को महत्त्व प्रदान किया।

बिना एक आस निरास सबै है।
बिना एक नाम न काम कबै है।[1]

इस प्रकार विचित्र नाटक जहां गुरु गोविन्दसिंह की आत्मकथा महत्त्वपूर्ण है, वहां भारतीय विचारधारा तथा पौराणिक परम्परा का प्रदर्शन करने वाली विष्णु ब्रह्मा तथा रुद्र के अवतारों की कथा भी अपना विशेष महत्त्व रखती है।

गुरु गोविन्दसिंह द्वारा विरचित साहित्य में 'विचित्र नाटक' का स्थान बड़ा महत्त्वपूर्ण है। इस रचना द्वारा गुरु जी ने असहाय एवं निराश हिन्दू जनता में जातीय स्वाभिमान, देश प्रेम और धर्म रक्षा के इच्छ भावों को जगाने का सफल प्रयास किया क्योंकि इस महान् उद्देश्य के लिए ही इसका सृजन हुआ था।

गुरु गोविन्दसिंह का काव्य निश्चल अभिव्यक्ति का है। उन्होंने अपने ~~अपने~~ काव्य के बल पर एक विशाल अजेय सेना खड़ी कर ली, तो इसके मूल में उनका अजेय व्यक्तित्व ही था। उनका काव्य 'परोपदेशे पांडित्य' का निदर्शन न होकर 'मनस्यन्यत् वचस्यन्यत् कर्मण्यन्यत्' का उदाहरण है। उनका जीवन सभी दृष्टियों से महान् था। सर्वस्वार्थ उनके पिता तथा पुत्रों का बलिदान सर्व विदित था। युद्ध क्षेत्र में उनके हस्त लाघव और साहस को उनके

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 703 ।

अनुवादिकों ने स्वयं अपनी आँखों से देखा था। अतः उनके हृदय में गुरु की मूर्ति इस ऐसे रूप में अंकित हो गयी थी कि जिसका प्रत्येक अंश इन्हें याद था। अलग होने पर भी गुरु गोविन्दसिंह ने तृष्णातिशया की सम्मुख बढ़ाने के लिए अपने व्यक्तित्व को उज्ज्वलतर रूप में प्रस्तुत किया है।[1] अब मैं अपनी कथा बखानौं कह कर उन्होंने अपनी जिस आत्म कथा का प्रकाश किया है, उसमें उन्होंने अपने देह धारण करने के उद्देश्य पर भी प्रकाश डाला है। पूर्व जन्म में जब वे हेम कुंड पर्वत पर तपस्या कर रहे थे तब अकाल पुरुष की ओर से उन्हें कलियुग में जन्म ग्रहण करने की आज्ञा हुई थी।[2] और उन्होंने कर्तव्य पूर्ति के लिए अकाल पुरुष की सहायता माँगी।[3] कवि के इन कथनों की सत्यता आध्यात्मिक सन्तों के लिए गवेषणा का विषय हो सकती है किन्तु उनके अनुयायी वर्ग के लिए इसके द्वारा उनके काव्य का सम्प्रेषण हुआ है। इस प्रकार के धर्म संस्थापना के लिए भेजे गए थे दुष्टों को ठीक कर पहुँचना उनका कर्तव्य था।[4] अतः उन्होंने इस धर्मयुद्ध में वीरों के आह्वान को ही अपना प्रतिपाद्य बनाया। उन्हें अपनी शरण में आने का न्योता दिया और विश्वास दिलाया कि जो उनकी शरण में आएगा उसे वे रक्षा अवश्य प्रदान करेंगे।[5] भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में :---

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।[6]

१- मैं अपना सुत तोहि निवाजा। पंथ प्रचुर करबे को साजा।।
यहाँ तहाँ ते धरम चलैहौं। दुष्ट काम ते लोक हटैहौं।। (दशम ग्रंथ, पृष्ठ 87)

२- ठाढ़ भयो मैं जोरि कर बचन कह्यो सिर नाई।
पंथ चलै जब जगत में तब तुम करहु सहाई।। वही०, पृष्ठ 87।

३- जहाँ तहाँ तुम धरम बिथारो। दुष्ट दोखियन पकरि पछारो।।

४- जे जे गुरु कारन एत ह्वै हैं।
तिन को कष्ट न देन पैहैं।
तिन सिष तिनको गृह भाई।
पाप ताप ढिग सके न जाहीं।। दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 78।

५- गीता ।।

कहा था । अपनी बात को और भी अधिक सम्प्रेष्य बनाने के लिए उन्होंने -'भय बिनु होत न प्रीत' के विधानुसार यह भी कहा कि जो किसी लोभ या भ्रमों के वश से अन्याय और अधर्म के विरुद्ध लड़ने से विमुख होकर उनका साथ छोड़ देंगे उनके दोनों लोक खराब होंगे । यहाँ उनका मुंह काला होगा तथा भ्रम भी उनकी दुर्दशा करेंगे[1] । स्पष्ट ही है कि उनका ऐसा कथन सहज विश्वासी उनके शिष्यों में उनके व्यक्तित्व की अलौकिकता की स्थापना करते हुए श्रद्धा को बढ़ाने में समर्थ हुआ होगा । अलौकिकता के गुणों से सम्पन्न होने पर भी जो व्यक्ति अपने को परमेश्वर कहलाना पसंद नहीं करता -- 'जो हमको परमेश्वर उचरिहै । सो सब नरक कुंड महि परिहै -- उसके प्रति लोगों की भाव निष्ठा स्वतः साध्य है ।

बिम्बविधान :- कविता अनुभूति का विषय है । अनुभूति हृदय का विषय है, उसे इन्द्रियों का विषय बनाना ही अमूर्त को मूर्त करना है क्योंकि इन्द्रियों के माध्यम से ही श्रोता या पाठक का मन विषय का अनुभव करता है । अतः कवि अपनी अनुभूति को बिम्बों के द्वारा मूर्तित करता हुआ पाठक के मन में समानुभूति जगाने का प्रयास करता है[2] । 'विचित्र नाटक' में दो ही मुख्य विषय है अकालपुरुष के स्वरूप का वर्णन तथा युद्धों का वर्णन । गौण रूप में शृंगार तथा वात्सल्य आदि विषय भी आए हैं । इन विषयों को गुरु गोविंद सिंह ने अनेक प्रकार के बिम्बों के माध्यम से सरल तथा साधारण जनता के हृदय में सम्प्रेषित किया ।

अकाल पुरुष की स्तुति करने में हाथ जोड़ने वाले तथा सिर झुका कर नमस्कार करने वाले भक्त का सुन्दर चाक्षुष बिम्ब बड़े ही सरल शब्दों में प्रस्तुत किया गया है --

ठाढ़ भयो मैं जोरि कर बचन कहा सिर नाइ ।
पंथ चलै तब जगत में जब तुम करहु सहाइ ।। ३०।।[3]

उपर्युक्त दोहे में कवि का हाथ जोड़ कर खड़े होना, सिर झुका कर बोलना और कर्तव्य पूर्ति में अकाल पुरुष की सहायता चाहना जहाँ एक ओर

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 72 ।

2- डा० नगेन्द्र, आस्था के चरण, पृष्ठ 39 ।

3- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 57 ।

आकाशगंगा शिष्य के पूर्ण चित्त को दृष्टिगोचर कराता है,वहां शिष्यता और विनम्रता का भी द्योतक है।शब्दों में सीधे भावित न होकर वर्णन है किन्तु वर्णन सामर्थ्य जिन बिम्बों को व्यायित करता है वे कथ्य के साथ साथ भाव को भी सम्प्रेष्य बना देते हैं।

गुरु कवि सदा वातावरण का उद्घटन करते हैं ताकि सत्य में लोगों की आस्था बढ़े। वे लोगों में 'सीता हमारे पूर्व वरे'- तथा --' यह तो घर है प्रेम का हमारा का घर नाहीं--' वाली भावना से भरना चाहते थे, इसलिए उनके निषेधात्मक वर्णनों में भी बिम्बों का प्रयोग हुआ है,जो जनसाधारण के हृदय पटल पर एक दम अंकित हो जाता है और उन्हें निर्गुण ब्र। अथवा काल पुरुष की भक्ति की प्रेरणा देता है।

डमरु की विशेष ध्वनि और डमरु वादक शिव के साथ रहने वाले हा हा हू हू करते हुए भूत प्रेत गण, शंखनादों की कनकनाहट और कभी-कभाहट दोनों ही एक अभिन्न बिम्ब को सम्प्रेषित करते हैं। गीता में 'दंष्ट्रा करालं' आदि श्लोक भी अर्जुन के सम्मुख उस विराट् पुरुष का इसी प्रकार का चित्र उपस्थित करते हैं।

काल पुरुष का एक ध्वनि बिम्ब निम्नलिखित पंक्तियों में उपस्थित कर दिया है।जब वह काल पुरुष चलता है तो उसकी पायल और घुंघरुओं की आवाज सुनाई पड़ती है।उसके गले में नर मुण्डों की माला शोभायमान है जिसे देख कर रुद्र भी लज्जित हो जाता है।उसको भयंकर गर्जना सुन कर सभी स्तब्ध रह जाते हैं।

कणं कटं कालं।घुणं घेल लालं।
गलो लग्गलं।डरियो नीर पेवं ॥-८।

घुरं घुग्घरं। घुणं घेलरं।
महानाद कालं।घुरं घिग्घिरालं ॥-- ॥

[illegible]

[illegible]

महागर्ज गर्जं।सुने दूत लर्जं ।

सब श्रोण सोई ।मेरा मान सोई ।।-७।।

सम्प्रेषणीयता की दृष्टि से उपर्युक्त वर्णन में चारुदत्त तथा अन्य व्यक्ति विन्यों का भिन्न भिन्न दृष्टिकोण से हुआ है।

चारुदत्त पुरुष्ण का ८० और भिन्न वेशिंग ।उस चारुदत्त पुरुष्ण की बात सुनते हैं ।जिस का वृत्तान्त हुआ बैठा हुआ है उसके ऊपर में पड़ा है,जो चारुदत्त के मान को कि मैत्रेय जिसने अपने बालपन से चारुदत्त के साथ खेला है,और चारुदत्त के मित्र हैं ।उसकी आँखें और सर्वस्व मैत्रेय पर न्यौछावर करता है जो उसे और सोचने का साहस करने के मानो तत्पर हो गया हो ।

मेरा मान सोई । मेरा मान सोई ।
मेरा मान सोई ।मेरा मान सोई ।
पूर्व जन्म दुखार्त्त पुत्र बालक सोई ।
मेरा मान सोई ।मेरा मान सोई ।

उपरि से तो चारुदत्त पुरुष्ण का अन्य व्यक्तियों, उसके मित्रों वालों का भी दृष्टिकोण लिया है जो उसे मान का जैसा का तैसा है और जिस दिये के प्रकाश (जैसा नहीं) रहने का कुमारता है:--

दीपक चाँदनी पुनि जोई ।तैसा तैसा मान सो होई ।
तैसा मान सो होइहै जी ।मेरा तेरा मान कछु नाँ ।

ऐसे में ही चारुदत्त का देखना और कहना है --

सम्प्राप्तिन्तो पुरुष्ण: सम्प्राप्ता : सम्प्रताप् ।
न पुनर्मं विद्यतो पुत्रस्तस्मिन्त्यागेऽकृत ।।[1]

चारुदत्त और चारुदत्त के भाव सोनों एक ही दोहरे भिन्न (चारुदत्त का मन) और भिन्नता का विशेष अर्थात है । जिस प्रकार यह दो अलग नहीं भिन्न विचार जैसे हुई हो यह न है और उसका समाहार भी यह में हो जाता है जैसा कि निम्नलिखित हुई और दोहरा है --

---

-- चारु ग्रन्थ,पृष्ठ ५८ (ब) चारुदत्त,पृष्ठ ५८

ब- चारुदत्त,पृष्ठ ५७ (स) मृच्छकटिक,पृष्ठ ऋग्वेद,१०।७८।१

और अग्नि सूत्र रूप है जिसे विस्तार देना चाहिए।
यह है उसका अर्थ जिस रूप में वह प्रकाशित है।।[1]

इन पंक्तियों में नदी और तरंग का बिम्ब ईश और ईश्वर के विस्तृत रूपों को उनके स्वरूप प्रकृति के साथ उभारने में सफल हुआ है। कवि ने सूक्ष्म और दूर दृष्टि भाव से सम्पन्न है। उन्होंने सांकेतिक भाषा का प्रतिपादन किया है इस में सीमित शब्दों में अधिक से अधिक कहने का प्रयास किया है।

<u>वृक्ष सम्बन्धी बिम्ब :-</u> 'विचित्र नाटक' का वृक्ष-प्रधान रचना है। इसमें कवि ने अधिकांशतः वृक्षों का ही वर्णन किया है। कवि ने इन वृक्षों के वर्णन में सजीव से सादृश्य बिम्ब उभारे हैं।

सातवीं युद्ध में कवि ने दोनों पक्षों के प्रमुख वीरों के नामों का उल्लेख करते हुए उनके शौर्य का प्रदर्शन किया है और उनके प्रहार-प्रति प्रहार एवं निहत्थे को अत्यन्त सजीव एवं ओजस्वी बिम्ब योजना द्वारा पाठक के समक्ष प्रस्तुत किया है। भगवन्त कृपाल का चौपाई का यह बिम्ब दर्शनीय है :--

त्रिशूल कोपीयं भुजा उठाए। छठी खान खग के दीस भाए।
उठी तिहि हुई कला मेक जोरं। मनो भाजं भटकी आन्ह फोरं।
तहां नंद चंद कीनो कोप भारी। लई कर त्रिशूल संभारी।
मुठि जो त्रिशूल छूटे जब दंडं। उठी ज्वालियं खल्ल वयं खंडयं।
तहां भालकेतं त्रिशूलं प्रचंडं। रुकियो रोम, एकि कथोपुत्र सुडं।
लेखेइ आपं महावीर राणं। करो खान दानीन खंडंत पलाणं।।[1]

भुजा ने प्रोत्साहित होकर भुजा उठाई और छठी पुरबीय शाकाओं के सिर पर दे मारी। उसके सिर से कन्धा के टूटते इतने जोर से निकले मानों कृष्ण द्वारा भाजन को भटकी फोड़ देने पर मक्खन के टुकड़े उड़े हों। वहां कन्धा का बुलाना भाजन से करके कवि ने एक प्रकार का रुचि बोध करा दिया है। 'भन्धा' 'फूट्या' को जन्म देता है और भजन 'प्रोत्साहित' हो। उसी समय नंद चंद ने भी क्रोध से भर

1- (क) दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ७६।
(ख) तुलना कीजिए :-- तोहि मोहि नाहि अंतर केता ?
कनिक कटिक जल तरंग जेता। (रैदास)

2- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ८८।

कर नगारचियों को बड़ी भारी और तलवार खींच ली। वह तेजी तलवार युद्ध करते करते टूट गई। तलवार के टूट जाने पर उसने कटार निकाल ली। कृपाराम क्रोधित हो उठा। उस वीर ने अपने शरीर पर अनेक तीर खाये और अपने तीक्ष्ण बाणों से बहुत मुसलमान योद्धाओं के तेज घोड़ों को दलदी-दलदी कर दिया। इन पंक्तियों में उत्प्रेक्षा अलंकार की सहायता से ऐसी स्थितियों के चित्र का कुशल का प्रयास अपने स्पष्ट चित्र को उपस्थित कर सका है। किन्तु उससे यह चित्र नहीं होता कि यदि यहां उत्प्रेक्षा का सहयोग न लिया जाता तो चित्र निर्जीव हो जाता। दूसरी आठ पंक्तियां अलंकार के बिना भी चित्र के स्पष्ट कथन में समर्थ नहीं हैं। इस प्रकार गतिशील चित्र के द्वारा योद्धाओं के भाव, अनुभाव, क्रोध, अस्त्र संचालन, युद्ध कौशल, घाव खाने, रक्त प्रवाह आदि का सजीव और वीभत्स चित्र नेत्रों के सम्मुख आ जाता है।

इन्द्रचंद कोपे कमाण सम्हारं। प्रथम गाजीयंताण बाणं प्रहारं।
दूतीय बाण के तीर भोको बतायं। तृतीयो देव मे कान ल्वै के सिधायं।
तृतीय बाण भायो सु पेटी मझारं। दिनंथं पिलकतं हालमालंपवारं
धुनी शिंव चमें कछु धा३ न आयं। इलं केवतं जान दासं बचायं।
जबै बाण लागयो तबै रोस जागयो। कढ़े कोकणांहं बाण बाणं।
तबै बीर धार तरोधं चलाए। तबै ताकि बाणं हयो इक घुमानं।[1]

उपर्युक्त पंक्तियों में गुरु जी और इन्द्रचंद के भयंकर युद्ध का वर्णन कितनी सजीवता से हुआ है। हरीचन्द्र ने क्रोधित होकर धनुष उठाया और एक तीर हमारे (गुरु जी के) घोड़े की ओर चलाया दूसरा तीर हमारी ओर भी चलाया पर उस अकाल पुरुष ने हमारी रक्षा की और वह तीर मेरे कान को छूकर निकल गया। उसका तीसरा तीर हमारी पेटी में लगा उसकी चौंच हमारे शरीर को छू गई परन्तु कोई घाव उस काल की कृपा से नहीं हुआ। । जब हमारे शरीर को बाण लगा तो हमें भी क्रोध आया और हाथ में कमान लेकर तीरों की वर्षा कर दी। हरीचन्द और उसके योद्धा मारे गए और उसके साथी युद्ध भूमि को छोड़ कर भाग निकले।

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ८८-८९ ।

इन पंक्तियों में कवि ने अनेक बाणों का लगना तथा बाण जन्य प्रतिक्रिया को भी चित्रित करने का प्रयास किया है। जैसे कभी कोई बाण शरीर को छूकर ही निकल जाता है, कभी लगने पर भी पूरा घाव नहीं करता। किन्तु वही बाण यदि तान कर और जोर लगाकर चलाए जाने पर अपने लक्ष्य को वेधन करे तो जवान को भार भी डालता है। युद्ध में बाण वर्षा से बचने के लिए जहां अपनी स्फूर्ति अपेक्षित है, वहां प्रभु कृपा भी। इस सब की अनुभूति व चाक्षुष बिम्ब के सहारे कवि ने सकलता पूर्वक युद्ध का एक संश्लिष्ट चित्र उपस्थित किया है, --

तहं कीट तो तो तुफंग संभारो। किधे एक पावंत के ताकि मारो।
गिरिश कुंभ मुंमै करिओ पुंज चूर्ण। तह गादि बोलिओ महाभानु क्यं
सजिओ तुरंत बाण पानं संभारे। चतुरानयं ले सुसब्यि प्रहारे।
किओ बाण ले बाम पारंग चलाए। लगे वा न लगे नां कछू जान पाए।

। । । । । ।

परी मार दुंग टूटि बान गोली। भनो सुर बैठे मली खेल होली
गिरे वीर भुंमं सा सांग पेलं। भनो प्रोण बस्त्र भनो फाग खेलं।।[1]

नवीन युद्ध में बुन्हारे दास (गुरु गोविन्दसिंह) ने बन्दूक संभाली और एक गाथा की छाती का निशाना बना कर गोली चलाई वह 'मारलो' कहता हुआ तुरंत का धरती पर गिर गया। तब उसने बन्दूक छोड़ का तीर कमान संभाला। चार तीर दाएं तथा तीन बाएं हाथ से चलाए। वह तीर किसी को लगे या नहीं इसका कुछ पता नहीं बाण गोलियां इस प्रकार छूट रही थीं जैसे मानो वीर होली खेल रहे हों। चहुंदा युद्ध में तीरों और बर्छियों से बिंधे हुए धरती पर गिरे पड़े थे। उनके कपड़े रक्त से सने ऐसे लग रहे थे मानो वे होली खेल कर आए हों। होली के बिम्ब द्वारा कवि ने युद्ध में उत्साह और चाव का बड़ा सुन्दर सम्प्रेषण किया है। होली का बिम्ब सर्वसाधारण होने से सर्व ग्राह्य है। युद्ध उनके लिए कोई खाने वाली वस्तु न होकर होली का त्यौहार है। जो सारे साल की

-- दसम ग्रन्थ, पृष्ठ ८१ ।

प्रतीक्षा के पश्चात् आता है और वर्षा के अवसान की सूचना देता है, शत्रुत्व की भावना का विनाश करता है।युद्ध भी जीवन रूपी वर्षा की समाप्ति का सूचक है और शत्रु का विनाशक है।वीर पुरुष युद्ध में होली जैसा उल्लास ही अनुभव करते है युद्ध का स्वर ही होली का राग है।इस प्रकार न केवल चित्रात्मक दृष्टि से अपितु भावनात्मक दृष्टि से भी प्रस्तुत बिम्ब बड़ा अनुपम बन पड़ा है।

युद्ध के वर्णन में कवि ने अनेकों बिम्ब योजना द्वारा न केवल तत्कालिक वातावरण को ही कल्पना गम्य बना दिया है अपितु युद्ध में होने वाले सारे क्रिया कलाप को भी प्रकाशित कर डाला है।

अग्यो एक वानं स्याल सतीं ।
उरायो शत्रु को जान ज्यां भूमीं । -५
गिरयो भूमि सो बाण दूजो संभाल्यो ।
भूसं नीलजं जान को जान भाग्यो।
भज्यो जान छूटी पड़्यो खेत साजी ।
तजे प्राण तीखे लगे बाण बजो।।-७।।[1]

वीर पुकार सिंह ने एक जान को अपने बाण से इस प्रकार मार डाला कि जैसे कोई काला साँप किसी शत्रु को डस लेता है,वह जैसे ही भूमि पर गिरा वीर पुकार ने दूसरा बाण संभाला और उसे जान का भीलन जान के भूत पर चलाया।भीलन जान जुन से अलग्थ हो कर युद्ध क्षेत्र से घोड़े को भी छोड़ कर भाग निकला और घोड़ों को पुकारने अपने तीखे बाण से मारा।

इस पद में बाण का बिम्ब कौशल साँप के डसने के रूपक से बहुत ही अग्रगामी बन पड़ा है। एक दो तीन क्रियाओं ने भी सम्पूर्ण बिम्ब को उपस्थित करने में सहायता की है। अलंकारों के द्वारा कवि की बिम्ब योजना सुन्दर बन गई है। सभी महावीरों का रोष सहित युद्ध में कूदना, पानी जलाने के लिए भड़कने वाली अग्नि की विकराल लपटों की तुलना से बिम्ब ग्राह्य बन गया है। निम्न लिखित पंक्तियों में --- जिनका चमत्कारी शब्द न जाने कितनी अर्थ व्यंजना को अपने में समोए हुए हैं ---

---

-- रास ग्रन्थ,पृष्ठ ८१ ।

[illegible] कोन कैसी मजबूत [illegible]
चले बानिये बाग को, ज्यों फूले ।।7 ।।

युद्धभूमि का एक और हृदय-स्पर्शी चित्र कवि ने निम्नांकित पंक्तियों में प्रस्तुत किया है :--

ते भक्षिष्यापुर अस्त्र ए सस्त्र सबै कवचत्र छिद्र चीरक हाने ।
छत्थ पै छुत्थ गई मुख छुत्थ गिरे गिर रोथ रौंदत भारे।
गृद्ध रमे चित लोइ में लाल कराल परे तन में गय काटे ।
छिद्र दारी जल प्रिया के सीस में घाने अनेक कला काट डारे।।[1]

भक्षिष्यापुर ने कभी अस्त्र शस्त्रों से युद्ध भूमि में मार ही मार मचा दी । लोगों का लोथें गिर रही थीं । कहीं घोड़े कटे पड़े थे, तो कहीं रथ टूटे पड़े थे । बाणों और रक्त से सने कवचों से युद्धभूमि में लोट रहे थे । भक्षिष्यापुर उस प्रकार वीरों को काट रहा था जैसे दर्जी कपड़ा काट रहा हो ।

फेरे सारासन को गहिके कट कोप अे चित बानन मौ।
धावत धूम परे रन बाहि कृपाल्ल गिरे से गज लौ ।
सुभ्र है जल बहल राग पै ता बाड उटे बह भौ ।
[illegible]
मानो बसा रस भाक लो ह्वै ही उन वस्त्र को कटे भूमौ।।[2]

इसमें कवि ने युद्ध का वीभत्स चित्र उपस्थित किया है । कवि ने अपने बाणों की वर्षा से शत्रु सैनिकों का हत प्राण कर दिया । युद्ध भूमि में कवच सहित वीरों के शरीर बिखरे पड़े थे, रक्त के कीचड़ हो रहे थे, कवच सहित वीरों के शरीर बिखरे पड़े थे युद्ध भूमि का सारा दृश्य ऐसा लग रहा था मानो आग लगने से जंगल के सर्प आदि कीड़ों के भक्षण के लिए निकले हों ।

बाल्य में शिक्षा के वह बंद कहां बाने हीं पै अट भारे ।
[illegible] हीं रहे [illegible] ।
है बल गैवल कैसल बाद ते नाग नहीं [illegible] ।
सिंधु ऐसे मने [illegible] [illegible] [illegible]।[3]

-- (1) [illegible] पृष्ठ 72 (2) वही, पृष्ठ 78 (3) वही, पृष्ठ 79 ।
(4) वही, पृष्ठ 87 ।

[illegible] है उन्होंने पद्य [illegible] में [illegible] और [illegible]
[illegible] होता है। [illegible] ने [illegible] सेना का [illegible] के वर्णन का
[illegible] भी [illegible] और सेना के साथ [illegible] के [illegible] ने [illegible]
[illegible], घोड़ों की सेना [illegible]
[illegible] में [illegible] मानो बड़े बड़े पर्वत [illegible]
हों।

कवि ने [illegible] के लिए [illegible] प्रस्तुत किए हैं।

[illegible] ।
[illegible] ।
[illegible] ।
[illegible] ।।
[illegible]
[illegible]

[illegible] है। [illegible] सेना [illegible] मानो [illegible] रहे हों।

इसी प्रकार निम्नलिखित पंक्तियों में भी सेना प्रस्थान के [illegible] और [illegible] का [illegible] और [illegible] में [illegible] ने सेना [illegible] उत्पन्न किया है :--

[illegible] ।
[illegible]।
[illegible] ।
[illegible] ।

कृष्णायन में मथुरा पर आक्रमण के लिए [illegible] हुई [illegible] की सेना का

1- उक्त ग्रन्थ, पृष्ठ [illegible] ।
2- वही, पृष्ठ [illegible] ।

यह अंकोरांकित सम्पूर्ण चित्र किला सन्देश, रन पढ़ा है।इसमें सांगत्यक के समान दीर्घदृष्टि चित्र उपस्थित किया गया है।यहाँ वार्णित इसमें नाग, भल्ल, मंत्री आदि सभी ने श्री रन का दीर्घदृष्टता को गन्ध दिया है।

धीर वर्म सब मंत्रीजन से तब यों रन साथ समान बखानो।
देहस दुर्ग ल दल सैन्य व्यापार के वेद यह कहं यानो।
दीन कहे सब पालन के तिन सब सैन्य से भिन्वे कहु यानो।
भानइ भाव प्रेम विनयान्व कैस मानो मत सों वसु मानो।
नग मानइ नाग पढ़े सिर थे भट्टारी तुनि वेदन को यह वेदो।
अंग भोपथ अंग ने इपर्णा कवि के भन मैं कहेा दिया।
हे मर पोल तुनि भो लहैं वहैं वा ग्रे धुरा दीजो।
सिंह किन्हो दल सिंह जयो पर्शी भट्टारा सिंह भव वेदो।[1]

परांतक की उस कार्यिणी सेना ने चारों ओर से भट्टारा को घेर लिया। उसके पीछे रावण के समान बलवानथे जिन्हें साथ लेकर वह भागने के लिए युद्ध क्षेत्र में आ गया था।चारों ओर से फैली चतुरंगिणी उसकी विशाल सेना प्रलयकाल के सिन्धु के फैली हुई जल राशि समान बढ़ी आ रही थी। बड़े बड़े हाथी उस सैन्य समुद्र में पर्वत से तैर रहे थे। पैदल सेना मछली समूह की प्रतीत होती थी।प्रहार करते हुए वाजि आदि अस्त्र लहरों के समान दीख रहे थे।इस प्रकार उस सेना रूपी समुद्र के मध्य भट्टारा नेत्र का टीला बन कर रह गई।

युद्ध भूमि में युद्ध के लिए आए इन्द्रजित का चित्र किला सजीव है -- इन्द्रजित की मण्डलाकार भुजा और सिर पर पैल पत्र व श्वेत छत्र का चित्र को देखिए :--

भुजं मंडलाकार भासो विभासे।सिंह पैल पत्रं सितं छत्र राजे।
रथ वेष्टितं व्याघ्र वाजं अमंतं।जिमे नाथ यानो हठी इन्द्रजीतं।।[2]

इन पंक्तियों में कवि ने इन्द्रजीत का ओजपूर्ण चित्र प्रस्तुत किया है।

कवि ने प्रकृति के इन दोनों के अन्य दृश्यों के भी सजीव चित्र प्रस्तुत किए है।लक्ष्मण और अंगद के अन्य युद्ध का भावपूर्ण चित्र प्रस्तुत है :--

---

1. किला ग्रन्थ, पृष्ठ ७६७ । (२) वही, पृष्ठ ७८८ ।

तिम कण्यो धरथ आन विहीन ।वह छात्र शास्त्र विद्या प्रवीन।
अब मुकुट पुत्र तिन कयो गखा। कर चले घोट तिन वस संभार ।
तिम इण बाण रघुनाथ ।सब चले आप को पुनासाल।
तब कृष्यो वीर अतिहस्त । मन प्रले काल को भेष जैस ।
धन कान लाग लपटेसवा। तिम कृष्ण हाण लपटानिवा ।
तिम दंत दबा गह स्वास लाक। तिम गर वैस वल दीरघ पक ।।[1]

लक्ष्मण ने अस्त्र अस्त्र विद्या में प्रवीण शत्रुघ्न के अस्त्र तोड़ डाले।उसे निरस्त्र कर दिया।उसका रथ घोड़ा मार डाला, धनुष गिरा दिया ,मुकुट पिट्टी में मिला दिया,वह भूखे चोरों की भान्ति अपने आपको संभालने लगा।तब लक्ष्मण ने बड़े घातक और विषैले बाण चलाए जो आग बरसाने लगे।वह स्वयं अतिकाय भी क्रोधित हो प्रलयकाल के मेघ की भांति गर्जने लगा । अतिकाय इस प्रकार कांपने लगा जैसे यौवन हीन पुरुष नारी से लिपट रहा हो या किसी दन्त हीन कृषक, जानवरों को पकड़ने के लिए लपके या जैसे बड़ी आयु के पुरुष के वीर्य में बल न रहा हो।यहां कवि ने अतिकाय के क्षीण होते हुए बल का सजीव चित्र प्रस्तुत किया है ।

इसी प्रकार राम और रावण के द्वन्द्व युद्ध का चाक्षुष बिम्ब प्रस्तुत है :--

रावण रोस भयो गरबियो ।सब सो लड़ि के सब सैन मगनयो।
आप ही हाक इथियार उठो।गहि श्री रघुनन्दन सोरन ठानयो।
चाबुक मार चढ़ाइ तुरंगन, जाइ पयो कर त्रासना भानयो।
बानन ले बिध बाहन ते भल मारत को रथ तोड़ि सिवानयो।[2]

रावण क्रोध में भर गया।उसने रणभूमि में आकर सारी सेना को भगा दिया,आप ही अपने रथ को हांकता हुआ,हथियार लेकर राम की ओर भागा जब राम के तीरों ने उसका रथ नकारा कर दिया तो वह घोड़ों को चाबुक मारता हुआ निधड़क होकर राम की ओर भागा,जब उसका घोड़ा भी तीरों से बिंध गया तो वह घोड़ों को छोड़ कर राम को मारने के लिए दौड़ा।

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ८३० । (८) वही, पृष्ठ ८३३ ।

यहाँ रावण के क्रोध का चित्र प्रस्तुत किया है कि किस प्रकार वह क्रोध में उन्मत्त होकर राम की ओर गया और उसका रथ टूटा घोड़े मारे गए तो वह पैदल ही भागा । रावण के इस क्रोध पर राम की प्रतिक्रिया :--

श्री रघुनंदन की भुज तो धनु छोड़ि तिहासन बान उड़ाने ।
मूमि अकास पताल चक्रं चक पर रहे नहीं जात पछाने।
तोरि रथा हय छत्र ध्वजा सब के तन बाहु कटी नहीं पार पराने।
देव कराेरन कोटन कोट अटान भो जानकी बान पछाने।।[1]

श्री रघुनन्दन की अतिशय भुजाओं ने जब धनुष से तीरों की वर्षा की तो धरती आकाश और चारों चक्रों में अंधकार छा गया। राम के तीक्ष्ण तीर शस्त्रों को काट कर रावण के शरीर को पार कर गए। वे तीर करोड़ों दीवारों को फांदते हुए जानकी के पास जा गिरे और अटारी पर बैठी जानकी ने राम के बाणों को पहचान लिया।

रावण रोस भायो मनभो गहि दीसहु बाहि हथियार प्रहारे ।
मूमि अकास दिसा विदिसा चक चारि चुके नहीं जात निहारे।
फोकिन ते फल तै भव तै धव तै वय के रण मंडल डारे ।
छत्र धुजा तुरवाज रथा रथ काट सबै रघुराज उतारे।[2]

रावण को बड़ा क्रोध आया उसने दोनों भुजाओं में हथियार पकड़ कर प्रहार किया । धरती, आकाश तथा चारों चक्र चलते चलते रुक गए। पर भी दिखाई नहीं देता था। तब राम ने अपने तीक्ष्ण तीरों से उसका छत्र , ध्वज गिरा दिए घोड़ा मार दिया, रथ टुकड़े टुकड़े कर दिया। इस प्रकार सब को मार गिराना राम ने रावण को भारकर धरती पर इस भान्ति गिरा दिया जैसे फल के गुच्छे को गिरा दिया जाता है ।

इन चित्रों में राम और रावण के दूसरे पर प्रहार प्रतिप्रहार का ही वर्णन नहीं किया गया अपितु दोनों वीरों के शौर्य, उत्साह, साहस, दृढ़ता, निर्भीकता, युद्ध कौशल और प्रचंडता का भी सजीव चित्रण है।

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 433 । (2) वही, पृष्ठ 433 ।

गुरु गोविन्दसिंह की अनुभूति प्राय: वीरानुभूति है, अतएव उन्होंने मुख्य रूप से वीर और उसके सहायक पशुओं के ही आलम्बन और आश्रय की चेष्टाओं (अनुभावों) के सबल चित्र खींचे हैं।

केस बड़े सिर बेस बुरे अरु देह में रोम बड़े तिनके।
भूख सो नाहहनि खावत है तृनदीन सो दांत घने तिनके।
रा प्रहरत के अरीआं किहही कौं कहन मिरे बलु के इनके।
रा चाम चढ़ाइ के नैन फिरै तब काम कौं नित पाकन के।।[2]

दैत्य के विकराल रूप का यह चित्र स्थिर होते हुए भी कवि की अनुभूति को मूर्त कर इसे सम्प्रेषणीय बनाता है।

बान चले तेइ बुंदम भानइ भुठ गुलाल की लागे प्रहारे।
ढाल भनो इफ भाल बनी इमाल बंदूक छूटे पिचकारी।
प्रानन पै घटदीनन के हुबभा जल धोर के केसर डारे।
खेलत फाग कि दीह लौं नवला सो सिर काबां कटारी।।

होलिकोत्सव पर उल्लास के साथ बरसाई जाती हुई पिचकारी के समान वीर लोग उत्साह पूर्वक बाण वर्षा कर रहे थे। भाले का प्रहार गुलाल की मुठ सा दीखता था। ढाल, होली के इफ से दीप्त रहे थे। हमालें और बन्दूकें पिचकारियों से छूट रहे थे। शत्रु अपने वीरों के रक्त केसर घोले हुए से लगते थे। इस प्रकार तलवार और कटार सिर लड़ते हुए वीर फाग खेलते से प्रतीत हो रहे थे। इस प्रकार युद्ध के इस चित्र को होली के दृश्य के साथ मिला कर कवि ने कितना सजीव बना दिया है।

इसी प्रकार निम्नांकित पद्य में कवि ने युद्ध को नृत्य के चित्र के रूप में प्रस्तुत किया है :--

भार ही भार अपार अचारत पूंदम ढोल त्रिदंग अगाजा।
रावत के सिर अच्छ तराकि लगे गिरिड ताल को छलकाजा।
धुनिक गिरे और नैनकले देखि है प्रानन दान बड़े पिकवाजा।
गिद्ध कौं नट शोप सौं नट पुन कि ठौर कि सिरत अगाजा।।[3]

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ५८७। (2) वही, पृष्ठ ५७७।
(3) वही, पृष्ठ ५७८।

नार भार की ध्वनि नृत्य ताल में उच्चारित आलाप है। दुंदुभि ढाल आदि वाद्य हैं ही। शत्रुओं के सिर पर तड़ाक से लगने वाले शस्त्र करताल ध्वनियाँ हैं। झुक कर गिरते हुए वीर मानो रीझ कर प्राणों का दान कर रहे हैं। क्रोध से लड़ते हुए वीर नाच से रहे हैं। उन्होंने युद्ध को नृत्य का अखाड़ा बना दिया है।

इसी प्रकार निम्नांकित पद में कवि ने युद्ध के भयंकर दृश्यों के लिए प्रकृति के कोमल सादृश्य विधान कर बिम्ब को बड़ा ही हृदयग्राही बना दिया है :--

यदु वीर कमान से बान छूटे असमान गए सब सत्रुन के।
गज राज मनो गिरि भूमि परे मनो फल कटे कर वज्रन के।
रिपुखंडन मनो पु[illegible] सिर ढाल भुजा [illegible] गिरे सिर [illegible] के।
रन मानो तरोवर आँधी बहे टूट फूल परे सब पवन के ।।[1]

कृष्ण का बाण उनकी कमान से छूट देखते ही शत्रुओं के होश हवास समाप्त हो जाते हैं। मरे हुए हाथी भूमि पर इस तरह गिरने लगते हैं मानो बज्र से काटे गये हुए पहाड़ हों। युद्ध क्षेत्र में झुक कर गिरते हुए शत्रुओं के सिरों [illegible] ऐसा लगता है [illegible] जिनमें आँधी चलने के कारण असंख्य कमल के फूल टूट टूट कर गिर रहे हों।

इसी प्रकार निम्नांकित बिम्ब में कवि ने कृष्ण के युद्ध कौशल का [illegible] उपस्थित किया है :--

[illegible]।
तीक्षन नैन दिखाय गिरावत [illegible]।
[illegible]।
[illegible] सिधारे।।[2]

कृष्ण बड़ी बहादुरी से युद्ध कर रहे हैं। प्रत्येक भट को मारने में वे नई नई विधियाँ अपना रहे हैं। यदि पहले का सिर काटने के लिए उन्हें [illegible] का प्रयोग करना पड़ता है, तो दूसरे का [illegible] तोड़ने के लिए वे गदा का प्रयोग करते हैं। किसी को मारने के लिए वे आँखें दिखाना ही पर्याप्त समझते हैं। और [illegible]

1-- [illegible] ग्रन्थ, पृष्ठ 47[illegible]। (2) वही, पृष्ठ [illegible]।

[illegible] हैं [illegible] प्रकार कृष्ण [illegible] पर प्रहार [illegible] रहे हैं। [illegible] में कृष्ण [illegible] [illegible] है [illegible] गया है।

[illegible] [illegible] हैं, परन्तु [illegible] [illegible] कृष्ण की ओर [illegible] कृष्ण की [illegible] [illegible] कृष्ण [illegible] [illegible] :--

[illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] प्राण [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible]॥[1]

[illegible] [illegible] [illegible] में [illegible] [illegible] [illegible] किन्तु [illegible] [illegible] प्रारम्भ कर दिया --

[illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible]॥[2]

[illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] है [illegible] प्रभाव पूर्ण [illegible] --

[illegible] [illegible] [illegible] होकर।
[illegible] [illegible] [illegible] होकर।
[illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible]॥[3]

[illegible] में [illegible] और [illegible] में [illegible] ने [illegible] [illegible] [illegible] है, [illegible] [illegible] में [illegible] [illegible] [illegible] हैं और [illegible] और [illegible] और [illegible] रहे हैं [illegible]

1- [illegible] ग्रन्थ, पृष्ठ 47[illegible] । (2) वही, पृष्ठ 47[illegible] ।
(3) वही, पृष्ठ 430 ।

कर शिर कोटों और आँखों में धँसे जा रहे हैं। किसी ओर कोई योगिनी किसी वीर का कलेजा को अपने हाथ से काटने में लगी हुई है। कोई भैरव किसी स्त्री में उन दृश्यों को देखने की इच्छा जाग्रत करता, पर वहाँ से सारा दृश्य अदृश्य हो जाता है और चक्षुओं के सामने अन्धकार हो उठता है। युद्ध की कल्पना का इन पंक्तियों द्वारा सम्प्रेषण खूब हो जाता है।

> रहे रुण्ड झुण्ड जुरे वीर जोगिनके जोरि हलं अलं प्रियतं।
> धरे जोगणी पल चट्टत चावं। नचीं तीत तीनं कबंध विचारं।
> हसैं फेरु प्रेतं महा किलकारं।धये डाक डंकं कलं कालं।

युद्धभूमि में अन्ध नाच रहे हैं। डाकनी और योगनी, भूत प्रेत प्रसन्न होकर ढोल बजा रहे हैं और भारी नोच नोच कर खा रहे हैं।

युद्ध सम्बन्धी सैकड़ों चाक्षुष बिम्ब 'चण्डिका चरित्र नाटक' में उपलब्ध किये जा सकते हैं।

ध्वनि-बिम्ब :- युद्ध के वातावरण के चित्रण में युद्ध वाद्यों की ध्वनि अथवा अलौकिक ध्वनि बिम्ब उपस्थित करती है। पाठक इस स्थिति में स्वयं को युद्धस्थली का प्रत्यक्ष द्रष्टा समझने भाव कर कुछ कुछ अनुभव करने लगता है। महाकवि ने ऐसे स्थलों में ~~प्रत्यक्षीकरण~~ बिम्बों को स्थान देकर युद्ध-स्थली की विभीषिकाओं को बढ़ा दिया है। यद्यपि ये वर्णनात्मक बिम्ब सर्वत्र अधिक हो गये हैं किन्तु कायरों का हृदय बढ़ाने और वीरों को प्रोत्साहित करने की सामर्थ्य इनमें है :--

> भर भार अंभार नादं नकीरं।
> डहे दाड़ आघात गज्जै सु वीरं।
> गजं गज्ज मेरानकं बज्जे अपारं।
> कहे तास कुट्टं हठी हस्थ कारं ॥५॥
> डमा डम्म डोमं डमा डम्म डामं।
> महाडम्म डामेसं डंके दिवामं।

१- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ८८७।

ग पे पीत पेताल्यं भुतप्रेत ।
नची डाकणी जोगणी हाव हैं ।।४७।।

टूटे जोगिनी महा रुद्र जागे।
हसो ध्यान ध्रां रमे सिद्ध मागे ।
हसो किन्नरं यक्ष विद्या वेतेयं ।
नची थरा थरा थाण्णोयं ।।४८।।

उपर्युक्त उद्धरण में प्रथम दो पंक्तियों में 'ड' 'ट' आदि 'ट' वर्ण की पुनरावृत्ति शिव चित्र को उपस्थित करती हैं। ढोल का आलाप और ढालों की टकराहट स्पष्ट सुनाई देने लगती है। पिछली दो पंक्तियां युद्ध का भीषण चित्र आँखों के सामने साक्षात खड़ा कर देती है। भूत प्रेत, डाकिनी, जोगनी नची, नाचते हुए दृश्य मान होने लगते हैं। सिद्ध समाधि टूटने से सिद्धों का भागना और अप्सराओं का नृत्य कवि की उर्वरा कल्पना का परिचय देता है।

इसी प्रकार कवि ने निसाण, दुंदभि, तब्बे आदि रणवाद्यों के तुमुल नाद से भीषण रूप धारण किए हुए युद्ध में योद्धाओं के क्रोध से उत्तेजित होकर झुकने घोड़ों के हिनहिनाने, खानेा के गाजने, कृपाण और सैहथी के खड़कने पशु के फड़कने, तलवारों की कटाकट, गोलियों की तड़ातड़, योद्धाओं की घुरा-घुरक और खानों की इत्था-इधी के सुन्दर श्रोत्र बिम्ब प्रस्तुत किए हैं ---

बज्जे निसाण । नज्जे किंकाण ।
वाहे तड़ाक । उठ्ठै कड़ाक ।
बज्जै निसंग । गज्जै निशं । ।
टूटे कृपान । लिटे जुथान ।
फुफक तड़ाक, कैवर कड़ाक ।
सैहथी खड़ाक। औढी बड़ाक ।
इनके किंकाण । घुरके निसाण ।
वाहे तड़ाक । फल्ले फड़ाक ।।

-- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ८७ ।

-- वही, पृष्ठ ८८ ।

दलां मोर मृंकार तीरं तडक्के ।
मिले हत्थि हत्थ क्रिपाणं कड़के ।।[1]

स्थल के अनुरूप कवि ने वर्ण विन्यास का सहारा लेकर भी बड़े उत्तम ध्वनि बिम्ब उपस्थित किए हैं --

ओब भरे दोऊ दिस भट भाटे ।
इते चंदेल उते जावारे ।
ढोल नगारे बजे असारा।
भीम रूप भैरों झमकारा ।।[2]

यहाँ झमकारा की भीषणता के अभिव्यंजना में भरे, भट, भाटे, भीम, भैरो आदि शब्दों में नाद का विन्यास है, जो अनुप्रास अलंकार की अपेक्षा झमकारने के बिंब को विशेष भावित करता है। झमकारना शब्द कई प्रकार के वर्णों को व्यंजित करता है।

इस प्रकार निम्नांकित उद्धरण में भी रणभेरी के बजने व ढोलों की थापाम, आदि ध्वनि की उत्तम और चित्रकारियों के शब्द स्पष्ट सुने जा सकते हैं।

भला मृंक भेरी ढका ढंक ढालं ।
कटी नत सिंह मूलं उड कोलं ।
डमा डंमि डउरू डका डंक डंकं ।
रहे गिद्ध द्रिद्धं किलकारा कंकं ।।[3]

इसी प्रकार :--

ढका ढक्क ढोलं, डमा डक्क डालं ।
नदा मृंग्ग लोलं बजे विकरालं ।
हला चाप तीरं धमाधंमि रागं ।
चली रात हूलं घुणिगो लोग भागं ।।
हली हाकणी योगणीयं किलालं ।।

1- रासो ग्रन्थ, पृष्ठ 67 (2) वही, पृष्ठ 67 (3) वही, पृष्ठ 108 ।

नचे कंध डाणं कवंध धारं ।
डे घेन रत्तं पिलो दानवेसं ।
पियो आन पुत्तलं मयो जप मेसं ।।[1]

इन पंक्तियों में ट, ड, ब, ध, ढ आदि वर्णों की आवृत्ति तथा संयुक्ताक्षरों के प्रयोग से रौद्र व्यनि बिम्ब प्रस्तुत किया गया है ।

श्रौत बिम्ब की पूर्णता इन पंक्तियों में दर्शनीय है--

गजं गजे झं झले झला झली झलोझलं ।
वज्जि सिंघो सुरं टूटंत बाण केवलं ।
पयक्क पक्खरे तुरे नचंत वीर निब्भलं ।
पलुत्थ तुत्थ बित्थरी अमत्थ जत्थ उत्थलं ।।[2]

इन पंक्तियों में हाथियों की गर्जना, युद्ध भूमि का हल्ला गुल्ला , तलवारों की खनाहट व तीरों की वर्षा की व्यनि स्पष्ट सुनाई पड़ गई है। युद्धस्थली के वातावरण की व्यञ्जनात्मकता के साथ तादात्म्यता प्रतीत होती है मानो सेना भी रुधर से रुधर निहार चली जा रही हो ।

कवि ने केवल वर्णों की आवृत्ति, चित्र वर्णों के प्रयोग से व्यनि बिंब प्रस्तुत नहीं किए अपितु उसने संगीत शब्दों तथा दूसरे शब्दों के प्रयोग से भी अनेक व्यनि चित्र प्रस्तुत किए हैं।

झांगडं कडाक्क ।झागडं तडाक्क ।
झागडं सुदीर झागडं गहीर ।
झागडं निराण ।झागडं कृपाण ।
झागडं निहंग झागडं पलंग ।
झागडं दीपालि । झागडं लाइलिक ।
झागडं त्रिपाण ।वहि कृपाण ।।[3]

इनके शब्द तथा अर्थ के माध्यम से हम नहीं बोलते वे अपने अस्तित्व मात्र से भूमा है और इसकी यह भूमापा वर्ण्य विषय के अनुरूप व्यनि-चित्रण में अपनी सार्थकता प्रकट करती है।फलतः इनके निरर्थक शब्दों में भी अपूर्व सम्प्रेषण शक्ति है।

-- दशम ग्रन्थ,पृष्ठ 111 (2) वही,पृष्ठ 112 । (3) वही,पृष्ठ 111 ।

[illegible]

उपर्युक्त उदाहरण [illegible] विशेष प्रकाश में आकृतियों की [illegible] है।

<u>मिश्रित बिम्ब :-</u> कुछ वर्णनों में कुछ बिम्ब ऐसे भी हैं जिनमें आकृति और [illegible] का अद्भुत मिश्रण होने से बिम्बों को हमने मिश्रित बिम्ब कहा है।

[illegible]

कुछ ऐसे मिश्रित बिम्बों [illegible] स्पष्ट और प्रभावशाली बिम्ब का प्रस्तुतीकरण [illegible] में देखा जा सकता है। [illegible] और वातावरण के प्रतिबिम्बित [illegible] कुछ स्थलों में ऐसे भावों तथा आकृतियों का

1- उक्त ग्रन्थ, पृष्ठ [illegible], (2) वही, पृष्ठ [illegible]।
(3) वही, पृष्ठ [illegible]।

पुरुषों का क्रोध से, मुख पीले पड़ जाने का, ललाट की भृकुटि का तिरछा होना, नेत्रों का लाल होना, दाँतों का भींचना, ओष्ठ-प्रस्फुरित होना, भुजा-दंडों का फड़कना, सिंहनाद, वाग्युद्ध आदि के अतिरिक्त युद्ध के समय घोड़ों का हिनहिनाना, हाथी का चिंघाड़ना आदि विशिष्ट चेष्टाओं के साथ चित्रित हुए हैं।

युद्ध प्रसंग :--

निर्भय क्रोध अल्पति नहीं भाव चंद्र ।
हथ्यार धीर संनिपुकार वीर दुधभ ।
फूलाए साट के धरे रहा को भारयं ।
विहार वेग भंडसं रुधा महंग वारयं ।।[1]

रचना में भय भय युद्ध चण्डी भीषणता प्रान कर रही है। भरि कवाण का रहा है। वीर हुंकार भर रहे हैं रक्त की भीषण धारा प्रवाहित हो रही है। वीरों में भागने भागने की फूलाए चढ़ी हुई है ये युद्ध भाग से कट कर क्षेत्र भण्डल में विहार कर रहे हैं। अंत चित्र के भावोत्पादकता तथा अनि के अन्वय ने मुणी बना दिया है। कहीं भी दुरुहता का दिखाव नहीं और न अस्पष्टता ही है। भाषा: सम्प्रेषणीयता अपनी चरम सीमा पर है। इस प्रकार के विविध चित्रों के क्षेत्र हमारे विचित्र साके में है।

मुणं डोल दथ्थे । महाभूत गथ्थे ।
फणे सेस धार्यो चले सिंध धार्यं ।।८।

सिखं धाम हारे । पताग्धि प्रहारे ।
फणे सेस धार्यो चले सिंध धार्यं ।।७।।

कमे भार भार्यं । न सेसं विचार्यं ।।
फणे सिंध कुरयं । कमं मुणं दथ्थं ।।[2]

पूर्वोक्त भावोत्पादकता तथा ध्वनि चित्रों से प्रस्तुत चित्र की विशेषता इस बात में है कि यहाँ न भावोत्पादकता चित्र अधिक स्पष्ट है और न वर्णों की ध्वनियाँ। यहाँ वीरों की गर्जना कवि के चित्त को युद्ध के वातावरण

1- कनौज खण्ड, पृष्ठ ३८८ (ब) वही, पृष्ठ ४०

को उतार पाए हैं।यहाँ शब्द तथा छन्द के विन्यास ने युद्ध के क्रिया कलाप की गतिशीलता ही सम्भूर्त किया है। जिस प्रकार युद्ध में लड़ते हुए व्यक्ति को कभी ओज की ध्वनि आकर्षित होती है कभी तलवारों की गर्जना सुनाई पड़ती है,कभी उसकी आँखों के सम्मुख शस्त्र लेकर दौड़ते हुए योद्धा दिखाई देने लगते हैं और इन सबों की अनुभूति उसके हृदय में लड़ने के चाव को बढ़ा देती है किन्तु वह सोच समझ कर नहीं लड़ता। घोड़ों की ओर भी निडरता से दौड़ता है।किसी ओर भाला फेंकता है,कभी तलवार का प्रहार करता है। उसका अस्त्र लीला में बाँका भाव और निर्भय विहार ही प्रमुख रूप से हैं। इस पद में युद्ध काल की वह त्वरा और गति चेतना ही मूर्तमता विम्बित हुई है।

उपर्युक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि गुरु गोविंदसिंह युद्ध के घात-प्रतिघात तथा भावपूर्ण बिम्बों को एक जैसी सफलता के साथ रूपायित करने में सिद्ध हस्त है।फिर भी वहाँ वे भाषा के नए प्रयोगों के मोह में पड़ गए है वहाँ उनके बिम्ब कुछ धुंधले पड़ गए है पर कोई एक पंक्ति फिर भी हृदय पर अपना प्रभाव छोड़ ही जाती है। यथा :--

चले नागंत्र पागंत्र वेद होलं।
फलवारे गूलेे चले बांध टोलं।
तहा एक दाधियो महावीर दवालं।
गदी लाध पौन सवै विकरवालं।।[1]

इस उद्धरण में फेलवारे गूलेे चले बांध टोले ' में टोलियाँ बांध कर चलने वालों का बिम्ब प्रत्यक्ष हो जाता है।

इसी प्रकार :--

मान् ते ज्यों अभ पौन ते ज्यों बल भोर ते पिंड फनीस लुझाने।
पुर ते मातुरु पूर ते चातरु सिंह ते सातुरु रोण डराने।
रुन ते पिंड पा पिओपाने पिंड मनुज अपने पिंड बंधु हाने।
याम पिंड भ्रुव ते याम भ्रु दुव ते चंड के पुत्र ते दैत पराने।[2]

इस पद में श्रवण के साथ यहाँ वहाँ के युद्ध से भागते हुए दैत्यों का बिंब उपागर होता है,यहाँ भूषण की 'पत्नी चंद सी काम्पिली कंस चों ' तथा

1- दसम ग्रन्थ,पृष्ठ ८३ । (2) वही, पृष्ठ ३३ ।

"इन्द्र निधि जैम पर वाश्व सुअंम पर" आदि पदों की भावोपभार की स्मृति में कौंध जाती है।वह बात दूसरी है कि ऐसे स्थलों में साधारण धर्म (भागने में त्वरा, शोभा की अनिवार्यता, स्वाभाविक अवृत्ति) का ही प्रभावातिशय है। अलंकारों के आरोप ने बिम्ब को धूमिल कर दिया है।

(वात्सल्य और शृंगार सम्बन्धी)

अन्य बिम्ब :- बाल पुरुष्ण और गोपी सम्बन्धी बिम्बों के अतिरिक्त वात्सल्य और शृंगार सम्बन्धी बिम्बों को हमने 'अन्य बिंब' नाम का पुकारा है।

कृष्ण की बाल लीला का वर्णन करते समय कवि ने अनेक बिम्बों का निर्माण किया है।वात्सल्य वर्णन कवि के लिए अनचाहा न होने के कारण यद्यपि इन बिम्बों में सूर जैसी सहजता[1] और तुलसी जैसी भावोद्दीपिता[2] नहीं है और न ही रसखान जैसी विभोरता[3] ही है फिर भी इनकी स्पष्टता में कोई दोष नहीं है।

पालने में कृष्ण को झुलाती हुई यशोदा का यह चित्र कितना सजीव और भावोद्दीप्त बन पड़ा है :--

बाल रूप को हरि की सत्ता पर झूलत है तब कैसे।
भाल लहावत है सिर को औ झूलावत है कटि धोखि तैसे
सो रवि की उपमा अति ही कवि लाभ कहीं भुज ते कुनि ऐसे।
मुनि दूजी भ्रम मैं अति ही पशु बालक है रिप देवन जैसे।।[4]

इसी प्रकार :--

भुज लीनि जब ही हरि को जब पै जसुदा धन को तिन पाखियो।
भाल उठो न कहो भ्रम कूप जबै पग सो भहि गोइके नाखियो।
सेज धरयो अरु धीउ भयो छुट भूमि भयो पशु लाभ लखियो
होत कुलाहल भाषि घुरी धनी को भयो सम सो कछु साखियो।।[5]

1- कान्ह चलै पग दोउ धरनी।
2- बसन्त की पंगति कुंद कली अरगजा पलास तोलबी।
3- बाग के भाग बड़ो सजनी हरि हाथ सो ले गयो माखन रोटी।
4- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ८८। (5) वही, पृष्ठ ८८।

इस चित्र में पूर्ण स्वाभाविकता है। अलंकृत होते हुए भी इसमें अपूर्व आकर्षण है। दास लीला की सरसता इससे अधिक और सम्प्रेषणीय क्या होगी? चतुर्थ पंक्ति में कवि ने यद्यपि मथुरा पर भी इस की प्रतिक्रिया दिखाई है। किन्तु इसके कारण वर्णित चित्र में कोई न्यूनता नहीं आने पाई।

आन्ह चले धेनुआ कहँ मीजत भात कौ उपमा तिहि कीनी।
लालन की भल छाप लिये किधौं नंद हू सभै तिहि के रस लीनी।
सारस मैं यमुना सित धूलहि ब्रिंद बन में चमके दुलगीनी।
किंतु नहीं होवै प्रसन सुनाउ यहो जिनके ग्रह जात त्रिमीनी।।[1]

यहाँ भाता की प्रसन्नता की तुलना आकाश में चमकती हुई बिजली से करके चित्र और भी भोला बन गया है।

इसी प्रकार यमुना तट पर ग्वालों के साथ खेलते हुए और लौटते हुए कृष्ण का यह चित्र कितना भावोत्पादक बन गया है :--

कूजन में जमुना तट पै मिलि गोपन जो हरि खेलत हैं।
तापै अहीर तिमीर जमुना अट भव घरे न पेलत हैं।
किंकर कूलत है यमुना तट ज्यों बल को छिपे रंग रेलत हैं।
फिरत धूमै हंडवा तापै दुहूं ओर ते आपसि में सिर मेलत हैं।[2]

कितना सुंदर चित्र है और साथ ही कितना सजीव भी। बच्चों के दो भिन्न दलों का विभिन्न दिशाओं से यमुना में उतरना लता का झाड़ी के बल खेलना और गेंदों के भय भड़ने का दृश्य सिर चिराना अत्यन्त मनोहारी है।

खेलन के मिस पै हरि धौ अति मौजनि पैठि के नालन आवै।
नैनन सैन दै लंपिट लै गोपन को अवही मुख आवैं।
पाछो पछ्यो अपने कर लेहु पानन के मुख मीजत पावैं।
स्वाभ कहै तिहुँ लोक उपना इह के चित गोपिन कान्ह रिझावैं।।[3]

खेल तो बहाना था। कृष्ण ने मौका देख कर भोजन

---

[1] रस ग्रन्थ, पृष्ठ ८७ । (२) वही, पृष्ठ ८७ (३) वही, पृष्ठ८८।

[illegible] शुरू [illegible] किया। गाँवों के [illegible] प्रकार के भाव का उपयोग करने के लिए [illegible] को [illegible] उन्हें [illegible] । [illegible] भी [illegible] [illegible] रस [illegible] में [illegible] शुरू कर दिया। और [illegible] प्रकार गोपियों को [illegible] की ।

[illegible] :-

[illegible] पसमात खिरै वन गाइ [illegible]।
गोप को पति गोप [illegible] रानि।
[illegible] उठे [illegible] भूरि [illegible]।
[illegible] की [illegible] मीका [illegible] ।

[illegible] और गोपियाँ [illegible] । [illegible]

[illegible] है ।

[illegible] कृष्ण, राधा [illegible]

[illegible] है ।

[illegible]
[illegible] ।
[illegible] ।
[illegible] ।।

[illegible], गाँव [illegible]

[illegible], [illegible], [illegible]

[illegible], [illegible]

[illegible], [illegible] और [illegible] लिए [illegible]
है ।

1- [illegible] ग्रन्थ, पृष्ठ [illegible] । (2) वही, पृष्ठ [illegible] ।

-- (क) पूर्व ग्रन्थ, पृष्ठ ३८५ । (ख) वही, पृष्ठ ३८५ ।

बोलत स्यामसमार अनूप भरा मिलि कुंजनि सांवल गोरी ।[1]

इन पंक्तियों में होली के उल्लास, होली खेलने की रीति, कृष्ण राधा के प्रेम तथा उनकी जोड़ी की अद्वितीयता का चित्र बड़ा ही मनोरम बन पड़ा है। महत्व के अन्य इस अवसर पर गाये जाने वाले गानों का सूचक है। इसी प्रकार :--

आगम की कह है गिनती सुन सौत दुरी अधुरी कुछ थोरी ।
सो सुनि के अति प्रातकाल में जगी इनी जिम आनन्द मनोरी ॥[2]

यहाँ रागिणी के तड़प दौड़ती हुई भ्रमवानियों का चित्र आँखों के सामने उभरता है। साधारण नारियों की तो बात ही क्या तुरी आसुरी भी बाँसुरी की ध्वनि सुन कर दौड़ी जाती है। इस उक्ति के चमत्कार से गोपियों की मनःस्थिति का चित्र भी मानो पाठक के सामने साकार हो जाता है।

बोलन पड़ हंसि पातन सों औ सु हुलास विलास बढ़े लगे ।
शंभ कंठ लगाइ लई कला गाइ गाढ़े अंग ते कै मगे ।
लागी है जैसी दामिनी औ घन मार ते टूट के तार गये।
पीय के मिलत प्रिया के इस ते औगन विरहागिन के निकसे।[3]

राधा रूठ जाती है कृष्ण उसे मनाने के लिए दूती भेजते हैं। किन्तु राधा किसी तरह भी नहीं मानती। अंत में स्वयं कृष्ण मनाने जाते हैं। राधा मान जाती है। कई दिनों के विलगाव के पश्चात राधा और कृष्ण मिलते हैं। उनके मिलन का यह चित्र कितना सजीव बन पड़ा है। विरहाग्नि के अंगारे प्रिय के अंगों से निकल रहे थे-- कवि की इस चमत्कार पूर्ण, व्यंजनापूर्ण उक्ति ने चित्र के सौन्दर्य को और भी बढ़ा दिया है।

जबहीं चलिबे की सुनी बतिया तब ग्वारनि नैन ते नीर ढरयो।
गिनती गिनिके कर दोऊ भई मन को सब आनंद दूर करयो।
किधौं तिन में रस जोबन के कुच की सोई हैं अंकन भारिह भरयो।
तिनते नहीं छोरयो जात कहू मनमोहन की प्रीत के संग जरयो॥[4]

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 31 ।(2) वही, पृष्ठ 190(3)वही, पृष्ठ 303 ।
(4)वही, पृष्ठ 309।

कृष्ण के आने का समाचार सुन कर गोपियाँ इनकी कितनी सी खड़ी हैं उनसे कुछ बोला ही नहीं जाता। बोला भी कैसे जाए ? शरीर का यौवन तो विरह के अग्नि में जल गया और मन कृष्ण की प्रीति में बसा हुआ था :--

यद्यपि यहाँ उक्ति चमत्कार है। कोई पूर्ण बिम्ब नहीं उभर पाया किन्तु आने की बात सुनते ही आँखों से आँसुओं के गिरने, राधा उदास हो जाने की जो कल्पना पाठक के सामने आती है, वह बहुत कुछ बिंब जैसी ही चमत्कारक है।

फागन मैं सखी डार गुलाल सबै हरि खिउ मन बीच रमै।
पिचकारन लै करि गावति गीत सबै मिलि ग्वालन लउन सबै।
अति सुंदर कुंज गलीन्ह के बीच किधौं मन के काज दुए गबै।
अक जिवागत मैं सब साधन की इह सुंदरि साधन की भावत मैं।[1]

होली के इस बिम्ब में कृष्ण के मिलन का विविध दृश्य उपस्थित होता है।

इसी प्रकार निम्नांकित स्थिति के बिम्ब बड़े मार्मिक ढंग से उतारे हैं :-----

दान सबै रहे किंतक कृपि जह मटन चहै सुखदाई।
मदन गुपाल हे हस से डाले भूरती नंद बाल ब्याही।
पोक पड़ो सुनि के सुर मंडल ता छवि को बन्यो नहीं भाइ।
लउन सबै सुखदायक थो तिय अवसर पाहि भई दुखदाई।।[2]

अर्थात वह मेरा सखा था एक किंतु कृपा रहे थे सुखदाई पवन प्रार्थना ही नहीं थी। एक ओर अमर गुंजार रहे थे, उधर नंदबाल ने भूरती क्या डाली। क्या किया क्या था उसे सुना का सुर समूह रोक गया। शोभा अवर्ण्य हो उठी। पर हाय ! उस समय की वह सुखदायक लु अब दुखदाई बन बैठी है।

काजल की लकीरन बिखे रस केलत थी हरि सो चित लाई।
सेतइ ग्वालन के घट राखत हो नदी नंद कुमार कहाई।
मुरत जेतइ गोपन के अक्रू मोहन हार मनो छवि पाई।
लउन सबै सुखदायक थो तिय अवसर पाहि भई दुखदाई।।[3]

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ३८६ । (2) वही, पृष्ठ ३८६। (3) वही, पृष्ठ ३७० ।

कार्तिक के समय में कृष्ण के सखियाँ कृष्ण के साथ हृदय विहार रति क्रीड़ा रत थीं । ऐसा वातावरण में ग्वालों ने ऐसा वस्त्र सीना चा रहे थे ।यमुना की धारा भी ऐसा थी।चारों ओर का गो वृन्द इस दृश्य को मौनिक भाषा के समान अनुभूत कर रहा था।यों समय अब भी कार्तिक का ही है ।किन्तु कृष्ण के न रहने से सब उलट पुलट हो गया।अब कार्तिक दुखदायक था, क्योंकि वे साथ थे,अब उनके बिना यही दुःख दे रहा है।

उपर्युक्त इन दोनों बिम्बों में दुहरापन है। प्रकृति और मौसम सब कुछ वही है।अन्तर है संयोग और वियोग का ।सुख और दुःख का सुख में बिताना तीव्रता थी,दुःख में बिन्ब उलना ही बीता हो गया है।इन बिम्बों में सम्प्रेषण है जो काव्य को सम्प्रेषणीय बनाता है।

नीर सरीर हुतासन के गम अहर बरात बरा बिलाई।
पंथ न पंथी चलै कोउ थोरक ताके तए तन ताप तिराई।
बैठ महा बलवंत कोधति विथाकुल पाय महाविलपाई ।
ऐसेसक्यो कसक्यो रसिक्यो टसिक्यो न हियो कसक्यो न कसाई।।

आकाश और भूमि तप उठी है।जलों का पान जल,वायु और अग्नि की तपन के समान उद्दीपक तथा अविकारिक मानक स्थिति का यही है। जल ,वायु और अग्नि इन तीनों की उष्णता का नामोल्लेख करके कवि ने एक प्रभाव शाली स्पर्श बिम्ब की सृष्टि की है ।इसमें सन्देह नहीं । इनके अतिरिक्त राम तथा देवकी के विवाह से संयोजित सौन्दर्य बिम्ब भी अति सुन्दर बन पड़े हैं। यथा :--

बंदनवार बंधी तब ही घर बंदन सो घिरके ग्रह सारे।
केसर हार बजावन बे तबही मन हूँ पुरहूत पधारे।
बाजत ताल मृदंग पखावज नाचत कोटि अपारे।
आन मिले सब ही अमरा पुर कउ बिध ते पुर कउ बसिवा।।

राम के विवाह के इस वर्णन में स्वाभाविकता की पूर्ण रक्षा हुई है ।विवाह के समय सजाकर आने वाले बन्दनवार घरों पर बंधन और केसर का छिड़काव

-- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 370 । (८) वही,पृष्ठ 266 ।

आदि वर्णों का वर्तावण के साथ नृत्य करना तथा दृश्य एक साथ ही आँखों के सम्मुख आ जाते हैं।

> आसनि बिप्रन को धर के तब आछो बनाइ कै पाइ पठायो।
> पूजि सबै बिधि के कर प्रोहित देवन की इन सो बिह गायो।
> हारत कुंज बनाद्रिनि अरत गीत बार बनो मन भायो।
> नाट कलानि अरु गुणीरान लै बसुदेव भला बहु गायो।[1]

देवकी के विवाह में सभी ब्राह्मणों को आसन दिए गए। प्रणाम कर उन्हें बिठाया गया। उन्होंने कुंभ को प्रोक्षण किया। वेदमन्त्रों का उच्चारण किया। कुश, पंचगव्य, अक्षत आदि मांगलिक द्रव्यों की वर्षा की। स्त्रियों ने मंगलाचार गाए। नाट, कलाकार तथा अन्य गुणी जनों को दान दिया गया और उन्होंने इसे भाव-विभोर होकर ग्रहण किया।

> आनंद को कुल के बसुदेव हि रूप बने बनने लग गारी।
> गावत गीत बधावन लागत दिवा धरि आवत नागर नारी।
> मोदन पै निधि बहलावति लाडव को उनना पीव बारी।
> देत दिवाल कुटुम्ब समेत दु देवत देवन की महतारी।[2]

वसुदेव के यहाँ का सभाचार सुन कर नागरियों ने अपने रूप को सजाया और देवकी के यहाँ गीत गाने आरम्भ कर दिए। प्रथानुसार नागरिकों को गारियाँ दी जाने लगी। कानों की ओर पर कर की यात्रा की जाती हुई देवकी की सहेलियों की महतारी कुटुम्ब समेत विमानों पर चढ़ कर देखने आ गई थी।

इन तीनों चित्रों में वस्तु वर्णन के सम्बन्ध में आचार्य कवि ने अपने कौशल को सम्प्रेष्ट बनाया है। ओठे पर बनी हुई नारियों का चित्र उनकी स्थितियाँ (गारियाँ) देता आदि और सुन्दर बन पड़े हैं। अन्तिम चित्र में देवताओं की सवारी आ का सौन्दर्य सम्प्रेषण में आकाश अंकित हो गया है देवांगना देखने योग्य है।

टिप्पणी :- चित्र संख्या [illegible] में प्रयुक्त
[illegible] ने प्रतीक की आधुनिक

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ८७८ । (८) वही, पृष्ठ ८७९ ।

-- [illegible] (क)[illegible] (ख)[illegible] (ग)[illegible] (घ)[illegible]

[illegible]

[illegible]

यहाँ सिर्फ यह कहना, पीछे पर छाया-प्रकाश और सान्द्रता प्रदान करना अपने से छोटे को सिखाई देने के प्रतीक रूप में प्रयोग किए गए हैं-भौगोलिक प्रतीक योजना में कवि ने सांस्कृतिक परम्परा का पूर्ण ध्यान रखा है।

[illegible]

इस उदाहरण में ग्राम्य कृषा, कृषि-प्रक्रिया, तृण, पंचायत, अन्न, आदि का निरूपण गाँवों की सच्ची पहचान और ग्रामीणजनों के श्रम सिक्त जीवन संघर्ष को प्रतिबिम्बित करते हैं। इसी निरंतरित विकास की लम्बी चौड़ी प्रक्रिया के लिए [illegible] का यह प्रतीक अपनी प्रतीकात्मकता के पूर्ण प्रक्रिया का लिए का रहा है।

कहीं कहीं कवि ने दृश्य बोधक चित्रों की अभिव्यक्ति के लिए भी प्रतीक पद्धति का आश्रय लिया है।

[illegible]

में आह और अपूर्ण प्रतीकों ने रात्रि का गम्भीर व्यापार की अभिव्यक्ति प्रदान की है।

[illegible]

यहाँ चन्द्र और चकोर के प्रतीक से कृष्णा द्वारा राधा को अपने प्रेम की अभिव्यक्ति का प्रतीकात्मक संकेत मिला है।

मुक्त छंद के इस प्रतीक योजना में अभिव्यक्ति और आवश्यकता जैसे भाव को बोधगम्य बनाने में कवि को पूर्ण सफलता के लिए कहना है।

1- पंचम ग्रन्थ, पृष्ठ 202 । (ब) वही, पृष्ठ 207 (अ) वही, पृष्ठ 203।

2- वही, पृष्ठ 207 । (ब) वही, पृष्ठ 204 ।

जब आता है जो अभी साथ रही प्रसन्नता और समारोह जाता है और सारे सकल उसकी छोड़ जाता अर्थात् सारे मायाओं पाइये इस प्रतीक द्वारा कवि ने व्यक्त की है :--

आता है जब मो मन मे किस पार को पाढ़ा पोल्न होगे ।[1]

उपर्युक्त उदाहरण में शक्ति औत्सुक्यता को व्यक्त किया है, जो निम्नांकित पद में आसक्तता के प्रतीकों द्वारा निषेधात्मक शैली से यथार्थ के आरम्भ लोगों का योजन हुआ है :--

मसाम कुर चढे कबहुं श्रवन नीर दहा उड़सटौ पीत धारे ।
पेठ के मास तुरास परे रन सूर वसंत शरीर जरावे।
लोक डरो ध्रुव को पत को पत छूट पता को कबहूं पत धारे ।
कंका को नमू मलमारि उठे लखरोन पीठ दिखावे।[2]

कवि योगियों का योग जताने के लिए भी उनके वेश की विशिष्ट बातों को प्रतीक रूप में प्रयुक्त किया है। वन जाने के लिए राम योगी बन गए हैं। सांसारिक वस्तुओं से उनकी विरक्ति प्रदर्शित करने के लिए कवि ने मुद्रा कान धारौ तारे मुख पै विभूति डारौ।

यहाँ मुद्रा और विभूति इन प्रतीकों के माध्यम से अभिप्रेत की सफल अभिव्यक्ति मान कवि ने उनके अन्य अंगों की भाव आदि वर्णन को अपेक्षित नहीं समझा ।

इसी प्रकार युद्ध में शस्त्रों की भयंकर ध्वनि का अंकन कर चुकने पर भी कवि पूर्ण विकरालता की अभिव्यक्ति के लिए परम्परागत प्रतीकों का ही आश्रय लेता है। योगिनियों का खप्पर लेकर युद्ध भूमि में घूमना, बाल खोलकर नाचना, विकराल फुंकार करना भूत और प्रेतों का भयंकर अट्टहास, डमरू की डूट और कराल ध्वनि आदि प्रतीक ही युद्ध भूमि की भयंकरता को सीमा पर पहुँचाते हैं। यथा--

भरे जोगणी पत्र चउसठ चारी।[3]
नची जोगनीसं सैन्न बकी विकारी।

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 347 ।

2- वही, पृष्ठ [illegible] ।

3- वही, पृष्ठ 409 ।

खैं भूत प्रेतं भक्षा विकरालं । बजे डाक डाकन कालं ।[1]

न केवल विकरालता के अपितु वीभत्स रस की पूर्ण पुष्टि के लिए भी कवि को परम्परा गत प्रतीकों, प्रेत और डाकिनी आदि का आश्रय लेना पड़ा ।

चिपतं प्रोण खप्परी भरंत मास चावडं ।
डकार कार संभि है लुकार चार दुवं ।।[2]

इस प्रकार 'विचित्र नाटक' के बिम्ब और प्रतीक वर्णन की स्पष्टता और प्रतिपाद्य की सम्प्रेषणीयता में सहायक हुये हैं । उनका प्रयोग केवल बिम्बात्मकता या केवल प्रतीकात्मकता के लिए नहीं किया गया ।

१- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ८०३ ।
२- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ८१८ ।

रस साधना :-

मात्रा में अत्य अल्प होते हुए भी `विचित्र नाटक` का मुख्य रस भक्ति ही है। इस रस का अंकुरण ग्रन्थ मंगलाचरण के साथ ही हो गया है। कवि ने आरम्भ में खड्ग वन्दना करके अपने आराध्य अकाल-पुरुष की स्तुति की है और तदुपरान्त 101 छन्दों का पूरा अध्याय उसी के स्वरूप चित्रण और स्तवन में लग जाता है। दूसरे अध्याय के प्राथमिक आठ छन्दों में भी भक्ति का यह प्रवाह अपनी निरन्तरता बनाए रखता है। और नौवें छन्द से जिस व्यथा के प्रारम्भ करने की घोषणा कवि ने की है वह भी अकाल पुरुष के क्रिया कलाप और उसकी आज्ञा के प्रति कवि के आत्मसमर्पण की ही है।

ठाढ भयो मैं जोरि कर कल अज्यो सिर नाइ।
पंथ भले चल जात मैं पल तुम करहु सहाइ।[1]

द्वारा कवि इस रचना में भक्ति रस का पल्लवन करता है। इसके पश्चात् अन्य प्रसंगों में भी कवि ने इस भावना को कहीं लुप्त नहीं होने दिया। उसका शृंगार, अकाल पुरुष का शृंगार है। रौद्र में उसी अकाल की विकरालता है एवं वीर में उसी की आज्ञा का परिपालन है। ग्रन्थ के तीनों महाभागों (अपनी कथा, चण्डी चरित्र और अवतार कथा) की परिसमाप्ति भक्ति भावना के साथ ही हुई है। अपनी कथा में तो कवि ने जीवन का उद्देश्य ही `धरम चलावन संत उबारन दुस्ट सबन को मूल उपारन`[2] कह कर अपने आपको `संत सिपाही` के रूप में ` प्रस्तुत किया ही है। चण्डी का चरित्र भी उस अकाल पुरुष की शक्ति का ही चरित्र है। `चण्डी चरित्र` में भी उस अकाल पुरुष की शक्ति चण्डी का एवं उसके द्वारा संसार के तमाशा देखने का वर्णन है।[3] `रामावतार` भी कवि की भक्ति

1-दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 57 । (2) वही, पृष्ठ 57 ।
3- आदि अपार अलेख अनंत, अकाल अभेख अलख अनासा ।
के शिवशक्ति दए सुति चार, रजो तम सत तिहुं पुर वासा।
दुयोस निसा ससि सूर के दीप सु स्रिस्टिरची पंच तत प्रकासा ।
वर बढाय लराय सुरासुर, अपहि देखत बैठ तमासा।। (दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 74)।

भावना से ही ओतप्रोत है। उसने जब से उनके चरण ग्रहण किए हैं तभी से किसी का भय नहीं रहा। विभिन्न देवी देवताओं में या अनेक ग्रन्थों में उसका मन नहीं लगा। स्मृति, शास्त्र और वेद द्वारा प्रदर्शित भेदों में न पड़ कर वह उसे एक ही मानता रहा है। ग्रन्थ के वस्तु विषय के बारे में भी कवि ने यही कहा है कि यह मैंने नहीं कहा सब आपने ही कहा है।[1] अपनी अनन्य भक्ति को प्रकट करने के लिए कवि सफल द्वार छोड़ कर उस अकाल पुरुष के द्वार पर आया है और उसे `बाह गहे की लाज[2]` कह कर अपनी अनन्य भक्ति प्रकट करता है। कृष्णावतार` में भी यद्यपि कवि ने सब से अधिक वर्णन वीरता का ही किया है किन्तु इस वीरता के पीछे उसकी भक्ति भावना ही मुख्य प्रेरक और प्रतिपाद्य रही है। कवि का यह कहना :--

हे रवि हे शशि। हे करुणानिधि, मेरी बिनती सुन लीजे।
और न मांगत हो तुम ते, कछु चाहत हों चित महिं सोइ कीजे।
सस्त्र सिउ अति हीरण भीतर, जूझि मरौं कहि साच पतीजे।
संत सहाय सदा जग माय, क्रिपा करि स्याम इहै वर दीजे।[3]

इसी तथ्य का निदर्शन है।

अन्य महाकवियों की रचनाओं के समान गुरु गोविन्द सिंह के इस काव्य में यद्यपि प्राय: सभी रस न्यूनाधिक रूप में आए हैं। विस्तार की दृष्टि से सर्वाधिक वर्णन वीर और दूसरे नंबर पर शृंगार का हुआ है। किन्तु जहां तक परिणति और प्रभाव का प्रश्न है मैं दोनों तथा अन्य सभी रस भक्ति रस के परिपाक के लिए ही आए हैं। अत: सहायक होने के कारण मात्रा में अधिक होते हुए भी वे गौण हैं और भक्ति रस मुख्य।

1- पाइ गहे जब ते तुमरे, तब ते कोऊ आंख तर नहीं आनयो।
राम रहीम पुरान कुरान, अनेक कहे मत एक न मानयो।
सिम्रति सास्त्र वेद सभै बहु भेद कहैं हम एक न जानयो।
स्री असिपान क्रिपा तुमरी करि मै न कह्यो सभ तोहि बखानयो।
दशम ग्रन्थ, पृष्ठ254।

2- वही, पृष्ठ 254।

3- वही, पृष्ठ 495।

भक्ति रस :-

'विचित्र नाटक' का भक्ति रस स्वत: पूर्ण है ।उसमें स्तुति भी है,प्रार्थना भी और उपासना भी ।

सदा एक जोत्यं अजूनी सरूपं ।
महादेव देव देवं महाभूप भूपं ।
निरंकार नित्यं निरुपं निबाणं ।
कलंकारणोयं नमो खडग पाणं ।
निरंकार निर्विकार नित्यं निरालं ।
न ब्रिधं बिसेसं नतरुणं न बालं ।
न रंकं न रायं न रुपं न रेखं ।
न रंग न रागं अपारं अभेखं ।[1]

ये सभी पंक्तियां स्तुति परक हैं ।एवं मेरु करो त्रिण ते मुहि जाहि

गरीब निवाज न दूसर तोसो ।
भूल छिमो हमारी प्रभु आपन,
भूलन हार कहूं कोऊ मोसो ।
सेव करी तुमरी तिनके सम
ही गृह देखी अत द्रव्य मरोसो।
या कलि में सब काल कृपाण को
मारी मुजान को मारी मरोसो।।[2]

में प्रार्थना है --------

तुमरी प्रेम भगति जब गहिहौं ।
घोर कथा सभ ही तब कहिहौं।[3]

आदि में उपासना का भाव है ।

गुरु गोविन्दसिंह की भक्ति में उदात्तता का बाहुल्य है ।'शुभ कर्मन ते कबहुं न टरों' की भावना उनके समस्त काव्य में आद्योपान्त उपलब्ध होती है । दैन्य, साध्य और माधुर्य भक्ति के प्रसंग जहां भी आए है, सिमटे सिमटे ही आए हैं :---

---

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 39 । (2) वही,पृष्ठ45 ।(3) वही,पृष्ठ47।

खड्ग केत मैं सरन तिहारी । आपु हाथ दै लेहु उबारी।
सब हु ठौर मो होहु सहाई । दुस्ट दोख ते लेहु बचाई।[1]

मैं दैन्य और अनन्यता है। अकाल पुरुष आलम्बन है। उसकी सर्व व्यापकता, उबारन दामता एवं रक्षा सामर्थ्य इस देव रति के उद्दीपन हैं। भक्त की शरणागति अनुभाव एवं चिन्ता, त्रिवोध संचारी है। इस प्रकार दास्य भावेन भक्ति रस की पुष्टि गुरु के काव्य में अनेकत्र उपलब्ध होती है :--

तुम हो सभ राजन के राजा, आपे आप गरीब निवाजा ।
दास जान कर क्रिपा करहु मुहि, हार परा मैं आन दुवार तुहि।
अपना जान करो प्रतिपारा, तुम साहिब मैं किंकर थारा।
दास जान दै हाथ उबारो, हमरे सभ वैरियन संघारो ।।[2]

'कृष्णावतार' के इन प्रसंगों में कवि ने आराध्य के गुणों को उद्दीपन रूप देकर अपनी प्रार्थना में अनुभावों और संचारियों को रखा है।

माधुर्य या प्रेमा भक्ति का प्रसंग कहीं कहीं राधा और कृष्ण के वर्णन से हट कर भी उपलब्ध होता है और इसकी संगति सीधे रूप से अकाल पुरुष के साथ लग जाती है :--

हार चले ग्रह आपने कऊ, बन मो बहु तो तिन ध्यान लाए ।
सिध समाधि अराध कथा, मुनि खोज रहे हरि हाथ न आए ।
सयाम भने सभ वेद कतेबन, संते के मत यों ठहराए ।
भाखत है कवि संत सुनो जिहं प्रेम कीए तिन स्रीपति पाए।।[3]

आराध्य से अभीष्ट की याचना करने पर भी कुछ स्थलों पर कवि दास्यता के स्थान पर सख्य भाव से प्रभु के सामने उपस्थित होता है:--

छत्री को पूत हौं बाम्हन को नहि कैतपु आवत है जु करौं।
अरु और जंजार जितो ग्रिह को, तुहि त्याग कह चितता मैं धरौं ।
अब रीझ के देहु बहै हमको, जोऊ हउ विनती कर जोर करौं ।
जब आवकी अउध निदान बनै अतिही रण मैंतबजूझ मरौं।।[4]

1-दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 205 (2) वही, पृष्ठ 310(3)वही, पृष्ठ570(4)वही, पृष्ठ570।

सख्य भक्ति एवं माधुर्य भक्ति के प्रसंग कृष्णावतार में माखन लीला एवं रासलीला, गोपिका विरह वर्णन में देखे जा सकते हैं यद्यपि इन्हें भक्ति रस की अपेक्षा वात्सल्य और शृंगार में समाहित करना हमें अधिक तर्क संगत लगता है। इसकाकारण यह है कि यह वर्णन सीधा कृष्ण परक रह जाता है। अकाल पुरुष से उसकी संगति तत्काल नहीं लगपाती, जबकि अन्यत्र देवी देवताओं के नामों का निर्देश होते हुए भी अकाल पुरुष का आलम्बन बनने में कोई बाधा दिखाई नहीं देती। यथा:--

नरदेव देव राम है। अभेख धरम धाम है।
अबुध नारि तै भनै। बिसुध बात को भनै।
आदि देव अनंत है अभूत सोभवंत है।
क्रिपाल करम कारणं। बिहाल दिआल तारणं।
अनेक संत तारणं। अदेव देव कारणं।
सुरेस भाइ रुपणं। सभ्रिध सिध सिध कूपणं।[1]

यहाँ दशरथ द्वारा कृत राम की महत्ता का वर्णन अकाल की महत्ता का वर्णन भी है। तथा --

देहि सिवा। वर मोहि इहै सुभ कर्मन ते कबहुं न टरौं।
न डरौं अरि सो जब जाइ लरौं, निसचे करि अपनी जीत करौं।
अरु सिख हौं अपने ही मन को, इह लालच हउ गुण तउ उचरौं।
जब आव की अउध निदान बने अति ही रण मै तब जूझ मरौं।[2]

इस वर के लिए यह आवश्यक नहीं कि आराध्य शिवा ही हो। वह ' हे रवि, हे ससि, हे करुणानिधि मेरी अब बिनती सुनि लीजै।' के अनुसार अन्य भी हो सकते हैं पर जो कुछ भोगा गया है, उसे प्रदान करने की क्षमता अकाल पुरुष में ही है। सभी अवतार उसी के निर्देश का पालन करते हैं :--

काल पुरख तब भए दयाला, दास जान कह बचन बिसाला।
धर अरहंत देव को रूपा नास करौ असुरन को भूपा।[3]

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 204। (2) वही, पृष्ठ 99 (3) वही, पृष्ठ 183।

9

कवि ने इस भक्ति रस के सम्यक् परिपाक के लिए विभावादियों के उचित सन्निवेश में कोई कमी नहीं छोड़ी है। यथा :--

किते क्रिसन से कीट कोटै बनाए ।किते राम से मेट डारे उपाए।
महादीन केते प्रिथी माँझ हूए ।सभ्य आपनी आपनी अंत भूए ।
जिते औलीआ अम्बीआ होइ बीते ।तितिओ काल जीता न ते काल जीते।
जिते राम से क्रिसन हुइ बिसन आए।तितिओ काल खापिओ न ते का काए । 1

इस पद्य में आलम्बन अकाल पुरुष की सर्व कर्तृत्व क्षमता, अजेयता और सर्व विनाशन सामर्थ्य के अंकन द्वारा कवि की उदात्त देव रति का भक्ति रस में पूर्ण परिपाक हुआ है ।वितर्क आदि से चारी इस परिपाक में पूर्ण सहयोगी बने हैं ।

'विचित्र नाटक' में भक्ति का आलम्बन या कवि का आराध्य अमित महिमा वाला है। उसकी अपार महिमा का किसी ने पार नहीं पाया । 2 उस सर्वशक्ति मान की कृपा मात्र से --

मूक उचरै सासत्र खट पिंग गिरन चढिजाइ ।
अंध लखै बधरो सुनै जौ काल क्रिया कराइ ।। 3

यहाँ भक्ति रस के आलम्बन अकाल पुरुष का और उसकी कृपा के फल स्वरूप गूंगे द्वारा शास्त्र वाचन, पंगु द्वार गिरि लंघन और अंधे बहरे द्वारा दर्शन श्रवण उस अकाल पुरुष के प्रति रति भाव के उद्दीपक हैं। कवि कवि के श्रद्धा नमन आदि अनुभावों एवं वितर्क, औत्सुक्य, आवेग आदि संचारियों का स्वत: अध्याहार हो जाता है और इस प्रकार भक्ति रस पूर्ण परिपोष प्राप्त करता है।

वह सर्व काल सब सभ्य साथ रहता है भक्त को दु:खी देखते ही उसे दुखित करने वाले को मार डालता है।भक्तों को वह अपनी अद्भुत गति दिखाता है। अत: कवि जो उसका अनन्य भक्त है,उससे अपने त्राण का अनुरोध क्यों न करे :--

---

1- दशम ग्रन्थ ,पृष्ठ 41 ।
2-(क) दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 47 ।

(ख) तुमरी महिमा अपर अपारा।जाका लहिओ न किनहूं पारा।
देव देव राजन के राजा ।दीन दयाल गरीब निवाजा।। --वही, पृष्ठ47।

सरबकाल सब साधु उबारे।दुख दे के दोखी सब मारे ।
अद्भुति गति भगतन दिखराई ।सब संकट ते लए बचाई ।
सब संकट ते संत बचाए ।सब कंटक कंटक जिम घाए ।
दास जान मुहि करी सहाइ ।आप हाथ दे लयो बचाइ।।[1]

यहाँ अकाल पुरुष का दोषियों को दु:ख देकर मारना भक्तों को दिखाई गई अद्भुत गति आदि उदीपन हैं।सहायता की याचना अनुभाव है और स्मरण आदि संचारी हैं।

कवि को अपने आराध्य पर पूर्ण भरोसा है ।अत: वह अपने ग्रन्थ का आरम्भ परम्परागत गणेश वन्दना से नहीं करता,न कृष्ण और विष्णु का ध्यान करना चाहता है ।वह न अन्य किसी की सुनना चाहता है न किसी से पहचान रखना चाहता है।आराध्य के चरणों में ही उसकी लौ लगी है ।

मैं न गणेसहि प्रिथम मनाऊ किसन बिसन कबहु नहि ध्याऊं ।
कान सुने पहिचान न तिन सिउ, लिव लागी मोरी पग इनसिउ।।[2]

अत: कवि उससे अपनत्व प्रदर्शन में और अ शत्रुओं का विनाश करने की प्रार्थना करता है।वह संसार में देग और तेग दोनों को चलाना चाहता है --

अपना जान मुझहि प्रित परियहि।चुन चुन सत्रु हमारो मरियहि ।
देग तेग जग महि दोऊ चले, राखि आप मोहि और न दले।[3]

उपर्युक्त वर्णनों में अनुभावों का ही विशेष अंकन है पर इनके द्वारा आलम्बन और उदीपन का अनायास अध्याहार होता दिखाई पड रहा है।चिन्ता, वितर्क, विबोध आदि संचारी भी रस पुष्टि में सहायक बने हैं।

इस प्रकार 'विचित्र नाटक' में भक्ति रस ही मुख्य रस है। अवान्तर प्रसंगों में न्यूनाधिक रूप में आए हुए शृंगार वीर आदि उसके अंग या सह्योगी बने है।उनका अस्तित्व और विकास इस भक्तिरस के परिपोषके लिए है स्वतन्त्र नहीं।

1-दशमग्रन्थ,पृष्ठ 40 । (2वही, पृष्ठ 310 ,(3) वही,पृष्ठ 310।

वीर तथा उसके सहायक रस :-

विचित्र नाटक के सहायक रसों में व्यापकता एवं परिपाक की दृष्टि से सर्वाधिक सफलता वीर रस को मिली है। इस कारण यह वीर काव्य सा ही प्रतीत होने लगा है। आचार्यों ने कई प्रकार के वीर माने हैं किन्तु इस ग्रन्थ में युद्ध वीर का ही चित्रण हुआ है। दान, दया धर्म आदि प्रकार के वीर उसी में समाविष्ट है।

गुरु श्री गोविन्दसिंह ने जीवन भर धर्म युद्धों का संचालन किया अतः युद्धवीर के चित्रण में उन्हें युद्धों का ढांचा बनाने के लिए कपोल कल्पना की आवश्यकता नहीं पड़ी। उसमें पूर्ण यथार्थता है उसके रंग और रेखाएं सभी कुछ नैसर्गिक है।

कवि की चित्तवृत्ति आद्यान्त युद्ध वर्णन में रमी रही है। अपनी कथा के वर्णन में भी उसने दूसरी घटनाओं में अधिक न उलझ कर लवायुद्ध, भंगाणी युद्ध, नादौन युद्ध, खान जादे से युद्ध, हुसैनी से युद्ध और जुझारसिंह के युद्ध का वर्णन अति विस्तार से किया है चंडी चरित्र (उक्ति विलास) तथा चंडी चरित्र द्वितीय में चण्डी द्वारा मधुकैटभ, महिषासुर, धूम्रनयन, चण्डमुण्ड, रक्तबीज और शुंभ निशुंभ से किए गए युद्धों का वर्णन किया है। यही बात चौबीस अवतारों की कथा में है। मत्स्यतथा शंखासुर, वाराह और हिरण्याक्ष, नरसिंह और हिरण्यकश्यप, परशुराम तथा सहस्रबाहु, रुद्र का त्रिपुट और अंधक से युद्ध, शिव और जालंधर, सूर्य और दीर्घकाम आदि के युद्धों का वर्णन है। राम, कृष्ण और निष्कलंकी अवतार के विस्तृत वर्णनों में भी युद्धों की ही प्रधानता है। यही स्थिति रुद्रावतार की है वहां पारसनाथ के युद्धों का वर्णन है।

युद्धवर्णन की प्रधानता होने के कारण वीर रस के ही साथ मिले हुए रौद्र वीभत्स तथा भयानक रस भी आए हैं। इन चारों रसों का विचित्र नाटक में कुछ ऐसा सम्मिश्रण हो गया है कि इन्हें एक दूसरे से विच्छिन्न करके नहीं देखा जा सकता।

अपनी कथा :- मेघों को लज्जित करने वाली महावीरों की गर्जना, अपना झण्डा गाड़ते हुए उनका आगे बढ़ना रोष के साथ कृपाणों और कटारों का भिड़ना और हुंकार पूर्वक भूमि पर गिर पड़ना

इस सबका बड़ा ही सजीव वर्णन अपनी कथा में है।

महावीर गज्जे, सुणं मेघ लज्जे।
फंडा गड़े गाढ़े, मंडं ऐस बाढ़े।
क्रिपाणं कटारं, भिटे रोट धारं।
महावीर बंकं भिटे भूम हक्कं।[1]

यहां वीरों की वीरों से टकराहट उत्साह को उद्दीप्त करती है। भेरियों का निनाद और घौंसों की धमक, नगाड़ों का गम्भीर शब्द उद्दीपन विभाव का कार्य कर रहे हैं।

मचे बीर बीरं अभूतं भयाणं।
बजी भेट भुंकार धुक्के निसाणं।[2]

इसी प्रकार --

उठी कूह जूहं सभर सार बज्जिअं।
किधौं सअंत के काल को मेघ गज्जिअं।
भई तीर भीरं कमाणं कडक्कियं।[3]

वीर पुरुष सैनिक वेश धारण कर अपने लौह शस्त्र लिए ऐसे घूम रहे हैं मानों कोई भतवाला घूम रहा हो। कहीं से ललकार आती है तो कहीं से चीत्कार। शस्त्रों की टकराहट का स्वर प्रलयकालीन मेघ गर्जना को लज्जा रहा है। बाणों की भीड़ कमानों की कड़क युद्ध की भयंकरता की प्रतीति करा रही है। इस प्रकार यह वर्णन भी वीरों के उत्साह को उद्दीप्त करने वाला है।

रसानुकूल विभावों, अनुभावों और संचारियों के उचित सन्निवेश से निष्पण वीर रस सचमुच बड़ा ही सुन्दर बन पड़ा है। स्थायी उत्साह की अनवरत सृष्टि उसे रस परिपाक की अवस्था की ओर उत्तरोत्तर अग्रसर करती रही है।

भंगानी युद्ध में राजा फतहशाह ने अकारण ही क्रुद्ध होकर गुरु जी के विरुद्ध हल्ला बोल दिया :--

फतहशाह कोपा तब राजा।
लोह परा हम सो बिन काजा।[4]

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 50। (2) वही, पृष्ठ 51। (3) वही, पृष्ठ 51।
4- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 60।

इस अकारण आक्रमण से गुरु जी तथा उनके सह्योगी वीरों का उत्साह उद्दीप्त हुआ । उनके मुख क्रोध से लाल हो गए। कवि ने इन अनुभावों का अंकन इस प्रकार किया है :--

तहां साह श्री साह संग्राम कोपे। पंचो बीर बांके प्रिथी पाइरोपे।
हठी जीत मलं सुगा जी गुलाबं।रणं देखिए रंग रूप सहाबं ।।[1]

वहां युद्ध में शाह श्री संगो शाह क्रोधित हो गए।इन पांचों भाइयों ने धरती पर पांव जमा दिए।जीत मल हठी गुलाबराय गाजी सिंह संगतीया के चेहरे युद्ध का वातावरण देखते ही रक्तिम हो उठे ।लालचंद भी युद्धोत्साह से भर उठा ।उसका मुख भी क्रोध से लाल हो गया और वह अपनी क्रुद्ध गर्जना से सिंह को लज्जित करने लगा ।

कुपे लालचंद किये लाल रुपं ।
जिनें गज्जीअं गरब सिंह अनूपं ।।[2]

इस युद्ध में क्रोधित होकर महंत कृपालदास ने कुतका संभाली और ह्यात खां के सिर पर दे मारी ।~~ह्यात~~ ह्यात खां का सिर फूट गया उसमें से भज्जा निकल पड़ी ।इसे कृपाल के हृदय में जुगुप्सा द्वारा उत्साह को परितोष मिला।

क्रिपाल कोपीयं कुतको संभारी।हठी खान ह्यात के सीस मारी।
उठी छिक्क इर्घ कढ़ा भेजि जोरं।मनो भाखनं मटकी कान्ह फोरं।[3]

दूसरी ओर हरिचन्द के तीक्ष्ण प्रहारों से गुरु जी का क्रोध उद्दीप्त हो उठा ।वे रौद्र रूप धारण कर विरोधियों पर टूट पड़े ।

जबं बाण लागयो।तबं रोस जागयो
करं लै कमाणं ।हनं बाण ताणं ।[4]

भंगाणी विजय के पश्चात नादौन युद्ध का वर्णन है ।वहां के राजा भीमचंद पर आसफखां ने आक्रमण कर दिया था और गुरु जी भीमचंद की सहायता के लिए युद्ध में भाग लेने पहुंचे थे।इस युद्ध का वर्णन भी पाठक के हृदय को रस पूर्ण करने वाला है।

1- दशम ग्रन्थ,पृष्ठ 60 (2) वही, (3) वही, (4)वही,पृष्ठ62 ।

कुपियो क्रिपाल ।नच्चे भराल ।
बज्जे बजंत । कूरं अनंत ।[1]

कृपाल चंद क्रोध से भर उठा । घोड़े नाच उठे और रणवाद्यों की ध्वनि ने सारे वातावरण को भयावह बना दिया ।

जूझत जुआण ।बाहे क्रिपाण ।
जी धार क्रोध ।घड़े सरोध ।[2]

योद्धा लड़ रहे थे, तलवारें चल रही थीं, हृदय क्रोध से भरे हुए थे, वाण वर्षा चालू थी।

हुसैनी युद्ध में हुसैनीखां ने पहाड़ी राजाओं के सन्धि प्रस्ताव को ठुकरा कर उन पर आक्रमण कर दिया था। इससे उनका क्रोध उद्दीप्त होना स्वाभाविक था। कृपाल द्वारा गोपाल को छल से पकड़ने और मारने का कम कायं भी क्रोधोद्दीपक है। गोपाल उनसे बच कर निकल जाता है।उसके जाते ही कृपाल क्रोधित होकर पहाड़ी राजाओं पर आक्रमण कर देता है --

कुपियो क्रिपालं सजि भरालं बाह बिसालं धरि ढालं ।
धाए सबसूरं रुप करुरं चमकत नूरं मुख लालं।
ले ले सु क्रिपाणं बाण कमाणं सजे जुआणं तनतत ।
रणि रंग कलोलं मार ही बोलं जन गज डोलं बन मत्तं ।[3]

दोनों पक्षों के वीर मस्त हाथियोंके समान जूझते हैं।उनके भयंकर युद्ध से भूमि रक्त रंजित हो जाती है। आकाश में अप्सराएं घूम रही हैं जिन्हें देख कर अपने हृदय में उत्साह के अतिरिक का अनुभव करते हुए वे योद्धा भयंकर शब्द बोलते हैं ।कहीं हाथी मरे पड़े थे तो कहीं अश्व खुले घूम रहे थे ।कहीं तलवारें चल रही थीं और कहीं बाण वर्षा हो रही थी, कहीं डाकनियों की ध्वनि थी और कहीं चुड़ैलों की चीख ।कहीं कोए कांवे कांवे कर रहे थे, कहीं तलवारों की खनक थी ।

नदी स्रोण पूरं ।फिरे गैण झूरं ।उमे खेत पालं ।झुक्क बुके बिकरालं।
तह हड़ हड़ाह हस्से मसाणं। लिट्टे गजिन्द्र घुट्टे किकाणं।

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 63 (2) वही, पृष्ठ 63 (3) वही, पृष्ठ 67 ।

जुट्टे सु बीर तह कहक जंग । घुट्टी क्रिपाण बुढे खतंग ।
डाकनि हहिक चावहि चिकार। काकं कहक्कि बजे दुघार ।।[1]

इस प्रकार का वर्णन जुगुप्सा स्थायी को पुष्ट करता है और वीर रस की परिणति वीभत्स रस में हो जाती है ।

वर्ण्य विषय की स्वाभाविकता के लिए कवि अपने पक्ष की वीरता का ही नहीं अपितु विपक्षी वीरता का वर्णन भी बड़े मनोयोग से करता है । उन्होंने प्रतिनायक की वीरता का वर्णन बड़ी सशक्त भाषा में और बड़े ही ओजस्वी ढंग से किया है ।

तहां खां हुसैनी रहिओ एक ठाढं ।मनोजुध खंभं रणं भूम गाढं
जिसे कोप के के हठी बाण मारियो।तिसे छेद के पैल पोर पधारिओ
सहे बाण सूरं सबै आण ढूकै । चहूं ओर ते मार ही मार हूकै ।।[2]

वह वीर हुसैनी खां युद्ध भूमि में इस प्रकार खड़ा रहा मानो कोई खंभा गड़ा हो ।वह जिसे भी तीर मारता उसी को छेद कर वह तीर दूसरी ओर निकल जाता।इस प्रकार `अपनी कथा` में उत्साह स्थायी भाव परिपुष्ट होकर वीर रस में परिणत हुआ है।रौद्र और वीभत्स इसके पोषक रस रहे हैं ।

चंडी चरित्र (उक्ति विलास) :- चण्डिका की कथा को अपना कर गुरु गोविंद सिंह ने तीन अवान्तर काव्यों की रचना की चंडी चरित्र (उक्ति विलास) `चण्डी चरित्र द्वितीय ` तथा चण्डी दी वार ` इनमें से अन्तिम पंजाबी भाषा में होने के कारण हमारे अध्ययन विषय से बाहर है । शेष दोनों चण्डी चरित्रों की कथा एक सी है अन्तर केवल वर्णन में है।चण्डी चरित्र प्रथम में युद्ध वर्णन की शैली अलंकार प्रधान है और द्वितीय में छन्द प्रधान ।

दैत्यराज महिषासुर से पराजित होकर देवता देवी दुर्गा की शरण में आते हैं और उसके सम्मुख अपनी दुर्दशा का वर्णन करते हैं जिसे सुनते ही देवी का उत्साह उद्दीप्त हो जाता है और वह घोषणा करती है--

---

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 68 ।
2- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 68 ।

सुनत वचन ऐ चंडका मन मे उठी रिसाइ ।
सभ दैतन को क्षै करऊ बसऊ सिवपुरी जाइ।[1]

चण्डी ने शस्त्र अस्त्रों से सुसज्जित हो अपने प्रचण्ड रुप में युद्ध भूमि में पहुंच कर युद्ध का डंका बजा दिया :--

चंड कोप करि चंडका ऐ आयुध कर लीन ।
निकटि बिकटि पुर दैत के घंट की धुन कीन ।[2]

घण्टे और सिंह की आवाज ने दैत्यों के क्रोध को भी उदीप्त किया वे पूर्ण तैयारी के साथ पैतालीस पदम सेना लेकर देवी के सम्मुख आ डटे ।उन्हें क्रोध में उन्मत्त देख देवी का उत्साह भी जागृत हुआ । कवि ने देवी के अनुभावों का वर्णन इस प्रकार किया है :--

देखि चमूं महिखासुर की करि चंड कुवंड प्रचंड धरिओ है ।
दछन बाम चलाइ घने सर कोप भयानक जुधु करिओ है ।[3]

फिर क्या था महिषासुर की सेना युद्ध भूमि से भाग निकली और अपने राजा महिषासुर को अपने विनाश की सूचना दी--

इक भाजे त्रिप पै गये कह्यो हती सभ सैन ।
इह सुनिके कोपिओ असुर चढि आयो रन सैन ।।[4]

महिषासुर की सेना का देवी द्वारा संहार और पलायन जहां एक ओर वीरत्व की उपलब्धि है वहां दूसरी ओर महिषासुर के कोप की जनक भी ।महिषासुर का रौद्र रुप में खड्ग संभाल कर आना आलम्बन का प्रत्यक्ष प्रमाण है ।

झुक परी सभ सैन लखी जब तौ महिखासुर खग्ग संभारिओ ।
चंड प्रचंड साभुहिजाइ भइ आनक भालक जिउ भमकारिओ ।
भुगदरु ले अपने करि चंड सु केबरी ता तन ऊपर डारिओ ।
जिउ हनुमान उखार पहार को रावन के उर भीतर मारिओ ।[5]

यहां कवि ने आलम्बन के साथ उद्दीपन का भी यथोचित समावेश किया है । आवेग और असूया आदि संचारी भी यहां विद्यमान है।दोनों पक्षों के अनुभाव

1- दशम ग्रन्थ,पृष्ठ 76 (2) वही, पृष्ठ 76 (3) वही,पृष्ठ 77 ,
4- वही, पृष्ठ 78 , (5) वही, पृष्ठ78 ।

भी हैं जिनमें आलम्बन के अनुभाव उद्दीपन का कार्य कर रहे हैं ।प्रचंड चण्डी के सामने जाकर महिषासुर का ललकारना देवी के उत्साह को उद्दीप्त करता है । परिणाम स्वरूप वह उस पर अपने मुदगर का सबल प्रहार करती है ।यहां महिषासुर पर प्रहार करती देवी का कवि ने पर्वत से रावण पर प्रहार करने वाले हनुमान के साथ सादृश्य दिखा कर आश्रय और आलम्बन दोनों को ही उत्कर्ष प्रदान किया है किन्तु --

फेर सरासन को गहिके कर बीर हने तिन पान न मीं ।
घाइल घूम परे रन मांहि कराहत है गिर से गज लीं ।
सूरन केतन कउचन साथ परे धर भाउ उठे तह चीं ।
जानो दवा बन भाभ लगे तह कीटन मच्छ को दउरे भुजंगे।[1]

यहां प्रतिपक्षी की अवस्था का चित्रण आलम्बन न रह कर उद्दीपन बन गया है ।उत्प्रेक्षा द्वारा भी यहां उद्दीपन को ही उत्कर्ष पर पहुंचाया गया है ।

क्रोध भरी प्रचण्ड चण्डी का अपने सिंह को प्रेरते हुए उस युद्धस्थली में धंस जाना, रक्तसनी तलवार से शत्रुओं को काट कर सर्वत्र उस रक्तिम लालिमा द्वारा दावानल ग्रस्त सा बना डालना इत्यादि सब कुछ चण्डी के वीरत्व को निश्चय ही अधिक सम्प्रेष्य बना देता है ।दैत्य उसे चारों ओर से घेर लेते हैं और वह तेजस्वनी उन्हें चीरती हुई आगे निकल जाती है।मानो उसके शरीर का तेज ही साक्षात चला जा रहा हो।उसकी गति और दीप्ति बादलों के मध्य चमकने वाली बिजली जैसी ही है ।

कोप भरी रन चंड प्रचंड सु प्रेरके सिंह धसी रन मे ।
करवार ले लाल किए अरि खेत लगी बड़वानल जिउ वन मैं।
तब घेरि लइ चहुं ओर ते दैतन इउ उपमा उपजी मन मे।
मन ते तन तेज चलिओ जग मात को दामन जान चले घन मे।[2]

योद्धाओं के उत्साह की वृद्धि के लिए कवि ने स्थान स्थान पर दर्पोक्तियों की भी सुन्दर योजना की है :--

---

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 78 ।

2- वही ।

बैठ हुतो त्रिप मधि सभा उठि के करि जोरि कहिओ मम्जाऊं।
बातन से रिझवाइ मिलाइ हो नातरि केसन ते गहि लिआऊं।
क्रुद्ध करे तब जुध करो रण स्रोणत की सरता न बहाऊं।
लोचन घूम कहे बल आपनो सवासन साथ पहार उडाऊं ।।[1]

घूम्र लोचन की यह दर्पोक्ति इसका स्पष्ट निदर्शन है ।वह चतुरंगनी सेना सजा कर चल पड़ता है और चण्डी को चुनौती देता है---

के बर सुंभ त्रिपाल को के लर चंड संभार ।[2]

शत्रु के इन वचनों से चण्डी का क्रोध भी उद्दीप्त हो जाता है और वह भी अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित हो युद्ध के लिए पर्वत से उतर आती है।चण्डी के अनुभाव दर्शनीय है --

कोप के चण्ड प्रचण्ड चढी हत, क्रुध के घूम्र चढे उत सेनी।
बान क्रिपानन भार मची तब देवी लई बरछी कर पेनी।
दउर दई अर के मुख में कटि ओठ दए जिमि लोह की छेनी।[3]
दांत गंगा जमुना तन सि आम सो लोहू बहिओ तन माहि त्रिबेनी।

यहां रक्त के वर्णन के कारण 'जुगुप्सा ' संचारी का भी समावेश हो जाता है ।चण्डी के भयंकर प्रहारों से. घूम्र लोचन कराह उठा और मृत्यु को प्राप्त हुआ।

लोचन घूम उठे किलकार लए संग दैतन के कुरमा।
गहिपान क्रिपान अचानक तन लगाई है केहरि के उरमा।
हरिचंड चलहओ बरि के कर ते अरु मुंड कटिउ असुर पुरमा।
मनो आंधी बहे धरनी पर घुटसजूरते टूट परिओ खुरमा ।[4]

यहां शोक संचारी का भी समावेश हो गया है । घूम्र-लोचन की मृत्यु परान्त चंड और मुंड चण्डी के विरुद्ध सेना लेकर आते हैं।[5] मुण्ड अपनी तलवार से देवी के सिर पर प्रहार करता है और देवी युद्ध करती हुई आगे बढ़ती है।[6] इस प्रकार के वर्णन पाठकों में क्रोध और उत्साह दोनों

1-दशम ग्रन्थ ,पृष्ठ 82-83(2) वही,पृष्ठ 83(3) वही,पृष्ठ 83(4)वही,पृष्ठ83।

5- कोप चढे रन चंड अउ मुंड सु ले चतुरंगन सैन भली ।
तब सेस के सीस धरा लरजी जन मधि तरंगनि नाव हली ।
खुर बाजन धुर उडि नभि को कवि के मन ते उपमान टली।

(शेष अगले पृष्ठ पर देखिए)

प्रकार के संयुक्त भावों को पुष्ट करते हैं। अत: इनसे निष्पन्न होने वाले रौद्र और वीर भी मिश्रित हो गए हैं।

चंड और मुंड के संहार का समाचार सुन कर शुंभ ने शोणित बिंदु को देवी के विरुद्ध भेजा। उसके युद्ध भूमि में पहुँचते ही सारा वातावरण भयानक हो जाता है। वीर खण्ड खण्ड होकर धरती पर पड़े दिखाई देने लगते हैं जहां तहां मांस की लोथ पड़ी दिखाई देती हैं और रक्त की धारा उन लोथों को बहाने लगती है। ऐसे स्थान पर कवि बहते हुए बाहुओं को टकराते हुए सांपों से उपमा देकर वातावरण की भयानकता को और भी उभार देता है। कवि की सांत्वना इतने से ही नहीं होती वह प्रलय की वायु से गिरते हुए भारी पर्वतों का दृश्य उपस्थित कर धड़कते हुए हृदय को और भी धड़का देता है --

ऐसे परे धरती पर बीर सु कै के दुखंड जु चंडहि डारे।
लोथन ऊपर लोथ गिरि बहि प्रउण चलि ओ जनु कोट पनारे।
लेकरि ब्याल से ब्याल बजावत सो उपमा कवि यो मन धारे।
मानो महा प्रलएबहे पउन से आपसि मे भिरहें गिर मारे।[1]

रक्तबीज के शरीर से रक्त की जितनी भी बूंदें धरती पर गिरती उतने ही रक्तबीज और उत्पन्न हो जाते।

प्रउणत बिंद को प्रउन परयो धरि प्रउनत बिंद अनेक भए हैं।
चंडी प्रचंड कुचंडी संभारि के बाननि साथि संहार दए हैं।
प्रउन समूह समाइ गए बहु रोसु भए हति फेरि लए हैं।
बारद धार परे धरनी मनो बिंबर ह्वै भिटके जुगए है।[2]

(पिछले पृष्ठ का शेष)

भव भार अपार निवारन को धरनी मनो ब्रह्म के लोक चली।

दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 84।

6- धाइ कै दंत चलिउ जबही तब देवी निखंग ते बान सु काढे।
कान प्रमान लउ खेंच कमान चलावउ एक अनेक हुइ बाढे।
मुंह ले टाल दइ मुख ओट घसे तिह भंधि रहेंगढि गाढे।
मानहु कूरम पीठ पै नीठ भए है सहस्र फन के फन ठाढे।

दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 84।

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 88 (2) वही, पृष्ठ 90।

ऐसे स्थलों पर विस्मय स्थायी भी संचारी बन कर भयानक रस का पोषण करता है। अनेक रक्त बीजों को देख कर चण्डी का शरीर भयंकर क्रोध की आग से जलने लगा। उसके मस्तक से एक ज्वाला निकली और काली प्रत्यक्ष हो गई। चण्डी और काली दोनों ने मिल कर रक्त बीज का वध कर दिया।

रक्त बीज की मृत्यु का समाचार सुन कर शुंभ और निशुंभ का युद्ध भूमि में आ डटना पुनः वातावरण को रौद्र बना देता है।

आव देखिके चंड प्रचंडी को कोपहि ओ मन में अतिदानो।
नासकरो हह को छिन में कहि बान संभार बहो धनु तानो।
काली के बक्र बिलोकन ते सु उठिओ मन मे भ्रम जिउ जम जानो।
बान समूह चलाइ दए किलकार उठि ओ जु प्रले घन मानो।[1]

इस प्रकार उसके रौद्र रूप को देख कर चण्डी भी विकराल हो जाती है। दोनों ओर से अस्त्र शस्त्रों का प्रहार और दर्पोक्ति की किलकार उठती। उद्दीपन और संचारियों का समावेश तथा आलम्बन और आश्रय का प्रत्यक्ष दर्शन ऐसे स्थलों में वीर रस की अपूर्व योजना कर डालता है। निम्नांकित वर्णन में उत्साह क्रोध और जुगुप्सा में तीनों स्थायी एक दूसरे में परिणत होते दिखाई देते हैं।

खग्ग ले काली अउ चण्डी कुवंडि बिलोक के दानव हुउ दबटे है
केतक चाब गई मुखि कालका के तिन के सिर चण्डी कटे हैं।
प्रउनत सिंघ महओ धर मे रन धाउ गए इक देत फटे हैं।
सुंभ पैजाइ कही तिन हुउ बहु वीर महां तिह ठउर लटे है।[2]

प्रतिनायक के वीरत्व का वर्णन यहां निशुंभ के इस युद्ध कौशल में भी देखा जा सकता है।

दैत संभार समे अपने बलि चंडि सो जुधु को फेरि अरे है।
आयुध धारी लहेरन हुउ जनु दीपक भंधि पतंग परे हैं।
चंड प्रचंड कुवंड संभार समे रन मधि दू टूक करे हैं।
मानो महां बन में बर छिछन कटिके बाढि जु देके धरे हैं।[3]

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 92 (2) वही, पृष्ठ 94 (3) वही, पृष्ठ 93

(वही

चण्डी की कृपाण उसका भी काम तमाम करती है। इस पर शुंभ अपनी पूर्ण भयंकरता के साथ देवी के समक्ष युद्धार्थ उपस्थित हो जाता है। उसकी विकरालता अभूत पूर्व है।

केते मार डारे अउ केतक चबाइ डारे केतक बगाई डारे काली कोपतब ही।
बाज गज मारे हो तो नरवन सो फाड़ डारे ऐसो रन मेकर न भइओ आगे-कबही।
भागे बहु वीर काहू सुध न रही सरीर हाल चाल परी भीर आपस मे दे-वही।
पेख सुर राइ मन हरख बढाइ सुर पुंजन बुलाइ करे जै जै कार सब ही।[1]

यहां शुंभ की चेष्टाएं देवी के लिए उद्दीपन हैं और उसके पक्ष वालों के लिए अनुभाव। वीरों का भागना, हाथी घोड़ों का मरना, देवताओं का जय जय कार करना, आदि सब उभय पक्षीय अनुभाव और उद्दीपन रूप में यहां वर्णित हुए हैं। चण्डी और शुंभ के द्वन्द्व युद्ध में भी आवेग, अमर्ष आदि संचारियों की दौड़ना, कांपना आदि अनुभावों की योजना पूर्ण रूप से रसानुकूल रही है।

दुंद सु जुधु भइओ रन मे उत सुंभ इते बर चंहु संभारी।
घाइ अनेक भए दुहूं के तन पउरख ग्यो सभ देत को हारी।
हीन भई बल ते भुज कांपत सो उपमा कवि ऐसे विचारी।
मानहु गारहू के बल ते लटी पंच मुखी जुग सापन कारी।[2]

अन्त में चण्डी शुंभ का भी वध कर डालती है। वह दो टूक हो कर भूमि पर गिर पड़ता है। और देवी का कार्य पूर्ण हो जाता है। इस प्रकार चण्डी चरित्र का सारा वर्णन वीर, भयानक रौद्र और वीभत्स रसों के ताने बाने को लेकर चला है जिनमें वीरता का तन्तु बस सब से सबल है शेष तीनों उसके सहकारी हैं।

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 96।
2- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 97।

रामावतार :- रामावतार में भी वीर रस कीप्रधानता है ।कवि ने कथा के सभी प्रसंगों को विस्तृत ढंग से न कह कर केवल युद्ध का ही वर्णन विस्तार से किया है ।अनेक प्रसंग तो ' इन बातन को इक ग्रंथ बढै तहि ते कहिए थोरी बीन कथा[1] ' कह कर कवि आगे बढ गया है ।अनेक धार्मिक प्रसंग भी छोड़े हैं और शीघ्रातिशीघ्र रणभूमि में पहुंचा है ।

राम और लक्ष्मण ने बाल्यकाल से ही निशाचरों का वध आरम्भ कर दिया । सीता स्वयंबर में धनुष भंग के पश्चात राम और परशुराम संवाद वीर रस से ओतप्रोत हैं । उदाहरणार्थ :--

परशुराम :-

तूणिर कसे कट चाप धरे कर कोप कही दिज राम अहो
ग्रह तोर सरासन संकर को सीअ जात हरे तुम कउन कहो ।
बिन साच कहे नहीं प्राण बचे जिन कंठ कुठार की धार सहो ।
घर जाहु चले तज राम रणं जिन जूझ मरो पल ठाढ रहो।[2]

परशुराम के कठोर वचनों से राम का क्रोध भी उदीप्त हो उठा --

बोल कहेसु कहे दिज जू जुपं फेरि कहे तु पे प्रान खवे हो ।
बोल ऐसे कहा सठ जिउ सभ दांत तुराइ अबै घरि जैहो ।
धीर तबै लहि है तुम कउ जद भीर परी इक तीर चले हो ।
बात संभार कहो मुखि ते इन बातन को अब ही फल पेहो ।[3]

बनवास काल में भी राम लक्ष्मण द्वारा राक्षस वध का क्रम चलता रहता है।ऐसे अवसर वीर रस की अभिव्यक्ति के लिए कवि को सबल साधन के रूप में प्राप्त हुए हैं।राम का सर्वप्रथम वहां विराध से युद्ध हुआ उन्हें वन में देखते ही वह शस्त्रों सहित उनकी ओर दौड़ा ।उसकी उद्धत वक्वास ने राम के क्रोध को उदीप्त किया और दोनों पक्ष भयंकर युद्ध में जुट ग गए ।रणभूमि में मृतशरीर और कटे हुए अंग ही दिखाई देने लगे । योद्धा घायल हुए और रक्त से लथपथ होकर युद्ध भूमि में गिर पड़े । उनकी खोपड़ियां रक्त में स्नान

1- दशम ग्रन्थ,पृष्ठ 188 । (2) वही,पृष्ठ 198 ।
(3) वही ,पृष्ठ199 ।

करती सी दीखने लगी ।युद्धभूमि में चीलों, गिद्धों और गीदड़ों ने अड्डा जमाया ।बेताल और डाकणियां घूमने लगीं ।मांस भक्षण के इस सत्र ने सारे वातावरण को भयावहता प्रदान कर भयानक और वीभत्स रस की सृष्टि की है :--

अजुत्थ लुत्थ बित्थुरी मिलंत हथ्थ बख्यं ।
अघुंम घाह घुमर। बबक्क बीर दुघरं ।
किलं क रत खप्परी ।पिपंत स्रोण पाणयं ।
हक्कक भक्खं सुतं उठंत जुध जालयं ।
फिरंत छिंकरी फिरं रडंत गिध बिघणं ।
डाहक्क डाभरी उठं बकार बीर बतलं ।
खहंत खग्ग खत्रयं खिभंत धार उज्जलं ।
घणंक जाण सावणं लसंत बेग बिज्जुलं ।
पिपतं स्रोण खप्परी भखंत भास चावडं ।
हकार वीर संभिडं लुकार धार दुधरं ।[1]

इस प्रकार के वर्णनों में स्थायी भाव 'उत्साह' के साथ साथ जुगुप्सा स्थायी भी मिला हुआ है। परिणामत: वीर और वीभत्स रसों का सम्मिश्रण हो गया है ।

युद्ध के लिए प्रस्थान करती हुई खरदूषण की सेना की विशालता और भयंकरता के वर्णन में भी इसी प्रकार दो भिन्न स्थायी भावों भय और उत्साह की पुष्टि हुई है ।

साज सुनाह सुबाह दुरंगत । बाजत बाज चले गज गज्जत ।
भार ही भार दसो दिस कूके ।सावन की घटज्यों घर ढूके ।[2]

कवि ने लंका पर आक्रमण करने के लिए प्रस्थान करने वाली राम की सेना का वर्णन इस प्रकार किया है :--

दल जोर कोर करोर लै बड घोर तोर सबै चले ।
राम चंद सुग्रीव लछमन अउर सूर भले भले ।
जामवंत सुखेन नील हनवंत अंगद केसरी ।
कपिपूत जूथ प जूथ लै उमडे चहूं दिस के फरी ।[3]

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 212(2) वही, पृष्ठ 214(3) वही, 217।

इस दल में राम और लक्ष्मण के अतिरिक्त हनुमान, सुग्रीव, जाम्बवन्त, सुषेण, नल नील और अनेकों बानर सरदार थे।

रावण को जब राम की इस भयानक सेना के आगमन का पता चला तो धूम्र अक्ष तथा जांबमाल के नेतृत्व में विशाल सेना राम का प्रतिरोध करने के लिए भेजी। इस सेना को देखते ही हनुमान ने क्रोध में आकर ऐसा पवन यन्त्र चलाया कि अनेकों योद्धा लड़ खड़ाते हुए गिर पड़े और स्वर्ग सिधार गए।

धूम्र अक्षु जांब माल बुलाइ बीर पठे दये।
सोट कोट क्रोट के जहा राम थेतह जात भे।
रोस के हनवंत थापर रोप पाव प्रहारियं।
झुक्क भूमि गिरियो बली सुरलोक झांक बिहारियं।।[1]

धूम्र और अक्ष की मृत्यु परान्त रावण की ओर से अकंपन रण क्षेत्र में उतरा और राम पक्ष की ओर से उसका मुकाबला अंगद ने किया। इस भयंकर युद्ध में कहीं सिर कटे पड़े थे, कहीं शरीर लुढ़क रहे थे कहीं टांगे तड़प रहीं थीं और कहीं आंत उछल उछल कर बिखर रहे थे। आकाश में कहीं गिद्ध चीख रहे थे रणभूमि श्वशान बन गई थी जिसमें भैरव की भयकार सुनाई पड़ती थी।

कहूं मुंड पिखी अहकहूं भक रुंड परे घर।
कितहीं जांघ तरफत कहूं उछरत सुछबकर।
भरत पत्र खेचर कहूं चावंड चिकारै।
किलकत कही मसान कहूं भैरव भबुकारै।
इह भांत बिजे कपि की भई हणियो असुर रावण तणा।
मै दग्ग अदग्ग भग्गेह हठी गहि गहि कर दांतन तिणा।।[2]

यहां 'भय' का उद्दीपन स्थायी रूप में न होकर संचारी रूप में हुआ है। फिर भी इस वर्णन को पढ़ कर वीर से वीर व्यक्ति के हृदय में भी उसका संचार हो जाता है। 'उत्साह' स्थायी के साथ संचारी 'भय' यहां परिपोषक रूप में प्रयुक्त हुआ है।

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 218।

2- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 218।

अकम्पन की मृत्यु के पश्चात प्रहस्त और उसके पश्चात् कुम्भकर्ण युद्ध क्षेत्र में आया।कुम्भ कर्ण के शरीर के वर्णन में कवि ने `भयानक रस ` की सृष्टि की है।

जलागर सप्त सहस्र पूरं ।भुखं पुछ लियो कुंभ कानं करुरं ।
कियो मास हारं महा मदय पानं।उठ्यो ले गदा को भरिओ बीर मानं।
भजी बानरी पेख सेना अपारं।त्रसे जुध पै जुध जोधा जुझारं ।
उठे गद सद्दं निनदंत बीरं ।फिरे रुंड मुंड तनं तछ तीरं ।[1]

दोनों सेनाओं में भयंकर युद्ध हुआ।चारों ओर मार ही मार की ध्वनि सुनाई पड़ने लगी ।चर्बी और रक्त की धारा बह रही थी। गिद्ध मांस खा रहे थे और रक्त पी रहे थे।इस स्थिति में वीर रस भयानक में बदलता हुआ वीभत्स रस में परिणत हो गया है ।

परी मार मारं ।भंडि ससत्र धारं ।
रटे मार मारं ।तुटे खग्ग धारं ।
उठे छिछ्छ अपारं ।बहे स्रोता धारं ।
हसे मास हारं ।पीए स्रोण धारं ।।[2]

कुम्भकर्ण की मृत्यु के पश्चात् इन्द्रजीत युद्ध भूमि में पहुँचा और उसके दिवंगत होने पर रावण ने अतिकाय को युद्ध क्षेत्र में भेजा ।अतिकाय और लक्ष्मण का युद्ध पुन: शुद्ध वीर रस को उपस्थित कर देता है ।

तह भयो घोर आहव अपार।रणभूमि भूमि जुज्झे जुझार ।
इत राम भ्रात अतकाइ उत।रिस जुज्झ उज्झरे राज पुत्र ।
तब राम भ्रात अतकीन रोस ।जिम परत आन छित करत जोस।
गहि बाण पाण तज्जे अंत ।जिम जेठ सूरकिरणे तुरंत ।
ब्राण आप मध बाहत अंक।बरणे न जाहि कहि एक एक ।
उज्झरे वीर जुज्झारा जुझार।जै सबद देव भाखत पुकार।
रिप कायो ससत्र असत्र विहीन।बहु ससत्र सासत्र बिदिआ प्रबीन ।
ह्य मुकुट सूत बिन भयो गवार।कछु चपे चोर जिम बलसमार।

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 224 । (2) वही, पृष्ठ 224 ।

रिप हणे बाण बज्जव घात ।सभ चले काल की जुब्बाल तात।
तब कुप्यो वीर अतकाइ एस ।जन प्रले काल को मेघ जैस ।
इम कान लाग लपटे बार।जिम जुव्वण हीन लपटाइनार।
जिम दंतरहत गह स्वान ससक ।जिम गए बैसबल बीरज रसक ।[1]

इन पंक्तियों में कवि ने अनेक उपमानों द्वारा लक्ष्मण के सम्मुख अति काय के क्षीण होते हुए शौर्य का यथार्थ वर्णन किया है जिससे पाठक का हृदय उत्साह से ओत प्रोत हो जाता है।

'रामावतार' में कवि ने गर्वोक्तियों की भी योजना की है।यथा :-- अतिकाय की मृत्यु पर भकराक्ष की गर्वोक्ति :--

तब रुक्यो सैन भकराक्ष आन। कह जाहु राम नहीं पै जान।
जिण हणायो तात रण मो अखंड।सो लरो आन मो सो प्रचंड ।[2]

वीर रस के निष्पादन में यह गर्वोक्ति उद्दीपन विभाव का कार्य करती है ।

अन्त में स्वयं रावण को अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित होकर युद्ध भूमि में पहुंचना पड़ा ।उसने अपने बीसों हाथों में शस्त्र संभाल लिए ।उसके एक हाथ में चन्द्रहास,दूसरे में घोप(बर्छी) तीसरे में कटार, चौथे में सै हत्थी,पांचवें में गोफल , छटे में गुर्ज , सातवें में खड्ग, आठवें में गदा, नौवें में त्रिशूल,दसवें में छुरा , ग्यारहवें में जन्तुआ बारहवें में बाण, तेरहवें में धनुष, चौदहवें में ढाल, पन्द्रहवें में गुलौल , सोलहवें में पाश, सत्रहवें में परशु, अठारहवें में हथनाल, उन्नीसवें में बिछुआ और बीसवें में पटा लिए ऐसे घुमा रहा था मानो साक्षात यमराज भयंकर रूप धारण कर आया हो[3] । प्रत्येक हाथ में भिन्न भिन्न शस्त्रों के इस वर्णन ने जहां विपक्षी वृन्द के लिए भयानक की सृष्टि की है,वहां स्वयं रावण मूर्तिमान रौद्र रस बना हुआ है।रावण का क्रोध और विपक्षी सेना के भय द्वारा ऐसे इस स्थल में रौद्र और भयानक का समिश्रण है।

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 230 ।(2) वही, पृष्ठ 230 ।
(3) वही, पृष्ठ 237 ।

राम और रावण का द्वन्द्व युद्ध और भी भयानक है। क्रोध में भरे राक्षस राम पर वार कर रहे थे जिसके प्रतिक्रिया स्वरूप राम का क्रोध भी प्रज्वलित हो रहा था।

रोस भरयो तज होस निसाचर श्री रघुराज को घाइं प्रहारे।
जोस बढो कर कउसल्लिस अध बीच ही तो सर काट उतारे।
फेर बढो कर रोस दिवारदन घाई परे कपि पुंज संहारे।
पटस लो हह थी, पर संगडीए जबुं वे जमदाइ चलावे।
श्री रघुराज सरासन ले रिस ठान घनी रन बात महारे।
बीरन मार दुसार गए सर अंबर ते बरसे जन ओरे।
बाजगजी रथ साज गिरे घर पत्र अनेक सु कउन गनावे।
फागन पाउन प्रचंड बहे बन पत्रन ते जन पत्र उडाने।[1]

यहाँ राम का अनिष्ट चाहने वाले राक्षस आलम्बन हैं। अस्त्र शस्त्रों से राम पर उनका प्रहार करना राम के क्रोध को उद्दीप्त करता है। और क्रोध से भर कर राम का भयंकर वाण वर्षा करना अनुभाव है।

रोस भरयो रन भौ रुघुनाथ सु रावन को बहु बान प्रहारे।
प्रोसान नैक लग्यो तिनके तन फोर जिरे तन पार पधारे।

बाज गजी रथराज रथी रणभूमि गिरे इह भांति संहारे।
जानो बसंत के अंत समै कदली दल पउन प्रचंड उखारे।[2]

रावण के भीषाण प्रहारों से चारों दिशाएं पृथ्वी आकाश सभी कांपने लगे किन्तु राम ने उसके छत्र, ध्वजा, अश्व रथ आदि सभी को नष्ट भ्रष्ट कर दिया।

रावण रोस भरयो रण भोगहि बीसहुं बाँहि हथियार प्रहारे।
भूमि अकास दिसा विदिसा चकि चार सके नहि जात निहारे।
फोकन ते फलते भाते अध ते वध के रण मण्डल हारे।
छत्र ध्वजा वर वाजि रथी रथ काट सबै रघुराज उतारे।[3]

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 237। (2) वही, पृष्ठ 233 (3) वही, पृष्ठ 233।

अन्त में राम ने रावण का भी वध कर दिया ।--

रोस भरयो रन भौ रघुनाथ सुपान के बीच सरासन लेके ।
पांचक पाइ हटाइ दयो तिहं बीसहं बाँहि बिना उह के के ।
दै दस बिभान दसो सिर काटदए सिव लोक पठै के ।
स्री रघुराज बरयो सिअ को बहुरो जनु जुध्र सुयंबर जै के ।।[1]

इस प्रकार रामावतार में वीर रस का परिपाक पूर्ण रुप से सफल रहा है ।

कृष्णावतार :- `रामावतार ` के सदृश ही ` कृष्णावतार ` में भी वीर भावों के वर्णन का अभाव नहीं है । 2492 छन्दों की इस रचना में 1464 छन्द युद्ध प्रबन्ध से ही संबंधित हैं।शेष में भी कृष्ण द्वारा पूतना, शकटासुर, अघासुर, तृणावर्त, चंडूर तथा बकासुर आदि दैत्यों के वध का वर्णन किया गया है ।

कंस वध के पश्चात जब कंस की पत्नी ने अपने पिता जरासन्ध से जा कर कंस की मृत्यु का समाचार कहा तो जरासंध के क्रोध का ठिकाना न रहा और उसने अपनी पुत्री का सांत्वना देते हुए सेना को आदेश दिया--

हरिहल धरहि संहार हो दुहिता प्रति कहि बैन ।
रजधानी ते निसरियो मंत्र बुलाए सैन ।[2]

जरासन्ध की ते इस अक्षौहिणी सेना युद्ध के लिए चली :--

जोर चमूं सब मंत्रीअन लै तब यौं रन साज समाज बनायो ।
तेइस कुहनी लै दल संग बजाइ के बंब तहा कहं धायो ।
बीर बड़े सम रावन के तिन कउ संग लै मरिबे कहु आयो।
मानहु काल प्रलै दिन बारध फैल परयो जल यों दलु छायो।।[3]

यहां जरासन्ध में उत्साह है।विशाल सेना का परिवेश उसमें रौद्र की प्रतीति कराता है।फलत: विपक्षी उग्रसेन में भय का संचार होता है। इस प्रकार आलम्बन, उद्दीपन और संचारी का समुचित योग जिस

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 238 (2) वही, 392 (3) वही, पृष्ठ 393

वीर रस की सृष्टि करता है मरण भय छोड़ कर सामना करने की इच्छा रूपी अनुभाव द्वारा वह प्रतीति गम्य हो उठा है। श्री कृष्ण ने उग्रसेन को विश्वास दिलाया :--

राजन चिंत करो मन में हमहूं दोऊ भ्रात सुजाइ लरैंगे ।
बान कमान क्रिपान गदागहिके रन भीतर जुध करैंगे ।
जो हम ऊपरि कोप के आइ है ताहि को अस्त्र सिउ प्रान हरैंगे ।
पै उनको मरि है डरि है नहि आहवते पग दुइ न टरैंगे।[1]

कृष्ण की इस गर्वोक्ति में कितना आत्म विश्वास है जो पाठकों में 'उत्साह' का सृजन करता है। बलराम और दूसरे संगी साथियों को लेकर कृष्ण रणक्षेत्र में पहुंचे। शत्रु सेना को देख कर कृष्ण का क्रोध उद्दीप्त हो उठा और उन्होंने जरासंध की सेना पर आक्रमण कर दिया :--

देखत ही अरि की प्रतना हरि जू मन मो अति कोप भरे ।
सुध वाह तहां रथ जाह परे धुज नी पति ते नहीं नेकु डरे ।
सित बानन सो गज बाज हने जोऊ साज जराइन साथ जरे।
मनो इन्द्र के बज्र लगे टुक के धरनी गिर स्रिंग सुमेर पर[2] ।

युद्ध भूमि में चारों ओर से ललकारें उठ रही थी विरोधी वीर भी पूर्ण शक्ति से कृष्ण का मुकाबला कर रहे थे। गुरु गोविन्द सिंह ने केवल कृष्ण पक्ष के योद्धाओं की वीरता का ही वर्णन नहीं किया अपितु नायक के शौर्य को अधिक उज्ज्वल करने के लिए प्रतिनायक की वीरता की भी प्रशंसा की है। स्वयं कृष्ण विरोधी पक्ष के वीर धनसिंह की वीरता से प्रभावित होकर धनसिंह से कहते है:--

देखत हो भट ठाढे कहा हम जानत है तुम पउरख हारयो ।
स्री धनसिंह के बान छूटे सभहूं रन मण्डल ते पग टारयो ।
सिंह के आगे जैसे अजागन ऐसे भजे नहि ससत्र संभारयो ।
काइर हुइ तिह पेख डरे नहि आप मरे उन कउ नही मारयो।[3]

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 394 (2) वही, पृष्ठ 395 (3) वही, पृष्ठ 403 ।

अपने योद्धाओं के प्रोत्साहन के लिए कही गई कृष्ण की यह उक्ति जहां एक ओर अनुभावों की गंभीरता को व्यक्त करती है, वहां दूसरी ओर घनसिंह के उत्साह की प्रशंसा परक होने के कारण शुद्ध वीर रस की द्योतक है। घनसिंह की वीरता का वर्णन स्वयं कवि ने इस प्रकार किया है :--

कोप भरे असपान धरे घनसिंह अरे गजराज संहारे ।
अउर जीते जग पुंज हुते उर भान भजे अति ही घुजवारे ।
ताछवि की उपमा कवि स्याम कहे मन मे सु विचार उचारे ।
मानहुं इंद्र के आगमत हर भूधर के घर पंख पधारे।[1]

घनसिंह क्रोधित होकर कृष्ण को ललकारता है:--

टेर कह्यो घनसिंह बली रन त्याग सुनो हरि भाज न जइये ।
ताते संभार के आनि भिरो निज लोकन की बिरथान कटइये ।
हे बलदेव सरासन ले हम सो समुहाइके जुध काइये ।
संगर के सम अउर कछु नहीं आते दुहुं जग में जसु पाइये ।।[2]

घनसिंह की यह ललकार कृष्ण की क्रोधाग्नि में घी का काम करती है और वे अपने अस्त्र शस्त्र लेकर उस पर टूट पडते हैं :--

यों सुनि के बतीबा अरि की तरकी मन में अति कोप भरयो है।
बानकमान क्रिपान गदा गहि के जदुवीर हूं धाई परयो है।[3]

परन्तु घनसिंह भी वीर था उस पर अनेक प्रकार से वार करने पर भी वह मरता नहीं था । अन्त में कृष्ण ने अपना सुदर्शन चक्र संभाला और उसका सिर काट दिया :--

घन सिंह सो श्री हरि जुद्ध करे कवि राम कहे कहू जातन भारयो।
कोप भरयो मधसूदन जू करि बीच सुआपनो चक्र संभारयो ।
छाडि दयो रन मे बर के घनसिंह को काटि के सीस उतारयो।
यो तरफयो घट भूम बिखे मनो मीन सरोवर तेगहि डारयो।।[4]

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 403 (2) वही, पृष्ठ 403-404 ।
3- वही, पृष्ठ 404 । (4) वही, पृष्ठ 404 ।

कहीं कहीं कवि ने जरासन्ध की सेना के भयंकर रूप वाले दानवों का वर्णन कर भय का संचार भी किया है। यथा :--

केस बड़े सिर बेस बुरे अरु देह में रोम बड़े जिनके।
मुख लो नर हाडनि चावत है पुन दांत सो दांत बजे तिनके।
सर प्रउनत के अखीआं जिनकी संग कउन भिटै बलु के इनके।
सर चांप चढ़ाई के रैन फिरै सब काम करै नित पापन के।।[1]

बड़े बड़े बाल देह पर बड़ी रोमावलि, जो मनुष्यों की हड्डियां चबाते हैं तथा जिनके दांत से दांत बजने से भयंकर ध्वनि होती है सदा जिनकी आंखें लाल रहती है रात्रि के समय धनुषबाण उठा कर घूमते हैं तथा पापों के कार्य करते हैं।इस प्रकार के भयंकर रूप को देख कर कौन भयभीत न होगा।

कृष्णावतार में सब से भयंकर युद्ध खड्गसिंह का है।खड्गसिंह की वीरता का लोहा कृष्णपक्ष के सभी वीरों ने स्वीकार किया है :--

खड्गसिंह खड्ग कर खड्ग ले रुद्र रसहि अनुराग।
यौं डोलत रन निडर हुइ मानो खेलत फागा।[2]

ब्रह्मा, शिव, यक्ष, गंधर्व कोई भी इस वीर के सामने नहीं टिकता। शिव उसके प्रहारों से मूर्छित हो जाते हैं :--

बरछी तब मूम चलाई दई।सिव के उर मैं लग क्रोत भई।
उपमा कवि ने इह भांत कही। रवि की क्रिन कंज पै भउ रही।
हर मोहि रह्यो गिर भूम पर्‌यो मनो बज्र पर्‌यो गिर ग्रिंग फर्‌यो।[3]

शिव की मूर्छा टूटती है,तो वे फिर युद्ध में सन्नद्ध होते हैं।खड्ग सिंह शिव से कहता है :--

रुद्र के आनन को अविलोक के यौं कहि के त्रिप बात चलाई।
का भयो जो जुगि आकर ले कर डिंभ के कारण नाद बजाई।
तंदुल मांगन है तुय कारज मैं हरो तुहि चांप चढ़ाई।
जूझवो काम है छत्रन को कछु जोगन को नही काम लराई।।[4]

1- दशम ग्रन्थ,पृष्ठ 445 (2) वही,पृष्ठ 435 (3) वही,पृष्ठ449,
(4) वही,पृष्ठ451।

खड्गसिंह की यह उक्ति शिव के वेश पर व्यंग्य रूप से चरितार्थ होती हुई वीर रस को उद्दीप्त करती है। शिव खड्ग सिंह से पराजित होकर युद्ध क्षेत्र से भाग निकले --

जब सिवजू कछु संज्ञा पाई।
भाजि गयो तज दई लराई ।।[1]

शिव का होश में आकर युद्ध से भाग निकलना इस पद्य में भले ही भयानक रस की प्रतीति कराता है किन्तु पूर्व प्रसंग के साथ जुड़ कर वह वीर रस का ही पोषण कर रहा है।

जिस कृष्ण की पूजा ब्रह्मा आदि देवता करते हैं उसे भी खड्गसिंह ने केशों से पकड़ कर शक्ति हीन कर दिया :--

जाप्रभु को नित ब्रह्म सचीपति श्री सनकादिक हू जपु कियो।
सूरससि सुर नारद सारद ताही के ध्यान बिखै मनु दीनो।
खोजत हैं जिह सिध महाभुज व्यास परासुर भेदन चीनो।
सो खड्गेस अयोधन में कर मोहित केसन ते गहि लीनो ।।[2]

खड्गसिंह की इस भयंकर वीरता को देख कर कृष्ण शिव की सहायता से मिट्टी का एक व्यक्ति निर्मित कर उसमें प्राणों का संचार करते हैं। उसका नाम अजीतसिंह रख कर उसे खड्गसिंह के विरुद्ध युद्ध करने के लिए भेजते हैं। खड्गसिंह कृष्ण से कहता है :--

किउ रे गुमान करे घनस्याम अबै रन ते पुनि तोहि भजे हौं।
काहे को आन आयो सुन रे सिर केसनि ते बहुरे गहि लैहौं।
ऐ रे अहीर हरै नहीं तो कहि जीवत जान न दे हौं।
इंद्र विरंच कुबेर जलाधिप को ससि को सिव को हत के हौ।[3]

यहाँ वीर रस रौद्र रस में परिवर्तित हो गया है। कृष्ण आलम्बन हैं, मिट्टी के निर्मित प्राणी को लेकर युद्ध के लिए आना खड्ग सिंह के क्रोध को उद्दीप्त करता है। क्रोधित होकर कटु वचनों का प्रयोग और उसकी ललकार अनुभाव तथा उसकी उग्रता, उद्वेग और स्मृति संचारी हैं।

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 451 । (2) वही, पृष्ठ 452 (3) वही, पृष्ठ 467।

जब अनेक प्रयत्नों से भी खड्ग सिंह को कृष्ण न मार सके, तो उन्होंने देववधुओं को बुलाया जिससे वे अपने सौन्दर्य, नृत्य एवं भाव भंगिमाओं से खड्ग सिंह को अपनी ओर आकृष्ट कर लें और कृष्ण उसका वध कर सकें :--

देव वधू के नेन कटाछ विलोकत ही त्रिप चित्त लुभायो ।
नारद ब्रह्म दुहू मिलिकै रन मे संग बातन के उर फायो ।
स्याम त्वै लखि घात भली अरि मारन को त्रितबान चलायो ।
मंत्रनि के बल सो छल सो तब भूपति को सिर काट गिरायो।[1]

इस प्रकार 'कृष्णावतार' के कृष्ण 'सूर सागर' के कृष्ण के समान शृंगार प्रिय ही नहीं है वे मुख्यत: वीर है परन्तु कहीं कहीं रति भाव का भी संचारी रूप में वर्णन कर लेखक ने उत्साह को और भी अधिक पुष्ट कर दिया है ।

यद्यपि खड्गासिंह का सिर धड़ से अलग हो गया पर फिर भी उसने सीस को पकड़ कर कृष्ण की ओर फेंका जिससे कृष्ण बेहोश हो गए :--

जदपि सीस कट्यो न हट्यो गहि केसनि ते हरि ओर चलायो।
मानहुं प्रान चल्योदिव आनन काज बिदा ब्रिज राज पै आयो।
सो सिर लाग गयो हरि के उर भूरछ ह्वै पग न ठहरायो ।
देखहु पउरख भूप के मुंड को स्यंदन ते प्रभ भूम गिरायो।[2]

यहां आलम्बन और उद्दीपन दोनों विभावों, सिर का फेंकना रूप अनुभाव भय और आवेग आदि व्यभिचारियों का संयोग वीर रस की सुन्दर अभिव्यक्ति में सफल रहा है ।

युद्ध के उल्लास में खड्ग सिंह का कबन्ध ही युद्ध करता है।उस भयावह रुंड को युद्ध करते देख कर देवता भी डर कर युद्ध भूमि त्याग कर भाग गए :--

मुंड बिना तब रुण्ड सु भूपति को चित मे अति कोप बढायो।
द्वादस भानजु ठाढे कवि सयाम कहै तिह ऊपर धायो।
भाज गए त्रास सोउ सिव ठाढे रह्यो तिह ऊपरि आयो।
सो त्रिप वीर महारन धीर चटाक चपेट दै भूमगिरायो।[3]

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ470 । (3)वही, पृष्ठ 471(3)वही, पृष्ठ 471।

इस प्रकार यहाँ भय संचारी भाव का संचरण हो गया है। जब अपसराएं उसे विमान पर चढ़ा कर स्वर्ग ले जाना चाहती है, तो भी वह विमान से कूद कर युद्ध करने लगता है। इस प्रकार कवि की युद्धोचित कल्पनाओं ने भी 'उत्साह' के परिवर्धन और वीर रस के परिपाक में विशेष सहायता की है।

खड्गसिंह की मृत्यु के पश्चात् जरासंध स्वयं युद्ध के लिए रणभूमि में आता है। कृष्ण और बलराम का जरासंध के साथ द्वन्द्व युद्ध विशेष रूप से उत्साहित करने वाला है।

आवत देख हलायुध को सु भयो तब ही त्रिप कोप महू है।
जुधहि कउ सभुहाइ भयो निज पान कमान सुतान लई है।
लयाइओ हुतो चपलासी गदा सर एक ही सिउ सोउ काट दई है।[1]

परन्तु बलराम ने भी हौसला नहीं छोड़ा वह और भी क्रोध से भर उठा तथा ढाल और कृपाण लेकर शत्रु पर वार करने के लिए दौड़ा। दूसरी ओर जरासंध ने भयंकर बाण वर्षा आरम्भ कर दी और बलराम की ढाल और तलवार के भी टुकड़े टुकड़े कर दिए :--

काट गदा जब ऐसे दई तब ही बल ढाल क्रिपान संभारी।
धाइ चल्यो अरि मारनि कारनि संक कछू चित मैन बिचारी।
भूप निहार के आवत को गरज्यो बरखा करि बाननि भारी।
ढाल दई सत धा करि कै कर की करवार त्रिधा कर डारी।।[2]

यहाँ वीर के साथ रौद्र एवं भयानक रस का मिश्रण बड़ा ही मनोहारी बन पड़ा है।

इसके पश्चात कृष्ण ने जरासंध को ललकारा। कृष्ण की ललकार सुन राजा का क्रोध भी उद्दीप्त हुआ और वह धनुष तान कर पूरी शक्ति से बाण वर्षा करने लगा। दूसरी ओर कृष्ण ने अपने तीरों से जरासंध के धनुष को काट गिराया। धनुष टूट जाने पर उसका क्रोध और भी प्रज्वलित हो उठा वह खड्ग लेकर कृष्ण को ललकारता हुआ आगे बढ़ा :--

ब्रिजराज सरासन काट दियो तब भूपत को पु कियो मन मैं।
करवार संभार महाबलधार हकार पर्यो रिप के गन मैं।

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 439। (2) वही, पृष्ठ 439।

तहाँ ढाल सो ढाल क्रिपान क्रिपान सो यो अटकै खटकै रन मैं।
मनो ज्वाल दवानल की लपटै चटकै पटकै त्रिन जिउ बन मैं।।[1]

इस भयंकर युद्ध से चारों ओर मारो मार की ध्वनि सुनाई पड़ रही थी ।युद्ध में पड़ी लाशों पर गिद्ध डोल रहे थे, मृतकों के शरीर से मांस नोच नोच कर खा रहे थे ।किसी के मुख पर कौआ बैठा आंख निकाल रहा था और कहीं जोगन मृतकों की आंते निकाल रही थी।कहीं कहीं घायल घूम रहे थे तो कहीं कबंध डोल रहे थे ---

घूमत घाइल हुइ इक बीर फिरै मुउन मरे भयंकारे ।
एक कबंध फिरै बिन सीस लखै तिन काहर है बिललाते ।
त्याग चले इक आहब को इक डोलत जुधह के रंग राते ।
एक परे भट प्रान बिना मनो सोवत है मदरामद माते ।।[2]

इस प्रकार यहां जुगुप्सा स्थायी भाव वीभत्स रस में परिपुष्ट हुआ है ।

इस प्रकार युद्ध की उत्तरोत्तर तीव्र होती हुई अवस्था के सजीव वर्णन वीर रस पूर्णतया परिपुष्ट हुआ है । कवि ने सारे वर्ण्य को आंखो के सम्मुख चलचित्र की भान्ति उपस्थित कर दिया है ।घटनाएं इतनी सजीव चमकीली हैं कि वे इनकी योजक ग्रंथियों को भी उनके नीरस धुंधलके से युक्त कर डालती हैं । वीर रस के ऐसे वर्णनों में कवि उभय पक्षों की दर्पोक्तियों का सहयोग लेना भी नहीं भूलता जो उद्दीपन विभाव का कार्य करती है ।

अचलसिंह गर्वोक्ति :--

जीवत जे जग मैं रहि है अति जुध कथा हमारी सुनि लै है ।
ता कबि की कविता करिके कबि राम नरेसन जाइ रिझै है।
जो बल पै कहि है कथ पंडित रीझ घनो तिहको धन दै है।
है हरि जू इह आहव के जग चारनि मैं गन गंधृव गै है ।[3]

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 490 (2)वही,पृष्ठ490(3)वही,पृष्ठ412 ।

कृष्ण का प्रत्युत्तर :--

कोप के उत्तर देत भयो अरि की बतीया सुनि स्याम सबै ।
चिरिआक्न मे चुक्के तब लउ अतिकोप न आवत बाज जबै ।
गरबात है मूढ घनो रन मे कटि हौ तुहि सीस लखै गो तबै।
तिहते तजि सेक निसंक लरो बलवीर कह्यो कहा ढील अबै ।[1]

खड्गसिंह की गर्वोक्ति :-

पसचम सूर चढे कबहू अरु गंग बही उलटी जिय आवै ।
जेठ के मास तुखार परे बन और बसंत समीर जरावै ।
लोक दलै घ्रुअ को जल को थल हुइ थल को कबहू जल जावै।
कंचन को नगु सक्खन धारि उडै खडगे सन पीठ दिखावै।।[2]

जरासंध की गर्वोक्ति :-

का भयो मघवा जो बलवंड है आज हडवाही सो जुद्ध मचे हौं ।
मान प्रचंड कहावत है हनि ताही को हउ जम धाम पठै हौं।
अउ जु कहा सिव बलु है भरि है पल मे जब कोप बढै हौं ।
पउरख राखत हउ इतनो कहा भूप ह्वै गूजर ते भजि जैहो ।।[3]

आलम्बन गत होने से उपर्युक्त गर्वोक्तियां उद्दीपन के अन्तर्गत आती हैं किन्तु दोनों पक्षों की ओर से इनका कथन यहां हुआ है ।अत: दूसरे पक्ष की उक्ति अनुभाव में अन्तर्निहित है ।क्रोध ,आवेग और भय यहां संचारी हैं।

निष्कलंकी अवतार :- निष्कलंकी में भी वीर रस की ही प्रधानता है।कवि ने कलिक अवतार के पौरुष और उसके वीर रुप का वर्णन इस प्रकार किया है :--

---

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ412 (2) वही,पृष्ठ 461 (3) वही,पृष्ठ 436 ।

कउच क्रिपान कटारी कमान सुरंग निखंग सुकावहीं ।
बरछी अरु ढाल गदा पर सोकर सूल त्रिसूल प्रभावहीं।
अति क्रुद्धत ह्वै रण मूरख मे सर उघ प्रउघ चलावहीं ।
भल भाग भयो इह संभल के हरिजू हरि मंदर आवहीं ।।[1]

देवी उपासक ब्राह्मण की चरित्रहीन पत्नी ने जब राजा से ब्राह्मण की शिकायत की तो राजा ने उसे (ब्राह्मण को) देवी उपासना त्यागने को कहा किन्तु ब्राह्मण ने इसे स्वीकार नहीं किया। इस पर राजा का क्रोध उद्दीप्त हो उठता है वह ब्राह्मण को मृत्यु दण्ड देता है। ज्यों ही बधिक ब्राह्मण का सिर काटने लगता है तो ब्राह्मण काल पुरुष का ध्यान करता है उसी क्षण कल्कि का अवतार होता है :--

जब कियो चित्त मो बिप्र ध्यान ।तिह दीन दरस तब काल आब ।
नहीं करो चिंत चित माझि एक।तब हेत सत्र हनि है अनेक ।।
तब परी सूंक मोहर झंकार।उपजिउ आनकल की वतार।
ताड प्रभानु कर असउतंग।तट कच्छ सुवच्छताजी सुरंग ।।[2]

'कल्कि' के प्रकट होने पर दरबार युद्ध भूमि में बदल जाता है ।ढाल से ढाल खड्ग से खड्ग टकराने लगती है ।'कल्कि'ने अपने भयंकर कुठार से चारों ओर मार ही मार मचादी :--

कर कोप कलि अवतार ।गहि पान अजान कुठार ।
तनक के कीन प्रहार।भट जूझ गयो सै चार ।[3]

अन्त में राजा की सेना भाग जाती है :--

देख भजी प्रितना अरकी कलकी अवतार हथ्यार संभारे ।
बान कमान क्रिपान गदा छिन बीच सबै कर चूरन डारे ।
भाग चले इह भांत भटा जिम पछन बहै द्रम पान निहारे।
पेन परी कछु मान रहिउ नहीं बानन डार निदान पधारे।।[4]

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ582 ।(2) वही, पृष्ठ584 (3)वही,पृष्ठ 585
(4) वही,पृष्ठ597।

शत्रुओं के पलायन का वर्णन अत्यल्प होने के कारण यहां वीर रस का अंग बन गया है।

अन्त में संभल का राजा कल्कि के हाथों से मारा जाता है---

संभल नरेस मारिउ निदान ।
ढोले द्रिदंग बज्जे प्रमान ।
भाजे सुबीर तज जुद्ध त्रास ।
तजि सस्त्र सरब हे चित्त निरास ।[1]

तत्पश्चात कल्कि की देशान्तर विजय यात्रा आरम्भ होती है और चारों दिशाओं को कल्कि जीत लेते हैं। इस प्रकार युद्ध के सजीव वर्णन वीर रस की निष्पत्ति करते हैं।

पारसनाथ अवतार :- पारसनाथ अवतार में भी कवि ने युद्ध वर्णन द्वारा वीर रस की उद्भावना की है। इस रचना के युद्ध वर्णन की सब से बड़ी विशेषता यह है कि यहां कवि ने 'अभ्यान्तर जगत' के युद्ध का वर्णन किया है। यह युद्ध विवेक और अविवेक के मध्य लाखों वर्षों से होता चला आ रहा है। अविवेक के सुभट हैं कामदेव, बसंत, हुलास, आनंद, भ्रम, कलह बैर। आलस्य, मद, कुवृत्ति, गुमान, अपमान, अनर्थ, निन्दा, नरक, दु:शील, क्षुधा, कपट, लोभ, मोह, क्रोध, अहंकार, द्रोह सन्देह, झूठ, मिथ्या चिन्ता, दारिद्र, शंका, अशोभा, असन्तोष, नाश, हिंसा, कुमन्त, अलज्ज, चोरी, व्यभिचार, स्वामिघात और कृतघ्नता, मित्रद्रोह, राजद्रोह, ईर्ष्या, उचाट, घात, वशीकरण, आपदा वंश कुठार, वियोग अपराध, खेद, कक्रिया, ग्लानि आदि[2] अविवेक की शक्ति को वर्णन करता हुआ कवि कहता है। इसके पश्चात विवेक के सुभटा का वर्णन है :-- धीरज, व्रत, सयंम, नियम, विज्ञान, स्नान, निवृत्ति,

---

1-दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 601।
2-(क) वही, पृष्ठ 696।
(ख) बलि महीप जिन छल्यो बल बावन बस किन्नो ।
किसन बिसन जिन हरे दण्ड रघुपत ते लिन्नो।
दस ग्रीवहि जिन हरा सुभट सुंभासुर खंड्यो ।
महखासुर मरदीया मान मधकीट बिहंड्यो।
सोउ मदन राज राजा नृपति नृप अविवेकी मंत्री कीयो।
जिह देव दईत गंधर्व मुन जीत अहड दह हिलियो।। वही, पृष्ठ 688।

भावना योग, अर्चा, पूजा, अविकार, विधा, लज्जा, संयोग, सुकृति, अमोह, अलोभ, हठी, जपी, तपी, अकाम, अक्रोध, सुलज्ज, निरहंकार, भक्ति, शान्ति, पाठ, सुकर्म, सुयज्ञ, प्रबोध, दान, सुनियम, सत्य, सन्तोष, तप, जाप प्रेम, प्राणायाम, ध्यान, शुभाचार, अनुरक्ति, समाधि, उद्यम, उपकार, सुविचार, संयोग, होम, पूजा विरक्तता सत्संग, प्रीति आदि ।[1]

विवेक श्वेत रंग का छत्र धारण करता है, उसके घोड़े और रंग श्वेत है श्वेत शस्त्रों से शरीर शोभित होता है जिन्हें देख कर देवताओं और मनुष्यों का भ्रम दूर होता है। उसे देख कर चन्द्रमा चकित हो जाता है। सूर्य अपनी भव्यता भूल जाता है। भ्रमर उसके सौन्दर्य के चारों ओर चक्कर लगाते हैं। सुर, असुर, नर डोल जाते हैं, बड़े बड़े मुनि, महीप जिसकी वन्दना करते है :--

सेत छत्र सिर धरे सेत बाजीरथ राजत।
सेत सस्त्र तन सजे निरखि सुर नर भ्रमि भाजत ।
चंद चकित हैरहत भान भवता लखि भुल्लत ।
भ्रमर प्रभा लखि भ्रमत असुर सुर नर डग डलत ।
इह कवि विवेक राजा नृपति अति बलिस्ट तिह मानिऐ ।
मुनिगन महीप बंदत सकल तीनि लोक महिजानिऐ।।[2]

तत्पश्चात कवि ने अविवेक और व विवेक के मध्य सैसन्य युद्ध का विस्तृत वर्णन किया है ।यह युद्ध बीस लाख वर्ष तक चलता रहा किन्तु कोई भी पराजित नहीं हुआ --

बीस लच्छ जुग सेतु प्रमाना। लटे दोऊ महँ किसु न हाना।[3]

इस प्रकार 'विचित्र नाटक' में प्रारम्भ से अंत तक वीर रस प्रधान रचना है जिसमे रौद्र भयानक और वीभत्स रस का सम्मिश्रण स्थान स्थान पर हुआ है क्योंकि युद्ध भूमि के वर्णन में ये रस अनिवार्य रूप से आ ही जाते हैं।

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 698 ।
2- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 697 ।
3- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 707 ।

शृंगार रस :- भक्ति रस और वीररस के समान ही गुरु गोविंद सिंह ने 'विचित्र नाटक' में शृंगार रस का भी सुन्दर परिपाक किया है। संयोग और वियोग शृंगार के दोनों पक्ष इस रचना में बड़े गम्भीर और मार्मिक है। ओछेपन का उनमें लेश भी नहीं।

संयोग शृंगार :- यद्यपि उस समय तक कृष्ण राधा प्रसंग को लेकर बड़े बड़े कवियों द्वारा विपरीत रति तथा उससे भी अश्लील नग्न वर्णन प्रस्तुत किए जा चुके थे तथापि गुरु गोविन्दसिंह ने 'विचित्र नाटक' के शृंगार वर्णन में गौरव और मर्यादा को कोई आंच नहीं आने दी। नायक या नायिका के रूप वर्णन में भी वे उनके अंगों का आकर्षण एक सीमा तक ही वर्णन का विषय बनाते हैं। राम का रूप बड़ा आकर्षक है। उसे देख कर गले लगाने को मन करता है, आँखें देखते ही रह जाती हैं। कपोलों पर लहराने वाले बाल गूंजते भृंगों से दिखाई देते हैं। कमल जैसी आंखें, मृग सी चितवन, चांद सा मुख, केहरि सी कटि और कोयल जैसी मधुर वाणी का वह सम्मेत रूप हृदय को अत्यधिक उल्लसित करने वाला है। उन्हें इस रूप में देख कर चलने वाले भी रुक रुक कर देखे जाते हैं और अधिक से अधिक देर देखना चाहते हैं।

भेंट भुजा भर अंक भले भरि नैन दोऊ निरखे रघुराई।
गुंजत भ्रिंग कपोलन ऊपर नाग लवंग रहे लिव लाई।
कंज कुरंग कलानिध केहरि कोकल हेर हीए हहराई।
बाल लखें छब खाट परे नहि बाट चले निरखे अधिकाई।[1]

इसी प्रकार सीता के रूप वर्णन :--

बिधु बाक बैणी। म्रिगी राज नैणी।
कटं छीन देसी। परी पदमनी सी।
सुनेकुक को कोकला कोप कीने मुखं देख के चंद दारेरखाई।
लखे नैन बांके मनं मीन मोहे लखे जात के सूर की जोति छाई।
मनो फूल फूले लगे नैन झूले लखे लोग भूले बने जोर ऐसे
लखन नैन धारे बिधे राम पियारे रंगे रंग साराब सुहाब जैसे।[2]

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 99। (2) वही, पृष्ठ 211।

यहां वाणी की मधुरता, नयनों की चंचलता कटि की कृशता पद्मिनी सारूप लावण्य सीता में दिखला कर इन गुणों के उत्कर्ष को यह कह कर प्रकट किया है कि उसकी कूक को सुन कर कोकिला ईर्ष्या वश कुपित होती है, मुख की चन्द्रिका चाँद को रिसाती है। चितवन की वक्रता मछली को मोहित करती है इत्यादि। इस समस्त वर्णन में कोई भी ऐसा अंश नहीं आया, जो मर्यादा से बाह्य रहे।

आँखों की विशालता और चंचलता के लिए मृगी तथा मुख की धवलता और सनिग्धता के लिए चन्द्रमा, कटि की कृशता के लिए केहरि शारीरिक लावण्य के लिए कंचन तथा सुडौल जंघाओं के लिए कदली के उपमान भारतीय साहित्य में इतनी व्याप्ति पा चुके हैं कि उनके द्वारा अंग प्रत्यंग की शोभा का द्योतन तो हो जाता है किन्तु अश्लील प्रसंगों के अभाव में वे कामोद्दीप्ति को जन्म नहीं देते। गुरु गोविन्दसिंह ने इसका लाभ उठाया है और इन उपमानों का प्रयोग पुरुष सौन्दर्य के लिए भी समान रूप से किया है। यथा कृ० कृष्ण का रूप वर्णन :--

दृग जाहि म्रिगी पति को सम है, मुख जाहि निसापति सी छवि पाई।
जाहि कुरंगन के रिप सी कट कंचनी सीतन ने छबि छाई।
पाट बने कदली दल ते जंघा पर तीरन सी दुत गाई।
अंग शतंग सु सुंदर स्याम कछु उपमा कहीऐ नही जाई।[1]

राधा के रुप वर्णन में कवि ने उसके अभिसार की परम्परा गत कथाओं का निर्वाह करते हुए भी विषय वस्तु को अमर्यादित नहीं होने दिया। शुक्लाभिसारका के रूप में उसका चित्र देखिए:--

सेत घरे सारी म्रिगमान की कुमारी जस ही की मनोबारी ऐसी रची है -
न को दई।
रंभा उरबसी अरु सची सु मंदोदरी पै ऐसी यभा काकी जगबीचन कछू भई
मोतिन के हार गरे डार रुच सो सुधार कान्ह जू पै चली कवि स्याम-
रसके लई।
सेतै साज साज चली सावरे की प्रीति काज चांदनी मै राधा मानो चांदनी
सी ह्व गई।[2]

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 311। (2) वही, पृष्ठ 324।

यहाँ राधा ने अभिसारानुकूल श्वेत साड़ी धारण की हुई है और अपने आपको नैसर्गिक धवलता अथवा समयोचित अन्य रागों से यश की बालिका सी बनाया हुआ है (कवियों ने यश का रंग धवल माना है)। गले में सफेद मोतियों का हार डाला है और इस प्रकार चान्दनी रात में स्वयं को अदृश्य सी बनाती हुई हुई उस साँवरे के प्रेम वश मिलने चली है।राधा की शोभा के सामने रम्भा, उर्वशी, शची, मन्दोदरी आदि का सौन्दर्य भी तुच्छ है ।इस वर्णन में राधा को यश की बालिका बतलाना उसके आचरण की प्रशस्ति का द्योतक है।

इन उदाहरणों में राम का सौन्दर्य वर्णन उपमान पद्धति से हुआ है । उपमान अपने उपमेयों को आत्म सात किये हुए है जबकि सीता के सौन्दर्य में पूर्णता है। विभिन्न अंगों के सौन्दर्य का उपमानों द्वारा एवं समस्त शरीर का पद्मिनी आदि ऐतिहासिक प्रतीकों द्वारा स्पृहणीय हो उठा है ।कृष्ण के सौन्दर्य वर्णन में अंगों की चारुता के साथ साथ वेशभूषा और वेशभूषा का शारीरिक सौन्दर्य पर उद्दीपक प्रभाव दिखाया गया है ।राधा के सौन्दर्य प्रदर्शन में नैसर्गिक चारुता, शारीरिक सज्जा और वस्तु विन्यास सभी का समन्वित रूप उपस्थित है।

संयोग शृंगार की उद्दीप्ति के लिए राधा और कृष्ण के अनुभावों को भी यथास्थान प्रयुक्त किया गया है ।ये अनुभाव आलम्बन गत होने पर उद्दीपन का और आश्रय गत होने पर भाव प्रतीति का सुन्दर माध्यम बने है। उदाहरणार्थ :--

> गोपिन सों मिलिकै हरि जी जमना तट खेल मचावत हैं ।
> जिम बोलत है खग बोलत है जिम धावत है तिम धावत है ।
> फिर बैठ बरेतन मधि सब मनो हरि सो वह ताल बजावत है।
> कबि स्याम कहै तिन की उपमा सुभगीत भले सुख गावत है।[1]

इस उदाहरण में कृष्ण आलम्बन हैं।उनका यमुना के तट पर खेल मचाना और गोपियों के मध्य बैठ कर पक्षियों की ध्वनि करना, ताल बजाना आदि उद्दीपन है और उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप गोपियों का गाना और सुखपाना अनुभाव है।संयोग के ऐसे उद्दीपन में केवल आलम्बन के अनुभाव

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 267 ।

ही उद्दीपक नहीं बने अपितु प्रकृति भी अपना पूरा योगदान कर रही है।

सीत महँ सत कातक की मुनदेव चढ्यो जल ह्वै गयो थोरो
कान्ह कनीरे के फूल धरे अरु गावत बेन बजावत भोरो।[1]

बेल विराजत है जिह जा गुल चंपक का सुप्रभा अति पाई।
मौलिसिरी गुलाल गुलाब धरा तिन फूलन सो छब माई।
चंपक मौलसिरी वट ताल तवंग लता कचनार सुहाई।
बार करे करना गिरते कवि सयाम कहे अति ही सुखदाई।[2]

आलम्बन यहां भी कृष्ण ही है किन्तु उद्दीपन रूप में उनके अंगों का सौन्दर्य प्रस्तुत नहीं किया गया अपितु कार्तिक की श्वेतता और शीतलता कनेरे के फूल लताएं और मौलसिरी आदि पादप समूह करते हुए भरूम करने आदि को उपस्थित किया गया है। रुचना, सुख पाना अनुभाव हैं। आलम्बन के और उद्दीपन का संयोग सात्विक को जन्म दे देता है। और आश्रय के अनुभाव विवश से हुए प्रकट हो उठते हैं। यथा:--

होहि प्रसन्न सभै गुपिया मिलि मान लई जोऊ कान्ह कही है।
जोरि हुलास बढ्यो जीअ मै गिनती सरता भग नेह बही है।
संक छुटी दुहु के मन ते हंसि के हरि तो हह बात कही है।
बात सुनो हमरी तुमहूं हमको निधि आनंद आज लही है।[3]

आँखों के मार्ग से उल्लास बह निकला। अन्दर समा न पाया शंका और संकोच जाते रहे। चेहरे पर मुस्कराहट खेलने लगी। आनन्द का निधि कृष्ण जो मिल गया। इस पद्य में कृष्ण के सौन्दर्य द्योतक विशेषता न होने पर भी उनका अनायास आरोप हो जाता है। मोह, आवेग आदि संचारी उपस्थित हैं ही। इन सब का विभाव के साथ संयोग संयोग शृंगार की अद्भुत सृष्टि करता है।

संयोग शृंगार के वर्णन में आश्रय की बाह्य चेष्टाओं को भी न्यूनाधिक रूप में कवि ने अनुभाव रूपेण प्रस्तुत किया है यदि --

मुरली मुख कान्हर के तरुए तर सयाम कहे विधि खूब छकी
ब्रिज भामन आपहुची दवरी सुध हिया जु रही न कछू मुख की।

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 233 (2) वही, पृष्ठ 316(3) वही, पृष्ठ 239।

मुख को पिख रूप के बसिय महँ मत ह्वै अति ही कहिकान्ह बकी।
इक झूम परी इक गाइ उठी तन मे इक ह्वै रहिगी सु जकी।[1]

में सात्विक भाव अभीष्ट सिद्धि में सफल रहे हैं तो --

प्रात भए जमुना जल मे मिलि धाई गई सभ ही गुपिआ
मिली गावत गीत चली तिह जा करि आनंद मान्न मे कुपिया
तबही फुनि कान्ह चले तिह जा जमुना जल को फुन जा जुपिआ
सोऊ देख तबै भगवान कहे नहि बोलहु री करि हो चुपीआ ।[2]

में गोपियों की बाह्य चेष्टाएं ही अनुभाव रुप में प्रयुक्त हुई हैं और अभिव्यक्ति की दृष्टि से ये किसी भी प्रकार सात्विकों की अपेक्षा कमम्हत्वपूर्ण नहीं है । इन दोनों पद्यों में मोह, जड़ता, अपस्मार, बिबोध, आवेग आदि व्यभिचारी भावों की भी सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है । यमुना तट का प्राकृतिक परिवेश उद्दीपन रूप में प्रयुक्त हुआ है ।

संस्कृत आचार्यों ने संयोग शृंगार को दर्शन ,स्पर्शन, आलिंगन आदि रूपेण असंख्येय बता कर उसके संभावित विभिन्न भेद नहीं दर्शाये। विचित्र नाटक में इन संभावित भेदों के उदाहरण विद्यमान हैं ।यथा :--

कान्ह छुओ चहे ग्वारन को सोऊ भाग चले नहिं देत छुआइ।
जिउ त्रिभनी अपने पति को रति केल सभै नहीं देत मिलाई ।
कुंजन भीतर तीर नदी त्रिख भानु सुता सु फिरै तह धाई।
ठउर तहा कवि सयाम कहे इह भांत सु सयाम जु खेल मचाई।[3]

एवं ----

कान्ह रसातुर ह्वै अति ही त्रिख भानसुता ढिग उचारी।
ताही मनी हरि बात सोऊ तिन मान की बात विदा करि डारी ।
हाथ हि सो बहिया गहि सयाम सु ऐसो कह्यो अब खेल सियारी
कान्ह कह्यो तब राधका सो हमरे संग केल करो मोरी पयारी।[4]

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ325 (2) वही, पृष्ठ 285 (3) वही, पृष्ठ340
(4) वही, पृष्ठ351 ।

आदि उदाहरणों में दर्शन, मिलन, स्पर्शन, विहार ग्रहण और रत्योत्सुक्य के सुन्दर चित्र है। ऐसे अवतरणों में राधा आलम्बन है उसका सौन्दर्य, निकटता और हाव उद्दीपन हैं। कुंज तथा नदी तट आदि प्रकृति के उपादान भी इन उद्दीपनों की संख्या में वृद्धि कर रहे हैं। कृष्ण की बांह पकड़ना, खेलने के लिए कहना आदि अनुभाव है और उसका आवेग, दैन्य, मोह आदि व्यभिचारी है और इन सब का समुचित समावेशसंयोग शृंगार के उत्तम परिपाक का निमित्त बना है।

वियोग शृंगार:- शृंगार के संयोग पक्ष की अपेक्षा 'विचित्र नाटक' में वियोग पक्ष का अंकन अधिक मार्मिकता के साथ हुआ है। संयोग की अवस्था में नायक का जो रुप और चेष्टाएं उत्कंठा, मोह और अनुराग का कारण थीं वियोगावस्था में वही उत्पीड़न का कारण बन गई हैं। कृष्ण के जिस रुप ने गोपियों को विशेष कर राधा को मुग्ध किया था उसी रूप की स्मृति ने वियोग की अवस्था में व्यथा को तीव्र किया है। 'विचित्र नाटक' के विरह को मार्मिक बनाने में सर्वाधिक योग सम्भोग कालीन स्मृतियों का ही रहा है। न केवल कृष्ण के सौन्दर्य की स्मृति अपितु उस मिलन काल में की गई अपनी रूप सज्जा का स्मरण भी गोपियों के विरह का उद्दीपक रहा है। प्रकृति के जो उपादान संयोग की अनुभूति को मोहक बनाते थे अब वही काटने को दौड़ते हैं :--

जीर घटा घन आए जहां सखी बूंदन मेघ भली छबि पाई।
बोलत चातक दादर अउ घन मोरन पै घनघोर लगाई।
ताहि समै हम कान्हर के संग खेलत थी अति प्रेम बढाई।
तउन समै सुखदाइक थी रित अउसर याहि भई दुखदाई।[1]

यहां कृष्ण आलम्बन है और उनके वियोग में उमड़ती हुई घटाएं, बादलों से झरती हुई बूंदें, चातक और मेंढकों का बोलना, बादलों को देख कर मयूरों का नृत्य करना (जो संयोगावस्था में कालोदीपक था) गोपियों के विरह को उद्दीप्त कर रहा है। स्मृति व्यभिचारी है।

प्रकृति का जो रुप पूर्वावस्था में जितना अधिक आनंदोद्रेजक था इस

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 370।

अवस्था में उतना ही अधिक उत्पीड़क बन गया है।

ताल भरे जल पूरनि सो अरु सिंध मिली सरता सम जाई।
तेसे घटान घटान मिली अति ही पपीहा पीय टेर लगाई।
सावन माहि लगयो बरसावन भावन नाहि हहा घरमाई।
लाग रह्यो पुर भावन सो टसक्यो न हीयो कसक्यो न कसाई।[1]

विभावों, अनुभावों और व्यभिचारियों की स्थिति यद्यपि इस पद्य में पूर्व उदाहरण के समान है किन्तु मार्मिकता और प्रभावात्मकता बढ़ गई है। यहां 'टसक्यो न हियो कसक्यो न कसाई' वाक्य की यो जना ने व्यथा को विशेष मार्मिकता प्रदान कर दी है।

जहां वियोग मान जन्य है वहां उसकी अभिव्यक्ति में अनुभावों का विशेष योग रहा है। यद्यपि कवि ने यथोचित रूप से व्यभिचारी भावों का भी समावेश किया है--

सुनके हह ग्वारन की बतीया रिस भान सुता अति रोस भरी।
नेन नचाइ चढाइ के भउहन पै मन मे संग क्रोध जरी।
जोउ आई भावन ग्वारनि थी तिह सो बतीया हम पै उचरी
सखी काहे को हउहरि पास चलों हरि की कछु मोह परवाह परी।[2]

राधा का रोष मे भरना, नैन नचाना, भौं चढ़ाना आदि अनुभाव उसके मान को अभिव्यक्ति देते हैं। 'मैं कृष्ण के पास क्यों जाऊं' 'जब वे मेरी परवाह नहीं करते तो मैं उनकी परवाह क्यों करूं?' इत्यादि उक्तियों से उसकी, उग्रता, वितर्क आदि संचारी व्यक्त हुए हैं। मान विरह का आलम्बन कृष्ण है उनका दूती भेजना उद्दीपन का काम कर रहा है। रस के इस परिपाक द्वारा वर्णन में संजीवता आई है और अभिप्रेत सम्प्रेष्य बना है।

ईर्ष्या जन्य विरह में तीव्रता की मात्रा और भी अधिक बढ़ गई है। अनुभावों का वाणी में केन्द्रीकरण हो जाने पर भी उग्रता, निर्वेद, मद आदि संचारी रसाभिव्यक्ति मे सहायक बने हैं --

---

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 376। (2) वही, पृष्ठ 347।

मैं न चलौं सजनी हरिपेंजु चलो तव मोहि ब्रिजनाथ दुहाई ।
मो संग प्रीति तजी जदुनंदन चंद्रभगा संग प्रीत लगाई ।
स्याम की प्रीत महातुम सो तज मान हहारी चलो दृचितारी
तोरे बिना नही खेलत है कह्यो खेलहु जाहु सो प्रीत लगाइ ।[1]

मान और ईर्ष्या का मिश्रण इस उदाहरण में दिखाई देता है --

जेहउ न हम सुनरी सजनी तुहि सी हरि ग्वारनि कोट पठावे।
बंसी बजावे तहा तु कहा अरु आप कहा भयो मंगल गावे।
मैं न चलो तिह ठउर बिखे ब्रला हम को कह्यो आन सुनावे ।
अउर सखी की कहा गनती नही जाउरी जउ हरि आपन आवे।[2]

किन्तु यह मान और ईर्ष्या की स्थिति तभी तक विद्यमान रहती है जब तक गोपियों को यह भरोसा रहता है कि कृष्ण उन्हें मनाने आएँगे । वास्तविक वियोग की आशंका मात्र से वे सुध बुध खो बैठती हैं, आँसू बहने लगते हैं, हृदय पर उदासी छा जाती है, यौवन का रस दु:ख के ईंधन में भस्मसात हो जाता है, गला रुंध जाता है वे कुछ भी बोल नहीं पातीं ।---

जबही चलिबे की सुनी बतीया तब ग्वारनि नैन ते नीर ढरयो।
गिनती तिनके मन बीच भई मन को सब आनंद दूर करयो।
जितनो तिन मै रस जोबन थो दुख की सोई धन माहि जरयो।
तिन तेन ही बोलियो जात कछु मन कान्ह की प्रीत के संग जरयो।[3]

इस व्यथा को व्यक्त करने में कवि ने बाह्य अनुभावों की अपेक्षा सात्विकों को प्राधान्य दिया है। वियोग की यह व्यथा उनके शरीर के सौन्दर्य पर अत्यधिक घातक प्रभाव छोड़ती है । गोपियों का कंचन जैसा शरीर, चन्द्र किरण सी ज्योति, काम देव की सान सरीखी आँखें, कमल जैसा मुख सब कोई अपना सौन्दर्य खो बैठते हैं --

---

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ344 । (2) वही, पृष्ठ 344 (3) वही, पृष्ठ 359।

कंचन केतन जो सभ थी जुहुती सभ ग्वारन चंदकरा सी
मैन की सान सो सान बनी दोऊ भउह मनो अखीआ सभासी
देखत जा अति ही सुख हो नहि देखत ही तिह होत उदासी
सयाम बिना सस पै जल कर मनो कंज भुखी भई सूक जरासी।[1]

इस पद्य में ऐसे सात्विकों का भी कवि ने सहयोग लिया है, जो आचार्यों द्वारा परिगणित आठ सात्विक भावों के मध्य में नहीं आते। यहां आंखों का लाल होना, सूख कर जरा सा रह जाना ऐसे ही अनुभाव हैं। जबकि कंचन जैसे शरीर का द्युतिहीन हो जाना वैवर्ण्य के अन्तर्गत आता है।

उपर्युक्त सभी पद्यों में चिन्ता, विषाद, दैन्य, आवेग, जड़ता, मोह आदि संचारियों का उत्कर्ष। विभाव और अनुभावों से एकाकार होकर वियोग शृंगार की सृष्टि कर रहा है।

'विचित्र नाटक में आचार्यों द्वारा परिगणित वियोग की दसों अवस्थाओं में से अभिलाषा,[2] चिन्ता,[3] गुण कथन,[4] स्मृति,[5] उद्वेग,[6] उन्माद,[7] प्रलाप,[8] व्याधि[9] और मारण[10], का वर्णन बड़े मार्मिक रूप में हुआ है।

वात्सल्य रस:- 'विचित्र नाटक' में वात्सल्य रस का वर्णन कवि ने 'रामावतार' और 'कृष्णावतार' में ही किया है। 'रामावतार' में वात्सल्य रस के कुछ ही उदाहरण मिलते हैं किन्तु 'कृष्णावतार' में इस रस का सूरदास के समान ही पूर्ण परिपाक है। इसमें कृष्ण की बाल लीला का वर्णन 440 छन्दों में हुआ है जिसमें वात्सल्य के संयोग और वियोग दोनों ही पक्ष आगए हैं।

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 361।
2 वही पृ. 284 छन्द 240
3 वही पृ. 317 छन्द 487
4 वही पृ. 284 छन्द 242
5 वही पृ. 317 छन्द 490
6 वही पृ. 316 छन्द 481
7 वही पृ. 316 छन्द 481
8 वही पृ. 316 छन्द 482
9 वही पृ. 318 छन्द 497
10 वही पृ. 318 छन्द 499

वात्सल्य संयोग :- गुरु गोविन्दसिंह के वात्सल्य वर्णन में सूरदास के समान व्यापकता और विस्तार नहीं है क्योंकि उनकी दृष्टि आरंभ से ही कृष्ण के असुर संहारक रुप पर लगी रही ।तथापि यह सर्वथा उपेक्षणीय नहीं।क्योंकि मात्रा में कम और संक्षिप्त होते हुए भी यह स्वाभाविक और मार्मिक बन पड़ा है। माता यशोदा कृष्ण को पालने में झुला रही है। अनेक प्रकार के लाड चाव और मल्हार करती हुई, झूला झुलाती हुई मन में प्रसन्न हो रही है ।किन्तु पालना झुलाती हुई माता की यह कामना कि उसका पुत्र बड़ा होकर दैत्यों का नाश करेगा गुरु गोविन्दसिंह की विलक्षणता है क्योंकि उनका ध्यान कृष्ण के बाल रुप पर होता हुआ भी उसके असुर संहारक रुप पर है। माता यशोदा के ये क्रिया कलाप कृष्ण के प्रति 'प्रीति' भाव को जन्म देते हैं।

बालक रुप धरे हरि जी पलना पर झूलत है तब कैसे ।
मात लडावत है तिहकों और झुलावत है करि मोहित तैसे ।
ता छवि की छ उपमा अति ही कवि स्याम कही मुख ते फुनि ऐसे।
भूमि दुखी मन मे अति ही जनु पालत है रिप दैतन जैसे ।[1]

मोह में पड़ कर प्रसन्न हृदय से माता यशोदा कृष्ण को खिला रही है।उसी समय कृष्ण ने मुंह से जंभाई ली कृष्ण के मुख में समस्त ब्रह्मांड को देख कर वह एक दम बेचैन हो गई,कृष्ण ने अपना मुख बन्द कर लिया माता यशोदा ने विष्णुकी माया को देख लिया।यहां कृष्ण की जम्हाई 'प्रीति' स्थायीभाव को उद्दीप्त करती है।

मोहि बढ़ाइ महामन मे हरि को लगी फेरि खिलावन माइ।
तउहरि जी मन मधि बिचार सिताब लई मुख माहि जंभाई ।
चक्रत होइ रही जसुधा मन मधि भई तिह को दुचिताई ।
माइ सुढाप लइ तब ही सभ बिसन भया तिन जो लख पाई ।[2]

कृष्ण कुछ बड़े हो जाते हैं घर के बाहर भीतर घुटनों के बल चलने लगते हैं।

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 265 ।

2- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 266 ।

माता यशोदा यह देख कर प्रसन्न होती है क्योंकि प्रत्येक माँ के हृदय में यह कामना होती है कि कब उसका पुत्र घुटनों के बल चलेगा।यशोदा कृष्ण को देख कर इस प्रकार प्रसन्न होने लगती है मानो आकाश में दामिनी चमक रही हो । और वास्तव में वह प्रसन्न हो भी क्यों न क्योंकि उसके घर में त्रिभंगी लाल ने जन्म लिया है।[1] घुटनों के बल चलने के पश्चात कृष्ण को माता चलना सिखाती है किन्तु सूर की भान्ति उंगली पकड कर नहीं अपितु गड्डियारे के साथ ग्वाले उसे चलना सिखाते हैं। ये सभी बाल क्रीड़ाएं प्रीति भाव को उद्दीप्त करती हैं।

राह सिखावन काज गड़ीहर गोप भनो मिलके सु बनायो।
कान्हहि को तिह अपे बिठाइके आपने आंगन बीच घवायो।
फेरि उठाइ लयो जसुधा उर में गहिके पय पान करायो ।
सोइ रहे हरि जी तब ही कवि ने अपने मन में सुख पायो।[2]

यहां कृष्ण की विभिन्न चेष्टाओं, घुटनों के बल चलना गड्डियारे द्वारा चलना आदि से मातृ हृदय में प्रीति का भाव उद्दीप्त होता है । हर्ष संचारी भाव की भी व्यंजना हुई है ।बारह वर्ष की आयु होने पर कृष्ण ग्वाल बालों सहित बन में गाएं चराने जाने लगे कृष्ण के रूप का वर्णन कवि ने यहां किया पर कंस वध को नहीं भूला ।इस लिए 'प्रीति के साथ 'रति' और 'उत्साह' संचारी का सम्मिश्रण हो गया है ।

बारह साल बितीत भए तु लगे तब कान्ह चरावन गाइं ।
सुंदर रूप बनयो इहको कह के इह ताह सराहत दाइं ।
ग्वार सबै बन बीच फिरे कवि ने उपमा तिह की लखी पाइं ।
कंसहि के बध के हित को जनु बाल चर्म भगवान बनाइं।।[3]

कृष्ण ग्वाल बालों के साथ यमुना किनारे खेलने निकल जाते हैं ।वहां वे पक्षियों की भांति चहचहाते और पशु शावकों की भांति कलोच भर भर कर उछल कूद करते हैं :--

गोपन सो मिलि के हरि जी जमुनातट खेल मचावत है ।
जिम बोलत है खग बोलत है जिम धावत है तिम धावत हैं।
फिर बैठ बरेतन मध्य भनो हरि सो वह ताल बजावत है।
कबि स्याम कहे तिनकी उपमा सुभ गीत भले मुखगावत है।[4]

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 266-67(2)वही,पृष्ठ267(3)वही,पृष्ठ276(4)वही,पृष्ठ267।

इस प्रकार यमुना तट पर धमाचौकड़ी मचाते हुए यमुना की बालू बीथियों को नाच नाच कर दल मल देने वाले नटखट नटराज की झांकी देख कर कौन सहृदय मुग्ध नहीं हो उठेगा :--

कुंजन में जमुना तट पै मिलि गोपन सोहरि खेलत हैं ।
तरिकै तब ही सिगरी जमुना हर मध्य वरेतन पेलत हैं।
फिर कूदत है जमुना तट ज्यों जल को हिरदै संग रेलत है।
फिर ह्वै हंडुआ लरके दुहुं ओर ते आपसि में सिर मेलत हैं।[1]

कितना उमंग भरा दृश्य है और साथ ही कितना सजीव। बच्चों के दो भिन्न दलों का विपरीत दिशाओं से यमुना जल में छलांग लगा कर छाती के बल तैरना और नदी के मध्य पहुँच कर परस्पर सिर भिलाना सच मुच मुग्ध कारी है। बालक कृष्ण को इतना निपुण तैराक बना देने का श्रेय गुरु जी की उस कवि प्रतिभा को देना होगा जो देश के नौनिहालों से अदम्य उत्साह और निर्भीक साहस भरी क्रीड़ाओं में भाग लेने की आशा रखती है। इस प्रकार कृष्ण का आलम्बन रूप में वर्णन उस प्रीति को विशेष प्रकार से उद्दीप्त कर वात्सल्य की सृष्टि करता है ।

बाल कृष्ण की ये क्रीड़ाएं अविराम चलती रहती हैं ।संध्या समय यमुना तट से घर लौटने पर भी बे शान्त नहीं बैठते ।भोजन के तुरंत बाद वे फिर खेलने के लिए निकल पड़ते हैं और ब्रज की गलियों की अपनी बाल लीलाओं से रस सिक्त कर देते हैं :--

आइ जबै हरि जी गृह आपने खाइ के भोजन खेलन लागे।
मात कहै न रहै करि भीतर बाहरि के तब हि उठ भागे ।
स्याम कहै तिनकी उपमा ब्रज के पति बीथिन में अनुरागे ।
खेल मचाइ दयो लुक भी चन गोप समे तिह के रस पागे।[2]

सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य में कृष्ण माखन चोर के नाम से प्रसिद्ध है। गुरु गोविन्दसिंह ने हिन्दी के सभी कवियों के समान कृष्ण की माखन चोरी की लीलाओं का वर्णन अति तन्मयता के साथ किया है । यह लीलाएं ही वास्तव में वात्सल्य रस की पुष्टि में अनुभावों का कार्य करती हैं।

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 267 । (2) वही, पृष्ठ 267 ।

खेलने के बहाने कृष्ण किसी गोपी के घर में घुस जाते हैं। और माखन चुरा कर खाते हैं नेत्रों से इशारे का सब ग्वालों को भी बुला लेते हैं बाकी बचा हुआ माखन उन्हें खिला देते हैं--

खेलन के मिस पे हरि जी घरि भीतरि पैठि के माखन खावैं।
नैनन सैन तबै करि के सभ गोपन को तब ही सुख लावै।
बाकी बच्यों अपने कर लेकर बानर के मुख भीतर पावै।
स्याम कहै तिह की उपमा इह के विध गोपिन कान्ह खिझावै।[1]

गोपियां कृष्ण से तंग आ गईं उन्होंने यशोदा से जाकर शिकायत की---

खाइ गयो हरी जी जब माखन तउ गुपीया सभ जाइ पुकारि।
बात सुनोपत की पतनी तुम डार दई दध की सभ खारी।
कानहि के उर ते हम चोर के राखत है चढ ऊच अटारी।
ओखल को धरि कै मनहा पर खात है लैर दे करि गारी।[2]

यहां कृष्ण की माखन चोरी को देख कर गोपियों की तत्सम्बन्धी वार्ता अनुभाव के अन्तर्गत आती है।इसी प्रकार---

होत नही जिह के घरि मे दध दै करि गारन सोर करै हैं
जो लरका जनिकै खिझ है जन तो मिल सोरन माथ भरै हैं।
आइ परै जु त्रीया तिह पै सिर के तिह बार उखार डरै है।
बात सुनो जसुधा सुत की सु बिना उत्पात न कान्ह टरै हैं।[3]

यहां ग्वालिनों को सोटे की चोट से मारने अथवा बाल उखाड़ देने की कवि की नवीन कल्पना है।यशोदा गोपियों की इस शिकायत को सुन कर क्रोध से भर जाती हैउसी समय अचानक कृष्ण वहां आजाते हैं बस फिर क्या था आग में घी पड़ गया।यशोदा का क्रोध भड़क उठा पर इससे पहले कि यशोदा कृष्ण को पीटती कृष्ण ने एक दम कहा कि यह गोपी तो मुझे छेड़ती है।[4] माता ने पूछा कि यह तुम्हें क्यों खिजाती है तो कृष्ण ने उत्तर दिया --

---

1- दशम ग्रन्थ,पृष्ठ 268 (2) वही,पृष्ठ268(3)वही,पृष्ठ268(4)वही,पृष्ठ268।

भात सों बात कही सुत मों करि सोगहि भागत है मुहि टोपी।
डारके नास बिखे अंगुरी सिर भारत है मुक को वह थोपी।
नाक घसाइ हसाइ उनै फिर लेत तबै वह देत है टोपी।[1]

बस फिर क्या था यशोदा कृष्ण को कुछ कहने की बजाए उलटे उस गोपी पर ही क्रोधित हो उठी ।यशोदा का क्रोध और कृष्ण का भोलापन एक प्रकार से भावाभास को उत्पन्न करते हैं पर अन्त में ये सभी संचारिभाव 'प्रीति' को जन्म देने में सहायक सिद्ध होते हैं। --

भात खिझी उन गोपिन सो तुम किउ सुत मोहि खेझावत हउरी।
बोलत हो अपने मुख ते हमरे घन है दध दाम सु गउरी ।
मूढ अहीर न जानत है बढ बोलत हो सु रहो तुम ठउरी।
कानहि साध बिना अपराधहि बोलहि गोजु महं कछु बहरी।[2]

वह गोपियां तो शिकायत करके अपने घर चली गईं कृष्ण ने बलराम को साथ लिया और मिट्टी खाली ।ग्वाल वालों ने यशोदा से शिकायत कर दी।[3] माता ने कृष्णको पकड लिया और छडियों से प्रहार करके पीटने लगी और कृष्ण से कहा कि अपना मुख खोल कर दिखाओ ज्यों ही कृष्ण ने मुंह खोला तो उस मुख में--

सिंध धराधर अउ धरनी सभ था बल को पुर अउ पुर नागनि ।
अउर सभै निरखे तिह मैं पुर बेद पढैं ब्रह्मागनि तागनि ।
रिध अउ सिध अरु आपने देख के जान अभेव लगी पग लागनि।
स्याम कहै तिन चक्षन सो सभ देख लयो जु बडी बडिभागनि ।।[4]

यही है कृष्ण के अनुभाव जो 'प्रीति' स्थायी को पुष्ट करने के साथ-साथ कृष्ण के प्रति श्रद्धा और भय का संचार भी कराती है जो एक प्रकार से भक्ति या शान्त रस की निष्पत्ति में सहायक सिद्ध होते हैं । कृष्ण अपने दल बल सहित गोपियों के घरों में जा कर दूध दही लूट लेते । घर में घुसते ही तोड फोड आरम्भ कर देते हैं :--

---

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 268 । (3) वही, पृष्ठ 269 ।
2 वही पृ. 268 (4) वही, पृष्ठ 269।

सैन बनाइ भले हरि जी जसुधा दधि को मिल लूटन लाए ।
हाथन में गहि के सभ बासन के बल को चहुं ओर लाए ।
फूट गए वह फैल गयो दधि भाव उदै कवि के मन आए।
कंस को भीमक निकासन को अुआ जनु आगम कान्ह जनाए।।[1]

क्रोध भरी माता उन्हें पकड़ने के लिए भागती है और वे तुरन्त दौड़ कर वृक्षों में छिप जाते हैं ।पकड़े जाने पर माता उन्हें ऊखल से बांधने का असफल प्रयास करती है ।सारे ब्रज की रस्सियां कृष्ण को बांधने के लिए एकत्र की जाती हैं :--

दौर गए हरि जी जसुधा जब बांधि रही रस्सियां नहिं भावैं ।
कै इकठी ब्रज की रसियां सभ जोर रही कछु थाह न पावैं ।
कोर बंधाइ भए ब्रज के पति ऊखल सों धरि ऊपर धावैं ।
साध उधारन को जमलाराजन ताहि नमित्त किधौं वह जावै।[2]

इस प्रकार कृष्णावतार में संयोगवात्सल्य विभिन्न दशाओं और विभावों से पुष्ट होकर रस स्थिति में पहुँच गया है। गुरु गोविन्दसिंह का वात्सल्य वर्णन और भी उत्कृष्ट हो जाता यदि वे बाल वर्णन के साथ कंस के वध सम्बन्धी घटनाओं को न जोड़ते ।यथा --

सैन बनाइ भले हरि जी जसुधा दधि को मिल लूटन लाए ।
हाथिन में गहि के सभ वासन के बल को चहुं ओर लाए ।
फूट गए वह फैल गयो दधि भाव हुई कवि के मन आए।
कंस के भीमक निकासन को अुआ जनु आगम कान्ह बनाए ।[3]

यहां कितना सुन्दर वर्णन है किन्तु कवि ने वात्सल्य के बिल्कुल विरोधी रस वीर की उपमा को यहां लाकर उसमें वह उत्कृष्टता न आने दी जो कि अन्य किसी उपमान से आ सकती थी।

वात्सल्य वियोग :- संयोग वात्सल्य की ही भान्ति वात्सल्य वियोग की विभिन्न दशाओं का चित्रण भी 'विचित्र नाटक' में हुआ है।

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 270 (2) वही, पृष्ठ 270(3)वही,पृष्ठ 270 ।

राम पिता की आज्ञा मान कर सीता और लक्ष्मण के साथ वन को चल देते हैं। कौशल्या पुत्र वियोग में बेचैन हो जाती है उसके दु:ख की सीमा यहां तक पहुंच जाती है कि वह राज साज को त्यागने को भी तैयार हो जाती है---

कारे कारे करि वेश राजा जू को छोरि देश,
तापसी को के के भेष्ा साथ ही सिधारिहौं ।
कुलहूं की लाज छोरुं राजसी के साज तोरुं ।
संग तें न मोरु मुख ऐसो के विचारिहौं ।
मुद्राकान धारुं सारे मुख पै भभूत डारुं ।
हठि को न हास दुत ,राज साज जारिहौं।
जुगिया को कीनो वेश कौसल को छोरि कलेश,
राजा रामचन्द्र जू के संग ही सिधारिहौं।[1]

कृष्णावतार में कृष्ण मथुरा जाने के लिए उद्यत हैं और यशोदा की दशा :---

मथुरा हरि के जान की सुनी जसोधा बात ।
तबै लगी रोदनि करन भूल गई सुध सात।।[2]

पुत्र के वियोग में माता की यह दशा स्वाभाविक है तो आंसू बहाते बहाते मूर्छित हो जाती हैं :--

रोवन लाग जबै जसुधा अपने मुखि तें इह भांत सो भाखे ।
को है हितू हमारो ब्रज में चलते हरि को ब्रज में फिरि राखे ।
ऐसो को ठीक करै जिय सो नृप सामुहि जा बतिया इह भाखे ।
सोक भरी मुरझाय गिरी धरनी पर सोबतिया नहीं भाखे।।[3]

मथुरा चले जाने के पश्चात् कृष्ण उद्धव को ब्रज में भेजते हैं उद्धव ब्रज में आकर नंद से कृष्ण का सन्देश देते हैं ।नन्द ने पूछा कि क्या कभी कृष्ण हमें याद करते हैं और इतना कहते ही वे मूर्छित हो जाते हैं :---

नंद कह्यो संगि उधव के कबहूं हरि जी मुहि चित कयो है ।
यो कहि के सुध सयामहि के धरनी पर सो मुरझाइ परयो है।[4]

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 209(2)वही, पृष्ठ 359(3) वही,पृष्ठ 359 ।
(4) वही, पृष्ठ373 ।

जब नंद भूमि पर मूर्छित हो कर गिर पड़े ,तो उद्धव ने कहा कि कृष्ण आगए हैं और नंद की बेहोशी समाप्त हो जाती है :--

जब नंद परयो गिर भूम बिखे तब याहि कह्यो जदुबीर अए ।
सुनिके बतीयां उठ ठाढ भयो मन के सभ सोक पराइ गए ।
उठिके सुधि सो इह भान्त कह्यो हम जानत ऊधव पेच कए ।
तज के ब्रिज को पुर बीच गए फिरके ब्रिज मे नही सयाम अए।।[1]

इसके पश्चात वे फिर कृष्ण को स्मरण कर प्रलाप करने लगते हैं ---

स्याम गए तजि के ब्रज लोगन की अति ही दुख दीनो
ऊधव बात सुनो हमरी तिह के बिनु भयो हमरो पुर हीनो ।
दै विधि ने हमरे गृह बालक पाप बिना हमते फिर छीनो ।
यों कहि सीस झुकाय रह्यो बहु सोक बढ्यो अति रोदन कीनो।[2]

वापिस लौटते हुए उद्धव के हाथ यशोदा कृष्ण के लिए संदेश भेजती है :--

जसुधा इह भांत करी बिनती बिनती कहियो संग पूत कनहये ।
उधव ता संग यों कहीयो बहुरो फिरि आइके भाखन खइये।[3]

कितनी व्याकुलता है मातृ हृदय की।इस प्रकार गुरु गोबिन्दसिंह के संयोग और वियोग वात्सल्य की विभिन्न दशाओं को वर्णन अति ही संप्रेष्य बन पड़ा है ।

शान्त रस:- 'विचित्र नाटक' एक वीर रस प्रधान काव्य है फिर भी इसमें शान्त रस का सर्वथा अभाव नहीं है । वैसे तो शान्त रस की कुछ पंक्तियां हर अवतार में मिल जाएंगी परन्तु शान्त रस का परिपाक दत्तात्रेय अवतार तथा पारस नाथ अवतार में विशेष प्रकार से मिलता है ।

शान्त रस का स्थायी भाव निर्वेद है । इस संसार में कुछ भी स्थायी नहीं है। सब कुछ क्षण भंगुर है । बड़े बड़े ऋषि मुनि तपस्वी विश्व में जन्म लेते हैं और मृत्यु को प्राप्त होते हैं ।

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 373 (2)वही,पृष्ठ 373 (3) वही,पृष्ठ382 ।

देस बिदेस नरेसन जीत अनेस बहे अनेस संहारे ।
आठो हूँ सिद्ध सभै नवनिधि सम्रिधन सरब भरे ग्रिह सारे।
चन्द्रमुखी बनिता बहुते घरि भाल भरे नहीं जात संभारे ।
नाम बिहीन अधीन भए जम अति को नागे जी पाइ सिधारो ।[1]

इस प्रकार संसार की अस्थिरता को देख कर व्यक्ति के मन में इस संसार से उदासीनता घर कर जाती है ।कवि मनुष्य को समझाता हुआ कह रहा है कि संसार से जाते समय कुछ भी साथ न जाएगा :--

रावन के महिरावन के मन के नाम के चलते न चली गउ ।
भोज दिलीपत को रवि के नही साथ दयो रघनाथ थली कउ ।
संगि चली अबलौ नही काहू के साच कहौ अघ अउघदलीसऊ
चेत रे चेत अचेत महापसु काहू के संगि चली न हली हऊ ।[2]

उपर्युक्त दोनों ही पद्यो में शान्त रस का परिपाक हुआ है।कवि ने संसार की क्षणभंगुरता दिखा कर व्यक्ति को उस प्रभु की ओर ध्यान लगाने के लिए कहा है क्योंकि नाम बिहीन अधीन भए जम बिना उस प्रभु का नाम जपे यमराज के फंदे में मनुष्य पड़ जाता है। यदि उसके फंदे से मुक्ति चाहता है तो उसे उस प्रभु के नाम का जाप करना होगा ।इस प्रकार यह उसका अनुभाव कहा जा सकता है। `चेतरे चेत अचेत महापसु काहू के संगि चली न हली हऊ ` में `मति `संचारी भाव है।

कवि ने तथाकथित भगवे वस्त्र धारी साधुओं को खण्डन करके उन्हें भी जगाने का प्रयास किया है ।

काहे कऊ बस्त्र धरो भगवे मुनते सम पावक बीच जलैगी ।
क्यों इम रीत चलावत हो दिन द्वैक चलै सरबदान चलैगी ।
काल कराल की रीत यहां इह काहू जुगेस हली न हलैगी।
सुन्दर देह तिहारी महामुनि अंत मसान ह्वै धूर रलैगी ।[3]

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 663 ।(2)वही,पृष्ठ 663 (3) वही,पृष्ठ 669।

यहाँ शान्त रस पूर्णतया अभिव्यक्त हुआ है। वस्त्र धारण करना, रीति चलाना, छल करना, सुन्दर देह पालना किस अर्थ के लिए हैं? ये सभी देह सहित नष्ट होने वाले हैं, अन्ततोगत्वा श्मशान की धूल में मिलना ही मानव देह का सत्य है। अत: यहाँ 'शम' एवं वैराग्य (निर्वेद) स्थायी भाव उद्बुद्ध होकर शान्त रस को प्राप्त होता है।

इसी प्रकार पारसनाथ अवतार में भी शान्त रस के उदाहरण मिल जाते हैं। बड़े योगी योग साधना करते हैं। कवि का विश्वास है कि शारीरिक वेशभूषा में योगनहीं है योग तो व्यक्ति के हृदय में होना चाहिए।

जोगी जोग जटन मो नाही।
भ्रम भ्रम भरत कहा पचि पचि कर देखि समझ मन माही।
जो जन महातत कहु जाने परम ठ ग्यान कहु पावै।
तब यह एक ठउर मन राखै दरदर भ्रमत न धावै।
कहा भयो गृह तजि उठ भागे बन मे कीन निवासा।
मन तो रहा सदा घर ही मो सो नहीं भयो उदासा।
सो अधक प्रपंच दिखाई ठगा जग जान जोड़ा को जोरा।
तुम जीअ लखा तजी हम भाया भाया तुमे न छोरा।।[1]

कबीर ने भी इसी प्रकार की भावनाओं को व्यक्त किया है :--

घर तजि बनखंडि जाइए चुनि खाइए कंदा।
अजहुं बिकार न छोड़ई पापी मनु मंदा।
बिख बिखिआ की बासना तजी तजीन जाई।
अनिक जतन कै राखिहो फिरि फिरि लपटाई।।

इस प्रकार गुरु गोबिन्द सिंह ने संसार में कपटी वेश धारी साधुओं, सन्यासिओं का बाह्याडम्बर का खण्डन किया है और व्यक्ति को माया त्यागने का उपदेश दिया है।

1- दशम ग्रन्थ पृष्ठ 679 ।

जोगन भेख दिखाए ।
नाह्न जटा बिभूत नखन मैं नाह्नि बस्त्र रंगाए ।
जो बन बसे जोग कहु पहरे पंछी सदा बसत बन ।
कुंचर सदा धुर सिर मेलत देखहु समझ तु मही मन।
दादर मीन सदा तीरथ यो करयो करत इसनाना ।
ध्यान बिहाल बकी बक लावत तिन किया जोगु पछाना।
जैसे कसट ठगन कह नाटत ऐसे हरिहित कीजे ।
तब ही यहां ग्यान को जाने परम अमृखहि पीजे ।।[1]

इस प्रकार उपर्युक्त विभिन्न उद्धरणों में स्थायी भाव निर्वेद रस स्थिति को प्राप्त हो गया है ।

करुण रस:- जहां तक करुण रस का सम्बन्ध है 'विचित्र नाटक' में केवल कुछ स्थलों पर इसका परिपाक हुआ है ।वस्तुत: कवि का हृदय इतना अधिक युद्ध मय हो चुका था कि युद्ध वर्णन के अतिरिक्त और कोई प्रसंग कवि को रुचता ही नहीं। अवतार कथाओं में राम और कृष्णावतार में अनेक ऐसे प्रसंग हैं जहां करुण रस का परिपाक हो सकता था परन्तु कवि केवल चलता हुआ संकेत देकर आगे बढ़ गया है। फिर भी रामावतार में कुछ प्रसंग ऐसे अवश्य है जहां इस रस का पूर्ण परिपाक हो सका है ।यथा --

श्रवण की हत्या प्रसंग में श्रवण की मृत्यु के उपरान्त राजा दशरथ श्रवण का कहना मान कर जलपात्र लेकर श्रवण के माता पिता के पास आता है ।अंधे माता पिता के अनेक बार कहने पर भी राजा नहीं बोलता परन्तु उनकी वेदना उससे सह्न भी नहीं हो सकी और उनके शब्द सुन कर राजा रो पड़ता है--'इस सुनत सबद नृप दयो रोइ ' और उत्तर देता है :--

हउ पुत्र घात तब ब्रह्मणोस ।जिह हनियो स्रवण तब सुत सुदेस ।
मै परयो सरण दसरथ राइ ।चाहो सु करो मोहि बिप आइ।
राखै तु राख मारै तु मार ।मै परो सरण तुमरै ।दुआ।[2]

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 679 ।
2- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 190

राजा दशरथ की इस बात को सुन कर ब्राह्मण दम्पत्ति जिनका पुत्र मर गया हो के हृदय पर क्या बीती इसे तो सहृदय सहज ही जान सकते हैं। उन्होंने एक दम राजा दशरथ से कहा कि लकड़ियों को इकटठा करके चिता बना देा ।चिता बनी और दोनो पति पत्नी उस पर बैठ गए :--

तब कही तिनो दसरथ राइ।बहु कासट आन द्वै देह भगाई।
तब लियो अधिक कासट भगाइ । चढ़ बैठे वहाँ सल कउ बनाइ।
चहु ओर दई जुआला जगाई ।दिज जान गई पावक सिराइ ।
तब जोग आनि तनते उप्राज । दुहुँ यत्न जरन को सजिओ साज।
ते भसम भए तिह बीच आपा तिह कोप दुहू त्रिप दीयो प्राप ।।[1]

यहाँ करुण रस की पराकाष्ठा है।पाठकों की आँखों से आँसू उमड़ पड़ते हैं । स्थायी भाव शोक पुत्र वियोग के भावों से उद्दीप्त होकर विषाद आदि संचारियों से पुष्ट होकर रस रूप में परिणत हो गया है ।

रामावतार में ही दूसरा करुण प्रसंग राम बन गमन का है । कैकेयी के वर माँगने पर राजा ने उसे राम बनवास तथा भरत को राज्य तिलक का वरदान दिया और भूमि पर तड़पते हुए गिर पड़े --

भूप परन बिन बुधि गिरयो सुनत बचन त्रिय कान ।
जिम त्रिसेस बन के बिखै बध्यो बध करिबान ।
तरफ रात प्रिथवी परयो सुनि बन राम उचार ।
पालक प्राण त्यागे तजत मधि सफरि सर बार।[2]

राम को बन जाने की आज्ञा का समाचार मिला वे बन जाने की तैयारी करने लगे।माता से आज्ञा लेने के लिए पहुँचे :--

तात दयो बनवास हमें तुम देह रजाइ अबै तह जाऊँ।
कंटक कानन बेहड़ गाहि त्रियोदस बरख बिते फिर आऊ।
जीत रहे तु मिलो फिरि मात मरे गए भूलि परी बखसाऊ।
भूप हके अरिणी बर ते बस के बन भो फिरि राज कमाऊ।[3]

इन वाक्यों में कितनी व्यथा है कि जीवित रहे तो फिर मिल जायेंगे ।यदि मर गए,तो माता हमारी भूल क्षमा कर देना। कौन माँ होगी जिसका हृदय इस बात को सुन कर टुकड़े टुकड़े न हो जाएगा ।

1-दशग्रन्थ,पृष्ठ पृष्ठ 191(2)वही,पृष्ठ 206(3)वही,पृष्ठ 207 ।

माँ सुनते ही रो पड़ी और पुत्र को हृदय से लगा लिया :--

भात सुनी इह बात जबै तब रोवत ही सुत के उर लागी ।
हा रघुवीर सिरोमण राम चले बन कउ मुहि कउकत तिआगी।
नीर बिना जिम मीन दसा तिम भूख पिआस गई सभ भागी ।
फुन न फराकन फरी फट बाल बिसाल दवा उनकी उर लागी ।।
जीवत पूत तवान न देख सी आतुभरी दुत देख अघाती।
चौन सुमित्रज की छब को सभ सोक बिसार हीए हरखाती।
केकई आदिक सऊतन कउ लखि भउह चढाइ सदा गरवाती।
ताकहु तात अनाथ जिउ आज चले बन को तजि के बिललाती।[1]

इन प्रसंगों को वियोग वात्सल्य के अन्तर्गत नहीं लिया जा सकता क्योंकि सारा वातावरण शोक का है।राम की विदाई का यहाँ उतना महत्व नहीं जितना भात पिता के लिए पुत्र का राजगद्दी पाने के स्थान पर चौदह वर्षों के लिए बन में निर्वासित होना।

करुण रस का तीसरा प्रसंग रावण मृत्यु का है।

चटपट रानी सट पट धाई,रट पट रोवै अटपट आई ।
चटपट लोटै अटपट धरणी कसिकसि रोवै वर नर वरणी ।
पट पट डारै अटपट कोस बटहरि कूकै नटवर बेस ।
चटपट चीरं अटपट पारै धर कर धूरं सिर पर डारै।[2]

यहाँ रावण की मृत्यु के पश्चात उसकी रानियों के रुदन का वर्णन है ।रावण मृत्यु आलम्बन है।रानियों का रोना, केशों को उखाड़ना,सिर पर डालना आदि अनुभाव,उन्माद संचारी भाव है।इस प्रकार शोक स्थायी भाव करुण रस में परिणत हो गया है ।

अद्भुत रस :- 'विचित्र नाटक' में अद्भुत रस के उदाहरण अनेक स्थलों पर मिलते हैं। ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही कवि ने अकाल पुरुष के विस्मयकारी रूप का वर्णन किया है :--

कहूं फूल ह्वै के चले राज फूले ।
कहूं भंवर ह्वै के भली भान्ति भूले ।

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 208 । (2) वही,पृष्ठ 239 ।

कहूं पउन ह्वै के बहे बंग ऐसे ।
कहे मो न आवे कथो ताहि कैसे ।।
कहूं नाद ह्वै के भली भान्ति बाजे ।
कहूं पारधी ह्वै घरे बान राजे ।
कहूं मृग ह्वै के भली भान्ति मोहे ।
कहूं कामनी जिउं घरे रूप सोहे ।।[1]

इसी प्रकार चंडी चरित्र में श्रोत बिन्दु दैत्य की रुधिर की जितनी बूंदे पृथ्वी तल पर गिरती हैं उतने ही श्रोत बिन्दु उत्पन्न हो जाते हैं।इस प्रकार श्रोत बिन्दुओं का समूह बढ़ता जाता है ।यह एक अपूर्व सृष्टि है जो मानव मस्तिष्क को विस्मय से अभिभूत कर देती है :--

जैतक श्रोण की बूंद गिरे रन तैतक श्रोणत बिन्द ह्वै आई ।
मारहि मार पुकार हकार के चंडि का चंड ह्वै साभुहि धाई ।
पेखि के कौतिक ता छिन में कवि के मन मे उपमा ठहराई ।
मानहु सीस महल के बीच सुभूरत एक अनेक की छाई ।।[2]

रामावतार में कुंभ करण का व्यक्तित्व भी कम विस्मय कारी नहीं है।रावण की पूरी सेना उसे जगाने के लिए गई ,कई सैनिक तो उसकी नाक में घुस गए कई हाथी घोडों के साथ उसके कानों में जा घुसे और उसके भीतर जाकर अनेक प्रकार के बाजे बजाए किन्तु उसकी निद्रा भंग न हुई :--

रथी पाइक दंत पंती अनंतं ।चले परखे बाजि राजं सुमंतं ।
घसे नासिका श्रोण भज्यं सुवीरं ।बजे कान्हरे ढंक डौरु नफीरं ।[3]

अन्त में कुम्भ करण की नीन्द देव कन्याओं के मधुरगान से भंग हुई ।जगने पर उसने पानी की सात हजार गागरों से मुंह हाथ धोया मांस खाया और मदिरा पीकर फिर अभिमान पूर्वक गदा लेकर उठ खड़ा हुआ :--

---

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 40 । (2) वही, पृष्ठ 90 (3) वही,पृष्ठ 224 ।

जलं गागरी सप्त साह्य पूरं । मुखं पूछ त्यो कुंभकर्ण कूरं ।
कियो मांस हारं महमधपान उठ्यो ले गदा को भज्यो वीर मानं।[1]

इसी प्रकार कृष्णावतार प्रसंग में भी कवि ने श्री कृष्ण के मुख में चराचर के दर्शन कराने के लिए यशोदा माता को अवसर प्रदान किया गया है । श्रीकृष्ण के अद्भुत रूप का दर्शन कर माता यशोदा चकित रह जाती है :--

सिंध धराधर औ धरती सभ थां बल को पुर और पुर नागनि ।
और समे निरखे तिह मे पुर बेद पढ़े ब्रह्मा गनिता गनि ।
रिद्ध और सिद्ध और आपने देख के जान अभेव लगी पागर लागनि ।
स्याम कहे तिन चक्षन सौं सभ, देख लयो बही बह भागनि ।[2]

जरासंध और कृष्ण के युद्ध में जरासंध की सेना के एक वीर खड्गसिंह का शीश कट जाता है परन्तु वह वीर अपने उस कटे हुए सिर को बालों से पकड़ कर पूरी शक्ति के साथ कृष्ण की ओर फेंकता है और उसके प्रहार से घोड़े पर चढे हुए कृष्ण भी मुर्छितावस्था में पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं ---

जदिपि सीस कट्यो न छुट्यो गहि केसन तै हरि ओर चलायो।
मानहु प्रान चल्यो दिव आनन काज बिदा ब्रिजराज पै आयो।
सो सिर लाग गयो हरि के उर मूरछ ह्वै पगु न ठहरायो ।
देखहु पउरख भूप के मुंड को स्पंदन ते प्रभु भूम गिरायो।।[3]

खड्गसिंह का कबन्ध भयंकर युद्ध करता है। देवबधुएं उस कबन्ध को स्वर्ग ले जाना चाहती हैं परन्तु वह विमान से कूद कर फिर युद्ध प्रारम्भ कर देता है --

देव बधू मिलि के सब हू इहं भूप कबन्ध बिवान चढायो।
कूद परयो न बिवान चढ्यो पुनि सस्त्र लिए इन भू मधि आयो।[4]

यमदूत उसे लेने आते है, तो वह उन पर भी बाणों की वर्षा कर देता है ।---

---

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ (2) वही, पृष्ठ270(3)वही, पृष्ठ 314
(4) वही, पृष्ठ314-15

अंतक जम जब लेने आवे । लखि तिह कोतब बाण चलावे ।
भूत पेख के हत उतटरे। मारयो कालहु को नहि मरे ।[1]

इस प्रकार इन सभी वर्णनों युद्धभूमि में श्रोत बिन्दु की उत्पत्ति, कुम्भ कर्ण की निद्रा के दृश्य, कृष्ण के मुख में समस्त ब्रह्माण्ड , युद्ध भूमि में खडग सिंह का कबंध, विमान, अप्सराए , यमदूत आदि आलम्बन है योद्धाओं का बार-बार प्रहार, अप्सराओं का प्रसन्न होना आदि उदीपन है।इस प्रकार विस्मय स्थायी भाव रस रूप में परिपुष्ट हो जाता है ।

भाषाशैली :- 'विचित्र नाटक' की भाषा स्वाभाविक और अयत्न साध्य है ।शब्दों का चयन करते समय कवि शब्दकोषों, व्याकरणों अथवा दूसरे कवियों के प्रयोगों का आश्रित नहीं रहा । जिस विषय का वर्णन गुरु कवि करने लगे उनका हृदय तदनुरूप शब्दों की टकसाल बनता चला गया ।प्रचलित, अप्रचलित सभी प्रकार के शब्द उनकी कविता लही में पिरोए जा कर अभीष्ट अर्थ की अभिव्यक्ति में समर्थ बनते गए ।

बज्जे निसाण ।नचे किकाण[2] ।

तथा --

फागन में सरिव डार गुलाल समें हरि सिउ बन बीच रमे।
पिचकारन ले करि गावति गीत समें मिलि ग्वारन तउन समें।[3]

आदि विभिन्न रस प्रसंगों को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि यदि वे युद्ध का वातावरण निर्मित करना चाहते है,तो उनकी वर्ण-योजना , झंकार-विन्यास ऐसा है कि युद्ध की गति एवं ध्वनि के अनुकूल वातावरण उपस्थित हो जाता है ।यदि शृंगार या वात्सल्य का वर्णन करने लगे है,तो तदनुकूल वर्ण योजना द्वारा अभीष्ट विषय का सम्प्रेषण उन्होंने किया है।

कवि ने अपनी आवश्यकतानुसार शब्दों के रूप या उच्चारण को विकृत करके या नए अर्थों में उनका प्रयोग किया है।यथा गोपाल > गोपालायं (पृष्ठ 60) बार > बीरिआ(पृ० 61) तीर > तीरिआ(पृ ० 61) मूछा> मूछणा(पृष्ठ 61) पुरेजे>पुरेजं (61) रुद्रनी > रुद्रनी(पृष्ठ 115)सात्विक>सातवका(पृष्ठ 115)

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 314-15 । (2) वही, पृष्ठ 66 ।

इंगला > हिंगुला (पृष्ठ 115) आदि ऐसे अनेकों उदाहरण विचित्र नाटक में यत्र तत्र बिखरे पड़े हैं, जिनमें कवि ने शब्दों को तोड़ मरोड़ कर प्रयुक्त किया है। ये विकृति भी संभवत: छन्द की आवश्यकता के कारण और उसमें एक विशेष प्रकार की गति उत्पन्न करने के लिए की गई है।

तुक पूर्ति के लिए भी कवि ने अनेक नवीन शब्दों का निर्माण किया है जिनमें अनेक में तो संस्कृत का सा आभास आ गया है। जैसे :---

नमो हिंगुला पिंगुला तोतलायं।
नमो करति क्यानी सिवा सीतलायं ।।[1]

यहां कवि ने `तोतलायं` के अनुसार तुकपूर्ति के लिए `सीतलायं` शब्द निर्मित किया। इसी प्रकार --

नमो जोगणी भोगणी प्रभ प्रग्या।
नमो देव दई त्याइणी देवी दुरग्या।[2]

यहां `प्रग्या` के अनुसार कवि ने `दुरग्या` शब्द बनाया है। `दुरग्या` संभवत: `दुर्गा` के पंजाबी उच्चारण की गंध भी लिए हुए है -- जैसे `इच्छा` से `इच्छ्या` `जापु` और अकाल उस्तुति की भाषा की ही भांति `विचित्र नाटक` की भाषा भी अनुस्वार प्रधान है। यह प्रयोग अधिकतर तुकान्त है।

जुआलं (चं. चरित्र ।। 4।223) अनूपं (5।224 चंचरित्र ।।)
भारगवीअं (चं चरित्र ।। 7।226) अंबकायं (चं चरित्र।।20।248)
वीरं (रामावतार 505) चरमं (रामावतार 507) रोसं (रामावतार 523)
चेतं (रामावतार524) सुतं (रामावतार 531) यही नहीं उर्दू के विभिन्न शब्दों के साथ भी अनुस्वार का प्रयोग हुआ है-- गुलामं (11।6) तेगं (1।2) लरजं (1।23) हूरं(रामावतार 504) ।

`विचित्र नाटक` में कवि ने संस्कृत के व्यक्ति व वाचक अथवा साभिप्राय नामों के सरल भाषा में पर्याय वाची बना कर अपना वैशिष्ट्य भी सिद्ध किया है और इनको सर्व साधारण गम्य भी बना दिया है। जैसे `कुंभकरण` का पर्याय पर `घटकाण` तथा `मेघ नाद` का पर्याय कवि ने `वारदनाद` प्रयुक्त किया है।

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 116 (2) वही, पृष्ठ117 ।

रावण से महारावण से घटकानहु से पल बीच पछारे ।
वारद नाद अकंपन से जग जंग जुरे जिन सिउ जय हारे ।[1]

इससे कवि का भाषा ज्ञान तो सिद्ध होता ही है साथ ही कवि की उस क्षमता का भी परिचय मिलता है जिससे कि जनसाधारण की भाषा भी कविता के उपयुक्त बनाई जा जा सकती है ।उसमें आवश्यकतानुसार प्रवाह, व्यंजना तथा सब प्रकार के गुणों की सृष्टि की जा सकती है।

`विचित्र नाटक ` की भाषा की सब से बड़ी विशेषता उसकी ध्वन्यात्मकता है।कवि ने युद्ध वर्णन में ऐसे वर्णों की योजना की है, जिसके द्वारा युद्ध का सम्पूर्ण वातावरण ध्वनियों के माध्यम से सम्प्रेष्य हो गया है । इनका विवेचन ध्वनि बिम्बों के अन्तर्गत किया जा चुका है ।

`विचित्र नाटक` में युद्धों का प्राधान्य है, इसलिए भाषा में सर्वत्र ओज गुण की प्रधानता है परन्तु शृंगार तथा वात्सल्य के प्रसंगों में माधुर्य तथा प्रसाद गुण का प्रयोग भी यत्रतत्र दृष्टिगोचर होता है ?

ओजगुण :- `विचित्र नाटक ` में ओज गुणका प्राधान्य है।इसमें भक्ति के पदों में भी ओज की दीप्ति है ।

खग खंड बिहंडं खल दल खंडं अतिरण मंडं बर बंड `
भुज दंड अखंड तेज प्रचंड जोति अमंड भान प्रभं ।
सुखसंता करणं दुरमति दरणं किल बिख हरणं असरणा
जै जै जग कारण स्रिसट हबाररण मम प्रति प्रारण जै तेग ।[2]

फिर युद्ध वर्णन में उस ओज का प्रताप क्यों न होता --

परी कुट्ट कुट्टं रुले तुच्छ मुच्छं ।
रहे हाथ हारे उभय उर्द्ध भुच्चं ।
कहूं खोपरीखोल खिंगं खतंग ।
कहूं खत्रियं खग्ग खेतं निसंग `।।[3]

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 45[illegible] । (2) वही, पृष्ठ 39- ७ ।
(3) वही, पृष्ठ 49-७

उपर्युक्त पंक्तियों में 'कुट्ट कुट्टं' 'तच्छ भुच्छं' आदि शब्दों में संयुक्ताक्षरों की स्थिति है और 'ख' वर्ण की पुनरुक्ति के कारण उच्चारण प्रखरता व ओज का निर्माण हुआ है। इसी प्रकार के उदाहरण समस्त विचित्र नाटक में देखे जा सकते हैं।यथा :---

कागद्दं कड़ाक्क ।तागद्दं तड़ाक ।
सागद्दं सुवीर । गागद्दं गहीर ।
तागद्दं निसाणं । जागद्दं जुआण ।
नागद्दं निहंग ।पागद्दं पलंग ।[1]

उपर्युक्त उदाहरण में अर्थ भले ही समझ में न आता हो । भावाभिव्यक्ति भी चाहे अपूर्णत: ही पाठक के पल्ले पड़े किन्तु जिस अनुभूति का सम्प्रेषण गुरु कवि को अभीष्ट रहा है उसमें कृतार्थता को लेकर कोई भी अपना वैभत्य प्रदर्शन नहीं कर सकता।युद्ध का पूरे का पूरा वातावरण उपर्युक्त पंक्तियों में साकार हो उठा है ।विचित्र नाटक का ओजगुण वर्णों या शब्दों पर उतना आश्रित नहीं जितना कि भावों की दीप्ति पर, अत: उसकी व्यापकता सर्वत्र है--

पसचम सुर चढ़ै कबहुं अरु गंग बही उलटी जीअ आवै ।
जेठ के भास तुखार परै बन अउर बसंत समीर जरावै ।
लोक हलै धअ को जल को थल हुइ छल को कबहु जलु जावै ।
कंचन के नग् परवन धारि उडै खडगेसन पीठ दिखावै।[2]

निश्चय ही इस उक्ति में गर्व की अपेक्षा ओज ही अधिक है। जिसकी दीप्ति में भारतेन्दु रचित 'हरिश्चन्द्र' नाटक में आया ---

चंद्र टरै, सूरज टरै टरै जगत व्यवहार पै दृढ व्रत हरिश्चन्द्र को टरै न सत्य-विचार।

हरिश्चन्द्र का यह संकल्प आँखों में कौंध जाता है ।अग्नि जैसे स्वयं चमकती है और अपने निकटवर्ती को भी दीप्त करती है, इसी प्रकार गुरु कवि की इस प्रकार की रचना में सहज सम्प्रेष्यता विद्यमान है ।

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 111 । (2) वही, पृष्ठ 461 ।

माधुर्य गुण :- शृंगार और प्रेम के वर्णनों में माधुर्य गुण विद्यमान है :--

घट भादव मास की जाण सुभं। तन सांवरे रावरे अं हुलसं ।
रद पंगति दामनीअं दमकं ।घर घुंघरु सुर धमकं ।।[1]

'कृष्णावतार' में राधा कृष्ण प्रसंग में कवि देर तक माधुर्य गुण में ही खोया रहा है।उसी के सहारे वह राधा और कृष्ण की माधुरी को सहृदय संवेद्य बना कर अपनी अनुभूति का सम्प्रेषाण कर सकता था ।यथा :--

गहिकै त्रिखभान सुता जदराइ जू बोलत ता संग अमित बानी।
भागत काहे को हेत सुनो हमहूं ते तूं किउ सुन ग्वारनि रानी ।
कंज मुखी तन कंचन से हम त्वै मन की सभ बात पछानी।
सयाम के प्रेम छकी मन सुंदर ह्वै बन खोजत सयाम दिवानी ।[2]

प्रसाद गुण :-'विचित्र नाटक' में प्रसाद गुण पर्याप्त मात्रा में प्राप्त है। इस गुण का प्रसार प्रेम-प्रधान पद्यों में भी है ।~~फूल रहे सिगरे त्रिज के तट फूलिलता तिन सों लिपटाहैं--।~~

फूल रहे सिगरे त्रिज के तट कूलि लता तिन सो लिपटाहैं।
फूलि रहे सर सारस सुन्दर सोभ समूह बढी अधिकाहैं।
चेत चह्यो सुक सुन्दर कोकिल का जुत कंत बिना न सुहाहैं।
दासी के संगि रह्यो गहि हो टसिक्यो न हीयो कसिक्यो-न कसाहैं।[3]

'विचित्र नाटक' में ओज गुण यदि आग बन कर रहा है,तो वायु का कार्य उसको गति देने का काम,कथा को सम्प्रेष्य बनाने का कार्य प्रसाद गुण ने ही किया है --

चंड कुवंड ते बान छुटे इकते दस सउ ते सहंस तह बाढे ।
लच्छक ह्वै करिजाइ लगे तन देतन मांझ रहे गडिगाढे ।
को कवि ताहि सराह करें अति सै उपमा जु महं बिनु काढे ।
फागन पउन के गउन भए जनु पातु विहीन रहे तरु ठाढे।[4]

1- दशम ग्रन्थ,पृष्ठ 43(2)वही,पृष्ठ 340-41(3)वही,पृष्ठ 376 ।
(4)वही,पृष्ठ 34 ।

तथा :--

देही सिवा वर मोहि इहै सुभ करमन ते कबहुं न टरौं ।
न डरौं अरि सो जब जाइ लरौं निसचै कर अपनी जीत करौं।
अरु सिख हौं आपने ही मन को इह लालच हउ गुणतउ उचरौं ।
जब आवकी आउध निदान बनै अति ही रण मे तब जूझ मरौं ।[1]

वृत्तियां :- `विचित्र नाटक` में विविध भावों का हृदय स्पर्शी निबन्ध न हुआ है । अत: वहां त्रिवि ध वृत्तियों का स्वाभाविक सौन्दर्य दिखाई देता है ।

परुषावृत्ति :- उत्साह आदि के प्रसंगों में कठोर वर्णों की चमत्कार पूर्ण योजना की गई है ।यथा :--

(क) चटाक चोटैं । अटाक ओटैं ।
फटाक फाटैं । तटाक ताटैं ।[2]

(ख) कहूं भुच्छ भुक्खं ।कहूं सस्त सुक्खं ।
कहूं खोल खग्गं ।कहूं परम पग्गं ।
गहे भुच्छ बंकी ।मंडे आन हंकी ।
ढका ढुक्क ढालं ।उठे हाल चालं ।[3]

(क) :- में `ट` तथा `ह` वर्ण के चमत्कार द्वारा युद्ध की भीषणता को सम्प्रेष्य बनाया गया है ।

(ख) :- में संयुक्त वर्णों का ऐसा सटीक विधान हुआ है कि वे आक्रान्ताओं से टक्कर लेते हुए वीरों का उत्साहऔर भी उद्वेलित कर देते हैं ।

उपनागरिका :- विचित्र नाटक एक युद्ध प्रधान काव्य है उसमें इस वृत्ति के दर्शन कम ही होते है ।यथा:--

1- परेअं पवित्रं पुनीतं पुरानं ।
अजेयं अभेयं भविख्यं भवानं ।

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 99 । (2) वही, पृष्ठ 226 (3) वही,पृष्ठ 52 ।

न रोग न सोगं सुनित्यं नवीनं ।
अजायं सहायं परमं प्रवीनं ।[1]

2- घटा सावणं जाण स्याम सुहायं ।
भणी नील नगमं लखं सीस न्यायं ।
महां सुन्दर स्यामं महां अभिरामं ।
महा रूपं महा काम कामं ।।[2]

1 इसमें प, न, म, ग आदि सुकुमार ध्वनियां अनुस्वार के सौन्दर्य से युक्त होकर अकाल पुरुष की पवित्रता और निराकार रूप का प्रकाशन करती है ।
2 अनुनासिक वर्ण म, ण की बहुल आवृत्ति की अनुस्वार मयता के कारण कथन में अपूर्व झंकृति आगई है ।

कोमला :- उपनागरिका वृत्ति की ही भान्ति विचित्र नाटक में इसका प्रयोग भी कम हीं हुआ है ।

1 सदा एक जोत्यं अजूनी सरूपं
महादेव देवं महा भूप भूपं ।।[3]

2 नमो देव देवं नमो राजराजं ।
निरालम्ब नित्यं सुराजाधिराजं ।।[4]

1 इसमें ज, द, व आदि कोमल वर्णों की आवृत्ति हुई है।पदावली गत मंथर गति मयता से अभिव्यक्ति मेंविलक्षण सौन्दर्य आ गया है ।
2 इसमें संयुक्तवर्ण अवश्य प्रयुक्त हुए हैं किन्तु समीपवर्ती कोमल वर्णों में उनकी कठोरता विलीन हो गई है और वे अत्यन्त स्पष्टता के साथ भावबोध कराते है ।

युद्ध प्रधान होने के कारण विचित्र नाटक अभिधा प्रधान काव्य है । वस्तुत: गुरु गोविन्दसिंह जैसे लोक नायक की वाणी में लाक्षणिकता अथवा व्यंजना व्यापार की न्यूनता स्वाभाविक है। यद्यपि लोकोक्तियों, मुहावरों के मूल में लक्षणा शब्द शक्ति विद्यमान रहती है, किन्तु उनका

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 39।(2)वही, पृष्ठ 43(3)वही, पृष्ठ39(4)वही, पृष्ठ40।

परम्परागत प्रचलन होने के कारण ये बोल चाल का सामान्य रूप धारण कर लेते हैं और इनका प्रयोग अभिधात्मक सा बन जाता है। अत: इनमें निहित लक्षणिकता कवि कर्म कौशल के अन्तर्गत नहीं रखी जा सकती। इन्हें छोड कर ~~विभिन्न~~ विचित्र नाटक में लक्षण या व्यंजना शब्द शक्ति का प्रयोग स्वल्प ही हुआ है।

अभिधा का कोई उदाहरण यहां उद्धृत करना अपेक्षित नहीं क्योंकि विचित्र नाटक के प्रत्येक पद्य में अभिधा विद्यमान है। लक्षणा और व्यंजना के उदाहरण प्रस्तुत हैं।

लक्षणा :-

मेरु करो तृण ते मुहि जाहि
गरीब निवाज न दूसर तो सो।[1]

यहां तिनके से पर्वत बना देने का लक्षणिक अर्थ हीन को महान बना देना है।

महा शुभ्र गीता।[2]
बिधु बाक बेनी।[3]

यहां वर्ण्य मान (उपमेय) का अप्रकृत चन्द्र, गीता से तादात्म्य किया गया है। अत: यहां सारोपा लक्षणा है।

व्यंजना :- मन ते तन तेज चल्यो जगमात सों।
दामन जानु चले घन में।।[4]

मन अथवा तन के तेज का 'चलना' अर्थ यहां उपयुक्त प्रतीत नहीं होता व्यंग्यार्थ यह है कि देवी दुर्गा का प्रभाव सर्वत्र विद्युत प्रकाश की भान्ति छा गया।

रुद्र के आनन को अविलोक के यों कहि के नृप बात सुनाई।
का भयो जो जुगिया कर लेकर हिंभ के कारन नाद बजाई।
तंदुल मांगन है तुय कारन मैं न डरो तुहि चांप चढ़ाई।
जूझ बो काम है छत्रन को कछु जोगन को नहीं काम लराई।[5]

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ45 (2)वही, पृष्ठ 211 (3) वही, पृष्ठ211।
4- वही, पृष्ठ 78 (5) वही, पृष्ठ 451।

शिव के योगी वेश को देख कर खड्गसिंह की इस उक्ति में व्यंग्य है ।यहां काकु वक्रोक्ति है ।

इन्द्र के धाम चलो बलवान सुजान सुनो अब ढील न कीजे।
देवबधू जोऊ चाहत है तिह को मिलीऐ मिल के सुख लीजे ।
तेरो मनोरथ पूरन होत है नाम कहिओ त्रिप अम्रित पीजे।
राजन राज समाज तजो इन बीरन को न क्रिथा दुखु दीजे।।[1]

खड्गसिंह युद्ध में मारा नहीं गया।वह कृष्ण के हाथों स्वर्ग जाना चाहता था तो ब्रह्मा खड्गसिंह के पास जा कर इस व्यंग्यपूर्ण भाषा में कटाक्ष करते हैं। यो देखने पर यह पद्य खड्गसिंह की इच्छा का पूरक है व्यंग्यार्थ इसके विपरीत है । अत: यहां आर्थी व्यंजना है ।

कवि गुरु गोविन्दसिंह ने अपने भावों के सफल सम्प्रेषण के लिए यथा स्थान विभिन्न मुहावरों,लोकोक्तियों और सूक्तियों का प्रयोग किया है । मुहावरों के सटीक प्रयोग से भाषा में चित्त को द्रव करने की विशेष शक्ति आ जाती है। वे अत्यन्त संक्षेप में भावों को तीव्रता से व्यक्त करते हैं।

(क) सिंह ही बेरी ससा कहुं उण[2]
(ख) तिनके बार न बांकन पाए ।[3]
(ग) हाथ दीपक ले महा पसु मधि कूप परंता।[4]
(घ) कछू न कान राखहीं सु मारि मारि भाखहि ।।[5]
(ड) फेर सरासन को गहिके कर बीर हने तिन पान न मौं ।।[6]
(च) सोर सुनिओ जब दैतन को तब चहुं प्रचंडतची अखीआं।[7]
(छ) दे-मिलो लरिके मरिके गिरि खेत रहे ।[8]
(ज) दे मिलो जानकी बात है सिआन की चाम के दाम काहे चलाए।[9]

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 469 (2) वही, पृष्ठ 66 (3) वही,पृष्ठ 72 ,
4- वही, पृष्ठ 689 (5) वही, पृष्ठ 50 (6) वही,पृष्ठ 78,
7- वही, पृष्ठ 83 (8) वही, पृष्ठ 77(9) वही,पृष्ठ 219

(क) आयो है केहरि के मुख में मृग ऐसो कह्यो नृत तो सुनि पायो।[1]

((ख) गाल बजाए के दुंदभ ज्यों घन सावण के लहराए।[2]

(ट) सीस धुन इक ऐसे कहे हम हू जदुबीर के काम न आए।।[3]

(ठ) धन धन धन को भाखिए जाका जगत गुलाम।
सब निर्खत याको फिरे सब चल करत सलाम।[4]

(ड) दंत जीभ जिभ राखिहो, दुष्ट अरिष्ट संभार।।[5]

(ढ) कुकट को मारत न कोऊ नाम लेके,
ताहि मारत है ताको लेके खावंद को नाम है।।[6]

उपर्युक्त पंक्तियों में खरगोश के घेरने से कहीं सिंह डरा है, बाल बांका न होना, कुएं में पड़ना, कान न देना, पानी न मांगना, आंखें लाल होना खेत रहना, चाम के दाम चलाना, हरिन का शेर के मुंह में जाना, गाल बजाना, सीस धुनना आदि मुहावरों का ही परिवर्तित रूप है। काव्य पंक्ति में मुहावरों का न्यास प्राय: घट बढ के साथ ही संभव होता है। कवि सुविधानुसार मुहावरों के शब्दों को इधर उधर करके अभिव्यंजना को प्रवाह मयी बनाता है।

उदाहरण, ठ ड तथा ढ में नीति के कथन हैं जो कि भावों के प्रेषण में सहायक सिद्ध हुए हैं।

'विचित्र नाटक' की भाषा की सब से बड़ी विशेषता पात्रानुकूलता है। कवि ने पात्रों के अनुकूल ही अपनी भाषा की योजना की है। यथा कृष्णावतार में मुसलमान पात्र काल यमन अपना वार्तालाप फारसी भाषा में करता है :--

जंग दराहद काल जमन बगोहद कीम न फौज को शाहम।
बा मन जंग बुगोकुन व्याहरगिज दिल मो न जराकुन वाहम।
रोज मयां दुनीआ अफताबम सयाम शबे अदली सब शाहम।
काहु गुरेजी मकुन तु बिआ खुसमातुक छ नेजि जंग गुआहम।।[7]

विचित्र नाटक की भाषा की एक अन्य विशेषता यह कही जा सकती है कि कवि ने विभिन्न भाषाओं के शब्दों को ब्रज भाषा के साथ मिला कर उन्हें इस प्रकार प्रयुक्त किया है कि वे ब्रज भाषा के अपने से लगते हैं कहीं खटकते नहीं। यथा :--

---

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 464, (2) वही, पृष्ठ 507 (3) वही, पृष्ठ 514 (4) वही, पृष्ठ 41
5- वही, पृष्ठ 72, (6) वही, पृष्ठ 76 (7) वही, पृष्ठ 497।

नच्चे ताजी। गज्जे गाजी।डिग्गे वीर।तज्जे तीर ।।[1]

उपर्युक्त उद्धरण में `डिग्गे ;`नच्चे `,`गज्जे ` आदि पंजाबी शब्द इस प्रकार से आए हैं कि बुरे नहीं लगते। कहीं कहीं तो पूरे का पूरा छन्द पंजाबी और फारसी भाषा का आगया है ।यथा:--

पंजाबी:- जुट्टे वीर जुझारे घग्गां बज्जीआं।बज्जे नाद करारे दलां भुसाहदां।
लुज्झे कारणयारे संघट सूरमे।बुठ्ठेजाण् उशरे घराणिआ केबरी।।[2]

फारसी मिश्रित उर्दू :-

माते मनो अमल के ।हरीआ कि जाब तन के ।
आलम कुसाह खूबी ।वह गुल चिहर कहां है
जालम अढाह लीये ।खंजन खिसान कीये ।
जिन दिल हरा हमारा।वह यह बदन कहां है।
जालम अदाह लीने।जानुक खराब पीने ।
रुखसर जहानताबां।वह गुल बदन कहां है।[3]

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि विचित्र नाटक की भाषा में भावानुरूप सहज प्रवाह है और है भावों को व्यंजित करने की यथेष्ट सामर्थ्य ।

विचित्र नाटक भक्ति और वीर रस प्रधान रचना है।इसलिए समग्र रचनामें ओजस्विता,[4] सजीवता[5] और प्रभावशालिता[6] है। भावानुकूल शब्दों का चयन[7] और प्रयोग रचना के वाचन को बोझिल नहीं होने देता।वाक्य संरचना भी स्पष्ट और सुन्दर है फलत: कवि के मनोगत भाव सरलता और सजीवता के साथ व्यक्त हुए हैं।कुलमिलाकर विचित्र नाटक की शैली स्वाभाविक है।

1- दशम ग्रन्थ,पृष्ठ 229(2)वही, पृष्ठ 226 (3) वही,पृष्ठ 241 ।

4- खग खंड बिहंडं खल दल खंड अति रण मंडं बरबंडं।
भुजदंड अखंडं तेज प्रचंडं जाति अभंडे भान प्रभं।।(दशम ग्रन्थ,पृष्ठ39)।

5- जेठ समे सखी तीर नदी हम खेलत चित हुलास बढाई।
चंदन सो तन लीप समे सु गुलाबहि सो धरनी छिटकाई।
लाइ सुगंध भली कपरयो पर ताकी प्रभा बरनी नहीं जाई।
तान समे सरवदायक थी इह अउसर सयाम बिना दुखदाई।।--वही,पृष्ठ369।

6- पछमहि जीत दछन उजार।कुपिओ कछुक कलेकी वतार।
कीनो पयान पूरब दिसाण ।बजी अजेत पत्रं निसाण।।वही,पृष्ठ604।

7- कान सुनी धुनि देवन की सभ दानव मारन को प्रण कीनो।

(शेष अगले पृष्ठ पर देखिए)

काव्यदोष:- `विचित्र नाटक` सर्वथा निर्दोष नहीं है।उसमें कहीं कहीं कुछ दोष भी आगए हैं।इन दोषों का विभाजन इस प्रकार किया जा सकता है --

1-दु:श्रुत्व या श्रुति कटुत्व :- शृंगार रस के वर्णन में कहीं कहीं कवि ने श्रुति कटु वर्णों का प्रयोग किया है, जिसके कारण श्रुति कटुत्वदोष आगया है ।यथा :--

क्रिसमान सुता अति प्रेम की मन में जदुवीर को ध्यान लगे के ।
रोवत ही अति ही दुख सो संग काजर नीर गिरयो ढरेके।
ता छबि को जसु उच्च महाकवि सयाम कह्यो मुख ते उमगे के।
चंदहि को जु कलंक हुतो मनु नैननि पेंडु चलयो निचु रेके।[1]

यहाँ `पेंडु` शब्द खटकता है।इसके स्थान पर `राह` या मार्ग शब्द आ सकता था।

2-ग्राम्यत्व :- विचित्र नाटक की भाषा में कहीं कहीं ऐसेशब्द भी आगए हैं जिनके कारण भाषा का स्तर गिर गया है। यथा:--

(क) प्रीति करे प्रभु पायत है। क्रिपाल न भीजत लोउ कटाए।[2]

(ख) मारत है दल दैतन को छिन में। घन सो कर दीन उफीड़ा।[3]

3-पुनरुक्ति :- पुनरुक्ति दोष विचित्र नाटक में सर्वाधिक है।शब्दों की ही नहीं वाक्यों और उपमाओं की भी पुनरुक्तियां अनेक स्थलों पर हुई हैं।यथा:--

(क) जिम तिन कही तिने तिम कहिहों।[4]

~~(ख)~~ जो प्रभु जगति कहा सो कहिहों।[5]

(ख) जाकहु पहुच त्रिसूल प्रहारा।ताकहु मार ठउर ही हारा।[6]

जा पर मुसट त्रिसूल प्रहारा।ताकहु ठउर मारही हारा।[7]

(पिछले पृष्ठ का शेष)

4-
हुइके प्रतछ महा नर चंड सु क्रुध ह्वै जुध बिखे मन दीनो।
माल को फोर के काली भई लखिता छबि को कबि को मन मीनो।
दैत समूहि बिनासन को जस राज ते प्रित मनो भव लीनो।।वही,पृ081।

1- दशग्रन्थ, पृष्ठ330(2)वही,पृष्ठ 46(3)वही,पृष्ठ 315(4)वही,पृष्ठ 57

5- वही,पृष्ठ57 (6) वही,पृष्ठ 177 छन्द 13

7- वही,पृष्ठ 177 छन्द 24 ।

विभिन्न उपमाओं की पुनरावृत्ति भी हुई है ।

(ग) मनोगज्ज जुट्टे दंतारे दंतारे।[1] मनो गज्ज जुट्टे दंतारे दंतारे ।[2]

(घ) सुण के घुन सावण मेघ लज ।[3] सुणि के घुनि सावण मेघ लजं।।[4]

(ङ) घुणं मेघ लाजे।[5] घुणं मेघ लाजे।।[6]

इसी प्रकार निष्कलंकी अवतार में एक ही वाक्य कवि ने चार बार कहा है । यथा :--

संकर वरण प्रजा सभ होई।[7] संकर वरण प्रजा सभ होई।[8]

संकर वरण प्रजा भई।।[9] संकर वरण प्रजा भई ।[10]

इसी प्रकार --

लोचन है म्रिग के कट केहरि नाक किधो सुक सो तिहको है।
ग्रीव कपोत सी है तिह की अधरापिअ से हरि भूर तजो है।
कोकिल अउ पिक से बचनाम्रित सयाम कहे कबि सुंदर सोहे ।
पै इह ते लजके अब बोलत भूरत लै न करे खग रोहे।।[11]

यहां नायिका के वचनामृत के लिए कोकिल और पिक इन दोनों का प्रयोग सदोष है।ऐसा प्रतीत है जैसे कि कोकिल और पिक दो भिन्न पक्षी हों।दोनों का अर्थ एक होने के कारण यह पुनरुक्ति बड़ी खटकती है।

4- ख्याति विरुद्ध प्रयोग:- यह दोष भी विचित्र नाटक में पाया गया है ।

यथा:--

लोथन ऊपरि लोथ परि तह, गीध म्रिगालनि मासु चरिओ है।[12]

यहां गीधों और शृंगालों के लिए मांस चरना लिखा है।मांस खाया जाता है तथा घास चरा जाता है।अत: यह प्रयोग ख्याति विरुद्ध है।

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 67 छन्द 30। (2) वही, 163 छन्द 11 ।

3- वही, पृष्ठ 130, छन्द 15 । (4) वही, पृष्ठ 165 , छन्द 15 ।

5- वही, पृष्ठ 194 , छन्द 70। (6) वही, पृष्ठ 195 , छन्द 85 ।

7- वही, पृष्ठ572 छन्द, 9 (8) वही, पृष्ठ 572(छन्द 10।

9- वही, पृष्ठ 579, छन्द 115 (10) वही, पृष्ठ579 छन्द 116 ।

11- वही, पृष्ठ 283 । (12) वही, पृष्ठ 80 ।

घोर सी आ बन तूं सुकुमार कहो हम्सों कस ते निबहे है।
गुंजत सिंह हकारत कोल भयानक भील लखे भ्रम ऐहे।
सुकंत सांप बकारत बाघ भकारत भूत महा दुख पैहे।
तूं सुकुमार रची करतार बिचार चले तुहि किऊ बानिऐहे।[1]

यहां सिंह का गूंजना, कोल का हकारना, सांप का सूंघना बाघ का बकारना और भूत का भकारना सभी ख्याति विरुद्ध हैं।कोई भी कवि इनकी आवाज के लिए ऐसे शब्दों का प्रयोग नहीं करता न सामान्य जन ही ऐसा करता है।

इसी प्रकार :-- सुनिके मुख ते तिह सिंध जरा, अतिकोप के आंख सरोज[2] तहं।

सरोज कोमल आँख के लिएउपयुक्त उपमान है।क्रोध में लालनेत्रों के लिए इसका प्रयोग ख्याति विरुद्ध है।

२- अक्रमत्व दोष:- जहां तक विचित्र नाटक में आए सृष्टि वर्णन का संबंध है, उसमें अक्रमत्व दोष भी है।यहां पहले सिद्ध और फिर ऋषियों की उत्पत्ति बतलाई है।[3] इसी प्रकार महादीन(मुहम्मद)[4] का स्थान अंत में दिया गया है जबकि क्रमानुसार वह रामानन्द से ऊपर गोरखनाथ के आसपास आना चाहिए था।

इसी प्रकार `व्यास` अवतार प्रसंग में भी राजाओं का क्रम ठीक नहीं ।वेन के पुत्र पृथु थे,[5] किन्तु पृथु का उल्लेख बेन[6] से पूर्व हुआ है।इसी प्रकार मान्धाताराजा[7] सगर के पूर्वज थे किन्तु उनका वर्णन बाद में हुआ है।

6- समाप्त पुनरावृत्ता :- 'विचित्र नाटक' में यह दोष भी बड़े ही विकट रूप में उपस्थित हुआ है।कवि गुरु गोविन्दसिंह ने कई स्थानों पर अध्याय को समाप्त करके फिर उसी प्रसंग को दुबारा प्रारम्भ कर दिया है।अकाल पुरुष ने पहले सिद्धों की स्थापना की पर वे भी परमपुरुष को न पा सके क्योंकि वे अपना अपना पंथ चलाने में लगे रहे।[8] ऋषियों ने अपनी अपनी स्मृतियां रचनी प्रारम्भ कर दीं।[9] ब्रह्मा ने चार वेद बना डाले।परन्तु जिनकी लौ हरि चरणों में

1-दशम ग्रन्थ,पृष्ठ206(2)वही,पृष्ठ392(3)वही,पृष्ठ55-56(4)वही,पृष्ठ 56,
5- वही,पृष्ठ 620 (6)वही,पृष्ठ 621(7)वही,पृष्ठ622 (8)वही,पृष्ठ56,
9- वही, पृष्ठ56 (

लगी हुई थी भले ही उन्हें असीम यातनाएं सहन करनी पड़ी पर वे इन पंथों से अलग ही रहे।उनमें और प्रभु में कोई अन्तर न रहा।किन्तु जो व्यक्ति इन यातनाओं से डरता है परम पुरुष को छोड़ कर इन रास्तों पर भटकता है उन्हें नरक कुंड में गिरना पड़ता है।उन्हें बार बार इस संसार में जन्म लेना पड़ता है[1]। यों प्रसंग समाप्त करके--

तब हरि बहुरि दत्त उपजायो।[2]

कह कर पुन: पूर्व प्रसंग को आगे बढा दिया है।ये सभी स्थल सम्प्रेषणीयता के अवरोधक हैं।

7- अश्लीलत्व दोष:- 'विचित्र नाटक' में ऐसे प्रसंग भी आए हैं,जहां काम, भोग विलास का खुलकर वर्णन हुआ है।इन्हें अश्लील लत्व दोष कहा जा सकता है।यथा :--

कान्ह कही इस बात तिने कहि है हम जो तुम सो मन हो।
सभ ही मुखि चुम्बन देहु कह्यो चुभ है हम हुं तुम हुं गनिहो।
अरु तोरन देहु कह्यो सारही कुच न तरहु तुम को हनि हो।
तब ही पट देउ सभै तुमरे इह झूठ नही सतकंजनिहो।[3]

यहां 'तोरन देहु कुचे', अश्लील प्रयोग है। इसी प्रकार कृष्णावतार में ही उषा अनिरुद्ध के प्रसंग जब उन दोनों को दूती मिला देती है तो:--

चार प्रकार के भोग की यो नर नार हुलास हीये मे बढेके।
आसन कोक के बीच जिते कवि भाखत है सुबै इनके के।
बात कही अनरुद्ध कछु मुसकाइ त्रीया संग नैन न चेके।
जिऊ हमरी तुम हुइ रही सुंदरी तिऊ हमहू तुमरे रहे ह्वै के।[4]

यहां भी अश्लील वर्णन है।

8-अनुचितार्थत्व :- यह दोष भी विचित्र नाटक में है।लक्ष्मण का क्रोध में आकर माता कैकेयी के लिए रांड कुमांड तथा पिता के लिए बानर शब्द का प्रयोग अनुचितार्थ दोष के अन्तर्गत कहा जा सकता है।यथा:--

काम के बान बधियो बस कामन कूर कुचाल महामति हीने।
रांड कुमांड के हाथ बिकियो कपि नाचत नाच छरी जिम चीने।[5]

विचित्र नाटक में काव्यत्व की दृष्टि से भले ही कुछ दोष आगए हैं किन्तु फिर भी सम्प्रेषण की दृष्टि से यह रचना सफल है क्योंकि कविता गुरु कवि के लिए साधन थी साध्य नहीं।

1- दशम ग्रन्थ,पृष्ठ256(2)वही,पृष्ठ256(3)वही,पृष्ठ287(4)वही,पृष्ठ533,
2- वही,पृष्ठ 207।

छन्द विधान :-

'विचित्र नाटक' की सर्वश्रेष्ठता का अतिरिक्त रहस्य उसकी छन्द योजना पर निर्भर है। कवि वीर, शृंगार, वात्सल्य आदि विभिन्न रसों की व्यंजना के लिए अनुकूल वर्णों पर ही आश्रित नहीं रहा अपितु उसने उनकी अभिव्यक्ति के लिए अनुकूल व उपयुक्त छन्दों का चयन भी किया है।

'विचित्र नाटक' एक वीर-रस प्रधान रचना कही जा सकती है। वैसे तो इसमें शृंगार, शान्त, करुणा आदि रसों का भी समावेश है। युद्धोचित वातावरण कवि ने उपयुक्त छन्द द्वारा भी उत्पन्न किया है।

'विचित्र नाटक' में उन्होंने वार्णिक तथा मात्रिक दोनों प्रकार के छन्दों को अपनाया है। इसमें कुछ छन्द जो नये हैं, जिनका प्रयोग कवि गुरु ने 'जापु', 'अकाल उस्तुति' तथा 'ज्ञान-प्रबोध' में किया है। परन्तु उनके अतिरिक्त निम्नलिखित विशुद्ध ही नवीन छन्दों का प्रयोग विचित्र नाटक में किया है, जो अन्य रचनाओं में प्रयुक्त नहीं हुए। इन छन्दों के नाम निम्नलिखित हैं :--

वार्णिक :-

दोहा-त्रिभंगी, चौपई, [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], अड़िल, [illegible], [illegible], [illegible], कंठ, कुलका, कृपाण, क्रीड़ा, नराज, निशानिका, तिलका, त्रिगता, त्रिणणिण, [illegible], [illegible],

[illegible]

[illegible]:-- [illegible]

[illegible]

[illegible]

प्रसंगों में इस छन्द का प्रयोग किया है।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]:--

[illegible]--

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]--

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible], [illegible], [illegible], [illegible] [illegible], [illegible], [illegible] [illegible]:--

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] [illegible] [illegible] [

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

युद्ध की विस्फोटक स्थिति के क्षण में शत्रु सार छन्द का उदाहरण देखिए:--

हुँ किराण , हुँ किराण ।
रण्मे पुधार ।मण्मे अहीर ।[1]

रणभूमि और मल्लयुद्ध दोनों ही वीर छन्द वैशिष्ट्य में विशेषता लाने के लिए कवि ने उसका प्रयोग किया है ।इस प्रकार के छंदों की गति के चाहत के कारण में उत्साह भावपूर्ण होता है।इसी लिए कवि ने वीर छन्दों का प्रयोगविधान तथा रणभूमि में युद्ध की भयंकरता के लिए कवि ने अक्ष छन्द का प्रयोग वीर रौद्र के सम्पर्क से किया ---

टूटे धीरं ।टूटे वीरं ।
टूटा आरं । टूटे तारं ।
औ ओरं । धौ धौरं ।
तरे चक्रं । तरे चक्रं ।।[2]

दीर्घ छन्दों में भावभिव्यक्ति कवि द्वारा यति को लघु खण्डों में विभाजित करके युद्ध का गतिशील वर्णन किया है--

दुनियो त्रिसारं सक्ति भारं, पर्व त्रिसारं, भरि आरं ।
तरि तरं पुरं, रुप रुक्कं, उमरा नुरं, पुन तारं ।
छंद पु त्रिमाणं , भाण भमाणं, तपे भुवनं, तन तारं ।
तप्पि तंगकरोलं, भाट डेर घोडं, उमग हीलं रण मारं ।[3]

उक्त पंक्तियों में छंद ६ त्रिमात्रिक छन्द को कवि ने शक्तिपूर्ण भावों द्वारा विभाजित कर युद्ध की भयंकरता का वर्णन किया है।यहीं कवि ने शीघ्रता के छन्द त्रिमात्रिक ८८ मात्राएं होती है अतः ८ और ७ मात्रा पर यति को लघु रूप में प्रयुक्त किया है।यथा:--

घुमे धरं ।गरे धरं ।
चले चरो ।गटं गरो।
रट हरं।गिरं गटं।
रुपे रणं । घुमे रणं ।
गिरे धरं ।हुओ गरं ।
धरं तरे ।धरं धरे ।।[4]

1-रासो ग्रन्थ,पृष्ठ ८८३(८)वही,पृष्ठ८८८(७) वही,पृष्ठ८८७(४)वही,पृष्ठ ८८३-८८।

युद्ध की घोर हलचल के लिए गुरु गोविन्दसिंह ने रावण कृत शिवस्तोत्र की प्रतिकृति के समान अनूप नराज छन्द को भी अपनाया है --

गजं गजे ह्यं हले हला हली हलो हलं ।
बबज्ज सिंधरे सुटं घुटंत बाण केवलं ।
पपक्क पक्खरे तुटे भभक्ख घाइ निरमलं ।
पलुत्थ लुत्थ बित्थरी अमत्थ जुत्थ उत्थलं ।
अजुत्थ लुत्थ बित्थरी मिलंत हत्थ बक्खयं ।
अधुम्म घाइ घुम्मए बबक्क वीर दुद्धरं ।
किलंकटंत खप्परी पिपंत सोता पाणयं ।
हहक्क भैरवं सतं उठंत जुद्ध ज्वालयं ।[1]

शब्द विशेष में अर्थ की अस्पष्टता भी महायुद्ध ज्वाला की सम्प्रेष्णीयता में बाधा नहीं बन पाई । यह सब छन्द का ही प्रभाव है ।

शस्त्रों के उत्थान पतन के चित्र को कवि ने इस तिलकडीया छन्द में अंकित करके कितना सम्प्रेषणीय बना डाला है ।--

चटाक चीटै । अटाक ओटै।
फड़ाक फाडै । तड़ाक ताडै ।
फिरन्त दूरं । बरंत सूरं ।
रणं कनोहं । उठंत क्रोहं ।
मरंत पत्रं ।तुरंत अत्रं ।
फडंत अगनं ।जलं तजगनं ।
तुरंत खोलं ।जुटंत टोलं ।
खिमंत खग्गं ।उठंत अग्गं ।[2]

युद्ध का ऐसा जीता जागता चित्र शायद अन्यत्र दुर्लभ है ।युद्ध के प्राय: समस्त ध्वनि चित्रों का श्रेय गुरु गोविन्दसिंह के छन्द चातुर्य को ही है :--

त्रिणाणिणा तीरं ।त्रिणाणिणा बीरं ।
ढुणाणाण ढालं ,जणाणाण ज्वालं ।
खणाणाण खोलं ।त्रणाणाण बोलं ।
क्रणाणाण रोसं ।त्रणाणाण जोसं ।[3]

1- दशमग्रन्थ,पृष्ठ 212 ।(2) वही,पृष्ठ 226(3) वही,पृष्ठ 231 ।

इसको पढ़ सुन कर कोई क्या समझे पर इसे पढ़ा भी जाता है। सुना भी जाता है। झूमा भी जाता है। अनुभूति भी उठती है।प्रतिक्रिया भी जगती है।सो सब प्रताप किसका है। `त्रिणाणिणा ` छन्द का न ।

कवि ने युद्धों के भयंकर वातावरण को सम्प्रेषणीय बनाने के लिए संगीत छन्दों का भी प्रयोग किया है। युद्ध में ढोल नगाड़ों तथा अन्य वाद्य यन्त्रों से विभिन्न ध्वनियों कोउत्पन्न कर सैनिकों को प्रोत्साहित किया जाता है।गुरु गोबिन्दसिंह ने यह ध्वनि प्रयोग अपने युद्ध चित्रों में खूब किया है। वीर रस के उपयुक्त छन्दों-कृप्पय,नराज, पद्धष्टिका पाधड़ी, बहड़, भुजंग प्रयात और मधुभार छन्दों को उनके लक्षणों के अन्तर्गत उन्होंने संगीत ध्वनियां दीं जो तबला और मृदंग के बोलों के उपयुक्त थीं।ऐसे छन्दों में प्रयुक्त शब्दावली के अर्थ का नहीं केवल ध्वनि का ही महत्व होता है।यथा:--

संगीत मधुभार छन्द :-

कागड़दं कड़ाक।तागड़दं तड़ाक।
सागड़दं सुबीर।गागड़दं गहीर।
नागड़दं निसाण।जागड़दं जुआण।
नागड़ दी निशां पागड़दी पलंग।
तागड़दी तमक्कि।लागड़दी लड़क्कि।
कागड़दं क्रिपाण।बाहे जुआण।[1]

संगीत बहड़ा छन्द :-

कागड़दी कटक कपि भज्यो लागड़दी लछमण जुज्झयो जब।
रागड़दी राम सिर भरयो सागड़दी गहिअसत्र ससत्र सब।
घागड़दी घडल घड हड्यो कागड़दी कोडमकडक्यो।
भागडदी भूमि भडहड़ी पागडदी जनपले पलट्टयो।[2]

गुरु गोविन्दसिंह के पास बहुत से लोग संगत के रुप में बैठते थे,तो भक्ति और वीर का संचार करने के लिए इन संगीत छन्दों का प्रयोग किया।गुरु नानक

1- दशम ग्रन्थ,पृष्ठ 111-12। (2) वही, पृष्ठ 233।

ने भी संगीत का प्रयोग किया।वह परिपाटी नष्ट न हो और लोगों में उत्साह भी हो इसलिए इस प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया गया । वास्तव में रीति-कालीन वातावरण का यह प्रभाव है । संस्कृत में चित्र काव्य तथा 'पहेलिका' आदि के अन्तर्गत वाणभट , माघ तथा भारवि ने इस प्रकार के प्रयोग किए ।

'विचित्र नाटक' में कुछ ऐसे छन्दों का भी प्रयोग हुआ है ।जिनके नाम ही उनकी विशिष्ट प्रकृति के सूचक है। मइथुआ, त्रिड़का त्रिणा, त्रिणका ऐसे ही छन्द है। मइथुआ का अर्थ है मइकना अथवा अत्यधिक उग्रता तथा 'त्रिइका' का अर्थ है तिइकना, कांच के टुकड़ों की भांति ।युद्ध के आवेश पूर्ण उग्रता वरेवातावरण को प्रकट करने के लिए इन छन्दों का प्रयोग अत्यधिक सार्थक सिद्ध हुआ है ।यथा:--

मइथुआ छंद :-

टुटंतं खोलं ।ढमंकंत ढालं ।
टुटंतं तालं ,नचतं तालं ।
गिरंतं आं । कटंतं जंतं ।
चलंतं तीरं ।मटकंत भीरं ।
जुझंतैंत वीरं ।भजे तैत भीरं ।
करे तैंत कोहं ,मटैंतैत रोहं ।।[1]

त्रिइका छन्द :-

त्रिइडिइ ताजी ।त्रिइडिइ बाजी ।
त्रिइडिइ हाथी, त्रिइडिइ साथी ।
त्रिइ डिइ बाणं ।त्रिइ डिइ ज्वानं ।
त्रिइडिइ घोरे ।त्रिइडिइ डोरें ।[2]

कितना व्यंजक एवं ध्वनिपूर्ण छन्द हैं । अश्वों हाथियों ,जवानों तीरों के विभिन्न रुप , आकार एवं कृत्य ध्वनि युक्त होकर साकार हो जाते हैं ।

यहीं बस नहीं कवि ने गेयशैली में भी युद्ध वर्णन किया है ।पारसनाथ अवतार' में कवि ने इसी शैली का उदाहरण कहा जा सकता है।ऐसे नवीन प्रयोगों से युद्ध भूमि को रागरंग स्थली में परिवर्तित कर दिया है ।

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 585 ।

2- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 595 ।

दहदिस धावत भए जुझारे ।
मुदगर गुफन गुरज गोला ले पट्टसि परध प्रहारे ।
गिरगिर परे सुभटरन मंडल जानुब्संत खिलारे ।
उठ उठ भए जुध कउप्रापत रोह भरे रजज्वारे।
भख भख बीर पीस दांतन कह रण मंडली हकारे ।
बरछी बान क्रियान गजाइघु असत ससत्र संभारे ।
भसमीभूत भए गंध्रव गण दामात देव पुकारे ।
हम भत भंद चरण सरणागत कहि न लेत उबारे[1] ।।

गेय शैली में युक्त वर्णन की यह परंपरा महाराष्ट्र में अभी तक विद्यमान है।वर्तमान काल के स्वर्गीय संत तुकडो दास इसी प्रकार `पवाडे ` तथा `वीर रस ` के भजनो द्वारा वीर भावनाओं का संचार करते थे ।गोविन्दसिंह ने भी उसी परंपरा को अपनाया।गाने वाले स्वांग करने वालों के समान जनता में विभिन्न कथाओं को गा कर सुनाया करते थे।जनता इनसे बहुत प्रभावित होती थी।गुरु गोविन्दसिंह एक कुशल नेता थे।इसलिए उन्होंने जनता में अत्याचारियों से लड़ने के लिए वीरता की भावना को अनेक साधनों से जगाया ।तभी तो वे अपने बारे में कह सके --`

चिड़ियन सेती बाज लड़ाऊं तौ गुरु गोविन्द नाम कहाऊं ।`

विचित्र नाटक में कवि गुरु ने प्रसंग और भावानुरुप छन्दों का प्रयोग किया है । ~~अपर~~ ऊपर युद्ध वर्णन के कुछ उदाहरण प्रस्तुत किए।अन्य स्थलों पर भी कवि ने विविध प्रकार के मनोवेगों के व्यंजना के लिए तदनुरुप लय रखने वाले छन्दों का प्रयोग किया है ।`रामावतार` में राम वन गमन तथा दशरथ मृत्यु के कारुणिक प्रसंगों में दोहा ,बिजे और मनोहर आदि ७ कोमल और मंदगामी छन्दों का प्रयोग किया गया है। परन्तु इसी रचना में कैकेयी के वर मांगने वाले प्रसंग में दशरथ कैकेयी संवाद में कवि ने क्षिप्र गति छन्दों का प्रयोग किया है।इस प्रसंग में कवि ने नग सरुपी अंधा तथा उगाघ छन्द का प्रयोग किया है जिसके कारण बार्ता-लाप में विशेष प्रकार की तेजी आ गई है।कैकेयी ने वर मांगे :--

---

1- दशम ग्रन्थ,पृष्ठ630 ।। (2) वही, पृष्ठ 204 ॥

न लाजीए । न भाजीए। रघुएस को । बनेस को ।
विदा करो , धरा हरो , न भाजीऐं । विराजीऐं ।[1]

दशरथ का क्रोध भरा उत्तर --

कलंक रुपा । कुविर त कूपा ।निलज्ज नेकी ।कुबाक वैणी ।
कलंक करनी ।सुभ्रिघहरनी ।अक्रित करमा।निलज्ज धरमा।।[2]

यहाँ छन्द के माध्यम से ही कवि ने कैकेयी और दशरथ के हृदयगत भावों को अभिव्यक्ति दी है,दशरथ का उत्तर इस प्रकार तेजी पकड रहा है मानो क्रोध में भरा व्यक्ति गाली दे रहा हो ।

`विचित्र नाटक ` के छन्द विधान की एक और विशेषता भी है और वह यह कि जहाँ छन्द वैविध्य है वहाँ अलंकार गौण पड गए है यथा--

`चंडी चरित्र द्वितीय `, `रामावतार तथा कल्कि-अवतार` में और जहाँ छन्द वैविध्य नहीं है,वहाँ अलंकार अपनी पराकाष्ठा को पहुंच गए हैं-- यथा कृष्णावतार चंडी चरित्र (उक्ति विलास) में ।[3] 864 छन्दों की रचना `रामावतार` में 66 प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है ।इसी प्रकार चंडी चरित्र द्वितीय में 262 छन्द है जिसमें 18 प्रकार के छन्द प्रयुक्त हुए हैं सर्वाधिक छन्द परिवर्तन तो `निष्कलंकी अवतार` में है 536 छन्दों की इस रचना में 80 प्रकार के छन्द प्रयुक्त हुए हैं । इसके विपरीत चण्डी चरित्र उक्ति विलास जो 232 छंदों की रचना है में केवल 7 प्रकार के छन्द है तथा 2492 छन्दों की रचना कृष्णावतार में केवल 12 प्रकार के छन्द अपनाए गए है । जितना छन्द वैविध्य` विचित्र नाटक ` में है उतना केवल` राम चन्द्रिका` में ही मिलता है और किसी ग्रन्थ में नहीं ।दशम ग्रन्थ का छन्द विधान रामचन्द्रिका से प्रभावित लगता है। क्योंकि रामचन्द्रिका की रचना संवत् 1698 में हुई थी और गुरु गोविन्दसिंह का रचना काल 1765 का है ।रामचन्द्रिका के रचयिता केशव का पुत्र कुंवरेश गुरु गोविन्दसिंह के दरबार में था।यह तथ्य सर्वमान्य है।[4] वह अपने साथ

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 204 । (2) वही, पृष्ठ2024 ।
3= डा0 रत्नसिंह जग्गा-दशम ग्रन्थ की पौराणिक पृष्ठभूमि ,पृष्ठ 315 ।
4- दी टेन्थ मास्टर, गुरुगोविन्दसिंह फाउंडेशन हिन्दी भाग,पृष्ठ18 ।

रामचन्द्रिका की प्रति अवश्य ही लाया होगा । इस प्रकार विचित्र नाटक का कवि रामचन्द्रिका से प्रभावित लगता है।केशव की रामचन्द्रिका से तुलना करने पर पता चलता है। कुछ ऐसे छन्दों का प्रयोग विचित्र नाटक में है। जिनका प्रयोग रामचन्द्रिका में भी हुआ है।यथा विचित्र नाटक में प्रयुक्त कुसम विचित्र, कुमार ललित, प्रिया नवपदी , षटपदी, पादाकुलक आभीर, हरिगीतिका, हीरक, चामर चंचला, झूलना, नागस्वरुपणी, विशेषक, भगवती, विजया, तार्टक, सुखदा, चामर मधुरभार, भालती, निशिपालक, सुन्दरी, पदमावती, पंकजवाटिका सोमराजी हीरक आदि कितने ही ऐसे छन्द है जिनका प्रयोग अन्यत्र बहुत कम हुआ है मे `रामचन्द्रिका ` से ही लिए गए प्रतीत होते हैं।

`विचित्र - नाटक ` में हमें अन्त्यानुप्रास की नुपुर युक्त गति की झंकार प्रत्येक पद्य में मिल जाएगी।चौबोला, सिरखंडी छन्द को छोड कर शेष सभी छन्द अन्त्यानुप्रास युक्त है । कुछ छन्दों में समविषमान्त्यानुप्रास रुप भी है ।

डा० हरिभजनसिंह के अनुसार --` विचित्र नाटक` में तीन प्रकार की वर्णन शैलियों का प्रयोग हुआ है ---

1- कवित्त-सवैया शैली

2- पद्धटिका-शैली ।

3- विष्णुपदी-शैली ।

0- प्रत्येक शैली का अपना विशिष्ट प्रवाह और प्रभाव है । कवित्त सवैया शैली का प्रयोग सालंकार चित्रण के लिए हुआ है। ऐसा चित्रण चाक्षुष सौन्दर्य का सृजन करता है ।पद्धटिका शैली का प्रयोग अलंकार हीन, प्रकृति चित्रण के लिए हुआ है ।पद्धटिका शैली का वैशिष्ट्य युद्ध की गति और ध्वनि को अंकित करने में है ।ऐसे अंकन से मुख्यत: कर्णेन्द्रियों की सन्तुष्टि होती है । युद्ध वर्णन के लिए विष्णु पदशैली का प्रयोग बहुत कम देखने में आता है ।वीर-गाथा कालीन कवियों अथवा रीति कालीन कवियों अथवा रीतिकालीन कवि भूषण में यह प्रवृत्ति नहीं पाई जाती । गुरु गोविन्द सिंह ने पारसनाथ रुप्रावतार में इस शैली का प्रयोग किया है । पद अथवा गीत का प्रयोग अधिकतर प्रणय निवेदन के लिए ही होता रहा है।गीतों में चित्रित युद्ध दृश्यों को पढ कर ऐसा प्रतीत होता है जैसे युद्ध सुन्दरी कवि की अपनी प्रेयसी है।युद्ध के लिए ऐसे

आत्मीय अनुराग के दर्शन अन्यत्र सर्वत्र अलभ्य है।[1]

अभिप्राय यह है कि छन्द सौष्ठव `विचित्र नाटक` में विशेष स्थान रखता है।गुरु कवि ने तदरसानुकूल छन्दों का ही प्रयोग किया है।सभी छन्द अपने अपने लक्षणों पर खरे उतरते हैं कहीं दोष युक्त प्रतीत होते हुए भी उच्चारण तथा लय की दृष्टि से ठीक है। इन दोषों के दो कारण कहे जा सकते हैं। एक तो गुरुमुखी लिपि का प्रयोग तथा प्रतिलिपि कारों की असावधानी।

गुरुमुखी लिपि में संयुक्ताक्षरों का लगभग अभाव है इसलिए जहां उच्चारण में संयुक्ताक्षर अभीष्ट है ,वहां लेखन में वह दोष युक्त प्रतीत होता है।इसलिए यदि गुरुमुख लिपि को हम देवनागरी में लिप्यान्तरित करें तब तो यह दोष प्रतीत होता है।अन्यथा उच्चारण की दृष्टि से दोष नहीं। यथा :--

रचा बेर बार बिधाते अपार।
जिसे साधि साकिओ न कोऊ सुधार।[2]

यहां भुजंग प्रयात छन्द में साक्यो ` के साकिओ ` रुपान्तर ने छन्द भंग कर दिया और चार भगण वाला नियम टूट कर रह गया।इसी प्रकार--

सरोष सूर साजिअ। विसारि संक बाजिअं।
निसंक ससत्र मारहीं।उतार अंग डारही।।[3]

इस नराज छन्द में `सस्त्र ` के `ससत्र ` हो जाने से छन्द में दोष आ गया है। यहां यदि `सस्त्र ` शब्द प्रयोग किया जाए,तो छन्द दोष मुक्त हो जाता है। ऐसे अनेक उदाहरण रुप में प्रस्तुत किए जा सकते हैं।

दोहा, चौपाई जैसे मात्रिक छन्दों पर गुरुमुखी लिपि के कारण उतना प्रभाव नहीं पड़ा जितना वार्णिक छन्दों पर क्योंकि आधे अक्षर के हटने से यदि एक ओर मात्रा बढ़ी है,तो संयुक्ताक्षर के घट जाने से दूसरी ओर यह निर्दोषिता सर्वत्र नहीं रह पाई है।यथा :--

---

1- डा० हरिभजनसिंह, गुरुमुखी लिपि में उपलब्ध हिन्दी काव्य ,पृष्ठ242।
2- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 49।
3- वही, पृष्ठ 50।

तिन बेदीयन के कुल बिखे प्रगटे नानक राई ।
सभ सिक्खन को सुख दए जह तह भए सहाई ।।[1]

इस दोहे में बे दिन , राय और सहाय के स्थान पर बेदीअन, राई ,सहाई हो जाने से यात्राएं बढ़ गई हैं क्योंकि पंजाबी में दीर्घ मात्रा के साथ लिखने की परिपाटी है।पंजाबी उच्चारण हिन्दी उच्चारण की अपेक्षा कुछ दीर्घता है भी ।

दशम ग्रन्थ की अनेक प्रतिलिपियां उपलब्ध हैं । इन प्रतिलिपि कारों की असावधानी से भी अनेक छन्द दोषयुक्त हो गए हैं। किंचित परिवर्तन से छन्द का रूप संवर सकता था तो भी ऐसा उद्योग नहीं किया गया ।एक उदाहरण पर्याप्त होगा --

हरि सोह रहे सज सैन तहां
जल जालकराल बिसाल जहां ।

मयो नाभ सरोज तें बिसुकारतो ।

प्रत मैल तें दैत रचे जुग तो।[2]

इस तोटक[3] छन्दमें लक्षणानुसार चार सगण होते है । प्रस्तुत छन्द के पहले दो चरण तो लक्षण के अनुसार है किन्तु तीसरा और चौथा चरण लक्षण के अनुसार नहीं । यह दोष प्रतिलिपि कारों की असावधानी से ही आया है ।

अलंकार विधान :-

'विचित्र नाटक' में कवि गुरु गोविन्दसिंह ने अलंकारों के माध्यम से भी संप्रेषण शक्ति को बहुत अधिक बढ़ाया है । कवि ने इस रचना में अलंकारों का सायास प्रयोग नहीं किया । अपितु ये अलंकार तो अप्रयत्नज कहे जा सकते हैं । शब्दालंकारों में कवि ने सर्वाधिक प्रयोग अनुप्रास का किया है । अनुप्रास के इस प्रयोग के द्वारा कवि ने एक विशेष प्रकार का कर्ण-प्रिय नाद उत्पन्न किया है।इसी प्रकार अर्थालंकारों में सर्वाधिक प्रयोग साधर्म्य मूलक अलंकारों उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपक का किया है क्योंकि इनके द्वारा एक विशेष प्रकार का चित्र हमारी आँखों के सम्मुख उपस्थित हो जाता है।

1- दशम ग्रन्थ,पृष्ठ 53(2)वही,पृष्ठ 74 (3)तोटकछंद में चार सगण होते हैं।
हिंदीसाहित्य कोष,प्रथमभाग,पृ.362।

अनुप्रास :- गुरु गोविन्दसिंह जी की अन्य रचनाओं के समान 'विचित्र नाटक' में भी अनुप्रास का सौन्दर्य बिखरा पड़ा है। वर्णों की प्रसंगानुकूल सुगठित योजना से प्रसंगों का चित्र सा खिंच उठता है। गुरु कवि की अनुप्रास योजना में केवल नाद संगीत ही नहीं अपितु अर्थ प्रकाशिनी क्षमता की अतिशयता भी है। कवि का शब्द भण्डार बड़ा विशाल है तथा शब्दों का मर्म समझ कर उनका सार्थक प्रयोग हुआ है। महान कवि ने अत्यन्त कुशलता से कृत्रिमता तथा शिथिलता से बच कर अनुप्रासों का विधान किया है। यही कारण है कि उनका नैसर्गिक सौन्दर्य प्रभाता के चित्त को चमत्कृत कर देता है।

छेकानुप्रास :- विचित्र नाटक में सर्वत्र छेकानुप्रास की छटा देखी जा सकती है।

यथा :--

(क) हरि सोई रहे सज सैन तहां। जल जाल कराल बिसाल जहां[1]

(ख) दैतन के बध को जबै चण्डी की ओ प्रकास।
सिंह संख अउ असत्र सब ससत्र आइगे पास।[2]

(ग) ऐस ताहि संहार के कर जग्ग मंडल मंड।
आइगे तब लउ निसाचर दीह दोइ प्रचंड।।[3]

(घ) इतराज दयो त्रिप कउ जब ही उतकंस वधू पितपास गई।
अतिदीन सुदीन मलीन महामन के दुःख सो सोई रोत भई।[4]

यहां (क) 'सज-सैन,' 'जल-जाल,' 'कराल-बिसाल' (ख) सिंह-संख,' 'अउ असत्र,' 'सब ससत्र,' (ग) कै-कर, मंडल-मंड, 'दीह-दोह,' (घ) 'पित-पास,' 'छीन-मलीन,' 'महामन,' 'सोइ सोई' आदि में केवल स, ज, क, स, अ, स, क, म, द, प, न, म, स आदि की आवृत्ति से केवल वर्णगत चमत्कार ही नहीं उत्पन्न हुआ है अपितु एक निश्चित ताल का क्रम भी है। आवृत्ति के इस क्रम निबंधन से जो नाद-संगति उत्पन्न हो गई है उससे वर्ण्य विषय का बड़ा ही जीवंत तथा भंगिमायुक्त चित्र उभर उठा है।

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 74।

2- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 76।

3- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 194।

4- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 392।

वृत्यानुप्रास :- विचित्र नाटक में आद्यंत वृत्यानुप्रास का सौन्दर्य दृष्टिगत होता है।कवि ने एक वर्ण ही नहीं अनेक वर्णों की अत्यंत कुशलता से आवृत्ति करके अभिव्यक्ति को संगीत एवं गति प्रदान की है ।

(क) नव किंकण नेवर नाद हुअं ।
चल चाल सभा चल कम्प भुअं ।
कण घुंघर घंटण घोट सुर ।
चर चार चरा चरयं हुहरं ।।[1]

(ख) दारुण दीरघु दिग्गज से बल सिंहहि के बल सिंह घरे हैं ।
रोम मनो सर कलहि के जन पाहन पीत से छिद्र हरे हैं ।[2]

(ग) गंज गजे हयं हले हला हली हलो हल ।[3]

(घ) अस टुट्टे लुटटे घने तुट्टे सस्त्र अनेक ।
जे जुट्टे कट्टे सबै रह गये भूपत एक ।।[4]

उपर्युक्त उद्धरणों (क) न, च और घ ,(ख) द, ह और प(ग)ग,ह, ल (घ) ट्ट आदि वर्णों की आवृत्ति अनेक बार हुई है।इन वर्णों की योजना में ऐसी सांगीतिक गत्यात्मकता है कि पाठक के मानस में सारा क्रिया व्यापार ही कौंध जाता है ।

लाटानुप्रास :- लाटानुप्रास का प्रयोग 'विचित्र नाटक' भले ही कम स्थानों पर हुआ है परन्तु जहां भी कवि ने उसका प्रयोग किया है उससे काव्य की सम्प्रेषणीयता बढी है घटी नहीं । यथा :--

(क) अखंड खंड खंड के अखंड डंडडंड है ।
अजीत जीत जीत के असेख राज मेउ है ।[5]

(ख) सु घूम घूम घूम ही ।करत सैन भूम ही ।[6]

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 42 । (4) दशम ग्रन्थ,पृष्ठ 595 ।
2- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 76 । (5) दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 191।
3- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 212। (6) दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 185।

श्रुत्यानुप्रास :- 'विचित्र नाटक' में श्रुत्यानुप्रास के भी अनेक उदाहरण मिलते हैं।

(क) चल चौदहुं चक्रन चक्र फिरं।
बढ्वं करवं हरिअं सुभरं।
जंग जीव जिते जलयं थलयं।
अस को जु तवायसुअ भलयं।।[1]

(ख) घटा सावणं जाण स्यामं सुहायं।
मणी नील नगियं लखं सीस निआयं।।[2]

उपर्युक्त दोनों उद्धरणों में एक ही उच्चारण स्थान से बोले जाने वाले वर्णों की आवृत्ति हुई है। (क) में च और ज तालव्य वर्णों तथा (ख) के स, ष तथा ण दन्त्य, ओष्ठ्य तथा मूर्धन्य वर्णों की आवृत्ति से एक विशेष प्रकार का नाद उत्पन्न हुआ है।

अन्त्यानुप्रास :- विचित्र नाटक में प्राय: स्वाभाविक अंत्यानुप्रास विधान हुआ है। कवि ने शब्द के मर्म को समझ कर उचित स्थान पर उनका प्रयोग करके काव्य को नाद सौन्दर्य से युक्त किया है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य

सर्वान्त्यानुप्रास:-

(क) लैकरि चंड कुवंड प्रचंड महा बरबंड तबै इह कीनो।
एक ही बार निहार हंकार सुधार बिदार समै दलु दीनो।
दैत घने रन माहि हने लखी ग्रोन सने कवि हउ मन चीनो।
जिउ खगराज बहो अहि राज समाज के काट कता करिलीनो।।[3]

(ख) कान्ह तरै तरु के मुरली सु बजाइ उठ्यो तन को कर ऐंडो।
मोह रही जमना खग अउहरि जच्छ समै अरनाअरु गैंडा।
पंडित मोहि रहे सुन के अरु मोहि गए सुन के जन जैंडा।
बात कही कवि नै मुख ते मुरली इह नाहन रागन पैंडा।।[4]

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 43। (2) वही, पृष्ठ 43।
3- वही, पृष्ठ चण्डी चरित्र प्रथम छन्द 36।
4- कृष्णावतार, 195।

यहाँ कीनो, दीनो, चीनो, लीनो तथा रेहा, गेंहा, जेहा, पेंहा आदि की योजना से अभिव्यक्ति अत्यन्त प्रभावशाली बन गई है। सर्वान्त्यानुप्रास के अतिरिक्त विषमान्त्यानुप्रास तथा सम विषमान्त्यानुप्रास के उदाहरण भी विचित्र नाटक में देखे जा सकते हैं।यथा :--

दुंदभ तबै बजाइ आए जो मथुरा निकटि।
ता छबि को निरखाइ हरख भयो हरिखाइके ।।[1]

(विषमान्त्यानुप्रास)

तुमरी प्रभा तुमै बनि आई। औरन ते नहीं जात बताई।
तुमरी क्रिया तुम ही प्रभ जानो, ऊच नीच कस सकत बखानो।[2]

(सम विषमान्त्यानुप्रास)

'विचित्र नाटक' में अनुप्रास के अतिरिक्त यमक, वीप्सा वक्रोक्ति तथा श्लेष आदि शब्दालंकारों का प्रयोग भी अनेक स्थलों पर मिलता है।

यमक :- रीतिकालीन काव्य में जहाँ यमक अलंकार के प्रयोग से चमत्कार की सृष्टि हुई है वहाँ प्रस्तुत काव्य में इसकी सहज नियोजना से एक विशेष सौन्दर्य सृष्टि की है।

(क) हरि सो मुख है हरिती दुःख है अलकें हरि हार प्रभा हरनी है।
लोचन है हरि से सर से हरि से भसटे हरि सी बरुनी है।
केहरि से करिहा चलबो हरि पै हरि की हरिनी तरनी है।
है कर मै हरि पे हरि सो हरि रूप किए हरि की घरनी है।[3]

प्रस्तुत पद्य में हरि शब्द का प्रयोग क्रमशः चन्द्रमा, नष्ट करना, शिव, चुराना, कमल धनुष, बाण, सिंह, हाथी, कामदेव, तलवार, सूर्य आदि अनेक अर्थों में हुआ है।यहाँ हरि शब्द में केवल नाद चमत्कार ही नहीं अपितु अर्थ सौन्दर्य भी है।

(ख) अपनो बल धार संहार के दानव दूर करै सभ भूतल सो
बहु भूत पिसाचन काकनि डाकनि तोख करै पल मैं पल सो।[4]

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 257। (2) वही, पृष्ठ 47।

3- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 82। (4)(क) वही, पृष्ठ 393।
(ख) देखो प्रैक्टिकल संस्कृत इंगलिशडिक्शनरी आप्टे, पृष्ठ 605।

यहाँ पल शब्द के दो अर्थ हैं पहले पल का अर्थ क्षण तथा दूसरे का मांस ।

(ग) गहि बाण क्रिपाण बिखै न हरिओ ।
रिस सो रण चित्र बचित्र करिओ ।।[1]

यहाँ निरर्थक शब्द चित्र ` की आवृत्ति होने से यमक अलंकार है क्योंकि विचित्र शब्द तो सार्थक है किन्तु उसके चित्त का कोई अर्थ नहीं ।

श्लेष :- श्लेष में भावानुभूतियों की प्रांजल अभिव्यक्ति के लिए कम अवकाश रहता है।यही कारण है कि विचित्र नाटक में इसका प्रयोग विरल रुप में हुआ है ।किन्तु प्रतिभाशाली कवि ने अनुकूल प्रसंगों में श्लेष द्वारा अभिव्यक्ति को प्रभावशाली बनाया है ।

(क) काहू एक तहा मिलाई सोआ चूक पुकारत महं ।
.....
जो सोवै सो मूल गवावै। जो जागै हरि हृदै बसावै।।[2]

एक कुंजडिन तरकारी बेचती हुई पुकार रही थी सोआ,चूव दत्तात्रेय ने इन शब्दों का अर्थ लिया जो सोता है,वह खोता है जबकि तरकारी बेचने वाली ने केवल तरकारी के नाम के कारण उनका नाम लिया था ।

(ख) मदरा कर मत्त महा मभकं ।
बन मै मनो बाघ बचा बबक ।[3]

यहाँ `कर ` शब्द द्विअर्थक है पहला `बना हुआ `दूसरा हाथी।

वक्रोक्ति :- वक्रोक्ति का अर्थ है वक्रता पूर्ण उक्ति । अर्थात् विशिष्ट अभिप्राय से कहे गए वाक्य का वकता द्वारा जान बूझ कर श्लेष या काकु के सहारे अन्य अर्थ लगा देना।' विचित्र नाटक` में वक्रोक्ति के उदाहरण भी दृष्टिगोचर होते हैं ।

(क) पाइ घनो सुख पै मन में अति ऊपर मान सो बोल सुनायो ।
चन्द्र भागाहु सो केल करो इह ठौर कहा तजि लाजहि आयो।।[4]

कृष्ण को देख कर राधा के मन के प्रसन्नता हुई पर ऊपर (दिखावे) से मानक रती हुई उसने व्यंग्य पूर्वक कहा कि जाओ चन्द्रमा भी से केलिक्रीडा करो यहाँ बेशरम होकर क्यों आगये ? निचली पंक्ति में काकू है।

1- दशम ग्रन्थ,पृष्ठ 602 ।
2- वही, पृष्ठ 651 ।
3- वही, पृष्ठ 42 ।
4- वही, पृष्ठ 350 ।

(ख) बिज्ज छुटा जिह नाम सखी को सोअ ब्रिखभान सुता पहि आई ।
आइकै सुन्दर ऐसे कह्यो सु तू री त्रीया ब्रिजनाथ बुलाई ।
को ब्रिजनाथ कह्यो ब्रिजवाट सु कोक-हइया कह्यो कउन कन्हाई।
खलहु ताही जीया संग लालरी को जिह के संग प्रीत लगाई ।।[1]

इसमें श्लेष वक्रोक्ति है रजनाथ और कन्हाई शब्दों में यहाँ वक्रता है । अलंकार के चमत्कार मूलक होते हुए भी इस पद्य में अब सम्प्रेषण में कोई बाधा न होकर निखार ही आया है ।

वीप्सा :- 'विचित्र नाटक' में कवि ने पात्रों की अतिशय भावावेगमयी स्थिति में स्वभावत: इसका विधान किया है।यथा:--

(क) मेरो धनो हितु है तुम सो सखी और किसी नाहि ग्वारनि माहीं।
तेरे खरे तुहि देखत हो बिन त्वै तुह मूरत की परछाही ।
यों कहि कान्ह गही बहीयां चलीये हमसे बन में सुखपाही ।
हा हा चलु मेरी सौं मेरी सौं मेरी सौं तेरी सौंते ही सौं नाहि जु नाहीं।[2]

प्रस्तुत पद्य की चतुर्थ पंक्तिमें 'मेरी सौं' तथा 'तेरी सौं' शब्दों का वीप्सा प्रयोग अलंकार की अपेक्षा भावों के सम्प्रेषण में अधिक सहायक हुआ है ।

(ख) साज साज के सबै सलाज वीर धावही ।
जूझ जूझ के मरै प्रलोक लोक पावही ।
घाइ घाइ के हठी अघाइ घाइ फेलही।
मछेल पावना चलै अरेल बीर ठेलही।।[3]

इस उदाहरण में शब्दों की द्विरुक्ति द्वारा पूर्णता एवं त्वरा भावों का सम्प्रेषण हुआ है।

अलंकारों के प्रयोग में कवि विशेष सिद्धहस्त है,उन पर रीति काल का प्रभाव है ।

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 343 ।

2- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ350-51 ।

3- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ595 ।

अर्थालंकार

अर्थालंकारों में से 'विचित्र नाटक' में सर्वाधिक प्रयोग उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपक का हुआ है। साधर्म्य मूलक अलंकारों में इन अलंकारों का प्रमुख स्थान है। किसी वस्तु या घटना के बिम्ब विधान में ये अलंकार दूसरे अलंकारों की अपेक्षा अधिक प्रभाव रखते हैं। उपमा के द्वारा किसी बिम्ब की रेखाएं उभरती हैं। उत्प्रेक्षा अपनी संभावना द्वारा उसमें मांस और रुधिर का संयोजन करता है और रूपक द्वारा बिम्ब रूपायित होता है। युद्धादि के सजीव वर्णन के लिए इन सब की अपेक्षा है। इसलिए गुरुकवि ने विचित्र नाटक में इनका सब से अधिक प्रयोग किया है।

उपमा :- 'विचित्र नाटक' युद्ध प्रधान रचना है। युद्ध के अतिरिक्त शृंगार तथा वात्सल्य का वर्णन इस रचना में हुआ है। कवि ने युद्ध, शृंगार और वात्सल्य को सम्प्रेषित करने के लिए जिन उपमानों की योजना की है वे जन-साधारण के परिचित थे चाहे वे उपमान प्राकृतिक हों या सांसारिक, पौराणिक हों या आध्यात्मिक सभी उनके भावों की सम्प्रेषण क्षमता बढाने में बहुत सहायक सिद्ध हुए हैं। यथा:--

(क) देत घने रन माहि हने लखि स्रोन सने कवि हउ मनु चीनो।
जिउ खगराज बडो अहिराज समाज के काट कताकर लीनो।।[1]

(ख) मुगदरु ले अपने करि चउं सुकेबरि के उर भीतर डारिओ।
जिउ हनूमान उखार पहार को रावन के उर भीतर मारिओ।।[2]

(ग) तब राम भ्रात अतकीन रोस। जिम परत आन घुतकरत जोस
गहि बाण पाण तज्जे अनंत। जिम जेठ सूर किरणें दुरंत।।[3]

(घ) पत्ति गिरे गजि वाग कहूं कहूं वीर गिरे तिनके कहूं अंगा।
ऐसे गए आपसि मै दल जैसे मिले जमना अरु गंगा।।[4]

(ड) तेज प्रचंड अखंड महा धब्युज्जन देख पराचल्यो।
जिम पउन प्रचंड बहे ह पतुआ सभ आपनहि उडि जावल्यो।।[5]

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 77। (2) वही, पृष्ठ 78।
3- वही, पृष्ठ ~~78~~ 229। (4) वही, पृष्ठ 397 (5) वही, पृष्ठ 582।

उपर्युक्त उद्धरणों में जितने भी उपमान कवि ने युद्ध चित्र सम्प्रेषित करने के लिए प्रयोग किए हैं,वे सब जाने पहचाने हैं। (क) चण्डी नेइस प्रकार दैत्यों का वध किया जैसे गरुड़ सर्प को टुकड़े 2 कर देता है । (ख) चण्डी ने मुगदर उठा कर महिषासुर पर इस प्रकार मारा जैसे हनुमान ने पहाड उखाड कर रावण की छाती पर मारा हो ।(ग) लक्ष्मण का क्रोध इस प्रकार भड़का जैसे आग में घी पड़ गया हो ।उसने बाण उठा कर इस पकार मारे जैसे जेठ के सूर्य की किरणें फैली हों ।

(घ) दोनों सेनाएं आपस में ऐसे मिल गईं जैसे गंगा और यमुना ।

(ङ) निष्कलंकी के तेज को देख कर दुष्ट इस प्रकार समाप्त हो जायेंगे जैसे तेज हवा बहने से पत्ते उड जाते हैं ।इस प्रकार इन उपमानों से प्रत्येक भारतीय भलीभांति परिचित है।

इसी प्रकार उन्होंने धोबी,तेली, दर्जी आदि से संबंधित उपमानों का प्रयोग किया है।

(1) ज्यों धुविया सरता तट जायके लेपट को पट साथ पछारयो।[1]

(2) पेदल मेदल मीज दहयओ तिलते जिभुतेल निकारत तेली ।[2]

(3) ज्यों दरजी जम भूत के सीत मे वागे अनेक कताकर डारे।।[3]

इस सम्बन्ध में हम डा० हरिभजनसिंह के इस मत से सहमत हैं कि इन उपमानों का प्रयोग गुरु जी ने युद्ध से अद्विज जातियों का सम्बन्ध स्थापित करने के लिए ही किया था।[4] इस प्रकार के उपमानों के प्रयोग से गुरु गोबिंद सिंह का क्रान्तिकारी और समाज वादी दृष्टिकोण भी सिद्ध होता है । उन्होंने अपनी कविता के उपमान केवल राजा आदि कुलीन तथा अभिजात वर्ग से ही नहीं लिए अपितु तथा कथित निम्न जातियों से भी लिए हैं।ये इस कारण कि गुरु कवि जैसे लोक नायक के लिए ये कैसे संभव था कि वह अपना क्षेत्र सम्पन्न जातियों तक ही सीमित रखता। उन्हें तो सर्वसाधारण का उद्धार करना था।

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 77 । (2) वही, पृष्ठ 89 ।

3- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 75 ।

4- डा० हरिभजनसिंह ,गुरुमुखी लिपि में उपलब्ध हिन्दीकाव्य का आलोचनात्मक अध्ययन,पृष्ठ234 ।

इसी प्रकार शृंगारिक भावनाओं की सम्प्रेषणीयता को बढाने में भी कवि ने अति सुन्दर उपमानों की योजना की है।

(क) आनंद अति सु बढ्यो तिन के जिअ सो उपमा कबि चीन लई है।
जिउ अत मेघ परै धर पै धर ज्यो सबजी सुभ रंग भई है।[1]

(ख) भेद कहे सभ ही जसुधा पहि तोहि करे सरभिंदत वैसे।
जिउ नर को गहि कै तिरीया हुं सु मारत लातन भूकन जैसे।।[2]

यहां (क) में कृष्ण द्वारा चुंबित गोपियों की दशा के लिए कवि ने जैसे बादल को पाकर पृथ्वी हरी हो जाती है का उपमान प्रयुक्त किया है।(ख) में स्त्री के द्वारा लातों और घूंसों से पिटने वाले पुरुष के उपमान से लज्जा भाव को पराकाष्ठा पर पहुंचाया गया है।

कृष्ण के सौन्दर्य चित्रण में तो कवि ने उपमानों की झड़ी ही लगा दी है।

द्रिग जाहि मृगी पति की सम है मुख जाहि निसापति सी छबि छाई।
जाहि कुदंगन के रिप सी कट कंचन सी तन ने छबि छाई।
पाट बने कदली दल है जंघ्वा पर तीरन सी दुत गाई।
औ प्रतंग सु सुंदर स्याम कहू उपमा कहीए नही जाई।।[3]

यहां कवि ने परम्परागत उपमानों का प्रयोग करके कृष्ण के सौन्दर्य को सम्प्रेषित किया है।

कवि का मानसिक रुझान इतना अधिक युद्धमय हो चुका था कि शृंगारिक प्रसंगों के वर्णन में भी युद्ध के दृश्य ही उपस्थित कर दिए हैं।प्रथम दर्शन के पश्चात सीता की स्थिति देखिए:--

उठी चेत ऐसे।महाबीर जैसे।।[4]

सीता और राम एक दूसरे को देख कर :--

रहे ठांढ ऐसे । रणवीर जैसे।[5]

यही नहीं सीता वियोग में राम के विरह की तीव्रता को प्रदर्शित करने के लिए भी कवि ने युद्धानुरुप उपमान का ही चयन किया है।

1- दशम ग्रन्थ,पृष्ठ 282। (2) वही, पृष्ठ 286।
3- वही, पृष्ठ 311। (4) वही, पृष्ठ 196।
(5) वही, पृष्ठ 196।

उठ ठाढि भए धिरिभूम गिरे पहरे ककउ फिर प्रान फिरे ।
तन चेत सुचेत उठे हरियो ।रण मण्डल मद्धि गिरयो भट ज्यो।।[1]

मालोपमा :-

मालोपमा अलंकार उपमा का ही एक विकसित रुप है । गुरु गोविन्दसिंह ने इसके प्रयोग द्वारा भावाभिव्यक्ति की अप्रतिम पुष्टि प्रदान की है ।चण्डी के साथ युद्ध करके दैत्य भागने लगे ।यहाँ चण्डी और दैत्यों के लिए उपमानों की लड़ी द्वारा कवि ने चण्डी या दैत्य की उनसे समानता पर बल नहीं दिया अपितु उनके शीघ्रता से भागने को वाणी दी है।

भान ते जिउ तम पउन ते जिउ घन भोरते जिउ फन तिउ सकुचाने
सूर ते कातुरु कूरते चातुरु सिंह ते सातुर एणि हराने ।
स म ते जिउ जस बिओया ते जिउ रम पूत कपूत तेन जिउ वसु होन।
थरम जिउ कुद्धते भरम सु बुद्ध ते चंड के जुद्ध ते दैत परानें ।।[2]

इस प्रकार यहाँ मालोपमा का लक्ष्य भागने की तीव्रता पर बल देना है ।

सौन्दर्य के चित्रण में भी मालोपमा सांग रुपक के समान एक पूर्ण बिम्ब को उपस्थित कर रही है ।

नैन कुरंगन से तुमरे सम केहरि की कटि री सुन त्वे है ।
आनन सुंदर है ससि हो जिहकी फुन कंज बराबर क्वे है।
बैठ रही हठ बांध घनो तिह ते कछु आप नहीं सुन ए्वे है ।
ऐ तन सा तुहि बैर करयो हरिसिउ हठिए तुमरो कह ह्वे है।[3]

मालोपमा द्वारा उपस्थित सौन्दर्य के इस बिम्ब में नयनों की विशालता और चंचलता, कटि की कृशता, मुख की सुघाम्यता आदि का एक पूर्ण चित्र पाठक के सामने प्रस्तुत हो जाता है ।इसके द्वारा वक्ता का प्रतिपाद्य -- कि तुम्हारा उस शोभना से वैर करना उचित नहीं " अपनी सार्थकता प्रकट कर देता है । शेर और मृग को, ससि और कमल विरोधी है जिसमें विरोधी भी अपना विरोध छोड देते हैं तुम उससे वैर कैसे करोगे ।

1- दशम ग्रन्थ,पृष्ठ 217 ।(2) वही,पृष्ठ 88 । (3) वही, पृष्ठ 347 ।

1 :

झूठ और सच्चाई कांच और पारा, ज्ञान और मोह, विवेक और द्रोह आदि का शाश्वत संघर्ष को हरि के हरि से भिड़ने का उपमान बना कर कवि ने अपनी विषय वस्तु को अत्यधिक सम्प्रेषणीयता प्रदान की है ।

`जैसे झूठ साच सों परवान जैसे कांच सो औ पारा जैसे,
आंच सो पतऊ या जिऊ सहरि सों ।
जैसे गिआन मोह सों विवेक जैसे द्रोह सों,
तपसी द्विज प्रोह सों अवर जैसे नर सो ।
लाज जैसे घर सो सुसीत जैसे घ्याम सों,
औ पाप राम नाम सों अधर जैसे हर सों ।
सूमता ज्यों दान सो ज्यों क्रोध सम्मान सों।
सुस्याम कवि ऐसे आह भिरियो हरि हरि सों।।[1]

उत्प्रेक्षा :- अर्थालंकारों में उत्प्रेक्षा का स्थान व अर्थ की दृष्टि से बड़ा महत्वपूर्ण है। हमारे कवि ने इस अलंकार द्वारा भी अपने भाव संप्रेषण में अत्यधिक सहयोग लिया है । `विचित्र नाटक ` में जितने भी अर्थालंकार प्रयुक्त हुए हैं उनमें परिमाण तथा प्रभाव दोनों दृष्टियों से उत्प्रेक्षा अलंकार आगे रहा है ।

घायल हुए वीरों का शरीर पुष्प युक्त किंशुत (ढाक) की संभावना करता है और चारों ओर से बढ़े आते हुए शत्रु बरसते हुए नभ की संभावना कराते हैं ।

बबके रणधीर सुबीर घणे । रहिये मनो किंसक प्रोण सणे ।
उमो चहुं ओर न ते रिप यों । बरसात बहारन अभ्रन जियों ।।[2]

इसमें दोनों उपमान प्रकृति से लिए गए हैं और दोनों ही सर्व परिचित हैं। जहां युद्ध का वर्णन है । घमासान छिड़ा हुआ है और उस लड़ाई में नैसर्गिक उत्साह है कवि की उत्प्रेक्षा और भी मनोहारी बन पड़ी है । स्वयंवर युद्ध से बढ़ कर उत्साह का सम्प्रेषण और किस उत्प्रेक्षा के माध्यम से हो सकता था ।

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 541 । (2) वही, पृष्ठ 165 ।

छाडि छाडि अस गिरे नरेसा । भच्यो जुध सुयंबर जैसा ।[1]

शत्रु की विशाल सेना चारों ओर से उमड़ती हुई आ रही है । उमड़ने के लिए लोक प्रसिद्ध उपमान है बादल किन्तु केवल बादल कहने से सेना की भयंकरता अभिव्यक्त न हो पाती अत: कवि ने यहां प्रलय कालीन बादलों की संभावना की है ।

वीर बड़े सब रावन के तिन कउ संग ले भरिबे कहु आयो ।
मानहु काल प्रले दिन बारध फैल परयोजल यों दलु छायो।[2]

युद्ध में बाणों से कट कर गिरते हुए सिरों का दृश्य भी कम महत्वपूर्ण नहीं है।वीरोंके मूल्य वान सिरों में कवि ने सुमेरु के शृंग की उत्प्रेक्षा की है ।

सित बानन सो गज बाज हने जोऊ साज जराइन साथ जरे।
मनो इन्द्र के ब्रज लगे टूट के धरनी गिर शृंग सुमेर परे ।[3]

तुरंत कटे हुए वीर का सिर रण भूमि में तड़फड़ाता हुआ सरोवर से निकली तड़फती हुई मछली की संभावना करा रहा है ।

छाडि दयो रन मै बर के धन सिंह को काटिकै सीस उतारयो ।
यों तरफयो धर भूम बिखे मनो मीन सरोवर ते गहि डारयो।।[4]

कहीं कहीं तो एक ही पद में अनेक उपमानों का प्रयोग करके उत्प्रेक्षा की माला ही पिरो दी है ।

दारुण दीरघ दिग्गज से बल सिंह हिके बल सिंह घरे हैं ।
रोम मनो सर कलहि के जन पाहन पीत पै ब्रिछ हरे हैं ।
मेर के मद्धि मनो अमना लट केतकी पुंज पै शृंग ढरे हैं ।
मानो महा प्रिथ लेके कमान सु भूधर भूमते निआरे करे हैं।[5]

केवल वीर रस में ही नहीं अपितु शृंगार, विवाह आदि के वर्णन को भी कवि ने उत्प्रेक्षा के माध्यम से अत्यधिक सम्प्रेषणीय बना दिया है ।राधा कृष्ण की भेंट के समय राधा संकोच से भर जाती है । कवि ने इस बात को कितनी सुन्दर उत्प्रेक्षा द्वारा वर्णन किया है ।

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 178।0 (2) वही, पृष्ठ 393 ।
3- वही, पृष्ठ 395 । (4) वही, पृष्ठ 404 ।
(5) वही, पृष्ठ 76 ।

हसि बात कही संग गोपिन के कबि सयाम कहै ब्रिखभान जहं ।
मनो आप ही ते ब्रजा सुरचि रुच सो इह रुप अनूप भहं ।
हरि को पिखि कै निहुराई गई उपमा तिहकी कबि भाख दहं ।
मनो जोबन भार सह्यो ने गयो तिह तो ब्रिज भामन नीच भहं ।[1]

इसी प्रकार कृष्ण से गोपी के रुठने की घटना को कवि ने रति के काम से रुठने की उत्प्रेक्षा द्वारा व्यक्त किया है ।

इह भांत चली कहि के सुत्रीया कबि सयाम कहै सोऊ कुंज गली है ।
चंद मुखी तन कंचन से सभ , ग्वारन ते जोऊ खूब भली है ।
मान कीयो निखरी तिन ते म्रिगनीसी मनो सु बिना ही अली है ।
यो उपजी उपमा मन मै पति से रति मानहु रुठ चली है ।[2]

कृष्ण के विरह में गोपियों की अवस्था कितनी बुरी हो जाती है इस बात को कवि ने कमलनी के सूखने के उपमान के साथ मिला कर कितना सम्प्रेषणीय बना दिया है ।

कंचन के तन जो सभ की जु हुती सभ ग्वारन चंदकरासी ।
मन की सान सो सान बनी दोऊ मुख मनो अखीआ सभ गासी।
देखत जा अति ही सुख हो नहि देखत ही तिह होत उदासी।
सयाम बिना सस पै जल की मनो कंज मुखी भई सूक जरासी ।।[3]

राम के विवाहोत्सव के उल्लास, आनन्द एवं उनकी शोभा का वर्णन भी कवि ने उत्प्रेक्षा की सहायता से किया है --

दुंदभी बजाई तीनों भाई यों चलत भए मानो सूर चंद कोटि आन अवतरे हैं।[4]

केसर सो मीजे पर सोभा देत ऐसी भांति मानो रुप रंग के सुहाग सुहाग-भर है ।[4]

यहां सूर्य चन्द्र और काम आदि से उनकी समानता द्वारा कवि ने उनके सौन्दर्य, तेज, शील और शान्त स्वभाव आदि का बड़ा ही सजीव चित्रण किया है ।

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 325 । (3) दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 361 ।
2- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 343 । (4) दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 200।

रूपक :-

उपमा और उत्प्रेक्षा के अतिरिक्त विचित्र नाटक में सर्वाधिक प्रयोग 'रूपक' अलंकारका हुआ है। अधिकांश महत्वपूर्ण सन्दर्भों में कवि गुरु गोविंदसिंह ने विषय का रमणीय अंकन करने के लिए रूपकों का प्रयोग किया है। उनकी योजना इतनी स्वाभाविक एवं सरल है कि वे मानस में विषय का चित्र सा खींच देते हैं।

बार सिवार भए तिह ठउर सुफेन जिउ छत्र फिरे तरता।
कर अंगुलका सफरी तलफे भुज काट भुजंग करे करता।
ह्य नक्र धुजा द्रुम प्रउणत वीर मे चक्र जिउ चक्र फिरे गरता।[1]
तब सुंभ निसुंभ दुहूं मिल दानव मार करी रन में सरता।

शुंभ और निशुंभ दानवों ने मिल कर युद्ध भूमि में ऐसी मार मचाई कि रक्त की सरिता बह निकली। महाकवि ने यहां सरिता का सांग रूपक बांधा है। योद्धाओं के केश ही सिवार(घास विशेष) हैं। छत्र उस नदी के झाग हैं कटे हुए हाथ और अंगुलियां बड़ी छोटी मछलियां हैं। भुजाएं भुजंग हैं। हाथी ग्राहमच्छ हैं। ध्वजाएं तटद्रुम हैं। और शोणित उसका जल है ही। निश्चय ही इस रूपक द्वारा शुंभ निशुंभ की वीरता तथा युद्ध भूमि की भयंकरता का चित्रण एक साथ हो गया है।

नग मानहु नाग बड़े तिह मै मछुरी पुनि पैदल की बल जेती।
चक्र मनोरथ चक्र बने उपजी कवि के मन में कहीतेती।
हे भए वोचन तुलि मनो लहरे बहरे बरछी दुत सेती।
सिंध किको दल सिंध जरा हरि गी मथुरा तिह मद्ध बरेती।।[2]

पहले रूपक की सम्प्रेषणीयता से इस पद्य के रूपक की संप्रेषणीयता में स्पष्ट अन्तर है। यहां भी रूपक सावयव ही है पर उसके द्वारा जरासंध की वीरता संप्रेषित न होकर उसकी सेना की विशालता सघनता, चतुरंगिणिता आदि का सम्प्रेषण हुआ है। सन्देहालंकार का भी सहयोग लिया गया है।

रन भूमि महं रंग भूमि मनो धुन दुंदभ बाजे त्रिदंग हीयो।
सिर सत्रन के पर अत्र लगे ततकार तराकन ताल लीयो।
अस लागत झूम गिरे भरिके भट प्रानन मानहु दान दीयो।
बर निरत करे किलरे नट ज्यों त्रिप मार ही मार सुराग कीयो।[3]

1-दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 80। (2) वही, पृष्ठ 393। (3) वही, पृष्ठ 436।

उपर्युक्त रूपक में रणभूमि को रंगभूमि बना कर वीरों का उत्साह, मौत से खिलवाड़ करते हुए भी ऐसे गिरना मानो नशे में मत्त होकर गिर रहे हैं आदि युद्धवीर के लक्षणों की व्यंजना की गई है।

व्यतिरेक :- विचित्र नाटक में व्यतिरेक की योजना भी कई स्थलों पर हुई है।

उपमेय का उत्कर्ष प्रतिपादित करने के लिए कवि ने सहज स्वाभाविक रूप में उसका विधान किया है जिससे उन प्रसंगों में नैसर्गिक सौन्दर्य आ गया है।

मीन मृगनैनी कंज खंजन खिसाने अलि,
फिरत दीवाने बन डोले जित तित ही।
कीर अरु कपोत बिंब कोकला कलापी बन,
लूटे फूटे मन चैन हू न कित ही।
दारम दराकाइयो पेख दसननि पांत,
रूप ही की क्रांत जग फैल रही सित ही।
ऐसी गुन सागर उजागर सु नागर है,
लीनो मन मेरा हरि नैनकोर चित ही।।[1]

कवि यहां चण्डी के सौन्दर्य का वर्णन करना चाहता है। शरीर के विभिन्न अंगों के सौन्दर्य को दिखाने के लिए अनेक उपमान हैं। परन्तु कवि ने यहां मछली, कमल, खंजन, तोता, कपोत, दाड़म, मयूर आदि की हीनता तथा चण्डी के मुख का उत्कर्ष दिखाया है।

नहीं धीरजू बांध सक्यो लरबे ते हरे सभ को मन भाज्यो।
भाजन की सब हूं बिध की किन हूं नहीं कोप सरासनि साज्यो।
यो हरिजू पुन बोलि उठिओ गज को बधिके जिम केहरी गाज्यो।
अरु भली उपमा उपजी धुन को सुनके घन सावन लाज्यो।[2]

यहां कृष्ण की ध्वनि से मेघ की ध्वनि न्यून प्रतीत होती है। अतः व्यतिरेक अलंकार है।

प्रतीप :- गुरु गोविन्दसिंह ने विचित्र नाटक में प्रतीप अलंकार के माध्यम से भी भावों को उत्कर्ष पर पहुंचाने और सम्प्रेष्य बनाने में सहायता ली है।

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 82। (2) वही, पृष्ठ 394।

भरे भुजा भर अंक भले भरि नैज दोउ निरखे रघुराई ।
गुंजत भ्रिंग कपोलन ऊपर नाग लवंग रहे लिपलाई ।
कंज कुरंग कला निध केहरि को कल हटे हिये हहराई ।
बाल लखे छबि खाट परे नहि बाट चले निरखे अधिकाई ।।[1]

यह प्रतीप का सुन्दर उदाहरण है ।कवि ने उपमानों की व्यर्थता द्वारा उपमेय की सार्थकता सूचित कर वर्ण्य विषय को सम्प्रेषणीयता प्रदान की है ।

विज्ज छटा जिह नाम सखी कोहे सोऊ सखी जदुराइ बुलाई ।
अंग प्रभा जिह कंचन सी जिह ते मुख चंद छटा छबि पाई ।
ता संग ऐसे कह्यो हरि जू सुन तू ब्रिखभानुसुता पहि जाई ।
पाइन पै बिनती अन के अत हेत के भाव सो लिआउ मनाई ।।[2]

मुख से आँखों की शोभा को चार चांद लगा करते हैं किन्तु यहाँ नायिका या नायिका भी क्यों नायिका की दूती की शरीर द्युति इतनी महनीय है कि उससे उसके मुख चन्द्र की शोभा को चार चांद लगते हैं।

दीपक :- गुरु कवि ने विचित्र नाटक में प्रसंगानुसार दीपक के माध्यम से रमणीय भावाभिव्यक्ति की है ।एक धर्म से संबंधित दो पदार्थों का निरूपण करने में यह अलंकार विशेष सहायक रहा है ।

ला भरे अरिराज चहूँ दिस भाज चले नहीं आन घिरे ।
गहि बान क्रिपान गदा बरछी छट छैल छके चित चोप चिरे।
प्रितमान सुजान अजान भुजा करि पैज परे नहीं फेरि फिरे ।
रण भो भरिके जसको करिके हरि सो लरिके भव सिंध तरे।[3]

यहाँ दीपक अलंकार स्वयं में साध्य न रह कर युद्ध की गतिमयता को सम्प्रेषित कर रहा है।

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 199 ।
2- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 343 ।
3- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 597 ।

7

धाइ भरि आइ रिस खाइ अस फारही।
सोर कर जोर सर तोर अर हारही ।
प्रान तज पैन भजि भूपरन सोभही ।
पेख छबि देख दुत नार सुर लोभ हीं ।।[1]

इस उदाहरण में भी एक क्रिया के साथ प्रस्तुत अप्रस्तुत का सम्बन्ध जोड़ कर वस्तु विषय की ग्राह्यता बढाई गई है ।

उदाहरण:- विचित्र नाटक में यत्रतत्र उदाहरण की सुन्दर योजना हुई है। कवि ने अत्यंत स्वाभाविक रूप से उदाहरण प्रस्तुत करते हुए निरूपित अर्थ का सम्यक् सम्प्रेषण कराया है :--

जो साधु सरनों परे तिनके कबण विचार ।
दंत जीभ जिम राखि है दुसट अरिस्ट संभार ।[2]

यहाँ अभिप्रेत अर्थ है कि जो संतो की शरण में आ जाते हैं उन्हें दु:खी होने की आवश्यकता नहीं, इस अर्थ को समझाने के लिए कवि ने 'दत जीभ जिम राखि है' को उदाहरण रूप में प्रस्तुत किया है । इसी प्रकार रामावतार में जब कैकेयी को राम के राज्याभिषेक का समाचार प्राप्त होता है, तो वह बाण से बिद्ध भूमि के समान मूर्छित हो जाती है--

कैकई इस जउ सुनी भई दुखता सवंग ।
भूम भ्रम गिरी भ्रिगी जिम लाग्या बाण सुरंग ।।[3]

यहाँ कवि ने घायल भृगी के उदाहरण द्वारा कैकेयी की अवस्था का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है ।

सन्देह :- विचित्र नाटक में संदेह अलंकार का विधान कुछ ही स्थलों पर हुआ है। परन्तु जहाँ कवि ने इसका प्रयोग किया है, वहाँ सम्प्रेषणीयता को बढाने में पूर्णतया समर्थ रहा है।

किधौं जछ बिदिआ धरी गंधर्बी है ।
किधौं रागनी भाग पूरे रची है ।
किधौं सुपरन की चित्र की पुत्रका है।
किधौं काम की कामनी की प्रभा है।[4]

1-दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 595 ।।(2) वही, पृष्ठ 72 ।। (3) वही, पृष्ठ203 ।।
(4)वही, पृष्ठ196।।

सीता के सौन्दर्य चित्रण के लिए यहां अनेक उपमान प्रस्तुत किए परन्तु फिर भी कवि सुविधा में है कि उसे किस उपमान के समान कहे ।

इसी प्रकार राम के विवाह वर्णन में अश्वों का चित्रण करते हुए भी कवि ने इसी अलंकार का आश्रय लिया है ।

नागरा के नैन है कि चातरा के बैन है बघूला मानो गेन कैसे तैसे थहरत है।
त्रितका के पाउ है कि जूप कैसे दाऊ है कि छल को दिखाउ कोऊ कैसे-
बिहरत है।
हाके बाज बीर है तुफंग कैसे तीर दे कि अंजनी के धीर है कि धुजा से पहरत है।
लहरैं अंग की तरंग जैसे गंग की अंग कैसे अंग ज्यों न कहूं ठहरत हैं ।[1]

इसी प्रकार कृष्णावतार में युद्धरत बलराम को देख अनेक प्रकार के विचार सैनिकों के मन में आते हैं :--

जुद्ध जुटे जदुराइ सखा किधो क्रोध भरे दुरजोधन सोंहे ।
भीर परे रन रावण सो सुत रावण को तिह की सम को है ।
भीषम सो मरबे कहु है लरिबे कहु राम बली बरिजो है।
आद है कि ह्नू जमु है कि भरयो बल भद्र भयानक रो हैं।।[2]

अपन्हुति :- कवि गुरु गोबिन्दसिंह ने विचित्र नाटक में कुछ स्थलों पर अपन्हुति अलंकार के प्रयोग द्वारा भी अपनी भावनाओं को सम्प्रेष्य बनाया है ।

कोप अति भरे रन भूम ते न टरे दोऊ रीझ रीझ लरे दल दुंदभी बजाइकै
देव देखे खरे गन जच्छ जसु ररे नभ ते पुहप ढरे मेघ बूंदन जिउ आइकै ।
केते जूझ मरे केते अछर बरे केते गीध नन करे केते गिरे धाई धाइ के
केहरि जिउ अरे केते खेत देख हरे केते लाजभार भरे दउरिपरे अराइकै ।[3]

युद्ध में कृष्ण पक्ष की विजय को देख कर देव, गंधर्व तथा यक्ष भगवान के यशोगान में व्यस्त हैं। इसमें जल बिन्दुओं की पुष्पों से समानता बताई गई है। बादल से आरही बूंदे नहीं अपितु पुष्प है--इस प्रकार

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 201 ।। (2) वही, पृष्ठ 396 (3) वही, पृष्ठ 398।

बून्दों का निषेध तथा उनके स्थान पर पुष्पों की प्रतीति होने से अपन्हुति अलंकार है ।

बानन सँगि सु मारिकै सत्रु राम मने अलसो पुन मारयो ।
प्रउन समूह परयो तिहते घर प्रान बिना कर भूप पर डारयो ।
ता छबि की उपमा लखिकै कबि ने मुखि ते इह भाँति उचारयो ।
खग्ग लग्यो तिहको नही मानहु लै कर मे जमदण्ड प्रहारयो ।।[1]

कवि ने यहाँ पर खडग का निषेध कर उसके स्थान पर यमदण्ड की स्थापना करता है । अत: `प्रकृतं यन्नि विध्यान्यत्साध्यते सा त्वपह्नुति: `[2] के अनुसार यहाँ अपन्हुति अलंकार है ।

अतिशयोक्ति :- `विचित्र नाटक` में अतिशयोक्ति की छटा देखते ही बनती है।कवि ने इसके प्रयोग से रमणीय चमत्कार उत्पन्न किया है ।अतिशियोक्ति के माध्यम से कवि ने युद्धों की विकरालता, तथा सौन्दर्य को अत्यधिक सम्प्रेष्य बनाया है ।

देखि चमू महिरवासुर की करि चंड कुवंड प्रचंड धरिओ है ।
दच्छन बाम चलाइ घने सर कोस भयानक जुद्ध करिओ है ।
भंजन मे अरि के तन ते छुट प्रउन समूह धरान परिओ है।[3]
आठवो सिंघ पचायो दुतो भनो या रन में विधि ने उगरिओ है।[3]

रामावतार में धनुष टूटने पर राम के क्रोध का भी इसी अलंकार के माध्यम से वर्णन किया गया है :--

यों जब बैन सुने अर के तब श्री रघुवीर बली बलकाने ।
सात समुद्रन भौ गरवे गिर भूम अकास दोऊ थहराने ।
जच्छ भुजंग दिसा बिदिसान के दानव देव दुई हर माने ।
श्री रघुनाथ कमान ले हाथ कहो रिस के किह पैसर ताने।।[4]

1- दशम ग्रन्थ,पृष्ठ 438 । (4) वही, पृष्ठ 198 ।
2- काव्य प्रकाश, 10। 96 ।
3- दशम ग्रन्थ पृष्ठ 77 ।

केवल युद्ध प्रसंगों के वर्णन में ही नहीं अपितु शृंगार रस के वर्णन में भी कवि ने अतिशयोक्ति अलंकार का आश्रय लिया है।

यो सुन उत्तर देत भई कवि सयाम कहे हरि के हित केरो ।
कान्ह के भेजे ते या पहि आइके के के भावन को अति फेरो ।
सयाम चकोर भने क्न जो सुनरी इह भांत कहे मन मेरो ।
ताही निहार निहार सुनो ससि सो सुख देखत ह्वै है रीतेरो।[1]

तुल्योगिता :- विचित्र नाटक में इस अलंकार का प्रयोग भी कहीं कहीं दिखाई देता है।

करुना निधान बेद कहत बखान
याकी बीच तीन लोक फैल रही है सु बासुरी ।
देवन की कंनिआ ताकी सुनि सुनि
धुनि प्रउनन मे धाई धाई आवे तजि के सुरग बासुरी।
ह्वै कर प्रसिन्य रूप राग को निहार कह्यो ।
रचियो है विधाता इह रागन को बासुरी ।
रीझे सभ गन उछगन मे भान
जब बन उपबन मे बजाई कान वासुरी[2] ।।

उल्लेख :- विचित्र नाटक में भी कवि गुरु गोविन्दसिंह ने अपनी अन्य रचनाओं की ही भान्ति उल्लेख अलंकार का प्रयोग किया है।

निसानिशनाथि जानै दिन दिनपति मानै भिछुक न दाता के-
प्रमानै महादान है ।
अुरवधी के रोग न अंत रूप जोगन समीप के वियोगन मछेस-
महामान है ।
सजे खग ख्याता सिस रुपन के माता महा गयानी ग्यान ग्याता के-
विधाता के समान है ।
गनन गनेस माने सुख सुरेस जाने जैसे पेखें तैसेई लखे--विराजमान[3] है।।1।

१- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 349 ।। (2) वही, पृष्ठ 296 ।
(3) वही, पृष्ठ 201 ।

द्रष्टा के अनेक होने से अपने दृष्टिकोण द्वारा तथा विषय भेद से एक व्यक्ति द्वारा जो किसी का अनेक प्रकार उल्लेख किया जाता है, वह उल्लेखालंकार कहलाता है। इस अलंकार द्वारा उस वस्तु का महत्व व्यंजित हुआ करता है। किसी के अनेक देखने या चाहने वाले हैं। इससे उसका महत्व द्योतन होता ही है और यदि एक ही द्रष्टा उसमें अनेक विषयों की संभावना से अनेकधा उल्लेख करने लो फिर तो कहना ही क्या। प्रस्तुत उदाहरण में उल्लेख अलंकार के केवलकृष्ण की ही चरितार्थता नहीं अपितु नायक की कान्ति, प्रताप, दानशीलता आदि गुणों का भी सफल सम्प्रेषण हुआ है।

कंध धरयो गजदांत उखरिके बीच गए रंग भूमि के दोऊ।
बीरन वीर बहोर पिरवयो बलवान लख्यो इन मल्लन सोऊ।
साधन देखि लखयो करता जग या सम्दूसर अउन न कोऊ।
तात लखयो कटके लरका त्रिप कंस लखयो भ्रम मै घरि खोऊ।।[1]

घन जानके मोर नचिओ बन भांफ चकोर लखयो ससि को सम है।
भ्रम का भ्रम काम सरुप भयो प्रभ हाकसनी जानयो नरोत्तम है।
बर जोगिन जान जुगीसर ईसर रोगन मानयो सदा श्रम है।
ह बालन बालक रूप लखयो जिय दुज्जन जानयो महाजम है।।[2]

यहां भी पूर्व उदाहरणों के समान कृष्ण को सौन्दर्य, प्रभुता योगीश्वरत्व, दुर्जनों के लिए यमत्व सम्प्रेषित हुए हैं। प्रथम पंक्ति का उल्लेख भ्रान्तिमान द्वारा पुष्ट होने से और भी अधिक भ्रम-विष्णु बन गया है।

विरोधाभास :- विचित्र नाटक में विरोधाभास की सुन्दर योजना हुई है। कवि की भावोत्कर्षकारी उक्तियों में विरोध आवरणवत है। उसके निरावृत होते ही रमणीय अर्थ की प्रतीति होती है।

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ।

2- दशम ग्रन्थ पृष्ठ 422 ।

श्री हरि रिस भर बल कर अरि पर जब धन धरि करि धायो ।
तब नृप मन में क्रोध बढायो श्रीपति को गुन गायो ।
जाके प्रगट प्रताप तिहू पुर सेस अंत नहीं पायो ।
बेद भेद जाको नहीं जानत सो नंद नंद कहायो ।
काल रुप नाथियो जिह काली कंस केस गहि धायो ।
सो मै रन महि ओर आपनी कोप हकार बुलायो ।
जाको ध्यान राम नित भुनजन धरति हृ-दै नहीं आया ।
धन भाग मेरे तिह हरिसो अतिही जुध मचायो।।[1]

विरोधाभास के इस उदाहरण द्वारा भी कवि ने नन्दनन्दन का त्रिलोकातीत प्रभाव, वेदादि द्वारा अनिर्वचनीयता का ही प्रतिपादन किया है ।

इन के अतिरिक्त विचित्र नाटक में प्रतिवस्तूपमा,[2] दृष्टांत,[3] परिकर,[4] अप्रस्तुत प्रशंसा,[5] विनोक्ति,[6] विशेषोक्ति,[7] अन्वय,[8] एकावली,[9] अनुमान,[10] सामान्य,[11] भाविक,[12] असंगति,[13]

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ457 छन्द 1583 ।
2- वही, पृष्ठ 699 छन्द , 563 ।
3- वही, पृष्ठ 214 छन्द 328 ।
4- वही, पृष्ठ241 छन्द 667 ।
5- वही, पृष्ठ 597- छन्द 395 ।
6- वही, पृष्ठ 370 छन्द 873 ।
7- वही, पृष्ठ 579 छन्द 113 ।
8- वही, पृष्ठ 366 , छन्द 848 ।
9- वही, पृष्ठ 77 छन्द 42 ।
10- वही, पृष्ठ 454 , छन्द 1554 ।
11- वही, पृष्ठ 326 , छन्द 538 ।
12- वही, पृष्ठ 576 , छन्द 79
13- वही, पृष्ठ 596 , छन्द 393 ।

तथा अर्थान्तरन्यास,[1] आदि अलंकारों का प्रयोग भी हुआ है।

गुरु गोविन्दसिंह द्वारा प्रयुक्त इन अलंकारों में सौन्दर्य संतुलन है। भावानुभूतियों को रमणीय ढंग से सम्प्रेषित करने की सामर्थ्य है। सादृश्य मूलक अलंकारों के माध्यम से रूप सौन्दर्य को अत्यंत उत्कर्ष प्रदान किया गया है।युद्धों की विकरालता तथा शृंगार की रमणीयता को उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक तथा अतिशयोक्ति के माध्यम से अत्यन्त ही अनूठे ढंग से सम्प्रेषित किया गया है।विभिन्न भावावेगों को प्रभावशाली ढंग से व्यंजित करने में अलंकारों का योगदान असंदिग्ध है।कवि ने अलंकारों का विधान इस रूप में किया है कि वर्ण्य विषय का चित्र सा खिंच जाता है।

इस प्रकार दशम ग्रन्थ की रचनाओं में विचित्र नाटक सब से प्रभावशाली और सशक्त रचना है। इसमें सभी रसों का यथोचित सन्निवेश है।अलंकारों एवं छन्दों के सर्वाधिक प्रकार भी इसी रचना में उपलब्ध होते हैं।कवि के प्रतिपाद्य का सम्प्रेषण भी इसीलिए इसमें बहुत सफल रहा है।

-

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 347 , छन्द 708 ।

33 सवैये

परिचय :- श्री मुखवाक् सवैये शीर्षक से गुरु गोविन्दसिंह प्रणीत 33 सवैये प्राप्त होते हैं। इनमें केवल एक ही छन्द सवैया प्रयुक्त हुआ है। इनकी गणना विशुद्ध भक्ति परक रचनाओं में की जा सकती है।

सम्प्रेषण पाश्चात्य दृष्टिकोण से

प्रतिपाद्य :- इन सवैयों का स्वर अकाल उस्तुति में संग्रहीत सवैयों के समान ही है। इन सवैयों में कवि ने आदि शक्ति से परिपूर्ण चिरन्तन और शाश्वत ब्रह्म, अकाल पुरुष की स्तुति की है। अवतार वाद तथा बाह्याडम्बरों का खण्डन किया गया है।

कवि अपने हृदय को प्रभु आराधन में लीन रहने की प्रेरणा कर रहा है पर मन उसे कैसे गहे जिसकी न कोई वेशभूषा है, न वेद या कुरान ही जिसका स्वरूप निर्णय कर पाए हैं। इस पर कवि मन को उसकी दयामयता का भाव, दयाल, कृपाल और कृपा सिन्धु इन तीन शब्दों में एक साथ देता है और उसे घट घट वासी बता कर स्वयं मन के अन्दर रहने वाला भी बताता है। जिसके अवगाहन के लिए शेष, सुरेश, गणेश और महेश भी सतत प्रयत्नशील हैं, उसका विस्मरण निश्चय ही मन की मूढ़ता है, जो किसी भी कारण से उपेक्षित नहीं की जा सकती।[1] आदि अछेद, अभेद, अलेख, अजेय, अगाहड[2] आदि शब्दों के माध्यम से उसके निर्गुणत्व को पाठक के मन में रुपायित करता है साथ ही वे कारण भी दिखाता है कि क्यों मन को उसी की उपासना करनी चाहिए।[3] आखिर कवि का मन सिद्धि की प्राप्ति के

१- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 712।

२- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 713।

३- दशम ग्रन्थ पृष्ठ 713।

लिए भूमि, आकाश, पाताल, दिशा विदिशा सब ही जगह भटका है किन्तु (तिहि थान) उसके अतिरिक्त किसी भी देवी देवता ने कृपा नहीं, दिया । समस्त महीतल पर उसी की महिमा व्याप्त हो रही है। अत: वही ध्येय है, उपास्य है, अविस्मरणीय है ।

बिना स्वरूप परिचय के आराधना कैसे सम्भव है, कोई आधार तो चाहिए न ? इस शंका को कवि की वाणी अनुवर्तन से पूर्व ही निराकृत कर देती है। कवि निज मन को जिस भक्ति की दिशा में अग्रसर करना चाहता है, उस ओर कुछ पूर्ववर्ती महानुभाव जा चुके हैं। स्मृति शास्त्र या पुराणों द्वारा उनके लिए भी स्वरूप निर्णय नहीं हुआ था, फिर भी वे तरे। उन्होंने जिसका आधार बनाया वह 'नाम' ही उसे पाने का आधार बनाना कवि को भी अभिप्रेत है और इसी बात को पौराणिक संदर्भों के साथ जोड़ कर कवि ने प्रतिपादित किया है ।[1]

कवि ने राम और कृष्ण के ईश्वरत्व का विरोध करते हुए अवतार वाद का खंडन बड़े तीखे शब्दों में करता है ।[2]

बाह्याडम्बरों का खण्डन करते हुए कवि ने गले में ठाकुर बांधने वालों महेश को परमात्मा मानने वालों या उस प्रभु को मन्दिर मस्जिद में मान कर पूजा करने वालों[3] और अवतारवादियों हाथों को नाखून बढ़ा कर एक ध्यान लगाने वाले योगियों के फोकट धर्म का खण्डन किया है[4] और उस अकाल पुरुष के नाम के आश्रय को ही ठीक बताया है जिसके आश्रयण से आधि व्याधि के बन्धन छूट जाते हैं। कवि की ऐसी अभिव्यक्ति कोरी भावना ही नहीं है इसके पीछे तर्क का बल है । भूमि पर दण्ड कमण्डल उठा कर घूमने वाले व्रती का ब्रह्मत्व उस काल पुरुष के द्वारा ही है। उसी काल पुरुष की कृपा से शिव सब देश विदेश में महादेव बने।[5] वही काल पुरुष इस समस्त जगत का लय कर्ता है । अत: वेद कुरान में प्रतिपादित देव पैगम्बरों की आराधना छोड़ कर काल पुरुष को ही कृपा निधि मानना और उसी की उपासना करना श्रेयस्कर है । फोकट धर्म में फरसना और पुत्र, कलत्र आदि

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 713 ।
2- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 713-14 ।
3- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 713 ।
(4) वही, पृष्ठ 714 ।
(5) वही, पृष्ठ 715 ।

के मोह में पड़े रहना किसी काम नहीं आएगा क्योंकि अन्तकाल में अकेले ही जाना पड़ेगा ।

बिम्ब और प्रतीक :- गुरुगोबिंद सिंह के 33 सवैयों में सांसारिकता से विरक्ति एवं अकाल पुरुष से रति का वर्णन है। इनमें यद्यपि अकाल 'उस्तुति और ज्ञान प्रबोध' के समान स्पष्ट बिम्बएवं भाषिक प्रतीकों की समुचित योजना नहीं हो पायी है फिर भी इसके प्रतिपाद्य की अभिव्यक्ति में विशेष अन्तर नहीं पड़ा है । इसका कारण यह है कि इसके घुंधले होते हुए भी अपने पीछे स्पष्ट पृष्ठ भूमि को समेटे हैं और प्रतीक परम्परागत होने पर भी घटनात्मकता से जुड़े हैं ।

काहू लै ठोक बंधे उर ठाकुर काहू महेस को ऐस बखानयो
काहू कह्यो हरि मंदर में हरि काहू प्रतीत के बीच प्रमानयो।[1]

इस बिम्ब में बिखराव होने पर भी विष्णु और महेश के भक्तों केपूजा संबंधी क्रिया कलाप एवं मस्जिद में नमाज पढ़ने वाले मुसलमानों की चेष्टाएं अपनी पूरी पृष्ठभूमि के साथ पाठक की आँखों के सामने प्रस्तुत कर देने की क्षमता है।

अपने अपने ढंग से ध्यान के बहाने से लोगों को ठगने वाले जटाएं और नाखून बढ़ा कर अपने प्रतिलोगों में योगी का भ्रम उत्पन्न करने वाले विभूति धारी ढोंगी साधुओं का बिम्ब जो कि घर घर भीख मांगते फिरते हैं और भी अधिक भ्रम विष्णु बन सका है। बिम्ब के साथ उसके परिणाम प्रदर्शन ने विषयवस्तु की सम्प्रेषणीयता में प्रभाव को बढ़ा दिया है । ~~ध्यान लगाइ ठगियो सब लोगन~~

ध्यान लगाइ ठगियो सब लोगन सीस जटा नख हाथ बढ़ाए।
लाइ बिभूत फिरयो भूत ऊपरि देव अदेव सबै डहकाए।।
लोभ के लागे फिरयो घर ही घर जोग के न्यास सबै बिखराए ।
लाज गई कछु काज सरयो नहि प्रेम बिना प्रभु पान न आए ।[2]

इन सवैयों के प्रतीक अन्य रचनाओं के समान पुराने ही हैं । भाषिक न होते हुए भी परम्परागत होने के कारण वे अभीष्ट अर्थ के प्रतिपादन में पूर्ण समर्थ हैं। जैसे 'काहे कऊ पूजत पाहन कऊ कछु पाहन में परमेसर नाही'[3] --

---

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ713 । (2) वही०, पृष्ठ 714 (3) वही०, पृष्ठ 715 ।

में `पाहन` प्रतिमा पूजन का, `राम रसूल वाचन पाए`[1] में राम, रसूल हिन्दू एवं मुसलमानों के अवतार और पैगम्बरों का `वेद कतेब`[2] दोनों के धर्म-ग्रन्थों का, `दया ही सत है`[3] जोगियों की भिक्षावृत्ति का, `बक` और जड़[4] क्रमश: पाखण्डी भक्त और मूर्खता के प्रतीक हैं। संसार की विरक्ति के प्रकरण में माया मोह छूटे रह जाते हैं यह भी सम्भव नहीं था। अत: जहां `धन`[5] को माया का प्रतीक रखा `धाम`[6] तथा `पुत्र कलत्र और मित्र`[7] को मोह का प्रतीक प्रस्तुत किया।

भारतीय दृष्टिकोण से

रस :- रस की दृष्टि से यह रचना भक्ति एवं शान्त रस से परिपूर्ण है। अधिकांश पद्यों में संसार की असारता के वर्णन द्वारा स्थायी निर्वेद को जगाया गया है और अन्त में अकाल पुरुष के स्वरूप प्रदर्शन एवं गुण ~~प्रदर्शन~~ कथन द्वारा उसके प्रतिरति का जागरण हुआ है।

भक्ति रस:- भक्ति रस का आलम्बन यहां भी निराकार अकालपुरुष है जिसका न कोई रूप है और न कोई रेखा।

> राति सदैव सरूप सतव्रत आदि अनादि अगाध अजै है।
> दान दया दम संजम नेम जत व्रत सील सुवृत अबै है।
> आदि अकील अनाद अगाहद आदि अदेख अभेख अभै है।
> रूप सरूप अरेख जरामरन दीन दयालु क्रिपालु भए हैं।[3]

आलम्बन के इस स्वरूप चित्रण के साथ साथ कवि उसके गुणों का कथन भी करता है जिनके द्वारा वह जाग्रत रति उद्दीप्ति पाती है और इस प्रकार भक्त को विभोर कर डालती है। प्रभु की महानता के कार्य उसकी दया और कृपा का वर्णन किया गया है साथ ही व्यंजनात्मक शैली में दूसरे देवताओं की दुर्बलता का संकेत करके उसी की भक्ति में एकनिष्ठता और अनन्यता दर्शाई गई है।

1-दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 715, (2) वही, पृष्ठ 715 (3) वही पृष्ठ 715 (4) वही०

५- वही पृष्ठ 716 (6) वही, पृष्ठ 716 (7) वही, पृष्ठ 716 (8) वही, पृ० 716

सती सदैव सरूप सतवृत्त वेद कतेब तुही उपजायो ।
देव अदेवन देव महीधर भूत भवान वही ठहरायो ।
आदि जुगादि अनील अनाहद लोक अलोक बितोकन पायो ।
रे मन मूढ अजू इसो प्रभु तोहि कहो किहि आन सुनायो।।[1]

उपर्युक्त पद्य में महानता के कार्यों का अंकन था जबकि निम्नांकित पदों में उसकी कृपा, दयाआदि गुणों द्वारा जाग्रत रति को पुष्ट किया गया है।

आदि अलेख अभेख महाप्रभु सति सरूप सु जोत प्रकासी ।
पूर रह्यो सभ ही घट के पट तत समाधि सुभाव प्रनासी।
आदि जुगादि जगादि तुही प्रभु फैल रह्यो सभ अंतरि बासी।
दीन दयाल क्रिपालु क्रिपा कर आदि अजोनी अजै अबिनासी।।[2]
आदि अभेख अछेद सदा प्रभु बेद कतेबनि भेद न पायो ।
दीन दयाल क्रिपाल क्रिपा निध, सति सदैव सभै घट छायो।
शेष सुरेस गणेश महेसुर गाहि फिरै श्रुति थाह न आयो ।
रे मन मूढ अजू इसो प्रभु तै किहि काजि कहो बिसरायो।[3]

इन पदों में मन को मूढ़ आदि कहना एवं संसार में होने वाले उपहास की अनुभूति करना अनुभाव तथा मति, तर्क विबोध आदि संचारी अकाल रति को पुष्ट करते हैं ।

शान्त रस :- रचना का दूसरा रस शान्त है। जिसका आलम्बन दुःख भय संसार, उद्दीपन अपने प्रियतमों का भी साथ छोड़ देना, अनुभाव आत्म प्रबोधन तथा संचारी चिन्ता आदि हैं ।

फोकट करम कहात कहा, इन लोगन को कोई काम न ऐहै ।
भाजत का जन हेतु अरे जब किंकर ते नह भाजन पैहै ।
पुत्र कलित्र नमित्र सबै ऊहा सिख सखा कोऊ साथ न दैहै ।
चेत रे चेत अचेत महापसु अंत की वार अकेलोई जैहै।।[4]

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 713 । (2) वही, पृष्ठ 712 ।
3- वही, पृष्ठ 712 । (4) वही, पृष्ठ 716 ।

तो तन त्यागत ही सुन रे जड़ प्रेत बखान क्रिया भजि जै हैं।
पुत्र कलत्र सु भिन्न सखा इह, बेग निकारहु आइसु दै हैं।
भउन भंडार धरा गढ जेतक, धाइत प्रान बिगान कहै है।
चेत रे चेत अचेत महापसु, अंत की बार अकेलोई जैहै।[1]

यद्यपि रचना में आए इस प्रकार के पद्य पूर्ण रूप से शान्तरस के अन्तर्गत आते हैं। इनमें अकाल रति या किसी अन्य भक्ति भावना का लेश प्रतीत नहीं होता, परन्तु उन स्तुति परक पदों के साथ इनकी आस्थिति इन्हें भक्ति रस का अंग बना देती है। अभिप्राय: यह है कि 'अकाल उस्तुति' की भाँति इस रचना में भी भक्ति रस अंगी है और शान्त उसका अंग एवं सहायक।

भाषा शैली :- 33 सवैये की भाषा भाक्तों और प्रसाद गुण युक्त है किन्तु इसका भाक्तों विषय वस्तु के सुन प्रधान होने के कारण अपने पूर्ण रूप में नहीं मिलता और सर्वत्र प्रसाद गुण के ही दर्शन होते हैं। ओज गुण रचना में नगण्य है यहाँ आया भी है पद्य की एकाध पंक्ति में ही और वह भी वर्णगत न रह कर बहुत कुछ अर्थगत रहा है। कवि को संसार के बनावटी भक्तों से फोकट धर्म और पाखण्डों से खीझ है। जिस जिस पंक्ति में इस खीझ की अभिव्यक्ति हुई है, वहीं थोड़ी बहुत ओज गुण की प्रतीति होती है अन्यत्र नहीं।

प्रसाद गुण :-

काहे कउ पूजत पाहन कउ कछु पाहन में परमेसर नाही।
ताही को प्रभु प्रभु करि के जिह पूजत ही अघ ओघ मिटाही।
आधि व्याधि के बंधन जेतक नाम के लेत सबै छुटि जाही।
ताही को ध्यान प्रमान सदा इन फोकट धर्म कों फल नाही।[2]

भाक्तों गुण :-

आँजन मीच रहे बक की जिमलोगन एक प्रपंच दिखायो।
न्हात फिरयो सिर बक्क ज्यो अरु ध्यान विलोक बिडाल लजायो।
लागि फिरयो पुन आस जितै तित लोक गयो परलोक गवायो।
श्री भगवंत भजयो न अजेजड़, धाम के धाम कहां उपजायो।।3

1- दशमग्रन्थ, पृष्ठ 715। (2) वही, पृष्ठ 716। (3) वही, पृष्ठ 716।

उपर्युक्त पद्यों में प्रथम अर्थ की स्पष्ट अभिव्यक्ति एवं समास हीन रचना के आधार पर प्रसाद के अन्तर्गत आता है। दूसरे पद्य में क ग अन्तस्थ एवं अनुनासिक वर्णों के सहकार से माधुर्य गुण के अन्तर्गत है जबकि अन्तिम पद्य संयुक्ताक्षर ड,ढ एवं रचना की उद्धतता के कारण ओज गुण के अन्तर्गत आता है। यही तीनों उदाहरण क्रमशः उपनागरिका कोमला और परुषा वृत्तियों के निदर्शन कहे जा सकते हैं।

शब्द शक्ति की दृष्टि से यह रचना भी अभिधा प्रधान ही है। लक्षणा का क्षेत्र भी इसमें प्रतीकात्मक शब्दों नीर[1](आँसू), वर्क(ढोंगी भक्त), पर्[3] (विषयों का लोभी) तक ही सिमिट कर रह गया है। 'एक को छाड़ि और भजे जैसी पंक्तियां लाक्षणी व्यंजना का उदाहरण कही जा सकती है। ब्रज बताने के ठेकेदार सभी ठग है, यह व्यंजना निम्नांकित पद्य से अपनी सम्प्रेषणता के चरमोत्कर्ष पर पहुंची हुई है।

जो जुगिआन के जाइ कहे सम जोगन को ग्रह माल उठे दै।
जो पटो भाजि सन्यासन दै कहं दत्त के नाम पै धाम लुटे दै।
जो कपि कोऊ भसंदन सौं कहे सर्व द्रव्य लै मोहि अबै दै।
लेऊ ही लेउ कहे सब को नर कोऊ न ब्रज बताह हमै दै।

इस प्रकार रचना की भाषा को अर्थ देने में तीनों ही शक्तियों का योगदान रहा है। इसके अतिरिक्त इस रचना में वर्ण साम्य से उत्पन्न संगीतात्मकता भी है, जो रचना को सम्प्रेष्य बनाने में सहायक सिद्ध हुई है--

सति सदैव सरूप सतव्रत आदि अनादि अगाध अजै है।
दान दया दम संजम नेम जतव्रत सील सुव्रत अबै है।
आदि अनील अनाद अनाहद आदि अदेव रव अभेव अबै है।
रूप सरूप न रेख जरारहित दीन दयालु क्रिपालु भए हैं।[6]

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 716। (2) वही, पृष्ठ 716।
3- वही, पृष्ठ 716। (4) वही, पृष्ठ 714।
5- वही, पृष्ठ 716। (6) वही पृष्ठ 716।

इन पंक्तियों में स, अ, द, र की आवृत्ति से नाद सौन्दर्य में वैचित्र्य आया है।

33 सवैयों की शैली खण्डन मण्डन प्रधान होते हुए भी रूक्ष न होकर रोचक है। शब्दों के अभीष्ट चयन और उपयुक्त प्रयोग द्वारा शब्द अपने अभिधेय अर्थ के असंदिग्ध रूप में द्योतक रहे हैं। किसी भी शब्द का प्रयोग अप्रचलित अर्थ में नहीं हुआ। वाक्य रचना भी शुद्ध रोचक और प्रभावोत्पादक है। कवि का मनोगत भाव सर्वत्र सरलता, स्पष्टता और सजीवता के साथ व्यक्त हुआ है। इस प्रकार रचना की शैली सर्वथा स्वाभाविक और व्यवहारिक है।

छन्द अलंकार :- कवि ने सारी रचना में केवल एक ही छन्द सवैया का प्रयोग किया है। भक्ति भावना की अभिव्यक्ति के लिए यह छन्द विशेष रूप से उपयुक्त है।[1] गोस्वामी तुलसीदास ने अपनी कवितावली में इस छन्द को अपनाया है। रसखान के भक्ति परक सवैये हिन्दी जगत में प्रसिद्ध हैं। गुरु गोविन्दसिंह ने इस छन्द के माध्यम से पाखण्डों का खण्डन, संसार की नश्वरता और अकाल पुरुष का रूप चित्रण बड़े ही सहज और सुन्दर ढंग से किया है। इस प्रकार सवैया छन्द के माध्यम से कवि ने अपनी भाषाभिव्यक्ति की प्रेषणीयता बढ़ाई है।

शब्दालंकारों में प्रस्तुत रचना अनुप्रास प्रधान है। इसके अतिरिक्त यमक का भी प्रयोग हुआ है। अर्थालंकारों में मालोपमा, उल्लेख, अर्थान्तरन्यास, विनोक्ति, परिसंख्या विवृतोक्ति का प्रयोग मिलता है।

छेकानुप्रास:-

सिम्रिति सास्त्र वेद सबै बहु भांति तिहि सिव समाधि सबै करिहारे।[2]

काहे को ऐस महेसहि भाखत ? काहि दिजेस को ऐस बखानिओ।[3]

यहां क्रमश: `स` और `क` की दोबार आवृत्ति हुई है।

वृत्यानुप्रास:-

कालहु कान कहे जिहि को किहि कारण कालते दीन भयो जू।[4]

आदि अनील अनाद अनाहद आदि अदेख अभेख अभे है।[5]

यहां क्रमश: `क` और `` की अनेक बार आवृत्ति हुई है।

1- हिन्दी साहित्य कोष प्रथम भाग, पृष्ठ 896।
2- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 713। (3) वही, पृष्ठ 714। (4) वही, पृष्ठ 713
(5) वही, पृष्ठ 712।

शब्दानुप्रास :-

काहे को डिंभ करे मन भूरख? डिंभ करै अपनी पति खवै है।[1]

यहाँ ओष्ठ्य वर्ण `प`, `भ,``म ` की आवृत्ति हुई है।

बेद कतेब पढे बहुते दिन भेद कछू तिन को नहीं पाइयो।[2]

यहाँ दन्त्य वर्ण `त ` तथा `द ` की आवृत्ति हुई है।

अन्त्यानुप्रास :-

आदि अद्वेख अभेख महाप्रभु सति सरुप सगोति प्रध्यासी।
पुर रह्यो सम ही घट के पट तत समाधि प्रभाव प्रणासी।
आदि जुगादि जागादि तुही प्रभ फैल रह्यो सभ अंतर वासी।
दीन दयाल क्रिपाल क्रिया कर आदि अजोभ अजै अविनासी।[3]

यहाँ तुकान्त के कारण अन्त्यानुप्रास है।समस्त रचना सवैया छन्द के कारण अंत्यानुप्रास ही है।

यमक :-

पुर रही महिमो महिमा मन मै तिह आनि मुझै कहि दीनो।[4]

यहाँ महिमा और महिमा में सार्थक और निरर्थक `महि` शब्द की आवृत्ति हुई है ।

अर्थालंकार

उल्लेख :-

लै ठोकबंधे उर ठाकुर काहू महेस को ऐस बखानयो।
काहू कह्यो हरि मंदर मै हरि काहू मसीत के बीच प्रमानयो ।
काहू ने राम कह्यो क्रिसना काहुं काहू भने अवतारन मानयो।।[5]

एक ही उपास्य, उपासक भेद से भिन्न भिन्न रूपोंमें देखा तथा उपासना किया जा रहा है।

अर्थान्तरन्यास :-

काहे को डिंभ करेमन भूखा ? डिंभ करै अपनी पति खवैहो।
काहे को लोग ठगे ठग लोगनि लोग गयो परलोग गवैं हो।

1- दशम ग्रन्थ,पृष्ठ 714 (2) वही,पृष्ठ 715(3) वही,पृष्ठ 712
(4) वही,पृष्ठ713(5) वही,पृष्ठ 713

दीन दयाल की ठौर जहातिह ठौर बिखे तुहि ठौरन देहै ।
चेतरे चेत। अचेत महां जड़ा भेख के कीने अलेख नये है।[1]

यहां ढोंगी साधकों के अप्रस्तुत वर्णन द्वारा प्रतिपाद्य रूप में प्रस्तुत प्रभु भक्ति का समर्थन किया गया है।

विनोक्ति :-

जागति जोति जपै निस बासुर एक बिना मन नेक न आनै ।
पूरन प्रेम प्रतीत सजै व्रत गोर मड़ी मठ भूल न मानै।
तीरथ दान दया तप संजम एक बिना नह एक पछानै।
पूरन जोत जगै घट मै तब खालसा ताहि नखालस जानै ।[2]

इस पद्य में बिना को केन्द्र बना कर ही अर्थ का ताना बाना अपना प्रभाव दिखा सका है।

परिसंख्या :-

कालही पाइ भयो ब्रजा गहि दंड कमंडल भूम भ्रमानयो।
काल ही पाय सदा शिवजू सब देस बिदेस भया हम जानियो।
काल ही पाय भयो भिटि गयो जग माही ते ताहि सबै पहचानयो ।
बेद कतेबन भेद सबै तजि केवल काल कृपानिधि मानियो ।[3]

यहां ब्रजा का दण्ड कमण्डल लेकर भूमि पर घूमना, शिव का देश विदेश में चक्कर काटना आदि का केवल काल ही कारण बताया गया है।

विव्रतोक्ति :-

तोतन त्यागत ही सुनरे जड़प्रेत बखान क्रिया भजि जै है।
पुत्र कलित्र सुचित्र सखाइह वेग निकारहु आयस दै हैं।
भौन भण्डार धागड़ जेतक छाडत प्रान बिगान कहे है।
चेतरे चेत अचेत महापसु अंत की बार अकेलोइजे है।[4]

अन्त की बार अकेले ही जाना पड़ेगा अत: माया मोह के चक्कर में न पड़ इस बात को उदाहरणों के सहारे विवृत (विस्तार) करके समझाया गया है।

तेंतीस सवैये रचना के इस परिशीलन से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि भले ही इसमें वैराग्य भावना अधिक व्यापक रही है तदपि पूर्वापर प्रसंगों एवं

1- दशम ग्रन्थ,पृष्ठ 714 ,(2) वही,पृष्ठ 712(3)वही,पृष्ठ715(4)वही,पृष्ठ 716।

मध्य मध्य में आए भक्ति पदों ने समस्त रचना का स्वर भक्तिमय बना दिया है। खण्डनात्मक पद इस प्रक्रिया में अधिक सहयोगी रहे हैं।

-

शब्द हज़ारे

परिचय:-

'शब्द हज़ारे' गुरु गोविन्दसिंह द्वारा रचित भक्ति भावना का एक और मोती है।इस रचना का नाम शब्द हज़ारे क्यों रखा गया इस विषय में विद्वानों के विभिन्न मत हैं।प्रसिद्ध इतिहासकार कनिंघम का कथन है कि गुरुगोविन्द सिंह का लक्ष्य इस प्रकार के एक हज़ार शब्द रचने का था इसलिए इस रचना का नाम शब्द हज़ारे रखा गया।[1] एक अन्य विद्वान का विचार है कि ये शब्द गुरु गोविन्दसिंह ने हजारे (उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त के जिले) की संगत को संबोधित करके लिखे इस रचना का नाम शब्द हजारे रखा गया।[2] तीसरा विचार यह है कि क्योंकि यह शब्द 'हिज़र' (वियोग) में लिखे गए हैं, जैसा कि इन शब्द 'मित्रप्यारे नूं हाल मुरीदां दा कहना' से भी स्पष्ट होता है।[3] इसके विपरीत डा० धर्मपाल अष्टा का विचार है कि साहित्यिक दृष्टि से 'हजारा' शब्द का अर्थ फव्वारा भी होता है।क्योंकि ये शब्द गुरु जी के हृदयस्थल से फव्वारे की भांति निकले हैं तथा उनके शिष्यों के हृदय को जल के शीतल छींटों की भांति शान्ति प्रदान करते हैं।इसलिए इनका नाम शब्द हजारे रखा गया है।[4] डा० तारनसिंह का मत है कि ये शब्द विरह की भावनाओं के अधीन लिखे गए हैं,इस कारण इन्हें शब्द हजारे कहा गया है क्योंकि 'आदि ग्रन्थ' में और शब्द हजारे भी विरह के ही हैं। इस आधार पर गुरु गोविन्दसिंह के शब्दों को हजारे के शब्द कहा जा सकता है।[5] हमें भी डा० तारनसिंह का मत ही अधिक समीचीन जान पड़ता है।

1- कनिंघम, हिस्ट्री आफ सिख्स, पृष्ठ 356।
2- ब्रिजेन्द्रसिंह, जाप, पृष्ठ 5।
3- वही, पृष्ठ 4।
4- डा० धर्मपाल अष्टा, दी पोयट्री आफ दशमग्रन्थ, पृष्ठ144।
5- डा० तारनसिंह, दसम ग्रन्थ रूप ते रस, पृष्ठ 212।

ये शब्द संख्या में दस हैं। विभिन्न हस्तलिखित प्रतियों में इनका क्रम भी भिन्न भिन्न है। किसी किसी प्रति में तो इनकी संख्या सात है।

सम्प्रेषण पाश्चात्य दृष्टिकोण से

प्रतिपाद्य :- 'शब्द हज़ारे' का प्रतिपाद्य महाकाल का एक मात्र ईश्वरत्व उसका आदित्व और अविनाशित्व, आत्म प्रबोधन, भक्त का एक मात्र लक्ष्य शरणागति एवं पाखण्डों का खण्डन है।

यद्यपि शुद्ध खण्डनात्मक शब्दों की संख्या केवल तीन है किन्तु व्याप्ति की दृष्टि से किसी न किसी रूप में यह खण्डनात्मकता इन सभी शब्दों में है। पांच शब्द जो शुद्ध आत्म प्रबोधन के हैं, उनमें भी प्रबोधन की रूपक शैली के रूप में खण्डन को ही अपनाया है। कवि मन से सन्यासी बनने को कहता है और सच्चे सन्यास की परिभाषा देते हुए सन्यास के बाह्य प्रदर्शनात्मक चिन्हों का खण्डन करता है।[1] यदि वह मन से योगी बनने का आग्रह करता है, तो उसके साथ भी तत्कालीन योगियों द्वारा गृहीत सिंगी, कठला, विभूत आदि में अपनी आस्था प्रकट नहीं करता।[2] उसका प्रतिपाद्य परम पूरुष परमात्मा की अविचल भक्ति ही है। जिसे अपनाने के लिए वह मोह की निद्रा खोने के लिए विषयों को विषयों के समान परित्याग करने के लिए तथा उसके नाम स्मरण को सदा करते रहने के लिए अपने आपको प्रबोधन करता है।[3] हरि के नाम का स्मरण ही एक मात्र कवि की दृष्टि से इस सांसारिक दु:खों से बचने का उपाय है। उसी की कृपा व्यक्ति को काल के बन्धन से छुड़ा सकती है, उसी की शरणागति संसार के दु:खों से छूटने का एक मात्र उपाय है।[4] इस प्रकार शरणागति के महत्व को भी शब्द हज़ारे में प्रतिपाद्य बनाया गया है। शरणागति का सब से स्पष्ट स्वर 'प्रभु जू तोकह लाज हमारी' नामक शब्द में है। इसके अतिरिक्त सो नर काल फांस ते बाचे, जो हरिशरण सिधाए' तथा केवल एक सरण सुआमी बिन यों नहिं कतहिं उधार में भी अकाल पुरुष की शरणागति ही जीव के उद्धार का एक मात्र उपाय प्रतिपादित की गई है।

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 709। (2) वही, पृष्ठ 710।
3- वही, पृष्ठ 710। (4) वही, पृष्ठ 711।

है । पर ये शरणागति के पद्य भी खण्डन से सर्वथा शून्य नहीं है। सो किम भानस रूप कहाए` पद्य में शरणागति के साथ साथ अवतार वाद का खण्डन रूप कहा ए ` पद्य में शरणागति के साथ साथ अवतारवाद का खण्डन भी प्रतिपाद्य विषय बनाया गया है।` इक बिन दुसर सो न चिनार` में शरणागति के साथ एकेश्वर वाद कीस्थापना है और मूर्तिपूजा का खण्डन ।बाह्याडम्बरों का खण्डन भी इसी प्रकार इन शब्दों में है ।कहना न होगा कि ये `शब्द हजारे ` अपने प्रतिपाद्य की स्पष्टता और प्रभविष्णुता के कारण दशम ग्रन्थ में विशेषास्थान रखते हैं ।

बिम्ब और प्रतीक विधान :- शब्द हजारे के प्रबोधनात्मक पद्यों में बिम्बों का भी उपयुक्त आयोजन हुआ है ।एक एक पद्य द्वारा कवि ने दो दो समानान्तर बिम्बों की योजना की है । उदाहरणार्थ पहले पद्य का श्रवण करते समय आँखों के सम्मुख एक साथ सन्यासी के दो रूप उतरते हैं।एक वह जो घर छोड़ कर वन में चला गया है,जटाएं और नाखून बढ़ाए हुए है ।शरीर पर विभूत लगाता है तथा दूसरों को उपदेश देता है।तथा दूसरा बिंब उस सन्यासी का है,जो घर में रहता हुआ ही अल्प अहार स्वल्प निद्रा,दया,क्षमा,प्रेम शील सन्तोष आदि की मर्यादा का पालन करता है और यत्र नियमों के अनुसार चलता हुआ अपनी आत्मा के सुधार में लगा हुआ है।

रे मन ऐसो करी सन्यासा ।
बन से सदन सबै करि समझाहु,मन ही माहि उदासा
जत की जटा जोग के भजन् नेम के न खन बढाओ
ज्ञान गुरु आतम उपदेसहु नाम बिभूत लगाओ।
अलप अहार सुलप सी निंद्रा दया छिमा तनप्रीति ।
सील संतोख सदा निरबाहिबो ह्वै वो त्रिगुणा अतीति ।
काम क्रोध हंकार लोभ हठ मोह नमन सो लयाबो
तबही आतमतत को दरसे परम पुरख कह पावै।।[1]

योगी का भी बिम्ब इसी प्रकार समानान्तर रूप में दिखाई देता है।उन दिनों योगियों की एक जमात थी,जो सिंगी,कंठा,विभूत, तांत आदि को धारण करते थे।भीख मांग कर खाते थे। धुतारे के तार को बजाना और उस

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 709 ।

संगीत के साथ अपने ज्ञान के गीत गाना उनकी दिनचर्या थी। शरीर का कायाकल्प करना और उसे मृत्युंजय बनाना भी उनकी प्रक्रिया में सम्मिलित था। एक इस योगी का बिम्ब तथा दूसरे कवि सम्मत योगी का बिम्ब जिस में सिंगी का स्थान सच्चाई ने कासले का स्थान निष्कपटता ने, विभूति का स्थान ध्यान ने लिया हुआ है, आंखों के सामने उभर आता है।

रे मन इह विधि जोग कमाओ।
सिंगी साच अकपट कंठला ध्यान विभूत चढाओ।
तांती गहु आतम बसी करकी भिछा नाम अधारं।
बाजे परम तात ततु हरि को ऊपजे राग रसारं।
ऊघटे तान तरंग रंग अति ज्ञान गीत बंधानं।
चकि चकि रहे देव दानव मुनि छकि छकि व्योम बिमानं
आतम उपदेस भेसु संजम को जाप सु अजपा जाके।
सदा रहे कचन सी काया काल न कबहुं व्यापे।।[1]

खण्डनात्मक पदों में भी कवि लघु बिम्बों की योजना करके अभीष्ट अर्थ को सम्प्रेषित करता है।

कहा भयो जो अतिहित चित कर बहु विधि सिलापूजाई।
पान थकि और पाहिन कह परसत कछु कर सिध न आई।[2]

ऐसी पंक्तियां मूर्ति पूजा करते हुए पुजारी के सिद्धि हीन खाली हाथों का बिम्ब आंखों में उभार देता है।

इन बिम्बों के निर्माण में कवि परम्परागत प्रतीकों का भी आश्रय लेता है। बढी हुई जटाएं, नाखून और विभूति लगाना ये सन्यास के प्रतीक बन चुके थे और सिंगी कठला, तांत बजाना और काया कल्प करना आदि योगियों के। पाहन शब्द मूर्तिपूजा के प्रतीक रूप में कवि ने अपनाया है---

अछत धूप दीप आरपत है पाहन कछु न खाइओ।[3]

'नेति' का प्रतीक दूसरी रचनाओं के समान 'शब्द हजारे' में भी आया है--

---

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 710।
2- वही, पृष्ठ 711।
3- वही, पृष्ठ 711।

दानव देव पिसाच प्रेत ते नेतह नेत कहाए ।[1]

पौराणिक प्रसंगों के लिए कवि ने नील कंठ , नरहरि, नारायण,नील वसन, बनवारी आदि विशेषण शब्दों का प्रयोग भी शिव आदि के लिए प्रतीक रूप में ही किया है--

प्रभु जू तोकह लाज हमारी
नील कंठ नरहरि नारायण नील बसन बनवारी।
परम पुरख परमेसर सुआमी पावन पउन अहारी।
माधव महा जोति मधु मरदन मान मुकंद मुरारी।[2]

इस प्रकार 'शब्द हजारे ' में समुचित बिम्बों तथा उपयुक्त प्रतीकों का प्रयोग रचना के प्रतिपाद्य को सम्प्रेषित करने में सफल रहा है ।

भारतीय दृष्टिकोण से

रस :- जैसा कि हमने प्रारम्भ में ही निवेदन किया था कि यह रचना विशुद्ध भक्ति परक है इसलिए इसमें एक मात्र भक्ति रस ही है।

भक्ति रस:- 'जापु' और 'अकाल उस्तुति' की भाँति यहाँ भी आलम्बन निराकार अकाल पुरुष ही है। अकाल पुरुष का स्वरूप, उसके नाम की महिमा और उस ही की भक्ति की विभोरता में कवि ने इस रस की पुष्टि की है। कवि एवं उसके अनुयायी इस भक्ति के आश्रय है और इस सारी सृष्टि का एक मात्र कर्ता अकाल पुरुष जो कि अनादि अनन्त, सृष्टि का का गढन और भंजन हार है, जिसके लिए न कोई शत्रु है न मित्र वह अनुपम इसका आलम्बन है।

केवल काल ही करतार।
आदि अंत अंति सुरत गढन भंजनहार।
बिंद उसतत जुउन के सभ शत्रु मित्र न कोइ
कउन बाट परी तिसो पथ सारथी रथ हाइ।
तात भात न जात जाकर पुत्र पौत्र मुकंद।
कउन काज कहा दिगंत आनि देवकी नन्द
देव दैत दिसाबिसा जिह कीन सरब पसार।
कउन ऊपमा तोन को मुख लेत नामु मुरारि।[3]

1-दशमग्रंथ, पृष्ठ 711, (2)वही, पृष्ठ710, (3) वही, पृष्ठ 711।

अकाल पुरुष की भक्ति या नाम स्मरण के प्रति कवि का आग्रह अकारण नहीं है । इस भवसागर से उसकी कृपा के बिना मुक्ति असंभव है । इस बात की पुष्टि वेद, पुराण, कुरान आदि सभी मान्य ग्रन्थ करते हैं। इन्द्र शेषनाग और बड़ेबड़े मुनियों का उसके ध्यान में लगे रहना भी इसी बात का प्रमाण है कि वही एक मात्र ध्येय है । स्थिति का इस रूप में अनन पाठक के हृदय में भक्ति भाव को उद्दीप्त करता है क्योंकि जो चौदह लोकों को वश में किए हुए हैं। राम आदि अवतारों की गुणस्तुति द्वारा उसकी भक्ति नहीं होती क्योंकि उसके रूपरंगादि का तो पता ही नहीं। साधारण लोगों को देख कर राम रहीम के नाम को न रटते रहो इनमें उबारने की क्षमता नहीं है केवल उसकी चरण सेवा ही काल के बन्धन से छुड़ा सकती है।

बिन हरि नाम न बाचन पै है।
चौदह लोक जाहि बस कीने ताते कहां पले है।
राम रहीम उबार न सक है जाका नाम रटे है।
ब्रह्मा विसण् रुद्र सुरज सीस ते बसि काल सबै है।
बेद पुरान कुरान सबै मत जाकह नेत कहे हैं।
इन्द्र फनिन्द्र मुनिन्द्र कलपबहु, ध्यावत ध्यान न ऐहे।
जाका रूप रंग नहि जनियत सो किम स्याम कहे है।
छूटहै काल जाल ते तब ही ताहि चरन लपटे है।[1]

उपर्युक्त पंक्तियां भक्ति भाव के लिए स्थिति और वातावरण का सतर्क उपस्थापन करके कवि के मन को और काव्य के अध्येताओं में भक्ति भाव का सम्प्रेषण करती हैं। भक्ति रस के इस परिपाक में कवि अभावों का पूर्ण सहयोग लेता है। सूर जैसे दूसरे कवियों ने जिस प्रकार पतितपावन आदि नाम की लाज का ध्यान दिला कर जहां अपने आराध्य को अपनी रक्षा के प्रति आकृष्ट किया है, वहां उसके उस नाम को सहारे अपने हृदय को भी सान्त्वना दी है ---

`हां मतिमंद चरण सरनागति का गही लेहु उबारी `

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 711-12 ।

ये दैन्य भक्ति के भाव स्पष्ट हैं।उसे अपनी लज्जा की सौगन्ध देना तथा उसके प्रति अपनी रक्षा के निमित्त नीलकंठ नरहरि इत्यादि साभिप्राय विशेषणों का प्रयोग करना भक्ति रस के अनुकूल अनुभाव हैं।

आवेग तथा दैन्य आदि संचारी भाव जिनका स्थान भक्ति रस के परिपाक में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है इस रचना के प्रत्येक पद में मिलते हैं।" मित्र पियारे नूं हाल मुरीदां दा कहना " इस पंजाबी पद में ये भाव अपनी चरम सीमा में से चरित रह का भक्ति रस को पुष्ट करते हैं।

भाषा शैली :- विषय के अनुरोध वश शब्द हजारे की भाषा जापु और अकाल उस्तुति जैसी रचनाओं की अपेक्षा अधिक कोमलता लिए हुए है। ओज गुण और परुषावृत्ति का तो इसमें नितान्त अभाव है। प्रबोधन[2] के पदों में प्रसाद गुण का और शरणागति[3] के शब्दों में माधुर्य गुण का बाहुल्य है।इन शब्दों की कुछ पंक्तियां तो कोमला और उपनागरिका वृत्ति के बड़े सुन्दर निदर्शन हैं।उदाहरणार्थ :--

1- अलप अहार सुलपसी निंद्रा दया छिमा तन प्रीति " में कोमला तथा

2- "निरबिकार निरजुर निद्रा बिन् निरबिख नरक निवारी" में

उपनागरिका की योजना द्वारा भाषा की सम्प्रेषण क्षमता को उत्कर्ष प्रदान किया गया है।

इस रचना में भी यद्यपि अभिधा का ही बाहुल्य है फिर भी लक्षणा और व्यंजना का अभाव नहीं है।पदों की प्राय: अन्तिम सभी पंक्तियां व्यंजना द्वारा ही भक्ति रस की अभिव्यक्ति करा रही है।" सोवत कहा मोह निद्रा में " "परम पाप तजि भागो ", " दसेक अउर हरि धाए ", में सोवत तजि, दसेक शब्द अपने लाक्षणिक अर्थों द्वारा व्यंजित अर्थ को सम्प्रेष्य बनाते हैं।

शब्द हजारे में कहीं उपालम्भ[4] शैली, कहीं खण्डनात्मक[5] और कहीं मण्डनात्मक[6] शैली का आयोजन किया गया है।सभी पद गेय हैं।वर्ण्य विषय के

1- मित्र पियारे नूं हाल मुरीदां दा कहना।
तुध बिन रोग रजाइयां दा ओढन नाग निवासां दे रहणा
सुल सुराही खंजर पियाला बिंग कसाइयां दा सहणा
यारड़े दा सानूं सथ वर चंगा, मठ खेड़ियां दा रहना। (दशम ग्रंथ, पृष्ठ711)

2-दशम ग्रन्थ, पृष्ठ709 (3)वही, पृष्ठ 710 (4)(5)वही, पृष्ठ 711 (6)वही, पृष्ठ711।
(4)वही, पृष्ठ 710।

अनुरोध से उनकी शैली में भले ही ओजस्विता का अभाव है किन्तु सजीवता और प्रभाव शालिता के गुण समस्त रचना को सम्प्रेष्य बना रहे हैं। सभी पदों का वाक्य विन्यास एक ही ढंग का है जिनमें कवि का मनोगत भाव बड़ी सरलता और स्पष्टता से व्यक्त हुआ है। किसी भी पद में कोई ऐसा वाक्य नहीं आया जिसे अनावश्यक जटिल या संदिग्ध कहा जा सके। वर्ण विन्यास भाषा के तद्भव रूप के अनुसार शुद्ध, रोचक और कहीं कहीं चमत्कारक भी है।[1] रचना के मुक्तक होने के कारण सभी पदों में प्रबन्ध जैसी धारावाहिकता तो संभव ही नहीं थी, फिर भी उसमें भावों का अविच्छिन्न प्रवाह है। इस प्रकार इस रचना की शैली रोचक सुन्दर और मनोहारक है।

छन्द और अलंकार :- 'शब्द हजारे' जैसा कि इसके नाम से प्रकट है शब्द ही हैं। दूसरी रचनाओं के समान इनमें छन्दों का वैविध्य नहीं। इन शब्दों में कवि ने वर्णों और मात्राओं का ध्यान रखने की अपेक्षा इनकी गेयता को ही दृष्टि में रखा है। इन दस शब्दों में राग रामकली, सोरठि, कलिआण, तिलंग काफी बिलावल और देवगंधारी का प्रयोग हुआ है। सभी शब्द इन रागों पर पूरे उतरते हैं।

जहां तक अलंकारों का संबंध है कि कवि ने इस रचना में अलंकारों का सहज प्रयोग किया है। अलंकारों से रचना की सम्प्रेषणीयता बढ़ी ही है। उसमें कमी नहीं आई।

शब्दालंकारों में केवल अनुप्रास की ही छटा यत्रतत्र बिखरी हुई है।

1- प्रभु जू तोकह लाज हमारी।
नील कंठ नरहरि नारायण नील बसन बनवारी।
पारब्रह्म पूरख परमेसर सुआमी, पावन पउन अहारी।
माधव महा जोति मधु मरदन मान मुकंद मुरारी।
निरबिकार निरजुर निद्रा बिनु निर बिख नरक निवारी।
क्रिया सिंघ काल त्रै दरसी कुकृत प्रनासन कारी।
धनुपाणि धृतमान धराधर अनिबिकार असिधारी।
हो मति मंद चरन सरनागति कर गहि लेहु उबारी
-- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 710।

छेकानुप्रास :-

चकि चकि रहे देवदानव मुनि छकि छकि व्योम बिवान।[1]
जो सुख चाहो सदा सभन को तो हरि के रस पागो।[2]

यहां क्रमशः च, द , छ और स वर्णों की दो बार आवृत्ति हुई है।

वृत्यानुप्रास :-

निरबिकार निरजुट निद्रा बिनु निरबिख नरक निबारी
कि कृपा सिंधु कालत्रै दरसी कृकृत प्रनासन कारी ।।[3]

यहां प्रथम पंक्ति में `न` वर्ण की अनेक बार आवृत्ति हुई है ।

श्रुत्यानुप्रास :-- परम पुरख परमेसर सुआमी पावन पउन अहारी।
माधव महाजोति मधु मरदन भान मुकंद मुरारी।।[4]

यहां ओष्ठ्य व्यंजनों `प` और `भ` की अनेक बार आवृत्ति हुई है ।

अर्थालंकार :- अर्थालंकारों में कवि ने उपमा , रूपक, उल्लेख विरोधाभास का प्रयोग किया है ।

उपमा:- सदा रहे कंचन सी काया काल न कबहुं वयापे।[5]

`कंचन सी काया` इसमें काया उपमेय और कंचन उपमान है।सी वाचक । `सुन्दर `यह साधारण धर्म लुप्त रहने के कारण लुप्तोपमा कहा जा सकता है ।

रूपक :- जत की जटा जोग को मजनु नेम के नखन बढाओ
ज्ञान गुरु आतम उपदेसहु नाम बिभूरा लगाओ ।
सींगी साथ अकपट कंठला धयान विभूत चढाओ।
तांती गहु आतम बसि कर की भिछा नाम अधार ।
बाजे परम तात तनु हरि को उपजै राग रसार ।।[6]

यहां सच्चे साधक का तत्कालीन योगी से रूपक बांध कर योगी से भी उत्कर्ष दिखाया गया है।योगी के बाह्याचरण के सभी अंगों का

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 710 । (2) वही०,पृष्ठ 710 ।
3- वही, पृष्ठ 710 । (4) वही, पृष्ठ 710 ।
5- वही, पृष्ठ 710 । (6) वही, पृष्ठ 710 ।

रूपक बांधे जाने से यह रूपक साँग है। भक्त योगी बने और इसलिए जटा भञ्जन, नख, गुरु भभूति, सिंगी, कंठा, तांत, भिक्षा आदि को अपनाने पर ये जटा आदि साधारण न होकर विशेष है। जटा यतित्व की हो, भञ्जन योग का, इसी प्रकार नख आदि भी नियमादि के हों।

विरोधाभास:- 'भंजन गढन समरथ सदाप्रभु सो किम जाति गिनायो।[1]

तोड़ने में समर्थ होता हुआ भी गढ़ने में समर्थ है, इस विरोध का परिहार ईश्वर की सर्वशक्ति मत्ता से हो गया है।

उल्लेख :- वेद पुरान हाट हठ हाड़ियों तदपि ध्यान न आए।
दानव देव पिसाच प्रेत ते नेतह नेत कहाए।
सूछम ते सूछम कर चीने ब्रिध्न ब्रिध बताए।[2]

यहां द्रष्टा भेद से स्वरूप भेद का उल्लेख कियागया है।

अर्थान्तर न्यास:- बिन हरि नाम न बाचन पै है।
चौदह लोक जाहिं बस कीने ताते कहां पलै है।[3]

पूर्वोक्त अर्थ की पुष्टि दूसरी पंक्ति द्वारा हो गई है।

अन्वय :- देव दैत दिसा बिसा जिह कीन सरब पसार।
कउन उपमा तौन को मुख लेत नाम मुरारि।[4]

यहां उपमेय की तुलना उपमेय ही के साथ की गई है। 'शब्द हज़ारे' के शब्दों में कवि गुरु गोविन्दसिंह ने अकाल पुरुष की स्तुति करके उसे प्राप्त करने के ढंग का विश्लेषण किया है। इन शब्दों में कवि गुरु ने अपने हृदय को सम्बोधित किया है। परन्तु इनके माध्यम से जब साधारण को समझाने का प्रयास किया है। कवि ने विभिन्न प्रकार के बिम्बों और प्रतीकों के माध्यम से साधारण लोगों के लिए इसे ग्राह्य बनाया है।

इस प्रकार संक्षिप्त होने पर भी यह रचना रस सम्प्रेषण में बड़ीसमर्थ है। प्रभविष्णुता की दृष्टि से इसका एक एक पद्य वास्तव में हजारों का ही है।

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 710 (2) वही पृष्ठ 711
3- वही, पृष्ठ 711-12। (4) वही, पृष्ठ 711।

खालसा महिमा

'खालसा महिमा' दशम ग्रन्थ में संग्रहीत रचनाओं में सब से छोटी है। इसमें केवल तीन सवैये और एक दोहरा है जो किंवदन्ती के अनुसार किन्हीं मिश्र जी को सम्बोधित किए गए हैं। अनुश्रुति है कि गुरु गोविंदसिंह सेना में शूद्रों का बाहुल्य देख कर मिश्र जी ने आपत्ति प्रकट की थी। इन पद्यों द्वारा उनका उत्तर दिया गया है।

जैसा कि इसका नाम ही स्पष्ट करता है इस रचना में खालसा (गुरु गोविन्दसिंह तथा उनके खालसा पंथ में दीक्षित हुए सैनिकों) की महिमा प्रतिपादित की गई है। ब्राह्मणों की रक्षा खालसा का निष्कारण धर्म है। जानबूझ कर वह इसकी उपेक्षा नहीं कर सकता। खालसा पन्थ एक प्रकार से क्षात्रियत्व की दीक्षा है और इसलिए क्षात्रिय की भान्ति ही खालसा अपने आपको विप्रों का सेवक मानता है। उनके कृपा कटाक्ष की कामना करता है।

रचना के पहले पद्य में कवि ने मिश्र जी से वादा किया है कि वे विप्रों की सहायतार्थ आज ही सैनिक भेजेंगे। दूसरे और तीसरे पद्य में गुरु कवि ने अपने अनुयायियों की महत्ता का वर्णन करते हुए उनके प्रति अपनी कृतज्ञता अर्पित की है।[1] अतः इसमें बिम्ब का अवकाश ही नहीं था।

इन पद्यों में गुरु जी द्वारा अपनी भूल की स्वीकृति सैनिकों को भेजने का वादा आदि तथा कृतज्ञता के भाव व्यक्त हुए हैं।

1- (क) जुध जितै इनही के प्रसादि इनही के प्रसादि सु दान कौ।
(ख) सेव करी इनही की भावत आउ की सेव सुहावत न जी कौ।

दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 7166- 17।

भाषा सशक्त है। शैली सरल और माधुर्य गुण युक्त है। रचना का प्रारम्भ मिश्र जी की उक्ति से न का उनके उठ से हुआ है और समाप्ति मिश्र जी की अनुकूल प्रतिक्रिया से। वाक्य स्पष्ट है, छोटे और मर्मस्पर्शी हैं।

अलंकारों में छेकानुप्रास, वृत्यानुप्रास, उपमा, और रूपक आदि द्वारा कवि ने रचना की सम्प्रेषणीयता को बढ़ाया है।

छेकानुप्रास :-

चटपटाइ चित मे जायो।[1]
दान दयो इनही को भलो।[2]

वृत्यानुप्रास:-

तन ते मन ते सिर लउ धन है सब ही इनही को।[3]

उपमा :-

चटपटाइ चित मे जायो त्रिण ज्यो कुचत होइ।[4]

रुपक

इनहु पै कटाछ कृपा के निहारो।[5]

इस प्रकार इस छोटी सी रचना के माध्यम से कवि गुरु ने अपने अनुयायियों की प्रशंसा के भाव को सम्प्रेष्य बनाया है।

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 717 ।
2- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 717 ।
3- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 717 ।
4- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 717 ।
5- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 716 ।

शस्त्रनाम माला

परिचय :- 'शस्त्र नाम माला' या 'शस्त्रनाम माला पुराण' गुरु गोविन्दसिंह विरचित एक विशालकाय रचना है।पांच अध्यायों में विभाजित इस रचना के 1343 छन्द गुरु गोविन्दसिंह के विशाल शब्द ज्ञान के अन्यतम निदर्शन है। शस्त्र-पूजा की परम्परा भारत में बड़े प्राचीनकाल से चली आ रही है।विजयादशमी के अवसर पर क्षत्रिय वर्ग महाराष्ट्र राजस्थान एवं भारत के अन्य राजपूती क्षेत्रों में शस्त्र की पूजा करते हैं। वेद में 'स्थिरा वः सन्तु आयुधा:' कह कर उनके प्रति ममत्व और श्रद्धा को व्यक्त किया गया है।

भक्ति में नाम परिगणन को गुरु गोविन्दसिंह से कुछ पहले ही विशिष्ट स्थान मिल गया था।[1] भक्ति के साथ शक्ति का सामंजस्य और शक्ति के प्रतीक अस्त्रों का परिगणन तथा पूजन गुरु गोविन्दसिंह ने पहली बार किया है। इस रचना में इसके साथ साथ सांकेतिक भाषा के निर्माण का काम भी हुआ है। शत्रुओं या उनके गुप्तचरों की उपस्थिति में अपने विशिष्ट अस्त्र को और संकेत करना भी इस पद्धति द्वारा सहज हो गया है।एक अस्त्र के विभिन्न नामों से उच्चारण द्वारा (उन नामों का यथार्थ बोधन वाले) शत्रुओं के मन पर अन्त्य अस्त्रों के अभिनव कलेवर का भ्रांति भी जगाया गया है।इस सब के साथ साथ सांस्कृतिक

1- विष्णु सहस्रनाम आदि स्तोत्रों का प्रणयन इसका स्पष्ट निदर्शन है।

रूप से इस कृति ने कवि के पाण्डित्य का सफल प्रदर्शन भी किया है।

'शस्त्रनाम माला पुराण' हिन्दी भाषा में शब्दों की निरुक्ति का दृष्टि से पहला और सर्वोपरि मौलिक ग्रन्थ है। इसमें तत्कालीन प्रचलित शस्त्र अस्त्रों के प्रचलित नामों के अतिरिक्त अनेक नए नामों की व्युत्पत्ति भी दी गई है। कवि ने शब्द कोषों में वर्णनात्मक नामावली के उल्लेख से अपनी रचना का कलेवर न बढ़ा कर नए नाम रचना में ही अपना कौशल प्रदर्शित किया है। यथा:-

'सकल मीन के नाम कहैं।'

'सकल सिंह को नाम लै।'

आदि प्रसंग में कवि ने मीन या सिंह के अनेक नामों का वर्णनात्मक न करके इनके पर्यायवाची शब्दों की सहायता से बाण आदि शब्दों के नवीन पर्यायों के निर्माण की विधि बताई है। परम्परागत नाम भी रचना में आए हैं किन्तु उनका उल्लेख स्वतन्त्र न होकर प्रसंगानुसार हुआ है। उदाहरणार्थ वीर पुरुष के पर्याय का निर्माण करने हेतु कवि दलहा (सेना के दल को नष्ट करने वाला) शब्द से प्रारम्भ करके सेना के पर्यायों के पीछे वधू या विनाशक के पर्याय देता चलता है। इस प्रसंग में वैसे यद्यपि वीर के पर्याय हैं पर नामांकित सेना के पर्यायों का भी ज्ञान हो जाता है। पंक्ति की संख्या (छन्द सं० ५८-५९ तक) दृष्टि से रचना बड़ी है।

इस प्रकार यह रचना शस्त्रास्त्र शब्द कोष, इन शब्दों का निरुक्त तथा एवं विविध शब्दों के नव निर्माण का आधार कोष बन गई है। गुरु गोविन्दसिंह की रचनाओं में 'शस्त्र नाम माला' का स्थान सदा विशिष्ट है।

समीक्षण भारतीय दृष्टिकोण से :-

प्रतिभा :- अपने समान अपने अनुयायियों को भी गुरु कवि उच्च सिंहासन बनाने का प्रयत्न कर रहे थे। 'चण्डी' में कवि ने पुरुष का नाम भी गणना था। कवियों को वे संत बनाना चाहते थे। 'शस्त्र नाम

१- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ७८८।

२- वही, पृष्ठ ७८४।

भाग में इन्हें दिखाने के लिए उनके नाम का परिगणन किया गया है और इस प्रकार :-

" नाम निहारो को बसै सब विधि भाव धार "।

रचना की कुशलता की इस पंक्तियों में कवि के प्रतिपाद्य के प्रति कवि ने पूर्ण सजगता का दिया है। 'नाम स्मरण' ही इस रचना का प्रतिपाद्य है। कवि ने अस्त्रों के परिचय का महाभारत के अर्थ में प्रयोग करके उसका स्थान और आध्यात्मिक पृष्ठभूमि प्रदान की है। भारत में नाम स्मरण को बड़ा महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है विशेष कर सन्त साहित्य में। रचना का आरम्भ ही नाम स्मरण से होता है :--

तांगे तारोहि सैक ऋ और चुके आए।
संजीवनि बलवीति का छोड़ि न आए ॥ ८॥

सात्विक अस्त्रों के इस प्रथम अध्याय में तीस से तामस अस्त्रों के नाम के व्याज से कवि ने अपने आराध्य का स्मरण किया है। अस्त्रों में महाभारत की तीनों का वर्णन किसी भूत रूप में प्रथम अध्याय में है आगे उसके पश्चात् नहीं। दूसरे अध्यायों में इस स्थिति का स्थान पुणेत्या नामों स्मरण से होता है। [illegible] गणना की गई है। अतः [illegible] अस्त्रों के नामों के [illegible] और [illegible] [illegible]।

जहाँ तक अध्यात्मानुसार ग्रन्थ की प्रतिपाद्यता का विषय है, प्रथम अध्याय में [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] और [illegible] [illegible] के कवि ने अपना इष्ट होने की घोषणा की है। [illegible] [illegible], ने अपने [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] में [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

1- धर्म ग्रन्थ, पृष्ठ 727 श्लोक 174 ।

2- वही, पृष्ठ 221 ।

3- वही, पृष्ठ 720, श्लोक 38 ।

4- वही, पृष्ठ 720 श्लोक 38 ।

5- वही, पृष्ठ 720 , श्लोक 64।

6- वही, पृष्ठ 720, श्लोक 67 ।

7- वही, पृष्ठ

8,9- वही, पृष्ठ 720 , श्लोक 64 ।

10- वही, पृष्ठ 721, श्लोक 69 ।

11- वही, पृष्ठ 721 श्लोक 70 ।

12- वही, पृष्ठ 721, श्लोक 71।

13- वही, पृष्ठ 721, श्लोक 78।

14- वही, पृष्ठ721, श्लोक 83 ।

चिन्ह और प्रतीक योजना :-

'अस्त्र-शस्त्रमाला' घटना प्रधान नहीं है। न ही इसे किसी प्रधान का भाग प्रधान है। इस का लक्ष्य है चित्र मुख्यतः घटनाओं, चरित्रों और नामों के सम्प्रेषण के लिए विशिष्ट माध्यम हैं। अभिव्यक्ति में विषय वस्तु आधार पर चित्रों का विन्यास न यहाँ अभीष्ट है न अपेक्षित। तथापि अस्त्रों के लिए नाम सीक्ष्य निर्माण की प्रक्रिया में पौराणिक संदर्भों का उपयोग होने से पाठक की कल्पना पर अनुचित बंधन सा लगने प्रतीत होते हैं -- जो उपयुक्त नहीं है।

सुर वर प्रभु उपायों के मर्दन यहि कहो।
नाम सुदरसन चक्र के चिह्न में चतुर लहो।[1]

तथा

भयो नाम उपायि के हा चक्र यहि उपाय।
नाम सुदरसन चक्र के लीजै सु अधि सुभाय।।[2]

जैसे पदों में सुर और सब साधनों के हन्ता कृष्ण का सुदर्शन चक्र सहित चित्र नहीं बन पाता केवल चक्र दिखाना ही पर्याप्त माना जाता है।

इन चित्रों का अभिधा प्रतीक भी स्पष्ट अवश्य है। सरोवर और मृणाल बलराम के अस्त्रों के प्रतीक है।[3] अतः उनके माध्यम से हलधर और मुसली आदि शब्द बलराम का सूक्ष्म बोध कराते हैं। यथा:--

---

1- दशम ग्रन्थ पृष्ठ 720 ।

2- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 720 ।

3- हलधर सब्द बखान के मृण ऊचा आ भाख ।
सकल नाम प्रधान के चौन चतुरधित राख ।
एक हल मुसली इती बैदीस बलराम।

-- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 720।

मृण ऊचरि पुन यह ऊचा बान बान के नाम ।।

-- वही, पृष्ठ 720 ।

८- प्रिथम पिनाकी पद ऊचरा का मुख नेत्र ऊचार।
का कह सब ही थान के तीसइ नाम सुचार ।[1]

८- दस ग्रीव दस कंठ बनि थरि पद दूइ ऊचार ।
दसकंध नाम इक थान के तीसइ चतुर बखान ।[2]

७- वाम पाणि आभरण ऊचरा दंभ शब्द पुन देइ ।
शत्रु दूइ थानंथै नाम थान सत लेइ ।।[3]

८- पुष्प कूट के नाम कहि आयुध दूइ उचार।
नाम सकल इक बाण के लिखत चले अपार।।[4]

यहाँ पिनाकी, दसग्रीव, वर्मन, पुष्प कूट(पुष्प कूष्ठ) आदि शब्द भी प्रतीक के संकेत हो अर्थ बोधक बने हैं। अतः इन्हें प्रतीकात्मक प्रयोग कहा जा सकता है। जैसे पिनाक नामक कूष्ठ के आधार पर बना पिनाकी शब्द शिव का प्रतीक है। रावण को जो नामतः न कह कर उसकी दस ग्रीवाओं के आधार पर अभिहित किया गया है। वर्म कवच की व्यवस्था के अनुसार दण्ड योजना करने वाले यमराज ताड़ितात् वर्म हैं। दुन्दुभी ने नेमि बल से उसका आह्वान कर शिव संधान के लिए गर्भ बाण किया, वर्मन नाम से उस युद्धविष्ठ का बोध प्रतीक पद्धति ही कराती है। फूलों को देव का काम कहा जाता है। पुष्पों का भी काम और कामना से अविच्छेद सम्बन्ध है। संस्कृत में कामदेव के लिए पुष्प धन्वा, कुसुमायुध आदि प्रतीकात्मक शब्दों का बार बार प्रयोग हुआ है। वास्तव में कवि के प्रतीकात्मक शब्द अधिकतर संस्कृत साहित्य पर ही आधारित हैं, जो उसके संस्कृत साहित्य से परिचय के परिचायक हैं। संस्कृत की परम्परा से जुड़ने के कारण ही ये शब्द विशिष्ट भाव के सूचक बन सके हैं।

सम्प्रेषण भारतीय दृष्टि से :-

रस योजना :- 'रत्न नाम माला-पुराण' में शब्दों का प्रयोग अर्थाभिधान के लिए न होकर यहाँ अर्थ योजना नए नए शब्दों के निर्माण के लिए

१- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ७८८(८) वही, पृष्ठ ७८७ (७) वही, पृष्ठ ७८८ ,
(४) वही, पृष्ठ ७८८ ।

हुई है।अत: इस रचना में रस व्यंजना सर्वथा गौण पड़ गई है।यह बात दूसरी है कि शस्त्रों की मार, ~~वर्णन~~ वर्णन में कहीं रौद्र और कहीं भयानक रस की झलक दिखा जाती है।किन्तु पूर्ण वर्णन के परिप्रेक्ष्य में यदि किसी रस की थोड़ी बहुत प्रतीति होती है,तो वह एक मात्र भक्ति रस ही है। तलवार आदि शस्त्रों से कवि अपनी कामना पूर्ति की याचना करता है--

सैफ सरोही सत्र और सारंगादि जिह नाम।
सदा हमारे चित बसो सदा करो मम काम ।।[1]

श्रद्धा और भक्ति का यह स्थायी भाव रचना में आद्योपान्त उपलब्ध मिलेगा । यथा :--

१- विष्णु चक्र के नाम में भेद कहत हुं गाइ ।[2]

२- सदा हमारी पै करो रक्षा करो मम काम ।[3]

३- नाम तुपक के सकल पढ़ानिए ।
सकल वृत्त मन लुलत बखानिए ।।[4]

४- हो रैन दिवस सब भूत जे मार बखो कीजौ अहि ।

५- वीर ग्रिसतनी दुष्टहा कालो वृत्त जिह नाम।
परो दुस्ट के कंठ मे करो हमारो काम।[5]

इन पदों में शस्त्र रुप धारी काल पुरुष आलम्बन है ।उसके प्रति रति, आस्था या श्रद्धा स्थायी भाव है। शत्रुओं की दुष्टता तथा आराध्य की सामर्थ्य उद्दीपन हैं।कामाभिलाषा, चुनाव एवं उत्साह,उग्रता आदि संचारी हैं। यहां विष्णु और उनके शस्त्र की वन्दनीयता,शस्त्रों से अपनी विघ्न बाधाओं उनके नामों की श्रवणेच्छा और रात दिन उन्हें बोलते रहने की चाह,शस्त्रों के कार्य और कवि की कामना में एक रूपता का सम्बन्ध आदि सब कुछ भक्ति रस के ही उपादान हैं वीर रस या उत्साह के नहीं ।इस प्रकार इस समस्त रचना में जो थोड़ा बहुत आभास हो पाता है,वह भक्ति रस का ही है।

१- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ७८३ । (२) वही, पृष्ठ ७८१ (३)वही,पृष्ठ ७८१ ।
४- वही, पृष्ठ ७८७ । (५) वही,पृष्ठ ७८३ ।

भाषा शैली :- 'अस्य-नाम-माला' की भाषा वर्ण्य विषय के अनुरोध से

प्रस्तुत ग्रन्थ की सभी रचनाओं का अभिधा और लक्षणा शब्दों की निर्दुष्ट सीधे कोई नहीं है।प्रयोजित शब्दों का ही लक्षणा या सामान्य सूचक रूप में प्रयोग हुआ है। नए शब्दों के गढ़ने में वैसी विदेशी भाषाओं के वायु और प्रत्ययों का वैसा और विलायती गठबन्धन का यहां नहीं हुआ ।जो नए शब्द बने हैं वे लोक शैली में ही हैं यथा:-- सार्वजनिक, व्यवसायिक, व्यवहार अनुशासन दीक्षा-दान, अनुशासन आदि।कवि ने प्रचलित शब्दावली का ही यथास्थान प्रयोग किया है यथा -- त्रिशिखधारी, धनुर्धर, राक्षसराज, दुष्टहन्ता,अनाथपति, दुर्लभ,अनाथ आदि। कवि की भाषा सर्वत्र भावानुगामी प्रसाद से पूर्ण है --

सब गंगा के नाम से पवित्र जल में स्नान।
सभी नाम की माला से जीवन सुफल महान।।[1]

रचना की शैली इष्टवृत्त की है।अतः कहीं कहीं उपदेश के लिए पौराणिक कथाओं का आश्रय अनिवार्य बन गया है।

प्रथम राम के नाम से बहुत पुत्र पद भाग
अनुज जया शत्रु जया नाम राम अनुराग।[2]

यहां किसी कथा का पूरा ज्ञान हुए बिना अर्थ प्रतीति नहीं हो सकती।

यह इष्ट वृत्त वर्णित वर्ण्य कथा में आश्रान्त आया है।पौराणिक संदर्भों के अभिव्यक्ति इस पद्धति के विधान में कवि ने भक्तजनों,धुव और प्रह्लाद से ही पूर्ण उदाहरण लिया है।उदाहरणों रूप में इस तथ्य को देखें:--

१- [illegible]
[illegible][3]

२- गंगा [illegible]
[illegible][4]

३- धुजनी [illegible]

१- [illegible] २- [illegible] ३- [illegible] ४- [illegible]

[illegible]

८- [illegible]

[illegible]

९- [illegible]

[illegible]

१०- [illegible] (पार्वती) का पति शूलि (पार्वति) का (चाप) बा-बाण

११- गंगा + शैल + शैल + शिखा = पाश

१२- कुमारी + शैल + शैल का अंक = पाश

१३- द्रुण का + पति + शरि + शैल + शैल = स्वप्न स्वप्नुह ।

१४- पार्वती + शैल + शैल + शैल + शैल = बाण ।

१५- सूर्य का शुष्क करने वाला पति में झुकने वाला धनुष और उसे फल के रूप में प्राप्त करने वाला हुआ बाण ।

१६- गंगा का स्वामी समुद्र, समुद्र का स्वामी वरुण और वरुण के अस्त्र का नाम है पाश।

१७- सेना का शत्रु वीर और वीर का शत्रु है पाश ।

१८- जिसके खाने वाले भृगु, भृगुपति नाम है शिव का और शिव की दुश्मन है स्वप्न ।

१९- पार्वती के दो पिता हैं । जिन का शत्रु कामदेव । कामदेव का चिन्ह मछली और मछली का शत्रु हुआ बाण ।

इस प्रकार यह रचना दृष्ट कूट शैली की १९ भङ्ग्यपूर्ण रचना है।इस दृष्टकूट पद्धति कवि ने काव्य के प्रचलन-मार्ग बनाई होगी या मनोविनोद व्यक्तियों के मनोरंजनार्थ अथवा पाण्डित्य प्रदर्शन के लिए यह प्रश्न दुरूह है । पहेली का प्रश्न और उसे का सम्बन्ध तथा सम्प्रेषण की कठिनाई इन दृष्टकूट पदों में यही मात्रा व्याप्त हुई है।

१- [illegible] ग्रन्थ पृष्ठ १४८ ।

२- वही, पृष्ठ १८८ ।

३- वही, पृष्ठ १८९ ।

कवि अपनी रचना को रसोत्कर्ष का रूप देना चाहता है। अतः प्रस्तुत अर्थों के बोधक से अधिक पर्यायों का प्रयोग उसे अभीष्ट रहा है। अतः यौगिक और रूढ़ पर्यायों के अतिरिक्त भूमि के लिए मत्स्य,[1] मीन,[2] मकर,[3] कच्छ[4], शफरी,[5] भट्टी,[6] मल्ला[7] आदि, आसमान के लिए नभ, अभ्र, नभ और गगन,[8] किरण के लिए -- गो, मरीचि, और किरण,[9] सेना के लिए पृतना, चमू, वाहिनी, सेना अनी, गण्डी, पत्ति, दंश, वृषण, पटली, वीरणा, वरूथ, पृक्का, विषूची, अक्षौही, ताल्ली, कुमती, ध्वजिनी[10] आदि पचास के लगभग नाम आए हैं जिनसे कवि के शब्द-ज्ञान का परिचय मिलता है।

पूरी रचना अध्यायक्रम विहीन है किन्तु यह ग्रन्थ काव्य की भाँति इसके पूर्वापर प्रसंगों में सामञ्जस्य है। वे परस्पर निरपेक्ष न रहते हुए भी स्वतः पूर्णता रखते हैं। अतः मूलतः हैं।

अध्यायों के विभाजन के लिए भी कवि ने सुसंगठित शैली अपनाई है। प्रथम अध्याय में विभिन्न अर्थों के नाम तथा उन नामों को अकारादिक्रम-वश लाने की चेष्टा हुई है। दूसरे अध्याय में नदियाँ आदि कई सामान्य अर्थों के पर्याय दिये गए हैं। तीसरे अध्याय में भारत का भूमि अर्थ तीर वर्णन का विषय बना है और चौथे में दिव्यास्त्र का वर्णन हुआ है। अंतिम अध्याय में ऐन्द्रजालिक और सैनिक संबंधी अर्थ कुछ के पर्यायों का निर्धारण किया गया है। वर्णन के मध्य में भी शैली अवस्थित रही है। जहाँ प्रकरण-वश नदी का उल्लेख हुआ है वहाँ दूर तक[11] वही चलता जाता है, सेना का प्रसंग आने पर भी वैसी ही स्थिति रही है[12]। सेना, यम, ठग आदि के प्रसंग भी कुछ कुछ इसी शैली में चले हैं। शैली नाम-गणना की है जैसे कोई बनिया ओलाओं को अनगिन अन्न कोष्ठ के अर्थ समझा रहा हो।

1-अभि ग्रन्थ, पृष्ठ ८०८ (८) वही, पृष्ठ ७८३, छन्द ८०७(८) वही, पृष्ठ७८३, छंद८०३, 4-वही, पृष्ठ ७८६, छन्द ८०६(८) वही, पृष्ठ ७८६, छंद ८१०(८) वही, पृष्ठ७८६, छंद८११, 7-वही, पृष्ठ७८६, छंद ८१८ (३) वही, पृष्ठ ७८८, छंद ३८ (३) वही, पृष्ठ ७८८, छंद३६, 10-वही, पृष्ठ७८१-४३ छंद४११-४८८ (११) वही, पृष्ठ ७३८-८१८, छन्द ३८३-३४८ 12-वही, पृष्ठ ७८-३८, छन्द ७८७-७७८

छन्द :- शस्त्र-नामा-माला में कुल 1313 छन्द हैं जिनमें दोहरा(711 बार) चौपई (344 बार) अडिल्ल (253 बार) का प्रयोग बाहुल्य से हुआ है । अन्य छन्दों में सोरठा(5 बार) छन्द(5 बार) छन्दछड़ा(एकबार)छन्द रूपायण (5 बार) इस रचना में प्रयुक्त हुए हैं ।ये सभी मात्रिक हैं । छन्दों की यह सूची ही इस तथ्य की साक्षी है कि इस रचना में कवि को किसी रस-विशेष का परिपाक इष्ट न रहा है वर्ण्यवस्तु का सम्प्रेषण ही लक्ष्य रहा है ।इनमें दोहरा ही एक भाव देता। छन्द है जिसमें ओजस्विता और गति है अन्य सभी विषय वस्तु को दिखाने या अंकित करने में ही सहायक है।कवि ने लोक व इस नाम संकीर्तन के लिए अपने वर्णन के साथ छन्दों के नाम दिये हैं यद्यपि इस रचना में उनमें से अधिकांश छन्दों का प्रयोग नहीं हुआ।कुछ प्रयुक्त और अप्रयुक्त छन्दों की सूची इस प्रकार है :--

1- फूलना छन्द दीनि इति कहीए।[1]
2- हो छन्द पाधड़ी भाँकि निहर होइ दीजिए ।[2]
3- हो छन्द रूपावतिसै निहर हुए ठानी अहि ।[3]
4- हो छन्द चकृपदं भाखि निसंक बखानिए ।[4]
5- हो सुबनि दोहरा भाखि निहर हुए दीजिए।[5]
6- हो सुबनि रसेवा भाँकि निहर हुए दीजिए ।[6]
7- हो छन्द कुंडरी आमाखि संक आनि दीजिए।[7]
8- हो छंद फूलना भाखि निसंक बखानिए।[8]
9- हो छंद अडिल्ल के भाँखि निहर अहि हारिए ।[9]
10- हो छंद बंधरीया भाखि निसंक प्रमानि ।[10]
11- हो सुबा सोरठा भाँकि निहर होइ दीजिए।[11]

1- दशम ग्रन्थ,पृष्ठ 803। (2) वही ,पृष्ठ 803 ।
3- वही, पृष्ठ 803 । (4) वही, पृष्ठ 806 ।
5- वही, पृष्ठ 806 । (6) वही, पृष्ठ 806 ।
7- वही, पृष्ठ 806 । (8) वही, पृष्ठ 707 ।
9- वही, पृष्ठ 807 । (10) वही, पृष्ठ 807 ।
11- वही, पृष्ठ 807 ।

अलंकार :- अलंकारों का प्रयोग शब्द अर्थ के माध्यम से काव्य को आकर्षक बना कर रसोद्बोधित में सहायक होना है। प्रस्तुत रचना में रसोद्बोधित का लक्ष्य न रहने से छन्दों के समान अलंकार भी नगण्य ही रहे हैं। इनका यदा कदा ग्रहण भी अभिव्यक्ति की विवशता प्रसंग में ही हुआ है।

अनुप्रास:- अनुप्रास के तीन भेदों -- छेकानुप्रास, वृत्यानुप्रास और अन्त्यानुप्रास का प्रयोग हुआ है।

छेकानुप्रास:-

पंडु पुत्र दुए नाम मनि बहुए अनुज मय देइ।[1]
सुन उचारि धौंसा धरे उचरि नाम धन लेइ।

यहाँ 'प' और 'ध' की एक बार आवृत्ति हुई है।

वृत्यानुप्रास:- अमरट अखाड़ा जब धौंसा जिह नाय।[2]

यहाँ 'स' की अनेक बार आवृत्ति हुई है।

सखियां के केवल सहज संग लेहो सखिधार।।[3]

यहाँ 'स' की अनेक बार आवृत्ति हुई है इसीलिए यहाँ वृत्यानुप्रास है।

अन्त्यानुप्रास:-

प्रिथम धान के नाम कहि पुन धरि सब्द बखान।[4]
नाम सकल ग्रीधान के तीनो चतुर पधान।

यहाँ बखान और पधान में अन्तिम वर्ण मिलने के कारण अन्त्यानुप्रास है।

अर्थालंकार

विरोधाभास:-

जाय बुझै कगरा करो बुझै करो सहाय।[5]

प्रभु स्वयं ही कगड़ा कराता है स्वयं ही सहायता करता है में परस्पर विरोधी गुणों का आभास होने से विरोधाभास अलंकार है।

1- प्रथम ग्रन्थ, पृष्ठ 727। (2) वही, पृष्ठ 728।
3- वही, पृष्ठ 729। (4) वही, पृष्ठ 730।
5- वही, पृष्ठ 723।

उल्लेख :-

सीस तुझे काया तुझे तै प्रानी के प्रान।।[1]

यहां एक ही प्रभु का अनेक वर्णन होने के कारण उल्लेख अलंकार है।

अतिशयोक्ति :-

भूत्व गात अभ के मर जिने कहयो इह बार।।[2]

यहां एक बार नाम स्मरण द्वारा यमपाल से मुक्ति पाना अन्य कथा का सम्बन्ध में सम्बन्ध दर्शाया जाने से अतिशयोक्ति अलंकार है।

तुल्योगिता:- चार कंठ मह ग्रीव भन ग्रहण बहर बखान।[3]

यहां केवल उपमेयों का वर्णन होना तुल्योगिता अलंकार की सृष्टि करता है।

परिक्रा :-

रिपु खंडन भंडन खल खंडन जग भाखि।[4]

यहां भावाभिप्राय विशेषणों का प्रयोग पद को परिक्रा अलंकार की सीमा में ले जाता है।

इस प्रकार यह रचना उपयुक्त अलंकारों से पूर्ण सम्पन्न है।

सारांश यह है कि यद्यपि प्रस्तुत रचना अपनी शैली एवं वर्ण्य विषय के कारण अलंकारों की अधिक सम्पन्नता से उतनी भिन्न प्रतीत होती है किन्तु सूक्ष्मता से विचार करने पर इस तथ्य का स्वत: निराकरण हो जाता है। भाषा एवं शैली की दृष्टि से भी विचारणीय यह भी बहुत कुछ वैसी ही है। साथ के साथ जैसे अन्य का अधिकांश सम्बन्ध है, इसी प्रकार गुरु गोविन्दसिंह जी के विभिन्न रूप से ज्ञान अन्यों का। अत: इस रचना का दशम ग्रन्थ में यह है महत्वपूर्ण सम्बन्ध है।

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 743 ।

2- वही , पृष्ठ 743 ।

3- वही, पृष्ठ 733 ।

4- वही, पृष्ठ 743 ।

चरित्रोपाख्यान

परिचय :- 'चरित्रोपाख्यान' गुरु गोविन्दसिंह द्वारा रचित एक बृहत् कथा-संग्रह है, जिसमें 404 उपाख्यान है। प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना के सम्बन्ध में एक कथा का उल्लेख मिलता है कि गुरु जी जब आनन्दपुर में अनेक सिद्धों, सन्यासियों, साधुओं और वैरागियों की परख कर रहे थे तो अजिया, रामजनी और अनूप कौर जैसी सुन्दर नारियां गुरु जी का उपदेश सुन कर उन पर मोहित हो गईं। किन्तु गुरु जी ने उन्हें उपदेशों द्वारा सुमति दी और सिक्खों को भी त्रिया चरित्र से परिचित कराने तथा उससे सावधान रहने के लिए उनके मार्ग प्रदर्शनार्थ इस ग्रन्थ की रचना की।[1] गुरु जी ने निम्नलिखित छन्द में इस तथ्य का प्रकाशन किया है :--

अर्ध गर्भ नृप त्रियन को, भेद न पायो जाइ।
तो तिहारी कृपा ते, कछु कछु कहो बनाइ।।[2]

'चरित्रोपाख्यान' की मूल कथा का सम्बन्ध चित्र सेन नामक राजा से है जिस पर इन्द्र लोक की कोई अप्सरा मुग्ध हो गई थी। उसके गर्भ से हनुवन्त सिंह नामक पुत्र भी हुआ। अप्सरा के इन्द्रलोक लौट जाने पर राजा ने चित्रमती नामक ओड़िशा राजकुमारी से विवाह कर लिया। चित्रमती युवा राजकुमार हनुवन्त सिंह पर मोहित हो गई। राजकुमार द्वारा काम-प्रस्ताव के ठुकराए जाने पर उसने प्रतिशोध की भावना से राजा के सम्मुख हनुवन्त सिंह के चरित्र पर आरोप लगाया। क्रुद्ध राजा ने राजकुमार को प्राणदंड की आज्ञा दी पर उसका मन्त्री वास्तविकता को समझ गया। उसने राजा का संदेह दूर करने तथा राजकुमार को बचाने के लिए अनेक प्रकार के त्रिया-चरित्र सुनाये। रात्रि को

1- रणधीरसिंह, शब्दभूरति, पृष्ठ 21।
2- दशम ग्रन्थसिंह, पृष्ठ 313।

राजकुमार बन्दी गृह भेज दिया और प्रात: उसे फिर बुला लिया जाता और तब मन्त्री राजा को त्रिया चरित्र की दूसरी कहानी सुनाने लगता ।

डा० धर्मपाल आस्ता ने इसमें आई कहानियों को तीन वर्गों में विभाजित किया है -- वीरता सम्बन्धी कथाएं, प्रतिष्ठा के लिए आत्मत्याग की कथाएं तथा शृंगार परक कथाएं ।[1] डा० कु० प्रसिन्नी सहगल ने इन कथाओं का विभाजन धार्मिक, पौराणिक, ऐतिहासिक, शृंगारिक, सामाजिक तथा विविध कह का किया है।[2] डा० हरिभजनसिंह ने इन कथाओं का विभाजन प्रेम कथाएं, शौर्य कथाएं, विनोद कथाएं तथा काम कथाएं अथवा छल कथाएं शीर्षक से किया है ।[3]

प्रेमकथाएं :--

इन प्रेम कथाओं में हीर रांझा (चरित्र 93) सोहणी महिवाल(चरित्र 101) सस्सी पुन्नू (चरित्र 103) , मिर्जा -साहिबां(चरित्र 129क) सम्मी ढोला (चरित्र 61) माधवनल काम कंदला(चरित्र 91) रत्नसेन पदमावती (चरित्र 169) आदि की कथाएं कही जा सकती हैं ।

शौर्य कथाएं :- इसके अन्तर्गत इन नारियों की कथाओं को रखा जा सकता है जिन्होंने युद्ध क्षेत्र में वीरता दिखाई हो। इनमें राजा विजयसिंह की दुहिता का युद्ध (चरित्र 52) वेगमखां की पत्नी गौहर वेगम की वीरता (चरित्र 96) कैकेयी द्वारा दशरथ के रथ का संचालन (चरित्र 102) आदि कथाएं आती हैं ।

विनोद कथाएं :- नकली वणिक की पत्नी द्वारा पति को मिथ्या भाषण से रोकना (चरित्र 26) मूर्ख जुलाहा किस प्रकार निरपराध होता हुआ भी अपनी मूर्खता के कारण पीटा गया (चरित्र 63) आदि कथाएं इसी के अन्तर्गत आ सकती हैं ।

1- डा० धर्मपाल आस्ता, दी पोयट्री आफ दशम ग्रन्थ, पृष्ठ150-151 ।

2- डा० प्रसिन्नी सहगल, गुरु गोविन्दसिंह और उनका काव्य, पृष्ठ164।

3- डा० हरिभजनसिंह, गुरुमुखी लिपि में हिन्दी काव्य, पृष्ठ 416 ।

काम कथाएं अथवा छल कथाएं :- इन कथाओं के अन्तर्गत उन कथाओं को स्थान दिया जा सकता है। जिनमें नारी केवल अपनी वासना पूर्ति के लिए पति को धोखा देकर जार से भोग करती है। ऐसी कथाएं इसमें अनेक हैं।

इस रचना के अधिकांश उपाख्यान इस मनोवैज्ञानिक तथ्य का उद्घाटन करते हैं कि नारी जैसे तैसे अपने प्रेम की सार्थकता चाहती है। इस सार्थकता के लिए उसे कहीं साधना का, कहीं शौर्य का, कहीं वाकचातुर्य का, कहीं कामुकता तथा कहीं छल का आश्रय लेना पड़ता है।

पुस्तक का अन्त अस्पष्ट है। संभवत: कवि ने जान बूझ कर ऐसा किया हो। राजकुमार हनुवन्तसिंह प्राण दंड से मुक्त हुआ या नहीं, इसका कोई संकेत रचना में नहीं है। उदेश्य रूप में केवल चित की चतुराता का उल्लेख कर दिया गया है। यथा :--

सुनै गूंग जो याही सु रसना पावई।
सुनै मूढ चित लाइ चतुराता आवई।[1]

चरित्रोपाख्यान के आरंभिक 43 छन्द (चरित्र 1) कवि की पुरानी मान्यता के आधार पर देवी भगवती की स्तुति में है। इनमें कवि ने दीन भाव से आत्म निवेदन किया है। प्रत्येक कथा के उपरान्त पौराणिक शैली पर पुष्पिकाएं दी हुई है। नाम धाम प्राय: सभी में दिए गए हैं किन्तु चरित्रों के आकार-प्रकार में कोई निश्चित नियम नहीं रखा गया है। ब्रजा राजमती की कथा केवल पांच छन्दों में पूरी हो गई है जबकि महाकाल दीर्घ-दाढ़ की कहानी 40 छन्दों में भी बड़ी कठिनाई से सिमिट पाई है। प्रसंगों का परिवर्तन स्वाभाविक रूप में न होने से जहां तहां कवि को -- ऐसी भांति कथा तह भई उता कथा पांडवन पे गई।[2] इस प्रकार स्पष्ट संकेत करना पड़ा है। कहने को कवि विस्तार से बचता है[3] पर इस रचना में पिष्टपोषण बहुत

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 13333। (2) वही, पृष्ठ 1014।

3- याते मैं विस्थार न करौं, ग्रन्थ बढन ते अति चित डरौं।
ताते कथा न अधिक बढ़ाई, भूल परी जह लेहु बनाई।।
दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 1113।

बहुत अधिक है। विभिन्न चरित्रों की बहुत सी पंक्तियों में समानता स्पष्ट प्रतीत होती है ।

ग्रन्थ में तिरिया(बुरे भाव में स्त्री के लिए प्रयुक्त शब्द) चरित्र दिखाने का दावा किया है अपनी कथाओं की अधिकांश नायिकाओं को काम कला और छल कपट में प्रवीण दिखाया है । इस प्रकार की भी कहानियां है, जिनमें शक्ति सम्पन्न स्त्री किसी पुरुष पर मोहित होकर उसे पकड कर मंगवा लेती है।उसके सामने काम-प्रस्ताव रखती है। न मानने पर जूतों से पिटवाती है और जैसे तैसे उसे मैथुन के लिए बाध्य करती है । बदनामी का भय दिखाना, नशीले पदार्थों द्वारा मदमस्त करना आदि हथकंडे अपनाना वे खूब जानती है।नारी के कामातुर तथा प्रतिशोधात्मक रूप का चित्रण मुख्य होने के कारण कहीं कहीं तो कथा अश्लीलता की सीमा छूने लगती है।

'चरित्रोपाख्यान' की इन कथाओं का स्रोत रामायण, महाभारत, पुराण, कथा सरित्सागर, दन्त कथाएं, विदेशी कथाएं आदि है। कवि की वीर भावना इनमें भी तिरोहित नहीं हो पाई है । चरित्रोपाख्यान के मध्य की अनेक कथाओं में अनेक युद्ध प्रसंग है और इस ग्रन्थ की समाप्ति भी एक लम्बे युद्ध-वर्णन से ही होती है।त्रियाचरित्र के संदर्भ में युद्धों का प्रसंग इस तथ्य का द्योतक है कि कवि की प्रस्तुत कृति भी उसके प्रतिरक्षात्मक साहित्य ही की एक कड़ी है ।जहां दूसरे ग्रन्थों में बाह्य शत्रुओं से संघर्ष की तैयारी है वहां प्रस्तुत उपाख्यान में आन्तरिक शत्रु काम से तथा अपनी कही जाने वाली (पत्नी या प्रेमिका) नारी से रक्षा का प्रयत्न दिग्दर्शित है। अपने इष्ट की स्तुति करते हुए कवि ने रक्षा सम्बन्धी अपना मनोरथ प्रकट भी किया है :--

अब रच्छा मेरी तुम करो। सिख्य उबारि असिख्य संघरो ।
दुस्ट जिते उठवत उत्पाता। सकल म्लेच्छ करो रणघाता।
जे असिधुज तव सरनी पडे । तिनके दुस्ट दुखित ह्वै मरे।
पारब्रह्म जवन पगु परे तिहारे।तिनके तुम संकट सब टारे।[1]

1- दशम ग्रन्थ ,पृष्ठ 1337-38 ।

सम्प्रेषण: पाश्चात्य दृष्टिकोण से

प्रतिपाद्य :-

महाकवि गोविन्दसिंह कवि से भी पूर्व गुरु थे । अपने शिष्यों, सैनिकों, अनुयायियों का दिशा निर्देश उन्हें करना था। वे चाहते थे कि नारी शक्ति रूप में शिव की साधना बने। माया रूप में बन्धन न बने। अत: उन्होंने इसी विषय को 'चरित्रोपाख्यान' का प्रतिपाद्य बनाया ।

रचना का प्रारम्भ करते हुए गुरु कवि गोविन्दसिंह ने सभी अवतारों में महाकाल की इस खड्ग रूपिणी आद्या शक्ति की अवस्थिति का प्रतिपादन किया है। मंगलाचरण इस आद्या शक्ति के गुण स्तवन से हुआ है। महाकाल की स्तुति से नहीं क्योंकि उसी की लीला उसी के रूप की विविधता ग्रन्थ का प्रतिपाद्य है । शक्ति के बिना शिव शव ही है तो है। शिव जो ध्वंस के देवता के रूप में महाकाल या अकाल पुरुष का दिव्यतम रूप है, उस शक्ति द्वारा ही संचालित होता है:--

तुही खड्गधारा तुही बागवारी
तुही तीर तरवार काती कटारी ।
तुही रुखी जनुखी भगवती तुही है ।।1।।

निहारे जहाँ आपु ठाढी वहीं है।
तुही आपु रूपी तुही स्री भवानी।।1।।

तुही विष्णु तू ब्रह्म तू रुद्र राजे ।
तुही विश्व माता सदा जे विराजे ।
तुही देव तू दैत तै जछ उपाये।
तुही तुरक हिन्दू जगत मे बनाए
तुही पंथ ह्वै अवतारी सिस्टी माही।
तुही बक्तते ब्रह्मवादों बकाहीं।।3।।[1]

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ309 ।

ग्रन्थ का आदि वाक्य -- 'वाहे गुरु जी की फतह --'[1] भले ही हो किन्तु कवि की दृष्टि में इस फतह का कारण भगवती का उपर्युक्त चरित्र ही ही है। अत: वह फतहकार के सामने झुकते हुए -- 'श्री भगवत्यै नम:'[2] ही है कहत है। यह भगवती की कृपा का ही फल है कि --

भूक उचरै शास्त्र, पिंग गिरन चढि जाये।
अंध लखै बहरो सुनै, जे तुम करो सहाय ।।43।।[3]

पर यह शक्ति है शिवकी, अकाल पुरुष की ही। कवि को यह ध्यान है। वह भूल क्षमा याचना के लिए सेवा करने के लिए उसी से प्रतिबद्ध है किन्तु जब भरोसे का प्रश्न आता है, तो कृपाण रूप में उस शक्ति के सामने हीनत मस्तक होता है[4]।

काली रूप भी इस शक्ति का ही है, जो शिव की विजय-ध्वजा है। उसके सैनिकों के लिए उत्साह की स्रोतस्विनी है।

हर ओम कोऊ जान न पावे, डह डह डह शिव डमरु बजावे।
कह कह कहं कालिका कहकै, जानुक धुजा काल को लहकै।
हसत पारवती नैन बिसाला।नाचत प्रेत भूत बैताला।।[5]

शिव और शक्ति का यह सम्बन्ध प्रदर्शन इस रचना के प्रमुख प्रतिपाद्यों में से एक है। शिव और शक्ति के इस सम्बन्ध में शक्ति की सार्थकता शिव परक होने में है। एक के अभाव में दूसरे के सामने अस्तित्व का ही संकट उपस्थित हो जाता है। देवी की निम्नांकित स्तुति से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है :--

सतिकाल मैं दास तिहारी। अपनी जान करो प्रतिपारी।
गुन अवगुन मुर कछु न निहारहु। वाहिगहे की लाज विचारहु।
हम तो सरन तेरी महाराजा, तुम कह वाहि गहे की लाजा।
जो तब भगत नेक दुखपैहे।दीन दयाल प्रभु विरदु लजै हो।।[6]

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 309। (2) वही, पृष्ठ 309।
3- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 313।
4- भूल छिमै हमरी प्रभु आपनु, भूलनिहार कहूं कोऊ यो सों।
सेव करै तुमरी तिनके छिन, मैं धन लागत धाम भरोसो।
याकलि मैं सम कालिकृपान की, भारी भुजान को भारी भरोसो।।47।
पृष्ठ313।
5- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ377।।(6)वही, पृष्ठ 1363 ।।

तलवार इस शक्ति का प्रतीक है।शक्ति-सम्पन्वित यह अकालपुरुष ही शरण्य है।गुरु गोविन्दसिंह की अन्य रचनाओं की भान्ति उसी की उपासना चरित्रोपाख्यान का भी मुख्य प्रतिपाद्य है :--

महाकाल की जे सरनि परे सु लये बचाइ ।
और न उपजा दूसर जग भय्यो सभै बनाइ ।।366।
जे पूजा असिकेतु की नितप्रति करै बनाइ
तिन पर अपने हाथ दै असि धुज लेत बचाइ ।[1]

`चरित्रोपाख्यान` के प्रथम 43 पद्यों में की गई चण्डी की स्तुति अपने प्रतिपाद्य के प्रति निष्ठा की ही मुखरता है।कवि का कर्तव्य[2] और अभिलाषा[3] भी इस प्रतिपाद्य में नग याहीरक कणी के तुल्य चमचमा रहे हैं।

प्रत्येक उपाख्यान के अन्त में कवि का `चरित्रोपाख्याने त्रिया चरित्रे` कहना यह द्योतित करता है कि रचना में त्रिया चरित्रों (कुलटा स्त्रियों के चरित्रों) का ही बाहुल्य है।इन त्रिया चरित्रों में नारी की पर पुरुष के साथ रति के विभिन्न चित्र है पकड़े जाने पर वह ऐसा बहाना बनाती है कि भविष्य भी सुरक्षित हो जाए । यार की निकटता निरापद करने के लिए वह उसे भाई, पुत्र या पति कुछ भी नाम दे सकती है ।छुपाने के विविध ढंग जानने के कारण उसे कभी कोई भय या शंका नहीं ।अपनी काम क्रीडा और प्रतिष्ठा इन दोनों को वह साथ साथ चलाती है और उसमें विघ्न पड़ने पर वह पति या प्रेमी को मारने में भी संकोच नहीं करती।वह क्रूरता की सीमा तक जा सकती है।प्रिय को दूर करने वाले को जमीन खोद कर नमक के साथ उसमें दबा डलवाना नारी के लिए साधारण सी बात है ।[4] विशेष स्थिति में वह अपनी काम क्रीडा के साथी, मनभाते प्रियतम को भी क्षमा नहीं करती।

गहि कृपान ततकाल भीत के मारिकै ।
हो टुक टुक कर दियो देग मै डारिकै ।

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 1335 ।
2- सभै ही मलेछान के नास के हो।
3- वहो चित्त मै जो वहै मोहि दीजै।। --वही, पृष्ठ310।
4- लोने हारी भूम खोदिकै गहि तिहदयादबाइ। ---- वही, पृष्ठ 910।।

डारि देग तर आग दई ओटाइकै
बहुरि सगल तिह भखि गई मासु बनाइकै ।
सगरो सदन निहारि चकृत राजा रह्यो ।
हो भेद दाइ कह हन्यो झूठ इन मुहि कह्यो।
प्रथम भोग करि भखि गई भेद दाइ कह ढ धाइ
राजा ते साची रही इह छल छिद्र बनाई ।[1]

इन त्रिया चरित्रों द्वारा सम्प्रेष्य बनाए जाने वाले प्रतिपाद्य को कवि ने प्राय: प्रत्येक आख्यान के अन्त में अभिधा द्वारा स्पष्ट कह डाला है :-- यथा--

निज मन की कछु बात न त्रिय को दीजिए ।
ताके चित्त चुराइ सदा ही लीजिए ।
निज मन की तासो जो बात सुनाइये ।
हो बाहर प्रगटत जाइ आपु पछु ताइए ।[2]

यही स्थिति अन्य स्थलों की है ।

सकल जगत मे जपुरख त्रिय को करत बिसास
साति दिवस भीतर तुरतु होत तवन को नास ।[03]
कोटि कस्ट स्याने सहहि कैसे दहे अंग
नेक नेह नहि कीजिए तउ तरुननि के संग ।[4]

जो सयाने है जगत मे तिय सो करत पियार
ताहि महाजड समुझि है चित्त भीतर निरधार ।[5]
जे नृप चमका नार है त्रियका करत बिसास ।
अवर पुरख पर अटकि त्रिय धरत तवन को नास।[6]
जिह पाछे बाला परै बचन न ताके कोइ ।
सभ छल सो ताके छलै रिव सुरपति कोऊ होइ ।।[7]

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 1131 । (2) वही, पृष्ठ 824 ।
3- वही, पृष्ठ 829 । (4) वही, पृष्ठ 835 ।
5- वही, पृष्ठ 838 । (6) वही, पृष्ठ 874 ।
(7) वही, पृष्ठ 1096 ।

वासना पूर्ति ही नारी का चरम साध्य है। अपने इस स्वार्थ की सिद्धि के लिए वह कृतघ्नता की पराकाष्ठा अपना सकती है जैसा कि इन पंक्तियों में दर्शाया गया है। जिसने जान बचाई सुख दिया उसे भी मार डाला।

एक आँखि काना हुतो दूतियो परा अबीर
गिरयो अंध जिमिहो नृपति दृग जुत भयो अधीर।
रानी नवरंग राय को तब ही लिया बुलाय।
आलिंगन चुंबन करे दिढ़ रति करी मचाई।
जब लगि नृप दृग पोंछि करि देख लग्यो बनाइ।
तब लगि रानी भानि रति नटुआ दिया उठाइ।।[1]

पति की उपस्थिति ~~नटुआ-दिया-उठाइ-।।~~ में यार से बिहार करने का यह विलक्षण उपाय है। पति भले ही राजा है पर है तो काना। नटुआ गरीब होने पर भी नवरंग है। कानी आँख में अबीर डाल कर उसे अपना विनोद प्रदर्शित करना और आँख ठीक होने तक अपने यार से वासनापूर्ति कर लेने का खतर तिरया ही उठा सकती है।

सुनु रानी ऐसे वचन नैनन नीरु बहाइ।
नृप देखत सुत जार कहि लियो गरे सो लाइ।।[2]

यदि राजा काना नहीं, दोनों आँखों वाला है। फिर भी तिरिया यार का आलिंगन उसके सामने ही कर सकती है। उसके आँसुओं में बड़ा प्रभाव है। बड़े बड़े समझदारों इनके बल पर वह मोदूँ बनाती है। ऐसी शरारत या दुष्टता सब की सब स्त्रियों के ही हिस्से में नहीं आई है। पुरुष भी ऐसे बहुत है, जो अपनी पत्नियों के साथ छल का व्यवहार करते हैं :--

कान दोऊ गहिरो गहे चूमि एक हम लीन।
इह छल सो छलि के जइहि यार विदा करि दीन।[3]
मंदिरा प्याओ तरुनि को निज कर प्यालो ढाइ।
इह छल सो तिह मोंत करि राखी खाट सुवारि।।[4]

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ । (2) वही, पृष्ठ 1053।
3- वही, पृष्ठ 816 । (4) वही, पृष्ठ 832।

एक दिवस दोऊ त्रिया निधरक लई बुलाय ।
आँखि मीचन खोलत भयो अधिक नेह उपजाइ ।
आँखि मूँदि त्रिय एक की दूजी लई बुलाय ।
अधिक भोग तासो किया इमि कहि दई उठाय ।।[1]

नारीगत या पुरुषगत वासना का यह अतिशय वर्णित होते हुए भी रचना का प्रतिपाद्य नहीं बन सका । प्रत्युत इसके प्रति वितृष्णा उत्पन्न होती है । सुखमय जीवन के लिए वासना नहीं अपितु उभय निष्ठ प्रेम अपेक्षित है । प्राय: सभी कथाओं का स्वर जीवन के इसी आदर्श का प्रतिपादन करता है ।

लगन निगोड़ी लागि जाते नींद भूखि भागी ।
पयारे मीत मेरे हौं पियारी अति मीत की ।।[2]

पवन पवन आनल अनल नभ नभ भू भू संग ।
जल जल के संग मिलि रह्यो तनु पिय के सरवंग ।।[3]

ऐसे प्रेम का फल भी कवि दिखाता चला है --

देव बधून अपछरन लयो विवान चढ़ाई
जै जै कार अपार हुअ हरखे सुनि सुर राय ।।[4]

इस प्रकार वासना विकार शून्य, पवित्र प्रेम युक्त जीवन का आदर्श ही इस ग्रन्थ का प्रतिपाद्य है, जो भक्ति भावना द्वारा सहज ही अपनाया जा सकता है :--

मनो राम के नाम कहे मुख ते
अघ ऊघ के त्रसि वृंद तले ।[5]

कवि के कवित्व की सार्थकता अभिप्रेतकी सम्प्रेषणीयता में निहित है । कवि ने पहली कथा के संदर्भ में त्रिया चरित्र के प्रति पुरुषा को सावधान रखने का भाव सम्प्रेषित किया है और इसमें अधिकांशत: वह अपनी अभीप्सित में सफलता हा है।

सच बात तो यह है कि उपाख्यान की मुख्य कथा `हनुवन्तसिंह-चित्रमती कथा ` को भूमिका रूप में इस ढंग से रखना ही पाठक के हृदय को

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 360 । (2) वही, पृष्ठ 357 ।
3- वही , पृष्ठ 393 । (4) वही, पृष्ठ 393 ।
(5) वही, पृष्ठ 377 ।

इस योग्य बना देता है कि वहाँ वैसे भाव सम्प्रेषित हो सकें। कथा का मुख्य नायक हनुवन्तसिंह है। राजा और अप्सरा का पुत्र होने के कारण उसमें अभिजात्यता है। उसका सौन्दर्यातिशय पाठकों के मन के कोमल कोने में स्थान बनाता है :--

एक पुत्र ताते भयो अमित रूप की खान ।
महारुद्र हूं रिसि रहे कामदेव पहचान।।[1]

फिर माता का छोड़ कर चले जाना सहानुभूति को जन्म देता है ।उस पर विमाता द्वारा उसके चरित्र से परास्त होना और उसका भोत के मुंह के सामने पहुँचना पाठक को पूरी तरह तैयार कर देता है कि वह न केवल चित्र भती का अपितु उस जैसी असंख्य त्रियाओं के कुटिल चरित्रों को सुनने का धीरज बटोरे और उनसे पीड़ित पुरुषों को अपनी सहानुभूति का भागीदार बनाए।कहानी के इस रूप में प्रारम्भ का ही यह प्रभाव है कि पूरी पुस्तक पढ़े जाने तक पाठक के सम्मुख एक दृश्य के दो चित्र आमने सामने कुलटा नारी के प्रति वितृष्णा और राजकुमार के प्रति सहानुभूति को संजोए खड़े रहते हैं-- पहला चित्र चित्रभती का है :--

फारि चीर कर आपने मुख नख घाइ लगाइ ।
राजा को रोखित कियो तन के चिन्ह दिखाई ।[2]

दूसरा चित्र बंदीसाला से लाए हुए राजपुत्र का है, जो प्रतिदिन सबेरे बुला लिया जाता है और आख्यान की समाप्ति पर बन्द कर दिया जाता है ।[3]

बंदि साल को भूप तब निज सुत दियो पठाय ।
भोर होत अपने निकट बहुरि लियो बुलाय ।[4]

राजकुमार की अपार सुन्दरता सहानुभूति को सघन करने के लिए पर्याप्त थी ही ।

'चरित्रोपाख्यान' के सारे चरित्रों का स्वर एक सा नहीं है ।पुरुष चरित्रों की योजना नारी चरित्रों की पूरक एवं पाठक की प्रतिक्रिया का

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 813 । (2) वही, पृष्ठ 815
3- वही , पृष्ठ 815 । (4) वही, पृष्ठ

प्रतिनिधि बन कर हुई है ।नारी चरित्रों में भी नारी एक रूप में नहीं आई । कहीं उसका आदर्श रूप है और कहीं कुलटा रूप । आदर्श नारी चरित्र भी दो प्रकार के है :--

1-उदात्त प्रेम कीप्रतीक नारियां

2- नीति एवं युद्ध कौशल सम्पन्न नारियां ।

हीर (हीर रांझा) दमयन्ती (नल दमयन्ती) , राधा(कृष्ण-राधिका) सस्सी (स्सी पुन्नू) आदि के चरित्र प्रथम प्रकार के अन्तर्गत आते है ।

गौहर बेगम, (चरित्र 96) ,केकेयी (चरित्र 102) ,मानवती (चरित्र 123) कैलाशवती (चरित्र 204) आदि के चरित्रों को दूसरे वर्ग में लिया जा सकता है ।

जहां तक कुलटा-ओं के चरित्र का सम्बन्ध है,इस उपाख्यान में उनकी कई कोटियां वर्णित हुई है । उदाहरणार्थ:--

1- जार से मिलने जाने वाली ।[1]

2- जार को अपने पास बुलाने वाली ।[2]

3- कृपा पात्र बता कर जार के पास रखने वाली ।[3]

4- भाई बता कर जार को पास रखने वाली ।[4]

5- पुत्र बता कर जार को पास रखने वाली ।[5]

6- एक से अनुराग करने वाली ।[6]

7- अनेक के साथ संभोग करने में निपुण ।[7]

8- पति के सामने ही जार का सेवन करने वाली इत्यादि ।[8]

काम भावना का इतनाविस्तृत वर्णन होते हुए भी इस सब वर्णन की परिणाति कवि की रुचि के अनुसार ही हुई है। काम भावना के प्रति

1- चरित्र नं0 वही, पृष्ठ 823। (2)वही चरित्र नं020 पृष्ठ 837।
2- दशम-ग्रन्थ,-पृष्ठ
3- चरित्र नं0 34 पृष्ठ 353 । (4) चरित्र नं0 203 पृष्ठ 1107 ।
5- चरित्र नं0166,पृष्ठ1057(6)वही-चरित्र नं0213,पृष्ठ1120।
7- चरित्र नं0 8,दशम ग्रन्थ,पृष्ठ 820।(8)चरित्र नं017,वही,पृष्ठ 833।

वितृष्णा और स्त्रिया चरित्र के प्रति सावधानता बनी रहती है । काम-भावना के प्रति कवि इस वितृष्णा को इस सीमा तक खींच ले जाता है कि संभोग शृंगार के नग्न वर्णन में भी पाठक तटस्थ रहता है, अधिक हुआ तो हंस लिया बस ।

बिम्ब विधान:- 'चरित्रोपाख्यान' के बिम्ब बड़े आकर्षक और प्रभाव शाली हैं । ये बिम्ब केवल रूप और आकार को ही नहीं अपितु पूरीघटना को आँखों के सामने उतार देते हैं।दापा कर की शोभा को तिरस्कृत करने वाली भृगचक्षुष्मती की पूरी कहानी अपने आप में एक बिम्ब है।

रमत पतारिया संगहुती आनी मोटिए यार
पायन को खरके कियो तवनि तरुनि के दुआर।
कह्यो पतरिये यार कहे जाहु दि वरियहि फांदि ।
जिन कोऊ पापी आइ है मुहि तुहि लेहे बांधि ।
अति रति तासों मानि के यार पतरियहि टारि।
भरम राइ उठि ठाढ़ भी जानि मोटियो यार ।
उठत बीरज भू पर गिरयो लरव्यो मोटियो यार ।
याको तुरत बताइये भेद रमें सुकुमारि ।।
अधिक तिहारो रूप लखि मोहि न रही संभार ।
ताते गिरयो अंग भुउ सक्यो न बीरज उबार ।
फूलि गयो पसु बात सुनि निजु सुभ साने आं
मोहि निरखि अबिबाल को छित पर गिरयो अंग।।[1]

चक्षुष्मती पतरिया के साथ रति - क्रीड़ा लीन थी कि उसका दूसरा प्रेमी जो कि मोटा था आ पहुँचा।द्वार पर उसके पैरों की खड़क सुनते ही भृगचक्षुष्मती ने पतरिये को दीवार फांद कर भाग जाने को कहा कि कहीं कोई पापी आकर तुम्हें और मुझे बांध ही न ले ।इस प्रकार खूब रति क्रीड़ा करके पतरिये को वहां से टाला और मोटा यार आया जान कर हड़बड़ा

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 816 ।

कर उठी । उसके उठते ही उसकी योनी में विद्यमान पतरिये का वीर्य भूमि पर गिर पड़ा। मोटे यार ने उस वीर्य को गिरते देख लिया।उस सुकुमारी ने अपने रमण के भेद को यह कह कर छिपाया कि तुम्हारे अमित रूप को देख कर मैं अपने आपको संभाल न सकी ।कामातिरेक वश मेरा स्खलन हो गया है। इसकी प्रतिक्रिया चक्षुष्मती के सर्वथा अनुकूल हुई ।वह मोटा अपने अंगों की सुन्दरता की प्रशंसा सुन फूल उठा ।उसने यह सोच कर बड़ा गर्व अनुभव किया कि मेरी छवि सुन्दरियों को दर्शन मात्र से स्खलित कर देती है ।

पूर्ण घटना का इस प्रकार बिम्बायन होने पर भी मुख्य कथा के आलोक में ये प्रासंगिक चित्र पाठक के हृदय में रति का जागरण नहीं करते । इसी प्रकार :--

इक तरुनि दूजे चतुर तरुन तीसरे पाइ ।
चहत लगायो उर सो छिनकि न छोरयो जाइ।
रैनि दिवस तासो रति मानैं प्रानन ते प्यारो पहिचाने।
लागी रहत तवन के उर सों जैस भांति भाखिया गुड सों ।[1]

तरुणी-तरुण का अटूट आलिंगन, रात-दिन की रति ,प्राणों से बढ़ कर प्यार इस व्यापक यथार्थ के आलोक में गुड़ और मक्खी के समान हृदय से चिपटे रहने का बिम्ब केवल चाक्षुष ही नहीं है,उसमें स्पर्श की भी अनुभूति है और हृदयता की भी ।

छैल छलनी छके अधिक सुख पावहीं।
जोर जोर चख चार दोऊ मुसकावहिं।
लपट लपट करि जाहि न छिन इक छोड़हिं ।
होकर अधरन को पान कुचान भरोरहीं।
चौरासियन आसनन करत बनाइकै ।
काम कलोल मचाइ अधिक सुखपाइकै।
कोकसार के भेद उचरै बनाइ कर
है निरखि प्रभा बलि जाहि दोऊ मुस्काइ करि ।।[2]

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 956 ।

2- दशम ग्रन्थ , पृष्ठ 1134 ।

ये पंक्तियां जिस बिम्ब को उभारती है भले ही वह केवल चाक्षुष हैं पर अपनी स्पष्टता और प्रभविष्णुतावश उसमें चित्रशाला का स्वरूप अपना लेने की पूर्ण पात्रता है ।

भोग जार सो त्रिय अति करै ।
भांति भांति को भोगन भरै ।
अधिका काम को त्रिय उपजावै ।
लपटि लपटि करि भोग कमावै ।[1]

भांति भांति राजा भजै ताकह भेद बढ़ाइ
चिमिटि चिमिटि सुंदर रमै लपटि लपटि त्रिय जाय।[2]

उपर्युक्त दोनों बिम्बों में यद्यपि पूर्ववत् स्पष्टता नहीं किन्तु औत्सुक्य उतावलापन तथा कामातिशय की अभिव्यक्ति में ये पूर्ण समर्थ है । इसी प्रकार :--

भांति भांति आसन करै तरुन तरुनि लपटाइ
मोद दुहुन को अति बढ्यो गननन गनी न जाइ ।
चिमिट चिमिट नृप केल कमावै लपटि लपटि तरु निसुख पावै।
बहंसि बहंसि आलिंगन करहीं।भांति भांति सो वचन उचरहिं।।[3]

'चरित्रोपाख्यान'के बिम्ब बड़े ही मर्मस्पर्शी है और यदि इन्हें पहली कथा के प्रसंग से तोड़ कर पढ़ा जाए,तो हृदय को मथ डालते हैं । यथा:--

बनमाला उर में धरी पीत बसन फहराय।
निरख दिपत दामनि लजै प्रभा न बरनी जाये ।[4]

गले में लहराती हुई वनमाला और कंधे पर झूलता पीताम्बर बिलकुल बादल में चमकती बिजली सी शोभा । कृष्ण का यह बिम्ब किस कामिनी के लिए उत्तेजक न होगा ।

कहीं कहीं बड़े सुन्दर दृश्य दिए हैं। यथा :--

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 340 । (2) वही, पृष्ठ 330 ।
3- वही, पृष्ठ 863 । (4) वही, पृष्ठ 347 ।

सात सुहागिन लै बटनो करि लावत है पिय के तन में
भरभाइ लुभाइ रही अबला लखि लालची लाल तिसी छिन में।
त्रिपराज सुराजत है तिनमो लखिओ उपमा उपजी मन में
सजि साज विराजत सु मनो निसिराज नछत्रन के गन में।।[1]

विवाह की तैयारी हो रही है।सात सुहागनें प्रथा के अनुसार शरीर में उबटन लगा रही हैं।नायिका इस दृश्य पर लुभा रही है।वह उसके दर्शन की लालची बन गयी है।शोभनाओं के मध्य सुशोभित राजपुत्र ऐसे दिखाई दे रहे हैं मानो तारों के बीच चांद हो।कैसी दृश्यात्मकता है इस पद्य में ।

लेखक की बुद्धि इतनी प्रखर है कि जहां उसने विवाह आदि के सुन्दर दृश्य दिए वहां युद्धों के भी सजीव चित्र प्रस्तुत किए हैं ।

लगे विरन के सुरमा धरनि पै आइ ।
गिरे परे उठि पुनि लरे अधिक हिएँ करि चाइ ।
कितै गोफने गूर्ज गोले उभारे कितै चंद त्रिसूल सेथी संभारे ।
कितै पुरघ फांसी लये हाथ डोले कितै मारही मार कै वीर बोले।[2]

वीरों का भारी मात्रा में संहार होने से युद्ध भूमि में कहीं गोफने, कहीं गुर्ज और कहीं गोले पड़े हुए हैं कहीं तीरों के चांद कहीं त्रिशूल कहीं सेंधी के दर्शन हो रहे हैं कहीं वीर लोग हाथ में पुरवा और फांस लिए घूम रहे हैं । बस चारों ओर मार ही मार की आवाज सुनाई दे रही है ।

युद्ध भूमि में वीर बहादुरी से लड़ते लड़ते प्राण दे रहे हैं।इस शौर्य के पुरस्कार स्वरूप उन्हें स्वर्ग का निवास मिला है । उन्हें लेने देव विमान आए हैं । अप्सराएं अपने हाथों प्रेम पूर्वक उन्हें विमान में चढ़ा रही हैं।दूसरे वीर जब इस दृश्य को देखते हैं,तो इस सौभाग्य को पाने के लिए मचल पड़ते हैं ।हम भी अप्साराओं के हाथों इन विमानों पर शीघ्रातिशीघ्र चढ़ाए जाएं इस भावना से वे और भी उत्साह के साथ युद्ध में जूझने लगते हैं :--

---

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ९७७ । (2) वही, पृष्ठ 934 ।

जे भट आनि अपछरनि लये विभान चढ़ाइ ।
तिनि प्रति ओर निहारके लगत सूर समुहाइ ।।[1]

युद्ध के वातावरण में भी चित्रात्मकता है।चारों ओर उठने वाला चीत्कार, गिद्धों का आकाश मण्डल में मण्डराना,योद्धाओं का दौड़ना,भूमि पर भर कर गिरना दृश्य को भयावह बना रहा है ।किन्तु योद्धाओं को कैसा भय वे तो कहाँ-- ऐसी मस्ती के साथ झूम रहे हैं मानो नशे में मस्त हों---

चहु ओर ते चावडे चीत्कारि रहे गिध आकास मंडराइ भारी।
लगे धाइ जो धा गिरे भूमि भारे,ऐसी भांति झूमे भयो मत्तवारे।।[2]

गुरु गोविन्दसिंह के बिम्बों में संजीवता है,गतिशीलता है।वे पाठक या श्रोता को अभिभोहित करते हैं,स्फूर्ती देते हैं और चंचल बनाते हैं।

अपनी पत्नी को पर पुरुष की अंकशायिनी देख कर पति के हृदय पर जो बीतती है,जो प्रतिक्रिया वह व्यक्त करता है,उसका सजीव चित्र इन पंक्तियों में उतरा है :--

डोगर सोच इक दिन लह्यो तुरत त्रिया के पाछे गयो
केल करत निरखे तहजाइ।बैठ रहा जिय कोप बढाइ ।।
करि करि केल सोइ ते गए।बे संभार निज तन ते भए ।
सोवत दृइअ नाथ निहारयो।काढि क्रिपान मारही डारयो।।[3]

प्रिय के ध्यान में मग्न हुई ललना का भोल्क बिम्ब कितना स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक है,कि देखते ही बनता है:--

लालके ख्याल अनूपम हर सूरीफि रही अबला मन माही।
लैलनि लैल के रस सों दोऊ हेरि तिनै मन मै बलि जाही।
काम कसी सु ससि सी छबि भीत सों नैन मिले मुस्काही ।
यो उह की बहकी छवि यार पियाइ के पाइ पतीजत नाही।[4]

जवानी क्या आई मन जबरदस्ती करने लगा ,संसार मनचाही में बाधक था अत: क्रूर दिखाई देने लगा ।चित्त के होश ह्वास जाते रहे।रात दिन प्रिय की छबि में ही चित्त लगा रहने लगा । अपने हाथों स्वयं शृंगार करने लगी सखी का

1- दशम ग्रन्थ,पृष्ठ९३७।(2)वही,पृष्ठ९३७(3)वही ,पृष्ठ 360(4)वही,पृष्ठ९७६।

भी विश्वास जाता रहा। आँखों से लिपटने, मुख चूमने की लालसा बढ़ी। अपने प्रियतम के प्यार की कल्पना भी प्रेयसी ने इसी रूप में करनी शुरु कर दी। इस मन:स्थिति का बिम्ब कवि ने क्या ही सहज ढंग से उतारा है--

जोबन के जोर जोरावरी जागी जालिम सो जग ते अन्यारी यो विसारी
सुधि चित्त की।
निसि दिन लाग्यो रहत तासो छबि की ज्यों एके ह्वै गई सु मानो ऐसी-
रागनीति की।
अपने ही हाथ बनावत सिंगार ताके पास की सखी न कीन न कहु -
प्रतीत की।
आँ लपटाइ मुख चापि वल जाइ ताके ऐसे ही पयारी जाने प्रीतम सो
प्रीत की ।।[1]

वासना पूर्ति ही नारी का चरम साध्य है। अपनेइस स्वार्थ की सिद्धि के लिए वह कृतघ्नता की पराकाष्ठा अपना सकती है। इसी बात को कवि ने कितने सुन्दर बिम्ब के माध्यम से चित्रित किया है।

एक आँखि काना हतो दूतियो परा अबीर
गिरयो अंध जिमि हो नृपति दृगजुत भयो अधीर।
रानी नवरंग राय को तब ही लिया बुलाय।
आलिंगन चुंबन करे दिढ़ रति करी मचाइ।
जब लगि नृप दृग पोंछि करि देख लग्यो बनाइ।
तब लगि रानी मानि रति न टूआ दिया उठाइ।।[2]

राजा काना है। रानी इस काने पन का पूरा लाभ उठाती है। वह अठखेलियों के व्याज से उसकी आँख में अबीर फाँक देती है। फलत: वह दोनों आँखें बंद कर गिर पड़ता है और रानी उसके सामने ही अपने जार नवरंग के साथ आलिंगन, चुम्बन और रति क्रीड़ा करती है।

इसी प्रकार गप्पी बनिक का यह बिम्ब कितना सजीव और मर्म-स्पर्शी बन पड़ा है। जो अपनी तैं गुदा पर खोदन देहि बिहंग।
ते तुम अब जीवत रहो बचे तिहारे अंग।।[3]

1- काव्य ग्रन्थ, पृष्ठ 936 । (2) वही, पृष्ठ
3- वही, पृष्ठ 349 ।

तबै बनिक तैसे किया ज्यों त्रिय कह्यो रिसाइ ।
बरहरि करि छित पर गिरयो व चनन मारयो जाइ।।[1]
तब तरुनी ह्य ते उतरी इक धुरकी के संग ।
राम भनैतिहि बनिक की बुरि पर खुदयो बिहंग ।।[2]

'पुरुष वेष धारिणी पत्नी का अपने ढींग मारने वाले पति को रास्ते में रोक कर गुदा पर बिहंग खोदने के लिए कहना और घबराये हुए बनिये का चुपचाप उस आज्ञा पालन के लिए भूमि पर गिर पड़ना --'यह बिम्ब कितना स्पष्ट और मोहक है। इसके आगे बिम्ब की सघनता और स्पष्टता बढ़ जाती है जब तरुणी घोड़े से उतरती है। घुड़की देती है और उस बनिये की गुदा पर बिहंग खोद देती है ।

सौन्दर्य के समन्वित चित्र के लिए कवि ने परम्परा प्राप्त पौराणिक और ऐतिहासिक उपमानों का भी आश्रय लिया है ।ये उपमान प्राय: प्रत्येक भारतीय पाठक की कल्पना में बसे रहने के कारण बिम्ब जैसे ही प्रभावपूर्ण है । यथा :--

नैन हरन के हरे बैन पिक के हरि लीने।
हरि दामनि की दिपति दसन दारिन बस कीने ।
कीर नासिका हरि कदलि अंघ्रि ते हारे
हो ह्यो जलज जल माहि आंखि लखि लजत तिहारे।[3]

प्रतीक योजना:-

कवि ने अपने वस्तु विषाय एवं प्रतिपाद्य के सम्प्रेषाण के लिए उपयुक्त प्रतीक चयन में भी अपना पूर्ण कौशल दिखाया है ।

1- मछरी ज्यों तरफै परी, चुभी चखन की चोट ।[4]

~~2- जो अपनी ते गुदा पर खोदन देहि बिहंग ।~~
~~ते तुम अब जीवत रहो बचे तिहारे अंग ।।~~[5]

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 349 ।
2- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 349 ।
3- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 1044 ।
4- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 815 ।

८- अधिक तरुनि की प्रभा विराजे
लखि ताको तड़िता तन लाजे ।[1]

३- मथि कै मानो चन्द्र को चीर सभै तन काढी ।[2]

४- जोब्न जोत अधिक इह बढ़ी ।
मनहु चंद सार मथि कढ़ी।[3]

५- कंचन ते तन है रमणीय दृगंचल चंचल है अनियारे ।
खंजन सो मन रंजन राजत कंजन सो अति ही कजरारे।[4]

उपर्युक्त सभी उदाहरण प्रतीकों के हैं।

१- मछली तपड़पने का प्रतीक है।

८- तड़िता सौन्दय की उस चमक का प्रतीक है जो बरबस किसी को द्रष्टा बना देती है।

३- चन्द्र के प्रतीक द्वारा यहां नायिका की सुधाभ्य सुन्दरता द्योतित की गई है।दूध की अपेक्षा मक्खन गुण, मूल्य और प्रभाव सभी दृष्टियों से उत्तम है।चन्द्र को मथ कर निकाला हुआ सौन्दर्य निस्सन्देह चांद से सैंकड़ों गुना श्रेष्ठ रहा होगा ।

४- यहां चांद को नहीं, चांद के सार को मथा गया है अत: सौन्दर्य और भी उत्तम है।

५- यहां शरीर की दीप्ति के लिए कंचन, मासिक के नुकीलेपन के लिए कीर, मन की चंचलता के लिए खंजन आंखों की मोहकता के लिए कंजन (कमल) प्रतीक रूप में प्रयुक्त हुए हैं।

इसी प्रकार निम्नांकित पद्य में :--

जानि पयान बिछोह त्रियान के छोभ बढ़यो उह मीत उभारी
अंचर डारिकै मोतिन हार दुरावत जानि भयो उजियारी।
पानहु पौंढ़त प्रीतम के तन कैसे रहे इह चाहत पयारी।
चंद चढ़यो सु चहौं चिर लै चित देत दिवाकर की दिसि गारी।।[5]

१- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 321 ।
८- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 327 ।
३- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 345 ।
४- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 906 ।
५- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 334 ।

क्षोभ के द्वारा हृदय में छाते हुए अंधेरे की प्रतीति हो रही है। मोती की चमक में उजाले की प्रतीति का आभास है। चांद चढा रहे इस प्रतीक से रात बनी रहे प्रियतम बिछोह न हो यह ध्वनि निकलती है और दिवाकर की दिसि को गाली०द देना -- सूर्य न निकलने की इच्छा द्योतित करने के लिए प्रतीक रूप में प्रयुक्त हुए है।

अति जोबन ताके दिपे सब आंन के साथ।
दिन आसिक दिनपति रहे निसु आसिक निसनाथ।[1]

यहां दिनपति और निसनाथ प्रतीक बन कर आए है। इस प्रकार चरित्रोपाख्यान के वस्तुविषाय की सम्प्रेषणीयता में बिम्बों और प्रतीकों का बड़ा योग दान रहा है।

सम्प्रेषण भारतीय दृष्टिकोण से

रस परिपाक :-

'चरित्रोपाख्यान' के मुख्य रस का प्रश्न बड़ा टेढ़ा है। ग्रन्थ का आरम्भ श्री भगवती के वीर तथा रौद्र रूप की स्तुति से तथा अवसान वेनती चौपाई से हुआ है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि इस ग्रन्थ को भी अपनी अन्य भक्ति परक रचनाओं में ही समाहित करना चाहता है। यों सारे ग्रंथ में नग्न शृंगार या शृंगाराभास का ही प्रवाह है पर कवि को यह अभीष्ट नहीं कि पाठक इस रस या रसाभास का यथार्थ रूपेण आस्वाद करे इसलिए वह अधिकांश उपाख्यानों के अन्त में दो चार पंक्तियां ऐसी दे देता है कि विषाय वस्तु के आधार पर हृदय में निष्पन्न होने वाली रति स्थायित्व पाने से पूर्व ही निर्वेद में परिणात होती रहे। बीच बीच में वह दो चार प्रसंग आदर्श प्रेम के भी रख देता है जिससे पाठक की रसास्वादन शक्ति बहक जाए वह काम क्रीड़ा को ही रति का यथार्थ स्वरूप न मान बैठे। चार सौ से भी अधिक इन क्रिया प्रसंगों में उपदेशों की बाढ़ लगा कर भी कवि निश्चिंत नहीं हुआ। ग्रन्थ के उपसंहार में जो वस्तुत: रस परिपाक की सीमा हुआ करती है कवि का सारा प्रयत्न पाठक के

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 1095 ।

हृदय से शृंगार के संस्कार खुरचने के लिए होने लगता है।दीर्घ दाढ दानव की कथा का आयोजन वहां बड़े विस्तार के साथ होता है ।सारी कथा में शृंगार का नामों निशान भी नहीं है ।इस उपाख्यान को मूल कथा के साथ न जोड़ना तथा मूल कथा (हनुवन्तसिंह के बचने या न बचने की कहानी) को पूरी किए बिना ही छोड़ देना भी संभवत: यही सिद्ध करता है कि इस अवस्था तक पहुँच जाने पर शृंगार की याद दिलाना अभीष्ट प्रभाव पर गहरी चोट होगी।वहां वीर, भयानक, रौद्र और वीभत्स रस इतने विस्तार और पुष्ट रूप में वर्णित हुए हैं कि शृंगार जैसी कोमल भावना के लिए हृदय में स्थान ही नहीं रह पाता ।पाठक के सम्मुख अकाल पुरुष और भगवती का सर्वशक्ति मान रूप ही अवस्थित रहता है और उसके सहारे पाठक के भावों की परिणति भक्ति रस में ही संभव थी और कवि ने विनय चौपाइयों को रख कर वैसा ही किया है ।

इस प्रकार शृंगार प्रधान होते हुए भी इस रचना का मुख्य रस 'भक्ति रस 'ही है । दूसरे सभी रस उसके सहयोगी और संवर्धक हैं।शृंगार के दोनों पक्ष, हास्य,करुण, अद्भुत , वीर,भयानक, रौद्र वीभत्स और शान्त न्यूनाधिक रूपेणइस रचना में है और अन्त में सब की परिणति भक्ति में ही हुई है ।

भक्ति रस :- जैसा कि पहले भी कहा गया है कि गुरु गोविन्दसिंह का काव्य भक्ति का काव्य है।उसमें यदि युद्ध है तो धर्मयुद्ध है, जिन में फतह वाहगुरु की फतह है।उनमें जूझना उस अकाल पुरुष के के आदेश का पालन है।[1] महाकवि के लिए यह जीवन लक्ष्य है ।[2] उनके काव्य में आया शृंगार नारी रति का नहीं विरति का सन्देश देता है :--

सकल जगत में जो पुरुष त्रिय को करत विसास
साति दिवस भीतर तुरत होत तवन को नास ।
जो नर काहू त्रिया को देत आपनो चित्त ।
ता सर का इह जगत में होत[3] खुआरी नित्त ।।

1- हम इह काज जगत मो आए, धरम हेत गुरुदेव पठाये।
जहां तहां तुम धरम बिथारो दुस्ट दोखियन पकरि पछारो।।(दशमग्रंथ,पृ057।

2- देह सिवा वर मोहि इहै सुभ करमन ते कबहूं न टरौं
न डरौं अरि सों जब जाइ लरौं निसचै कर आपनी जीत करौं।
अरु सिख हो आपने ही मन को इह लालच हउ गुन तउउचरै।
जब आवकी अउध निदान बनै अतिही रण में तब जूझ मरौ।।वही,पृ099

3- दशम ग्रन्थ,पृष्ठ 829।।

गुरु गोबिन्दसिंह की यह भक्ति भावना ही अकाल पुरुष तथा उसकी शक्ति के माध्यम से `जापु,'' अकाल उस्तुति,' `ज्ञान प्रबोध, ` विचित्र नाटक` आदि रचनाओं में स्पष्ट रूपेण मुखरित हुई है। `चरित्रोपाख्यान` के मूल में भी कवि की यही भावना है ।ग्रन्थ के प्रारम्भ में मंगलाचरण के रूप में भगवती को लक्ष्य कर उनके कहे गए वचन इस तथ्य का उन्मीलन करते हैं :--

जयंती तुही मंगला रूप काली कपालिनी तुही है तुही भद्रकाली
दुर्गा तू क्षिमा तू सिवा रूप तेरे तू धात्री स्वरा नमस्कार मोहे ।
तू ही प्रात संध्या अरुण वस्त्र धारे तुम ध्यान मैं सुक्ल अंबर सुधारे।
तुही पीत बाना सयंकाल धार्यो सभै साधु जन के महामोह टार्यो।
तुही आपको रक्त देता कहे है तुही व्रिध चिंतान हूं के चबै है ।[1]
तुही नंद के धाम से औतरेगी जसक भरी साक सों तन भरेगी ।।

उपर्युक्त पंक्तियों में अकाल पुरुष की शक्ति का गुण स्तवन किया गया है।उस दिव्य शक्ति ने ही समय समय पर विभिन्न रूप धारण कर भक्तों का त्राण एवं दुष्टों का संहार किया है । इस प्रकार अपने विभिन्न रूपों में वह शक्ति यहां भक्ति का आलम्बन है ।उसके कार्य उद्दीपन हैं।कवि की एकनिष्ठता और आशा अनुभाव हैं ।

मेरु करो त्रिण ते मुहि जाहि गरीब निवाजन दूसर तोसों।
भूल छिमै हमरी प्रभु आपन भूलन हार कहुंकोऊ मोसो।
सेव करी तुमरी तिनको छिन मै धन लागत धाम भरोसो।
या कलि मै सब कालि क्रिपान की भारी भुजान को भारी भरोसो।[2]

इन पंक्तियों में कवि ने अपने आराध्य की सर्वशक्ति मत्ता,दयाशीलता एवं निर्भर योग्यता के वर्णन के साथ साथ अपने दैन्य(गरीब,भूलनहार,सेवा का स्मरण आदि) का अंकन करके भक्ति भावना को अभिव्यक्ति प्रदान की है।

इसी प्रकार निम्नांकित पद्य में इन बातों के साथ साथ आराध्य का स्वरूप चित्रण भी है--

तुम हो सकल लोक सिरताजा गरबन गंज गरीब निवाजा।

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 810 । (2) वही, पृष्ठ 813 ।

आदि अकाल अजोनि बिना भै ।निर बिकार निरलंब जगत मै ।
निरबिकार निरजुर अविनासी ।परम जोग के तत्र प्रकासी ।
निरंकार नव नितय स्वयभव ।तात मात जहं जात न बांधव ।
सत्त बिहंडसु रिदि सुखदायक ।चंडमुंड दानव के घायक ।
सत्य संघ सत्यता निवासा । भूत भविख भवान निरासा ।
आदि अंत अरूप अभेसा।घट घट मीतर किया प्रवेसा ।[1]
अंतर बसत निरंतर रहहं। सनक सनंद सनातन कहहं ।।

वह सकल लोक का सिरताज है ।गर्व भंजन करने वाला है ।गरीब निवाज है। अनादि, अकाल, अयोनी और अभय है। निर्विकार होने से जगदाश्रय है ।उसमें अहंकार नहीं वह नित्य होते हुए भी चिर नवीन है स्वयंभू है।न उसका कोई पिता है, न माता ,न कोई जाति है और न बन्धु ही है । वह सत्य स्वरूप है। ऋद्धि सिद्धि और सुख का दाता है।चंडमुंड आदि दानवों का संहार उसी ने किया है।वह सत्य स्वरूप है।भूत,वर्तमान और भविष्य का ज्ञाता है। वह अन्त है।उसका कोई रूप या वेश नहीं है।वह प्रत्येक हृदय के अन्दर समाया हुआ है ।वह हृदय में बस कर अभिन्न होकर रहता है। सनक आदि ऋषियों ने उसे आनन्द स्वरूप और सनातन कह कर पुकारा है ।

कवि का आत्म निवेदन देखिए:--

क्रिपा द्रिस्टी तन जाहि निहारि हो।ताके ताप तनक भी हरि हो।
रिधि सिधि घर भी सभ होई।दुस्ट क्राह छुवे सकै न कोई ।
एक बार जिन तुमै संभारा।काल फास ते ताहि उबारा।
जिन नर नाम तिहारो कहा।दारिद दुस्ट दोख ते रहा।
खडगकेत मै सरणि तिहारी।आप हाथ दै लेहु उबारि।
सरब ठौर भी होहु सहाई ।दुस्ट दोख ते लेहु बचाई।।[2]

जिसकी ओर अकाल अकाल पुरुष की कृपा दृष्टि हो जाती है उसके समस्त पाप क्षण भर में नष्ट हो जाते हैं।कवि की प्रार्थना है कि उस पर भी कृपा दृष्टि डालिए जिससे उसके यहां भी सकल ऋद्धियों और सिद्धियों का वास हो ।दुष्ट लोग मेरा अनिष्ट करना तो दूर मेरी छाया तक न छू सकें । जिसे तुमने एक

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 1365 । (2) वही, पृष्ठ 1388 ।।

बार भी संभाल लिया वह जन्म मरण के बंधन से सदा के लिए छूट गया । तुम्हारा नामोच्चारण मात्र दारिद्रयादि दुष्ट दोषों का शमन कर डालता है । हे खडगकेतु महाकाल मै तुम्हारी शरण हूं । मुझे अपने हाथ का सहारा देकर मेरा उद्धार करो।सब जगह मेरे सहायक बनो। दुष्टों और दोषों से मेरी रक्षा करो ।

यहां भी महाकाल आलम्बन है।उसकी कृपा दृष्टि पाप हरण क्षमता आदि उद्दीपन हैं। कवि का आत्म निवेदन और शरणागति अनुभाव है।दुष्टों और दोषों का भय ऋद्धि सिद्धि की लालसा आदि संचारी हैं।इन सब का संयोग महाकाल के प्रति रति को पुष्टकरता हुआ भक्ति रस को अभिव्यक्ति प्रदान करता है ।

इस प्रकार भक्ति रस `चरित्रोपाख्यान ` का मुख्य प्रतिपाद्य,प्रधान सम्प्रेष्य एवं साध्य है।इतने सारे त्रिया चरित्रों की आयोजना व्यक्ति का हृदय उधर से हटा कर भक्ति मय बनाने के लिए ही हुई है।

शृंगार रस:-

शृंगार रस के दोनों पक्षों संयोग और वियोग का पूर्ण परिपाक`चरित्रोपाख्यान` में हुआ है ।

संयोग शृंगार:-

संयोग का अर्थ है नायक नायिका का परस्पर अनुकूल दर्शन,स्पर्श, तथा आलिंगन आदि व्यवहार ।

प्रीति दुहुन की अति बढी त्रिया पिया के माहि ।
पट छूटयो निरपट भये रह्यो कपट कछु नाही।
भांति भांति आसन करे तरुनि तरुनि लपटाह।
मोद दुहुन के अति बढ्यो गनना गनी न जाई ।।[1]

यहां प्रीति(रति) स्थायी है।वस्त्र हीन होना, आसन और आलिंगन अनुभाव है।एक दूसरे का तारुण्य और निष्कपटता उद्दीपन है।मोद(हर्ष)संचारी है । यहां आलिंगन जन्य संभोग शृंगार है।

1- दशम ग्रन्थ , पृष्ठ 963 ।

संयोग शृंगार के दूसरे प्रकार के उदाहरण भी 'चरित्रोपाख्यान' में बहुलता से हैं। यथा :--

1- नेन लगे जब ते तुम सों तब ते तव हेरि प्रभा बलि जाऊं ।
मोन मंडार सुहात न मोकह सोवत हूं बिफको वगाऊं ।
जेतिक आपनी आरब्धा सभ मीत के ऊपर वारिबहाऊं ।
केतिक बात जगारि सुनो फल प्रान दे भेल पिय कहं लयाऊं।।[1]

2- बैठी हुती सखि मध्य अलीन भो दीन दयाल सो नेह नवीनो।
बैननि चित्त करे चित में इत नैननि प्रीतम को मनु लीनो ।
नैन की काल को बीचल देखि सुसुंदरिघात चितै बेको कीनो।
ही लखि पाइ जंभाइ लई चुटकी चटकाइ विदा कर दीनो।।[2]

इन उदाहरणों में दर्शन जन्य संयोग है। नायिकाएं रस का आश्रय है। प्रिय आलम्बन और उनका रूप उद्दीपन है । बड़बड़ाना, जंभाई लेना आदि अनुभाव है और चिन्ता, औत्सुक्य आदि संचारी हैं।

निम्नांकित उदाहरणों में रूप वर्णन की अतिशयता ने संयोग रति को पुष्ट किया है ।

1- मधुरी मूरति मित्त की बसी चित्त में चीन ।
बहुरि निकसि जाहि नहिं नैना भये रंगीन ।।[3]

2- आयुध धारि अनूपम सुंदरि भूखन अंग अजारब धारे।
लाल को हार लसै उर भीतर मान ते जानु बड़े छबियारे।
मोतिन की लटकै मुख पै म्रिग नैनी फबै म्रिग से कजारे।
मोहत हैं सभ ही के चितै निज हाथ मनो ब्रिजनाथ सुधारे।।[4]

3- रीझ भरे रसरीत भरे अति रूप भरे मुख पैयन हेरे।
चारु चकोर सरोरुह सार सभीन कहे म्रिग खंजन चेरे।
भाग भरे अनुराग भरे सु सुहाग भरे मन मोहत मेरे।
मान भरे सुख खानि जहान को लोचन श्री नंदनंदन तेरे।।[5]

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 1112 । (2) वही, पृष्ठ 933 ।
3- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 1153 । (4) वही, पृष्ठ 959 ।
(5) वही, पृष्ठ 826 ।

इन तीनों उदाहरणों में केवल विभावों का अंकन है,उनमें भी प्रमुखता नायक रूप आलम्बन की है।उसका सौन्दर्य उद्दीपन है। अनुभाव रूप में -- नयनों का रंगीन होना चित्त का मोहित होना आदि गौण पद ए गए हैं। किन्तु :--

1- नैन हरन के हरे वैन पिक के हरि लीने ।
हरि दामनि की दिपति दसन दारिन बस कीने
कीर नासिका हरी कदली जंघन ते हारे
हो छपे जलज जल माहि आंखिन खिल जात तिहारे।[1]

नायिका का रूप विश्व सौन्दर्य का मानो पुंजीकरण है । उसने हरिण की आँखें हरली है।कोयल की वाणी छीन ली है ।दीप्ति दामिनी से लूटली है । दान्तों के रूप में दाड़िम को वशीकृत किया है । नासिका से कीट और जंघाओं से कदली को परास्त किया है और कमल तो उसकी आँखों को खिलते (मुस्कराते)देखते ही लज्जा के मारे जल में जा छिपे ।

2- निरखि नैन महबूब के नैन गहे तिन माहि ।
उडै अघाते बाज ज्यों फिर आवन के नाहि ।[2]

प्रिय की लुभावनी आंखों के पीछे उसकी आँखें ऐसी भागीं कि फिर लौटना ही भूल गईं । कबूतर का पीछा करते हुए उड़ने वाले बाज के समान कृतकृत्य हुए बिना वे वापिस आना चाहती भी नहीं ।

3- अस्ताचल सूरज जब गयो प्राची दिस तो ससि प्रगट्यो।
भागवतिन उपज्यो सुख भारो विरहिन के साइक्सीस भारो।
अस्ताचल सूरज गयो रह्यो चंद मंडराई ।
लपटि रह्यो पिय त्रिया सों त्रिया पियन लपटाइ ।।[3]

सूरज अस्ताचल पर पहुँचा ही था कि प्राची में चन्द्रोदय हो उठा । निकट-पतिकाओं को यह वातावरण यदि सुखमय था तो बेचारी विरहणियों को वे चन्द्र किरण तीर सी लग रही थीं । आखिर सूरज डूब गया। चन्द्र मण्डराने लगा।सौभाग्यवती स्त्रियां अपने पतियों से और उनके पति उनसे लिपट गए और दोनों ही आनन्द विभोर हो गए ।

1- दशम ग्रन्थ,पृष्ठ 1744 ।(2)वही,पृष्ठ 1195।(3)वही,पृष्ठ833 ।

इन सभी पद्यों में उद्दीपन की प्रधानता है।ये उद्दीपन पहले दो उदाहरणों में नायक या नायिका के आकर्षक अंग हैं जबकि तीसरे में वातावरण को उद्दीपन रूप में प्रस्तुत किया गया है।

निम्नांकित पद्यों में प्रधानता अनुभावों की है। नायक का रूप देख कर आश्रय का भूमि पर पछाड़ खा कर गिरना मदनोन्मत्त होना, तादात्म्य अनुभवकरना विभोर हो जाना, रोमांचित होना, लोकलज्जा और कुल की कानि का टूटना आदि अनुभावों में सात्विकों का ही बाहुल्य है।

1- ताको रूप नरेस जु कोऊ निहारहीं।
हो गिरै धरनि पर मुरछि मैन सर मारहीं।।[1]

सुन्दरी क्या थी साक्षात मदिरा थी। जो भी राजा उसे देखता, फट बेहोश होकर धरती पर गिर जाता।काम के बाण उसे घायल कर डालते।

2- जैसे लकरी आग में परत कहूं ते आय।
पलक ढेक तामें रहे बहुरि आगि ह्वै जाय।।[2]

आग में कहीं से भी आकर पड़ी हुई लकड़ी पलक भर में आग ही बन जाती है, प्रेम ऐसी ही आग है।

3- कंवर निहारि चकित चित भई। ताही बिखे लीन ह्वै गई।
जल जल के संग मिलि रह्यो तनु पिय को सरवंग।।[3]

राजकुमार को देखते ही उसका चित्त चमत्कृत हो उठा। उसके साथ वह तल्लीनता का अनुभव करने लगी।प्रियतम के सारे अंगों के साथ उसने अपने शरीर का वैसा ही तादात्म्य अनुभव किया जैसे जल में मिला जल एक रूप हो जाता है।

4- सर अंग के तन गडे कढे दसउलिफूटि।
लोक लाज कुल कानि सभा गई तरक दे टूटी।।[4]

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ, 942। (2)वही, पृष्ठ943(3)वही, पृष्ठ 945।
(4)वही, पृष्ठ345।

कामदेव के बाणों का शरीर पर प्रहार होना था कि रोमांच के रूप में उनका प्रभाव स्पष्ट हो उठा । लोक लाज और कुल की, मर्यादा आदि सभी तड़ाक से टूट गयीं ।

अनुभावों का चमत्कारातिशय होते हुए भी यहां न केवल आलंबन और उद्दीपन अपेक्षाणीय रहे हैं अपितु संचारियों को भी समुचित अनुपात मिला है।

सात्विकों की संश्लिष्टतावश निम्नांकित पद अधिक मर्मस्पर्शी बन पड़े हैं :--

1- पर पिपरी मुख पर गई नैन रही निहुराइ ।
धरक धरक छतिया करै वचन न मारयो जाइ ।[1]

मुख पर पपड़ी पड़ गई। आंखें दयनीय हो उठीं । छाती धड़कने लगी। मुंह से वचन तक न निकल पाता था।

2- सुनत वचन कामा तबै भूमि परी मुरझाइ ।
जन घायल घाइनलो गिरि उठै बराइ ।।[2]

इन वचनों का सुनना था कि कामिनी मूर्छित हो भूमि पर गिर पड़ी ।वह घायल पुरुष के समान कभी गिरती कभी उठती कभी बड़बड़ाती रही ।

3- बैठी बाल जहां बड़भागी, चित्त चोर की चितवनि लागी ।
तब ले खबरि चाकरन दई, अरुन छुति पिरी ह्वै गई ।।[3]

वह बड़भागिनी बाला बैठी हुई थी ।अपने चित्तचोर को देखने की उसके हृदय में अदम्य लालसा थी।तभी सेवकों ने वहां आकर वह कुसमाचार सुनाया।उसके हृदय पर गाजसी गिरी ।बेचारी का सुन्दर रक्तिम वर्ण एक दम पीला पड गया।

4- गिरयो मूर्छि ह्वै धानि बिरहातन गयो मारि ।[4]

विरह प्रहार वश वह शरीर को संभाल न सकी बेचारी मूर्छित हो भूमि पर आ पड़ी ।

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 844 (2)वही,पृष्ठ 927(3)वही,पृष्ठ 903 ।
(4)वही,पृष्ठ1032।

5- काम केल तासो न भयो रही चंचला लाजि ।[1]

नायिक मुग्धा थी लज्जावश वह काम क्रीड़ा भी न कर पाई ।

6- वस्त्र प्रित्य ले सदन सिधारो, उचार्यो आज सिंह नृप मार्यो
रानी उदित जान ह्वै गई हाय उचारि पिंगल मरि गई।।[2]

सेवक राजा के वस्त्र लेकर महल में पहुंचे और राजा के सिंह द्वारा मारे जाने का वृत्त सुनाया। समाचार सुनते सुनते ही रानी पिंगला जीर्ण सी हो गई और हाय कह कर मर गई ।

कहना न होगा कि उपर्युक्त उदाहरणों में आठों प्रकार के सात्विकों की सम्यक योजना हुई है ।यथा:--

वचन न भाख्यो जाइ-- स्वर भंग
भूमि परि मुरझाई -- मूर्छा
धरक धरक छतिया करै--- वेपथु
अरुन द्युति पियरी ह्वै गई-- वैवर्ण्य
हाय उचारि पिंगल मरि गई--- प्रलाप
कढे दसउलि फूटि -- रोमांच ।।
ताहि विखे लीन ह्वै गई --- स्तम्भ
नैन रही निहराइ --- अश्रु

इसी प्रकार निम्नांकित पद्यों में संचारियों का चमत्कार विशेष है:--

1- सम्मुख संगन करि रति करै। चित में इहै विचार विचरै ।
ऐंचि हाथ ताको च चलावै। जिनि करि टूटि प्रिया की जावै।[3]

2- हेरि बाल के रूप चक्रित यूसुफ भयो
जो तिह मनोरथ हुते वहे ताको दयो ।
वस्त्र वाज को जारि जलीखां तिह धरयो
हो मित्र पुत्र ज्यों पाइ तबै ताको बरयो।।[4]

3- कहा भयो बलवंत भयो भोग न चिर लै कीन

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 1036 । (2) वही, पृष्ठ 1103 ।
3- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 1051 । (4) वही, पृष्ठ 1096।

आप न कछु सुख पाइए कछु न तरुन सुख दीन
मैं तरुनी को पुरुख रिझावै। बहुत चिर लगै भोग कमावै ।
ताको औंचि आपु सुख लेवै। अपनो सुख अबला को देवै।
ऐसे बली कैस कोऊ होई । ता पर त्रियान रीझत कोई
जो चिर चिमटि कलोल कमावै वहै तरुनि को चित्त चुरावै।।

4- बने ठने आवत घने हेरत हरत ग्यान
करन को कछु नहीं इह कूर बेर समान
धन्य बेर हम तो जात निरखि पथिक के लेत
बरबस खुवावत फल पकरि जानबूझि घर देत।।[1]

चिन्ता, विस्मय, तर्क, आवेग, निर्वेद, दैन्य आदि व्यभिचारियों के उचित समावेश से ही ये पद्य रसमय बन पाए हैं।

शृंगार वर्णन में कवि ने आचार्यों की उस मर्यादा का ध्यान रखा है कि प्रेम का उदय पहले नारी के हृदय में ही हुआ करता है।

एक अप्सरा इन्द्रके जात सिंगार बनाइ
निरखराय अटकति भई कुंज भवन के माइं।
हरी अप्सरा रीझि रूप लखि राय को
पठी दूति का हल करि मिलन उपाय को
बिनु प्रितम के मिले हलाहल पीव हौं
हौ मारी कटारी मरिहौं करी न जीव हौं।[2]

प्रेमोदय की परिणति नारी के आत्म समर्पण में हुई है :--

1- बान बधी विरहा के बलाइयो रीझि रही लखी रूप तिहारे
भोग करो मुहि साथ भली विधि भूपति को नहीं त्रास बिचारो।
सो न करै कछु चारु चितैवेके खाइ गिरि मन मैन तवारे
कोटि उपाइ रही के दया की सो कैसे हूं भीजत भ्यो न ऐठयारो।[3]

2- कहा भयो सुधरे भये करत जुवन के मान
विरह बान मो को लगे व्रिथा न दीजे जान।
व्रिथा न दीजे जान मैनवरि मैं महँ

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 342। (2) वही, पृष्ठ 813 , (3) वही, पृष्ठ 815।

4

विरही समुद्र के बीच बूडि सिर ले गई ।
भोग करु बिनु मोहु जान नहि दीजिए ।
हो बनवारी निस होर गुमान न कीजिए ।[1]

3- हम तुम आजु करैं रति दोऊ, छ है न इहां ठाडे जन कोऊ ।
कवन लखै कासो कोऊ कहि है, ह्यां को आनिरमत हम रहिहै।
मैं तरुनी तुम हो तरुन दुहुंअन रूप अपार।
संक त्यागि रति कीजिए कत जकि रहे कुमार।[2]

प्रेमी से मिलन में दूती या सखी से सहायता ली गई है :--

1- पठी दूतिका छलि करि मिलन उपाय को।[3]

2- पास आन इक सखी बुलाई ।बात समै तिह दीन जताई ।
जो मोको तू ताहि मिलावै।अपने मुख मागै सो पावै।[4]

विशेष स्थितियों में नायिका द्वारा अपनी बुद्धि का भी पूरा उपयोग किया गया है :--

1- सुनो नाथ इक कथा उचारो तुम ते अधिक चित्त में डरौं ।
कोप एक जोगी कह जाग्यो,निज चेला कहं मारन लाग्यो।
मैं जुगिया कहुं दयो हटायी वा चेला को लयो छपाई ।
चलहु नाथ उहि तुमै दिखाऊं तातैं तुमरो द्विधै सिराऊं।[5]

घर में छुपे यार को पति की सहानुभूति दिलाने के लिए और अपना दोष छिपाने के लिए यहां यार को योगी का चेला बताया है जिसे योगी मारे डालता था पर पति की शरणागत वत्सलता का ध्यान रख कर उसे अपने घर में छिपा लिया है ।

2- चमकि उठी जब वचन उचारे,मोर भेद इन सकल निहारे।
तातैं अब ही याही संहारौं।मारि चोट इह गये उचारो।[6]

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 331 । (2) वही ,पृष्ठ 1095 (3)वही ,पृष्ठ 813।
4- वही, पृष्ठ 1082। (5) वही, पृष्ठ 859(6) वही,पृष्ठ861।

भेद खुल जाने पर पति को मारने में भी संकोच नहीं। इसे चोर मार गये ऐसे बहाने गढने में त्रिया जन्म से ही निपुण होती है।

3- हाथ उचाइहनी छतियां मुसकाइ लजाइ सखी चहुंवों ते
नैनन सो कह्यो ए यदुनाथ सु मौंह्न सो कह्यो जाहु यहां तें।
नैनन सो हरि राइ कहि मौंह्न उत्तर दीन
भेद न पायो कौन हू क्रिसन विदा करि दीन।[1]

सखियों के बीच में फंसी होने पर भी वह अपने मनोरथ की अभिव्यक्ति में पूर्ण पटु है।

4- ताको धरम भ्रात ठहरायो सभ जग महि इह भांति उडायो।
भाई भाई कहि रोज बुलावें। काम केल रुचि मान कमावें।[2]

यार को धर्म भाई घोषित कर यथेच्छ काम केलिका मार्ग बनाना उसे खूब आता है।

5- उते मीत तिन लिये बुलाइ। काम रीति करि प्रीत पुजाइ।
करि करि कुवति सेज चरकावें। एक हाथ तन घंट बजावें।[3]

संभोग काल में कामातिरेक से शैय्या की चरमराहट को घंटे की ध्वनि से वह न केवल मंद करती है अपितु श्रोताओं को अपने पूजा लीन होना का भ्रम उत्पन्न कर डालती है।

6- आप पिता तजजाइ उचरी मो पर कृपा अधिक सिवकरी।
निज कर पकरि मोहि पति दीनो। हम पर अधिक अनुग्रह कीनो।[4]

यहां पिता के हृदय को श्रद्धा तथा भय के माध्यम से अनुकूल करने के लिए वह अपने यार को लक्ष्य करके पिता से कहती है कि मुझ पर शिव ने अति कृपा की है और यह वर स्वयं प्रदान किया है।

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 903 । (2) वही, पृष्ठ 1107 ।
3- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 1120 । (4) वही, पृष्ठ 1121।

इस प्रकार संयोग शृंगार का परिपाक गुरु गोविन्दसिंह के काव्य में बड़े पुष्ट रूप में हुआ है। चरित्रोपाख्यान की सम्प्रेषणीयता में संयोग शृंगार का स्थान सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

वियोग शृंगार:- 'चरित्रोपाख्यान' में त्रिया चरित्रों के वर्णन के कारण शृंगार के संयोग रूप की ही प्रधानता रही है। इसकी नायिकाओं का कौशल छल बल द्वारा काम केलि कमाना ही रहा है। उनके प्रेम में वासना ही वासना है। पति के न होने पर वे इसकी पूर्ति जारों द्वारा करती है। एक जार के बाद दूसरा जार आता रहता है[1]। अत: वियोग की पीड़ा उनके लिए अजानी ही बनी रहती है और यदि हुई भी तो घंटे दो घण्टे की, प्रथम दर्शन के पश्चात दूतीया सखी से सहायता मिलने पर की। कवि ने नायिका को वियोग से इतना दूर रखा है कि उपमान या सौन्दर्य वर्णन में भी नायिका को प्रियविहीन नहीं रहने दिया[2]। फिर भी रचना में ऐसे प्रसंग आ गए हैं, जहां वियोग शृंगार का पूर्ण परिपाक हुआ है। ये ठीक है कि मान, औत्सुक्य आदि विरह की पूर्व स्थितियां रचना में विकास नहीं पा सकीं। मान करने का वहां अवसर ही नहीं है। उत्सुकता आते ही क्षण मिलन में बदल जाती है। पर उन उपाख्यानों में जिनको त्रिया चरित्र न कहा जा कर नारी के उदात्त प्रेम और कर्तव्य की गाथा कहना ठीक होगा, विरह के स्थल बड़े मार्मिक हैं। यथा :--

1- आजु सखी मैं यों सुन्यो पो फाटत पिय गौन।
यह हियरे झगरा पायो पहिले फाटि है कौन।[3]

1- ऐसे ही तासों सभै नित प्रति भोग कमोहि।
बरिया अपनी आपनी इक आवै इक जाहिं।
प्रथम पहर सैयद रमै, सेख दुसरे आनीं।
तृतीय पहर मुगलावाइ चौथे पहरपठान। ----दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 820।

2- रूप सहर के साह की सुता जलीखां नाम।
किधौं काम की कामनी किधौं आप ही काम
अति जोबन ताके दिये, सब ज्ञान के साथ
दिन आसिक दिनपति रहै, निसु आसिक निसनाथ। (दशम ग्रंथ, पृ0109)।

3- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 926।

सवेरे पौ फटते ही प्रिय का गमन निश्चित है पर नायिका इस वियोगातिशय को न सह पाती हुई कुछ ऐसा अनुभव करती है कि पौ फटने से पूर्व शायद उसका हृदय ही फट पड़े ।

८- साच कहत है बिरहनी रही प्रेम सौं पागि ।
डरत बिरह की आनि सौं जरत काठ की आगि ।[1]

विरहणी के जीवन का यह करुण यथार्थ ही है कि जो संयोगावस्था में विरह वर्णन की संभावना मात्र से भयभीत रहती थी अब विरहावस्था में लकड़ियों की आग में जलने से संकोच नहीं कर रही ।

३- चिंता जैसे चंदन चिराग लागै चिता सम
चेटक से चित्र चारु चौपखा कुसेल सी ।
चित जैसे चीर चपला सी चितवन लागै चीर वेसी
चौंपखा सुहातन रुचैल सी ।
चंगुल सी चोप सर चाप जैसे चामीकर
चोट सी चितौन लागै भीठी लागै सैल सी
चटक चपेट सी लगत बिना चिंताभनि
चाबुक सो चोट लागै चांदनी चुरैल सी ।।[2]

संयोगावस्था के उद्दीपन रात्रि, पर्यंक आदि विरहावस्था में भी उद्दीपन ही हैं । अन्तर केवल इतना है कि तब ये ललक उत्पन्न करते थे अब तड़प पैदा करते हैं।

पोफती अंक पर्यंक लला कौं लै काहु सौं भेद न भाखत जी के
केलि कथात बिहात सदा निसि मैन कलोलन लागत फीके
जागत लाज बढ़ी तह में उर लागत है सजनी सब ही को
ताते बिचारत हो चित में इह जागन ते सखि सोवन नीके।[3]

इस पद्य की तुलना कीजिए:--

नींद भी फुरकत में खा बैठी है आने की कसम ।
ख्वाब में भी देखने का आसरा जाता रहा ।
सखी री औ बिरहीन के वध के कहा उपाय। [4]
जल पिय ते बिछुराइ हि तनिक विखै भरि जाय।

1-दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ९८७ । (2)वही, पृष्ठ३८६। (3)वही, पृष्ठ(4)वही, पृष्ठ९७३।

सचमुच ही पिय से बिछुड़ी विरहिणी की दशा जल के बिना तलइपती मछली से घट कर नहीं होती।

6- बांक सी बीन सिंगार अंगार सो ताल म्रिदंग कृपान कटारो ।
जाल सी जोन जुड़ाई सी जोब सखी धनसार किसार कि आरो।
रोग सो राग विराग सो बोल बबारिद बुंदन बान बिसारे
बान सो बैन भला जैसे भूखन हारन होहि भुजंगम कारे ।
बांक से बैन विलाप से बारन व्याध सी बास बयार बहीरी।
काक सी कोकिल कूक कराल म्रिणाल कि व्याल घरी रीरी ।
मार सी मौन भयानक भूखन जोन की जाल सो जात जहीरी ।
बान सी बीन बिना उरहबाल बसंत के अंत की अंत अखीरी।
बैरी सी बयार विलाप सो बोल बबान सी बीन बजंत बिखारे।
जंग सो चंग भृंग दुरंग अंग कि अंकसु आंक कि आरे।
चांदनी चंद चिता चहुं ओर सुकोकिल कूक कि हूक सी मारो।
मार से मौन भयानक भूखन फूले न फूल फनी फनियारे।।[1]

इन पंक्तियों में भी उदीपनों चाँद की चाँदनी, कोयल की कूक आदि ने स्वभाव बदल लिया है और इन बदले हुए उदीपनों के वर्णन में इतनी प्रभावात्मकता आ गई है कि बिना आलम्बन, बिना अनुभावों और बिना संचारियों के उल्लेख के सब कुछ स्पष्ट सा रस रूप में ढलता प्रतीत हो रहा है ।

वास्तव में ये उदाहरण विरह की पीड़ा का मर्म स्पर्श कराते हैं।पहला दूसरा और चौथा उदाहरण ऊहोक्ति है। तीसरे चौथे तथा छठे उदाहरण में विरह व्यथा है।रति का आश्रय यहां नायिका ही है ।संयोगकाल में जो सुख और आनन्द के साधन थे अब प्रिय के बिछुड़ते ही दुःख का मूल बन गए ।काटने को दौड़ने लगे ।

नायक आलम्बन है।सुख के साधन घरेलू (पर्यंक आदि) तथा प्राकृतिक (चांदनी आदि) पदार्थ विरह के उदीपक हैं। लज्जा आदि सात्त्विक हैं।मौन रहना (भेद न कहना)जागरण आदि अनुभाव हैं। भय चिन्ता, वितर्क आदि संचारी हैं ।

1- दशम ग्रन्थ , पृष्ठ 1109 ।

हास्य- रस :-

हास्य शृंगार का सह्योगी रस है । संयोग शृंगार की अठखेलियों में इसका विनियोग सम्प्रेषाण सामर्थ्य का विशेष संबर्धक हुआ करता है।चरित्रोपाख्यान में एक कथा वणिक पत्नी की है जिसे वह वणिक प्रतिदिन अपने शौर्य की झूठी कथाएं सुना सुना कर उकताया करता था । पत्नी ने एक दिन उसके शौर्य की पोल बड़े हास्य मय ढंग से खोली।पुरुष वेश में जाकर राह में ही उसे डराया ।भागने की धमकी दी और कहा :--

जो अपनी तैं गुदा पर खोदन देहि बिहंग ।
ते तुम अब जीवत रहो बचे तिहारे अंग ।[1]

अब बनिये की दशा देखिए:------

तबै बनिक तैसे किया ज्यो त्रिय कह्यो रिसाइ ।
बरहरि करि छित पर गिरयो वचन न भाख्यो जाइ।।[2]

पर पत्नी की तसल्ली इतने से नहीं हुई --

तब तरुनी ह्य ते उतरी इक घुरकी के संग ।
रामभने तिहि बनिक की बुरि पर खुदयो बिहंग ।।[3]

यहां तरुणी आश्रय है ।वणिक आलम्बन है।वणिक की घबराहट उद्दीपन है ।तरुणी का घोड़े से उतरना और छुरी से विहंग खोदना अनुभाव हैं । पत्नी का रोष संचारी है और इन सब का संयोग हास्य की निष्पत्ति करता है ।

इसी प्रकार :--

एक आंखि काना हुतो दुतियो परा अबीर
गिरयो अंध जिमि हो नृपति दृग अुत भयो असीर
रानी नवरंग राय को तबही लिया बुलाय
आलिंगन चुम्बन करे दृढ रतिकरी मचाई।
जब लगी नृप गयो पौंछि करि देखन लगयो बनाइ।

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 849 । (2) वही ,पृष्ठ 849 ।(3)वही,पृष्ठ849।

तब लगि रानी भानि रति नट्आ दिया उठाय ।[1]

हास्य के इस उदाहरण में पूर्वोक्त उदाहरण से मुख्य अन्तर आश्रय का है ।पहले उदाहरण में आश्रय पत्नी थी,इसमें पाठक है क्योंकि यहां पत्नी का लक्ष्य हंसी उड़ाना नहीं अपना काम निकालना है। हां,उसके काम निकालने का ढंग प्रेक्षक के हृदय में हास्य की सृष्टि करता है,यहां हास्य का आलम्बन नृप हैं।उसका एक आंख से काना होना,दूसरी आंख में अबीर पड़ना, अंधे की भांति भूमि पर लोटना उद्दीपन है ।प्रेक्षक और रानी में तादात्म्य हो जाने से रानी कृत आलिंगन चुम्बन, रति-क्रीड़ा अनुभाव है ।नृप के आंख पोंछ कर देखने लगने पर रानी का शंकित होना संचारी है ।

करुण रस:-

'चरित्रोपाख्यान' में करुण रस के लिए स्थान बड़ा ही विरल है ।जहां है भी,वहां पूर्ण रूप से पुष्ट नहीं हो पाया। यथा भरथरी हरि के प्रसंग में रानी को यह झूठ सूचना मिलती है कि राजा शेर द्वारा मारे गए :--

वस्त्र भृत्य लै सदन सिधारयो ,उचरयो आजु सिंह नृप मारयो।
रानी उदित जरन को भई हाइ उचारि पिंगल भरि गई ।
त्रिया न तवन सरहियहि करत आनि में पयान
धन्य धन्य अबला तोइ बघत विरह के बान
खेलि अखेटक जब भरथरि घरि आयो
हाय करत पिंगला भरि सुनि पाइयो
डारि डारि धुरि हाय राजा कहै
है पठै वस्त्र जिह सभै सभै सो ना लहै।
के मै आजु कटारी मारो। ह्वै जोशी सभ ही घर जारो ।
छिया मेरो जिय बो जग माही।जाके नारि पिंगला नाहीं।[2]

यहां पद्य के प्रारम्भ में शोक का आलम्बन भरथरी तथा उत्तरार्द्ध में पिंगला है ।

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 854 । (2) वही, पृष्ठ 3108 ।

वस्त्र उद्दीपन हैं । रानी का प्राण त्याग देना तथा राजा का सिर पर धूल डालना, कटारी मारने को उद्यत होना, जोगी बनने का संकल्प आदि अनुभाव हैं । विषाद् चिन्ता, धिक्कार भावना संचारी है ।

इसी प्रकार ससी पुन्नू की कथा में सपत्नी द्वारा पति की मृत्यु पर उत्पन्न शोक का दृश्य :--

ताते याकी कबरखनि गाडहु इहि बनाइ
अस्त्र वस्त्र ले जाइ घर देइ संदेसो जाइ ।
बानि सुनि गाड्यो तिसै भरा पवन भ्रत भेस
अस्त्र वस्त्र ले लाल के बालहि दयो संदेस ।
बैठी बाल जहां बड भागी चित चोर की चितवन लागी ।
तबलें खबरि चाकरन दई । अरुन हुती पिरी ह्वै गई
चढि बिवान तहं त्रिय चली जहां हन्यो निज पीय
के ले अहो पीय को के तहं देहो जीय ।
चली चली अबला तहं आई । दाब्यो जहां मीत सुखदाई ।
कबर निहारि चकृत चित भई । ताही बिखे लीन ह्वै गई ।[1]

निस्सन्देह यहां शोक का आवेग आश्रय को मृत्यु तक पहुँचा देता है किन्तु उसकी मन:स्थिति का अंकन न किए जाने के कारण शोक का परिपाक इस सीमा तक नहीं हो पाया कि पाठक के दिल को हिला सके । आश्रय के साथ पूरा तादात्म्य नहीं हो पाता। जब तक वह शोक की अनुभूति का छोर ही पकडता है तब तक वह प्राय: ही समाप्त हो जाता है जिसके साथ उसके हृदय का तादात्म्य होना था।

यहां ससी आश्रय है ~~आलु~~ और पुन्नू आलम्बन पुन्नू के अस्त्र,वस्त्र उद्दीपन हैं।ससी का वैवण्र्य (लाल से पीला होना) तथा भर जाना सात्विक है।विमान पर चढ कर प्रिय की कब्र पर जाना अनुभाव है।विस्मय विषाद आदि संचारी हैं ।

1- दशम ग्रन्थ .,पृष्ठ 953 ।

अद्भुत रस :- करुण के समान अद्भुत रस का भी चरित्रोपाख्यान में अभाव सा ही है। कहीं केवल कुछ पंक्तियां ऐसी आई हैं, जहां विस्मय स्थायी भाव रसपता को ग्रहण कर पाया है। यथा :--

तब तहं गोरख नाथ पहुंच्यों आइके
नृप प्रति कायो अदेस सुनाद बजाइके
रानी दई जिवाइ सरुप अनेक धरि
सुन हो भरथरी राव लेहु गही एक कर
काह गहों कौने तजो चित्त में करे बिबेक
सभा पिंगला की प्रभा रानी भई अनेक।[1]

यहां राजा आश्रय है। पिंगला का अनेक रूप में संजीवन आलम्बन है। गोरख नाथ के वचन उद्दीपन हैं। राजा का वितर्क संचारी है।

वीर रस:- गुरु गोविन्दसिंह वीर रस के कवि हैं। उनका मन पूरी तरह से वास्तव में इसी के वर्णन में रमता है। चरित्रोपाख्यान में भी उन्होंने वीर रस की सुन्दर योजना की है। इसके अनेक स्थल वीर रस परिपाक के उत्कृष्ट निदर्शन हैं। कवि ने मंगला चरण में भगवती की स्तुति उसके रण कौशल की झलक दिखाते हुए की है। पुस्तक के उपसंहार की कथा जिसका सम्बन्ध दीर्घ दाढ़ से है वीर रस से ओतप्रोत है। मध्य की युद्ध कथाओं में पद्मिनी की कथा वीर रस की दृष्टि से बड़ी उत्तम बन पड़ी है। कथाओं में और कुछ वीर प्रसंग इस प्रकार है :--

1- जब ही कर लाल क्रिपान गही
नहीं भीते प्रभा तिह जात कही
तिह तेज लखे भट यो भटके
मनो सूर चढ्यो उठ सो सटके
कुपि कालि क्रिपान कर गहिके
दल दैतन बीच परी कहिके घटिका इक बीच समै हनि है
तुम ते नहीं एक बलि गनि है।[2]

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 1109।
2- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 811।

63 ८- गढ पर जबै बघाइ भई
सउअ काढि क्रिपानै लई
जा पर पहुचि खडग कह फारयो
ऐकै घाइ मार ही डारयो
धुकि धुकि परे धरनी भट भारे
जनुक कावतन बृछ बिदारे
जूझि जूझि मरे अधिक रिस भरे
बहुरि न दिखयत ताजियन चरे ।
जैन लावदी साह को तब ही दयो भजाइ
रतन सैन राना गए गढ इह चरितदिखाई ।।[1]

3- जिते दैत उठ्ठे तिते बाल मारे
बुठे आनि बानानि बाकै डरारे
जिते सास ओरैं उठे दैत मारे
हठी मार ही मार के कै पधारे ।
किते कोप कै बीर वाला संधारे
जिते दैत ढके महाबाहु मारे
तित्यो का गिरा आनि कै स्रोन भू पै
उठे नेक जोधा महा भीम रूपे ।[2]

ये तीनों पद्य वीर रस के उत्कृष्ट निदर्शन हैं। भगवती, रत्न सेन तथा दुलह देवी उत्साह के आश्रय है शत्रु सैन्य आलम्बन और उसकी चेष्टाएं उद्दीपन हैं। इन योद्धाओं का खड्ग लेकर पूरे उत्साह के साथ जूझना अनुभाव तथा उनका आवेग, कोप आदि संचारी हैं।

रौद्र रस :-

रौद्र रस भी वीर का सहयोगी रस है। वीर का उत्साह जब परिस्थितिवश कोप में परिवर्तित हो जाता है तब रौद्र की उत्पत्ति होती है।

1- दशम ग्रन्थ., पृष्ठ 1081 ।

2- दशम ग्रन्थ , पृष्ठ 1362 ।

चरित्रोपाख्यान में रौद्र रस के स्थल भी वही है, जो वीर के हैं। यथा :--

1- चढ़ी चंडीका चंड हो तपत ताँब्र से नैने
भत्त भई भरदामए बकत अटपटे बैन
सब सत्रन को हनियो छिन मैं सुकह्यो वच कोप कियो मन में
तरवारि संभारि महावल धारि धवाइके सिंध धसी रन मैं
जग मात के आयुध हाथन में चमकैं ऐसे दैतन के गन मैं
तपकैं झपकैं बडवानल की दमकैं मनो वारिध के वन मैं।[1]

2- तिसी कोप की आनि तें बाल ह्वै कै।
लसी हाथ मैं सस्त्र औ अस्त्र लै कै।
महारूप अनूप ताको बिराजै।
लखे तेज ताके सउ सूर लाजै।
चारहू दिसा फिरी जब बाला
जानो नाग रूप की भाला।
ऐसन कतहुं पुरख निहारा।
नाथ करै जिह आपु सुधारा।।[2]

इन पद्यों में ए चण्डी तथा दुलह देवी का रौद्र रूप बड़ा ही सम्प्रेष्य बन पड़ा है। तप्त लोचन, सशस्त्र हाथ शब्दों में नाग रूप की भाला या बडवानल के समान दीप्ति देवी के रौद्र रूप को पाठकों की आँखों के सम्मुख उपस्थित कर देते हैं।

भयानक :- नायक पक्ष के लिए जो रौद्र है वह विपक्ष में भय का संचारक होने से भयानक रस को जन्म देता है। यहाँ आलम्बन वही रहता है पर आश्रय बदल जाता है। विपक्षियों के डट कर भागने से क्योंकि नायक की वीरता को श्रेय जाता है इसलिए यह रस भी वीर रस का पोषक ही है। युद्धों का वर्णन होने से चरित्रोपाख्यान में भयानक रस के उदाहरण भी उपलब्ध हैं :--

---

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 812।
2- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 1361।

1- जुगनि दैत अधिक हरखाने गीधा सिवा फिरहि अभिमाने
भूत प्रेत नाचहि अरु गावहिं कहुं रुद्र डमरु डमकावहि ।[1]

2- जो न भिटे विकटे भट काहू सों वासव सों कबहू न पहेले।
ते गरजे जब ही रन में गनभाजि चले बिनु आपु अकेले ।
ते कुपि कालि को फट दै कदली बन ज्यों धरती पर मेले ।
स्रोन रंगीन भए पट मानहुं फागु समै सभ चाचरि खेले।।[2]

3- आए जितक तितक तह मारे ।वह धरनि पर रक्त पनारे।
तिन ते अमित असुरन वपु धरा ।हम ते जात विचार न करा ।
डगमग लोक चतुरदस भए।असुरन साथ सकल मरि गए।
ब्रह्मा बिसन समै डरपाने महाकाल की सरन सिधाने।।[3]

यहां पहले पद्य में वातावरण की भयंकरता, दूसरे में ८ शत्रु दल का भागना तीसरे में चौदह लोकों का डगमगाना, ब्रह्मा विष्णु आदि का भयभीत होना भयानक रस का स्थूल रूप है। विश्लेषण के रूप में कहना होगा कि पहले पद्य में उद्दीपन विभाव की प्रधानता है दूसरे में अनुभाव और संचारी की जब कि तीसरे पद्य में आलम्बन, उद्दीपन, अनुभाव (सात्विक सहित) और संचारी सभी का उचित सन्निवेश है यहां किसी के आरोप की आवश्यकता ही नहीं ।

वीभत्स रस:-

वीभत्स रस रौद्र एवं भयानक का पोषक रस है ।इसका उचित सन्निवेश अपने रसन के साथ उन दोनों रसों की रस्यता को तीव्र करता है । चरित्रोपाख्यान ७७ में और युद्ध वर्णनों में वीभत्स का प्रयोग बाहुल्य से हुआ है । सर्वत्र इसने आख्यान के प्रतिपाद्य को सम्प्रेषणीय बनाने में अपना योग दिया है ।

1- अचि अचि रुधिर डाकनि डक्कहि
भखि भखि अमिख काक कहुं कक्कहि
जम्बुक गीध भानु ले जाहीं
कहु कहु सबद वेताल सुनाहीं ।
झम्भकं कहुं असिन की धारा ।

1- दशम ग्रन्थ पृष्ठ 1092 ।
2- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 311 ।
3- दशम ग्रन्थ , पृष्ठ 1365।

मसकहि रुंड मुंह बिकराला ।
घुकि घुकि भरे धानि भट भारे ।
फुकि फुकि परे बड़े पखरिया भारे।[1]

2- कहुं चलत श्रोनत की धारा
छुटत बाग सो जनुक फुहारा ।
कहुं एकनी श्रोनत पीयें
काकनि कहुं मास भखि जीयें ।
काकनि कहुं किरै कहकाती ।
प्रेत पिसाचन डोलत मा भाती।[2]

यह बीभत्स दृश्य रौद्र का परिणाम है और भयानक का कारण ।वीर के रौद्र रूप धारण का लेने पर युद्ध भूमि का दृश्य इस रूप में हो पाया । इस दृश्य को देख कर जहां जुगुप्सा स्थायी का आस्वाद होता है,वहां भय का भी एक वातावरण बन जाता है । डाकनियों का डहकना, कौओं का मांस खाना, गीदड़ तथा गिद्धों का मांस ले जाना आदि उद्दीपन हैं। इस दृश्य पर संभावित नाक ,भौं आदि का सिकुड़ना अनुभाव है। उद्वेग आदि संचारी भाव हैं।इस प्रकार इस रस का भी पूर्ण परिपाक संभव हो सका है।

शान्त रस :-

1- भक्तन हीरन के बहुत इन पर किए सिंगार
ताते तिन की छबि भए तारुनि तिहारे बार ।
जे तब अति सोभित हुए छ तारुनि तिहारे केस ।
नील मनी की छबि हुते भए रुपा के भेस ।
कोपे राक्स पुहुप गृहि डारे, ताते कचसित भए तिहारे।
ससि की जोनि अधिक योधी, ताते सक्स स्यामता हरी।[3]

1- दशम ग्रन्थ,पृष्ठ 1098 । (2) वही, पृष्ठ 1335 ।
(3) वही, पृष्ठ 1114 ।

2- सभ काहू को पोखई सब काहू को देई
जे ताते मुख फेरइ मांगि मीच कह लेई ।
एक सोखे एक मेटे, एक मारे एक उबरै ।
एक कटवै एक बढवै, दीन दयाल जो चाहत दिखावै।
रूप रेख जा के कछु नाहीं। भेख अभेख सब के घट माहि
जा पर क्रिया चहै करि होरै । ताकी कौन राह के होरै।
देव अदेव विधि वादि रचाये। जल भुजंग आकास बनाए ।
भूमि वारि पंच तत्त प्रकाशा । आपहि बैठत देख तमासा। 1

3- कवन मरै काको कोऊ मोरै
भूला लोक भरम विचारै
यह न भरत भारत है नाही
यो राजा समझत मन माहीं
बिना नाम ताके जपे बाल ब्रिध कोऊ होइ
रवि रंक राजा सभै जियत रहसी कोई । 2

4- सुत हित के माता दुलरावै। काल भुंड पर दांत बजावै।
वह नित लखै पूत बढि जावत । लेत न मूढ काल निअकावत ।
को माता बनिता सुता पांच तत्त की देह ।
दिवस चार को पोखणों अंत खेह की खेह ।
प्राणी जनम प्रथम जब आवै। बालापनसो जनम गवावै।
तरुनापन बिखियन को कीनो। कबहु न ब्रस तत्त के चीनो ।
ब्रिध भए तन कोपई नाम न जपियो जाइ ।
बिना भजन भगवान के पाप गृहित तन आइ। 3

इन पदों में संसार की परिवर्तन शीलता , भोगों का विनाश, सम्बन्धों की असारता, मृत्यु की अवश्यंभाविता के चित्र हैं, जो आलम्बन बन कर राजा के हृदय को निर्वेद स्थायी का आश्रय बनाए हुए हैं। काल का भुंड पर दान्त बजाना, शरीर का मिट्टी बनना, बुढापे की कंपकंपी आदि उद्दीपन

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 909 । (2) वही, पृष्ठ 910 (3) वही, पृष्ठ 911 ।

है । भाता, बनिता, सता का सम्बन्ध विवेक, बचपन और यौवन के खेलने और भोगने में बिताने का पश्चाता आदि अनुभाव हैं। आशा निराशा भय, बिबोध, चिन्ता, वितर्क आदि व्यभिचारी भाव है ।

इस प्रकार 'चरित्रोपाख्यान' में वात्सल्य रस को छोड़ कर शेष सभी रसों के सुन्दर स्थल विद्यमान हैं, जो अपनी सुरस्यता से सारे के सारे ग्रन्थ को अमोघ रूप से सम्प्रेष्य बना रहे हैं।

भाषा :-
------ गुरु गोबिन्दसिंह की रचनाओं में भाषा की दृष्टि से जो विशेषता पाई गई है, वह यह कि उन्होंने सर्वत्र भावानुरूपणी भाषा का प्रयोग किया है। चरित्रोपाख्यान भी इसका अपवाद नहीं है। इस काव्य में वैसे तो वीर, रौद्र, वीभत्स, भयानक करुण, शान्त आदि सभी रसों का वर्णन हुआ है परन्तु शृंगार बर्णन का है । शृंगार में भी संभोग शृंगार का । कवि ने पुरुष और स्त्री की काम क्रीड़ा के अनेकों चित्र इसमें प्रस्तुत किए हैं। इस कारण इस काव्य की भाषा भी उसी के अनुरूप बन गया है । भाषा में सर्वत्र स्वाभाविकता, सरलता और स्पष्टता है। गहनसे गहन विषाय का वर्णन कवि ने ऐसी भाषा में किया है जिसे प्रत्येक व्यक्ति समझ सके क्योंकि इस काव्य की रचना का उद्देश्य सनिकों को नारी के छल कपट से बचाना था। गम्भीर आध्यात्मिक विषाय को भी कवि ने कितनी सरल भाषा में कहा है :--

जब चाहत है आतभा इक ते भयो अनेक ।
अनिक भाँति पसरत जगत बहुरि एक सो एक ।।
यह नहि मरै न काहू मारै। भूला लोक भरम बिचारै।
घट घट व्यापक अन्तरजामी ।सभही महि रवि रह्यो सुआमी।

यहां पर कवि ने आत्मा परमात्मा की एकता को उसकी सर्व-व्यापकता का विवेचन कितनी सरल भाषा में कर दिया है। जन साधारण की भाषा का प्रयोग चरित्रोपाख्यान की सब से बड़ी विशेषता है। इसी

-- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ७०७ ।

प्रकार भर्तृहरि गोरखनाथ प्रसंग में भी कवि ने गूढ तत्व ज्ञान की बातें भी सरल भाषा में सम्प्रेष्य बनाई है :--

कवन मरै मारै कवन कहत सुनत कह कोइ ।
को रोवै कवने हसै कवन जरा जित होइ ।।[1]

राजा की इस बात को सुन कर गोरखनाथ का उत्तर :-----

हसि गोरख इमि बचन उचारे सुनहु भरथहरि राज हमारे ।
सति झूठ भ्रमो हंकारा । कबहु भरत न बोलनहारा।
काल मरै काया मरै कालै करत उचार ।
जीभै गुन बख्यानही स्रवनन सुनत सुधार ।।
काल नैन ह्वै सभन निहारै।काल बक्त्र है वाक उचारै।
कालै भरत काल ही मारै।भूला लोग भरम विचारै ।
काल हसत कालै रोवत करत जरा जित होइ ।
काल पाइ उपजत सभै काल पाइ बध होइ ।।[2]

कवि गुरु गोविन्दसिंह की यह सब से बड़ी विशेषता है कि अपने काव्य की भाषा के लिए जहां उन्हें उपयुक्त शब्द नहीं मिले वहीं उन्होंने अपने शब्द घड़ लिए है और उनके माध्यम से अपनी बात कही है।चरित्रोपाख्यान में प्रभु के लिए उन्होंने अनेक नए शब्दों का निर्माण किया । यथा :--

3- असिध्वज - स्री असिध्वज जू करियहु रछा ।।[3]
4- असिकेतु-- जे पूजा असिकेतु की नितप्रति करै बनाइ ।।[4]
5- खडगकेतु :- खडगकेतु मै सरन तिहारी ।[5]
6- महाकाल :-- महां काल कह करत प्रहारा ।[6]

असिध्वज, असिकेतु ,खडगकेतु का अर्थ है जिसने तलवार को ध्वज की तरह पकडी हुई हो, परन्तु यहां पर इनका प्रयोग परमात्मा के अर्थ में कवि ने किया है।

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ1113 । (2) वही, पृष्ठ 1113(3)वही,पृष्ठ 1339।
4- वही, पृष्ठ 1330 । (5) वही,पृष्ठ 1333 (6) वही, पृष्ठ 1373।

भाषा में माधुर्य और प्रसाद गुण की प्रधानता है परन्तु कुछ शौर्य कथाओं में युद्ध वर्णन होने के कारण ओज गुण का समावेश भी इसमें यथास्थान हो गया है।

ओजगुण :- काढि काढि करि खडग पखरिया धावही
महा खेत मैं खत्री खिंग न चावहं
खंड खंड ह्वै गिरे खगिस के सर लगे।
है चले खेत को छाडि क्रोध अतिही जगे।[1]

यहाँ ख, ड, तथा संयुक्ताक्षरों के प्रयोग से ओज गुण की प्रधानता है।

माधुर्य :- रीझि रही अबला मन मैं अति ही लखि रूप सरूप की घानी।
स्यान घटी सिगरी सभ की लखि लाल को ख्याल भई अति यानी।
लाजतजी सजि साज सभै लखि होरे रही सजनी सभ स्यानी।
हो मन हो रि रही न हरयो बिन मदामन मीत के हाथ बिकानी।[2]
नैन हरन के हरे बैन पिक के हरि लीने।
हरि दामनि की दिपति दसन दारिन बस कीने।
कीर नासिका हरी कदलि जंघन ते हारे।
हो छपे जलज जल माहि आँखि लखिलजत तिहारे।।[3]

कवि ने शृंगार के इस वर्णन में कोमल वर्णों का ही प्रयोग किया है।

प्रसाद :- एकन सोखे एकन मारे एक मारे एकन उबारे।
एकन घटवे एक बढवे, दीन दयाल जो चाहत दिखावे।।
रूप रेख जाके कछु नाहीं। भेख अभेख सब के घट माँही
जापक क्रिपा चछु करि हेरे। ताकी कौन छाह को छेरे।
जछ भुजंग अकाल बनायो। देख अदेव थपि बादि रचायो।
भूमि बारि पंच तत् प्रकासा। आपहि देखत बैठ तमासा।[4]

अर्थ की स्पष्टता से यह पद्य प्रसाद गुण का उदाहरण है।

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 1089। (2) वही, पृष्ठ 907 (3) वही, पृष्ठ 1044
(4) वही, पृष्ठ 909।

ओज माधुर्य और प्रसाद के अनुरूप ही कवि ने पुरुषा उपनागरिका और कोमला वृत्तियों की योजना भी की है ।

पुरुषा :- कहूं बीर बानेत बीरे उठावे ।
कहूं खेत में खिंग खत्री नचावे।
कहूं कोप के के हठी दांत चाबे।
किते मुंह ऐठें किते पाग दावे।

दुहूं ओर गाजे जबै खत्रवारी। भवो लोह गाडो परी मारि मारी।
महां कोप के वीर बाजी अचके, लगे देह भोकाइ गाडे भमके।[1]

यहां पुरुषा वृत्ति के अनुकूल ही ख, ब, क, ह, म आदि वर्णों की आवृत्ति हुई है ।

उपनागरिका:- मधुरी भुरति मित की बसी चित में चीन ।
बहुरि निकासे जाहि नहि नैना भए रंगीन ।
मन भावन के नैन दोऊ चुभे चित के माहि।
सेलन ज्यों सर के परे नाहि निकोर जाही।।[2]

यहां म, न आदि कोमल वर्णों की आवृत्ति हुई है।

कोमला :- बात ब्दिाकी सुनी जब ही बिन चैन भई न सुहावत जी की।
लाल गुलाल सी बाल हतोतत्काल भई मुख की छवि फीकी
हाथ उचाइ हनी छतिया उर पेलसे यों सुंदरी औरी की।
देखन की पिय को तिय की प्रगटी अंखिया जुगजानु कहो की।।[3]

यहां व, ज ग आदि कोमल वर्णों का प्रयोग है ।

गुरु गोबिंदसिंह की अन्य रचनाओं की ही भांति चरित्रोपाख्यान की भाषा में भी ध्वन्यात्मकता है ।शब्दों से ही रणवाद्यों की ध्वनि निकलती है । यथा:--

---

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 1371 । (2) वही, पृष्ठ1153।
(3) वही, पृष्ठ 963।

(क) लपकें झपकें बड़वानल की दमकें बनोवारिध के बन में।
(ख) चटपट दै जोधा बिकट झटपट कटि कटि जाही।।[1]

यहां इन पंक्तियों में शब्दों का ही कवि ने इस प्रकार प्रयोग किया है कि उससे योद्धाओं के एक दूसरे पर झपटने और काटने की ध्वनि सुनाई पड़ रही है। इसी प्रकार --

(क) निस ननद्द डह डह डाभर दै दै दमामन को निज काने।[2]

यहां डमरु के डमकने और दमामों के बजने की ध्वनि है।

इसी प्रकार रण भूमि में डाकिनों, भूतों प्रेतों के घूमने के दृश्य भी कवि ने शब्द ध्वनियों से ही प्रस्तुत कर दिए हैं --

रन डाकिनि डहकत फिरत कहकत फिरत मसान।
बिन् सीसन डोलत सुभट गहि गहि कर कृपान।।[3]

कवि ने भाषा को प्रभाव शाली बनाने के लिए यथास्थान मुहावरों, लोकोक्तियों और सूक्तियों की योजना भी सुन्दर ढंग से की है।

(क) हो नातर टांग तरे अब होइ निकदिये।।[4]
(ख) जो दासी सौ प्रेम पुरत्व उपजावई हो अंत स्वान् की मित्र भरे पछतावई।[5]
(ग) बीस बीस्वे मेरे जान बिज्जु सो डसे गए।।[6]
(घ) जाइ नृपति पति बचन उचारे यगिया भाटी लई तिहारे।।[7]

इन मुहावरों और लोकोक्तियों के अतिरिक्त नीति के कथनतो पाख्यान चरित्र में यत्र तत्र बिखरे पड़े हैं।

(क) [illegible]
खून खेर मदपान सु बहुरि प्रभानियें।
कस कोऊ कोई सात अपाए अपत नहि।
हो होवत प्रगट निदान सु सारी स्रिसटि महि।।[8]

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 818। (2) वही, पृष्ठ 818। (3) वही, पृष्ठ 818।
4- वही, पृष्ठ 840। (5) वही, पृष्ठ 1033। (6) वही, पृष्ठ 845।
7- वही, पृष्ठ 910। (8) वही, पृष्ठ 1047।

(ख) सभ कछु टूटे जुरत है जान लेहु मन मित्र ।
रहै टूटे ना जुरहि एक सीस अरु चित्र ।।[1]

(ग) चाकर की अरु नारि की एकै बही सजाइ ।
जिय ते कबहु न मारियहि मन ते मिलहि भुलाइ।[2]

(घ) मछरी औ बिदीन के बध को कहा उपाइ ।
जल पिय ते बिछुराइ यहि तनिक विखै मरि जाइ।।[3]

(ङ) एक मदी दूजे तरुन तीजे अति बल धाम ।
पाप करे बिन क्यों बचे बचे बचावे राम।[4]

(च) नीच संग कीजे नहीं सुन हो भीत कुमार।
मेउ पुत्र भादौं नदी को गहि उतरयो पार।[5]

इस प्रकार चरित्रो पाख्यान की भाषा अपने भावों को सम्प्रेषित करने में पूरी तरह सफल कही जा सकती है।

अपने वर्तमान रूप में 'चरित्रोपाख्यान' शैली की दृष्टि से उस कच्ची सामग्री के समान है जो किसी कल-कारखाने में पहुँच कर 'तैयार माल' का रूप धारण करती है। ऐसा प्रतीत होता है कि गुरु गोविन्दसिंह ने अपनी रचना के लिए कथा कोष इकट्ठा किया था परन्तु अनवरत युद्धों में लगे रहने के कारण उन्हें इतना समय नहीं मिल सका कि उन्हें विषय और विकास की दृष्टि से क्रम बद्ध करते । मूलकथा भी इसीलिए शेष रचना से अलग थलग पड़ी हुई है ।

इतनी होते हुए भी चरित्रोपाख्यान में हमें उन गुणों के दर्शन बाहुल्य से होते हैं जो किसी भी रचना की शैली की परख के लिए कसौटी का काम

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 333 ।
2- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 333 ।
3- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 533 ।
4- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 1077 ।
5- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 1084 ।

करते हैं। भाषा की सशक्तता[1], सजीवता[2], बोध गम्यता[3] एवं प्रभविष्णुता[4] ने पाठक की ऊब को काफी कुछ कम कर रचना को रोचक बनाया है यद्यपि उपदेशात्मकता[5] सर्वत्र प्रभावी रही है।

'चरित्रोपाख्यान' का दशम ग्रन्थ में एक विशिष्ट महत्व है। साहित्य के लिए यह गुरु की अनुपम देन है इसमें कोई सन्देह नहीं।

काव्य दोष:- 'चरित्रोपाख्यान' में अनेक गुण होते हुए भी इसे सर्वथा निर्दोष काव्य नहीं कहा जा सकता। इस काव्य में सब से बड़ा दोष जो पाया गया है वह अश्लीलत्व है। कवि ने अनेक स्थलों पर संभोग के अति नग्न चित्र खींचे हैं जिसके कारण सामाजिकों में बैठ कर इस काव्य ग्रन्थ को पढ़ना कठिन हो जाता है। इसके दो उदाहरण प्रस्तुत हैं:--

(क) तैं त्रिय हम सो झूठ उचारी।
हम मुंडेंगे फारि तिहारी।[6]

(ख) भग भों लिंग दियो राजा जब। रुचि उपजी तरनी के जिय तब
लपटि लपटि आसन तर गई। चुंबन करत भूपके भई।।
गहि गहि तिरको गरे लगावा। आसन सों आसनहि दुहावा।
अधरन सों दोऊ अधर लगाई। दुहुं कुचन सो कुचन भिलाई।[7]

1- अरी बरी यह प्रीति निसुदिन होत खरी खरी
चल सपूरी की रीति पीय बानि बिसूरे भख। दशम ग्रन्थ, पृष्ठ1283।

2- निरखि नैन महबूब के नैन गडे विह भाहि
उडे अधावे वस्त्रज्यों फिर अखन के नाहि।।--वही, पृष्ठ1195।

3- सब कछु टूटे जुरत है जानि लेहु मनमिल
ए है टूटे नाजुरहि एक सीस अरु चित्त।।वही०, पृष्ठ 345

4- विरह बान गाढे बगे केसक बंधे धीर
मुख फीकी बावें करें पेट पिया की पीर।।वही, पृष्ठ345।

5- गंधर्व जच्छ भुवंगन नरबपुरे किन माहि।
देव अदेव त्रियान के भेव पछानत नाहि।।--वही, पृष्ठ383।

6- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 1038।। (7) वही, पृष्ठ 1353 ।।

दूसरा दोष यह है कि मूल कथा के साथ विभिन्न चरित्रों का मेल नहीं है। कहानी का अन्त नहीं हुआ राज कुमार जुवन्तसिंह का क्या बना वह क जेल से छूटा या नहीं, इस बात की ओर लेखक ने कोई संकेत नहीं दिया है।

कई कहानियों में बड़ी अस्पष्टता है। यथा चरित्र 202 में राजा उग्र सिंह की कहानी कही गई है। राजा की लड़की का पति अपनी पत्नी को पर पुरुष के साथ सोया देख क्रोध से भर उठता है। उसने छुरी उठा कर अपनी पत्नी के गले पर रखी और थोड़ा दबाया तो वह दूसरी ओर निकल गई। इस प्रकार राजकुमारी को मौत के घाट उतार दिया। अगले ही वाक्य में कवि कहता है :--

छुरकी भर जार को घायो।
निज नारी तन कछु न जतायो।
ताको तपत रुधिर जब लागयो।
तब ही कोपि नारि को जागयो।[1]

इस प्रकार एक स्थान पर तो कवि ने राजकुमारी की मौत दिखादी फिर उसी के हाथों राजा की मृत्यु दिखादी। है। इस प्रकार कहानी पूरी तरह स्पष्ट नहीं हो पाई।

पुनरुक्ति दोष :- विचित्र नाटक की भान्ति चरित्रोपाख्यान में भी पुनरुक्ति दोष पाया गया है। यथा पृष्ठ 311 पर 21 वें छन्द में जो बात कही गयी है, वही बात 28वें छन्द में भी दोहराई गयी है। यथा:--

रोर परे रन राजिबलोचन रोस भरे रन सिंघ सजीले।।
रोट परे रन राजिव लोचन रोस भरे रन सिंघ सजीले।।[2]

इसी प्रकार पृष्ठ 301 पर छन्द 6 तथा 7 में पुनरुक्ति दोष है --

वैसे ही पैरि नदी घर आवै।।
वैसे ही पैरि नदी घर आवै।।[3]

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 1097 । (2) वही, पृष्ठ 311।
(3) वही, पृष्ठ 301 ।

छन्द विधान :-

चरित्रोपाख्यान 7००३ छन्दों की एक विशाल रचना है किन्तु इसमें केवल 16 प्रकार के छन्दों का प्रयोग हुआ है। विचित्र नाटक की भान्ति इसमें शीघ्रता के साथ छन्द परिवर्तन ही हुआ है। इस रचना में जो छन्द प्रयुक्त हुए हैं। वे इस प्रकार हैं :--

चौपाई	4423
दोहरा	1330
अड़िल	690
सवैया	135
भुजंग	221
कवित्त	45
सोरठा	26
छन्द	24
छप्पय	5
रूआल	2
तोमर	6
रूआमल	1
भुजंगप्रयात	66
नराज	1
बिज	16
तोटक	13
	7००३

यह एक इतिवृत्तात्मक रचना है इसलिए इसमें सर्वाधिक प्रयोग चौपाई तथा दोहरा छन्द का हुआ है। डा० धर्मपाल अष्टा ने अपने शोध प्रबन्ध में लिखा है कि चरित्रोपाख्यान ७6 कथाएं ऐसी है जो केवल एक छन्द चौपाई, अड़िल तथा भुजंग प्रयात में लिखी गई है। 164 कथाएं दो छन्दों क्रमश: दोहा चौपाई, दोहा अड़िल चौपाई अड़िल, चौपाई सवैया तथा चौपाई सोरठा में लिखी गई है। 1८७ कथाएं तीन छन्दों क्रमश: दोहा चौपाई अड़िल दोहा चौपाई सवैया, दोहा

चौपाई सोरठा, दोहा चौपाई कुण्डल, दोहा चौपाई, कवित्त, दोहा चौपाई तोटक ,दोहा चौपाई भुजंग, दोहा चौपाई भुजंगप्रयात तथा दोहा भुजंग और तोटक में लिखी गई है । अन्य कथाओं में चार,पांच,छह, सात और आठ प्रकार के छन्दों का प्रयोग हुआ है।[1]

शृंगार वर्णन में कवि ने सवैया छन्द का ही अधिक प्रयोग किया है । परन्तु कई स्थलों पर चौपाई ,दोहा,सोरठा आदि छन्द भी शृंगार वर्णन में प्रयुक्त हुए हैं।ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही प्रभु आराधना के लिए कवि ने चौपाई छन्द प्रयुक्त किया है।इस प्रकार सभी छन्दों का प्रयोग भावानुरूप हुआ है जोकि सम्प्रेषण में सहायक हैं।

अलंकार

अलंकारों की दृष्टि से चरित्रोपाख्यान का अध्ययन करने पर हमें पता चलता है कि कवि ने उन्हीं अलंकारों का प्रयोग किया है,जो सम्प्रेषण में सहायक हो। चमत्कार प्रदर्शन के लिए कवि ने अलंकारों को प्रयुक्त नहीं किया। शब्दालंकारों में सर्वाधिक प्रधानता अनुप्रास की है तथा अर्थालंकारों में उपमा और उत्प्रेक्षा की।अनुप्रास के प्रयोग से जहां नाद सौन्दर्य में वृद्धि हुई है।वहां उपमा और उत्प्रेक्षा के प्रयोग से सुन्दर बिम्बों का निर्माण हुआ है ।

अनुप्रास :- अनुप्रास अलंकार की छटा चरित्रोपाख्यान में सर्वत्र विद्यमान है चाहे वह छेकानुप्रास के रूप में हो या वृत्या अथवा अन्त्यानुप्रास के रूप में।

छेकानुपास :-

(क) मुंडकी माल दिसान के अंबर बाम कायो गलमें असि भारो।
लोचन लाल कराल दिपै दोऊ भाल बिराजत है अनियारो।
छूटे है बाल महा बिकराल बिसाल लसै रद पंति उज्यारो।
छाइत ज्वाल लए कर ब्याल सुकाल सदा प्रतिपाल तिहारो।[2]

1- डा० धर्मपाल आष्टा,दी पोयट्री आफ दसम्ग्रन्थ,पृष्ठ163-64।
2- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 810 ।

(ख) तुपक तबर बरछी बिसिख असि अनेक कमकाहि ।
धुजा पताक फरहरं मान न हेरे जाहि।।[1]

(ग) फारि चीर कर आपने मुख नख घाइ लगाइं ।।[2]

(घ) करी किवारी बिरह की खोदि कियो तिह गेह।
राति दिवस ताकौं भजे अधिक बढाइ सनेह।।[3]

उपर्युक्त उद्धरणों में (क) लोचन लाल, बिकराल बिसाल, में ल और ब की एक बार आवृत्ति हुई है। (ख) तुपकतबर, बरछी बिसिख, में त और बकी (ग) फारि चीर, मुख नख में र और ख की (घ) करि किवारी, तिह गेह में क और ह की एक बार आवृत्ति हुई है। इस प्रकार के छेकानुप्रास के उदाहरणों की संख्या चरित्रोपाख्यान में बहुत बडी है।

वृत्यानुप्रास:-

(क) मान से तेज भयानक भुतज भुधर से जिनके तन भारे।
भारी गुमान भरे भरे मन मीतन मार परे नहि सी पग धारे ।
भालक ज्यों भमकें विन् भेरन भेरव भेरि बजाइ नगारे।
ते भट झुमि गिरे रन भूमि भवानी जू के भलकान के भारे।[4]

(ख) अनिक तूर भेरी प्रणाव गो मुख अनिक म्रिदंग ।
संख बेनु बीना बजी मुरली मुरज मुचंग।।[5]

(ग) प्रास सो प्रात पटा से पटंबर पयारी परी पर से प्रति पारे।
पास सी प्रीत कु पयोग सी प्राकृत प्रेत से पानि परोस निहारे।
पास परोसनि पारधान पकवान पिसाच से पीर से प्यारे ।
पाप सों प्रान प्रवेस करें जब ते गये पीय प्रदेस पायरे।

(घ) प्रीतम पीय चले परदेस प्रिया प्रति मंत्र रही जकि के।
पलकें न लगें पलका पे परे पछतात उतें पति कों तकिकें।

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 812 । (2) वही, पृष्ठ 815
3- वही, पृष्ठ 817 । (4) वही, पृष्ठ 810 ।
(5) वही, पृष्ठ 812 ।

प्रति प्रात पखारि सभै तनु पाक पकावन काज चली थकी के।[1]
प्रति प्रेम प्रवेस कियो तन में बिनु पावक पाक गया पकि के।

उपर्युक्त उद्धरणों में (क) में म की अनेक बार (ख) में ब और म की (ग और घ) में पकी अनेक बार आवृत्ति होने से नाद सौन्दर्य में अत्यधिक वृद्धि हुई है। ग और घ में तो 'प' की आवृत्ति ने एक अनोखा चमत्कार उत्पन्न कर दिया है।

यमक :-
---- अनुप्रास के पश्चात दूसरा महत्वपूर्ण शब्दालंकार जो चरित्रो-पाख्यान में प्रयुक्त हुआ है वह है यमक।

(क) सुंभ निसुंभ ते आदिक सूर सभै उमडे करि कोप अखंडा
कोच कृपान कमानन बान कसेकर धोप फरी अरु खंडा।
खंड भए जु अखंडल ते नहि जीति फिरे वसुधा नव खंडा।
ते जुत कोप गिरे बनि ओप कृपान के कीने कीर कटि खंडा।[2]

(ख) खंडि अखंडन खंड कै चंडि सु मुंड रहे छित मंडल मांहि।
दंडि अदंडन को भुजदंडन मारि घमंड कियो बल बाही।
थापि अखडल को सुर मंडल नाद सुनयो ब्रहमंड महा ही।
क्रूर कुंवडल कोरन मंडल तो सम सूर कोऊ कहुं नाही।।[3]

(ग) प्रति प्रात पखारि सभै तनु पाक पकावन काज चली थकि कै।
पति प्रेम प्रवेस कियो तन मै बिनु पावक पाक गयो पकिकै।।[4]

इन उदाहरणों में सुंभ, खंड, दण्डन, डल आदि शब्दों की आवृत्ति एकया अनेक बार हुई है। यमक अलंकार सम्प्रेषण में बाधक माना जाता है किंतु यहां निश्चय ही अर्थ में ऐसा कोई व्यवधान उपस्थित नहीं हुआ है। यह कवि की सब से बड़ी विजय है।

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 1073।
2- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 811।
3- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 813।
4- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 1073।

उपमा :- अर्थालंकारों में से चरित्रोपाख्यान में सर्वाधिक प्रयोग उपमा का हुआ है।कवि ने जीवन के विभिन्न क्षेत्रों से उपमानों का चयन किया है ।

(क) राजा को तासों हित भारो।दासी ते रानी करि डारो ।
जैसे करै रसाइन कोई । तांबे सो सोना सो होई ।[1]

(ख) जो तब अति सोभित हुते तरुनि तिहारे केस ।
नील मनी की छबि हुते भए रु कम के भेस ।
कैधो सकल पुपप गुहि डारे।
बाते कच सित भए तिहारो ।।
ससि की जोनि अधिकधो परी ताते सकल सयामता हरी।[2]

(ग) चिंतातुर थहहरि कंपावै ज्यों कदली कह बात डुलावै।।[3]

(घ) कटि जाकी म्रिगराज सी म्रिग से नैन बिसाल ।।[4]

उपर्युक्त उद्धरणों में जितने भी उपमानों का प्रयोग कवि ने किया है वे सभी जनसाधारण के परिचित उपमान हैं इसी कारण इनसे सम्प्रेषणीयता में वृद्धि हुई है ।जैसे तांबे से सोना हो जाना, केशों की उपमा नीलमणि से, शरीर के कांपने की उपमा केले के हिलने से सौन्दर्य के उपमान कमर की तुलना -------सिंह से,नेत्रों की हरिण से की है,जो कि सर्वपरिचित है ।

उत्प्रेक्षा :- उपमा के पश्चात् चरित्रोपाख्यान में प्रयुक्त दूसरा सर्वाधिक महत्वपूर्ण अलंकार है उत्प्रेक्षा । इस अलंकार की सहायता से कवि ने सुन्दर बिम्ब संरचना की है ।यथा:--

(क) द्रोण रंगीन भए पट मानहु फागु सभै सम चाचरि खेले।[5]

(ख) रूप लला को लालची लोचन लाल अमोल।
बंक बिलोकनि खरच करु मो मन लीनो मोल।।[6]

(ग) दुहुं हाथ तिह कुचन मरोरे ।जनु खोयो निधनी धनु टोरे ।
बार बार तिह गरे लगावे,जनु कद्रव को द्रदु मिटावै।।[7]

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 1033 ।(2) वही,पृष्ठ 1114 ।(3)वही,पृष्ठ 1121
4- वही, पृष्ठ 1144 ।(5)वही, पृष्ठ 832 । (6)वही,पृष्ठ957।
7- वही, पृष्ठ 967 ।

(घ) गहि गहि तासो गरे लगाई । मानहु रंक वो निधि पाई।[1]

(ङ) पकरे केस छुटे लट लटे। जानक सरप गारुड़ गहे।[2]

यहाँ उत्प्रेक्षा द्वारा अर्थ के सौन्दर्य में वृद्धि ही नहीं ध्वन्यात्मकता भी आगई है। होली का उत्साह, प्रसन्नता और निश्चलंतता घायल में दिखाना निश्चय ही वीरत्व का द्योतक है। इसी प्रकार चितवन को धन का मूल्य बताना, कुचों को भरोड़ने में निधनी के धन का टोलना, गले लिपटने के आनन्द को रंक को अप्रत्याशित रूप से विधि पाने के आनन्द से जोड़ना आदि भावों की अभिव्यक्ति के साथ साथ उन्हें मार्मिक भी बनाते हैं।

रूपक :-

(क) अतरि या ज्यो सिंधु को चहत तरन करि जाउ
बिनु नौका कैसे तरे लए तिहारो नाऊं।[3]

(ख) प्रथम ध्याइ स्री भगवती बरनों त्रिया प्रसंग।
मो घट में तुम ह्वै नदी उपजहु वाक तरंग।।[4]

यहाँ नाम का रूपक नौका से वांछा नाम स्मरण की अनिवार्यता को द्योतित करता है। वाणी की तरंग रूप में उपस्थिति उसकी संगति एक ओर घट (हृदय रूपी घड़ा) से सम्बन्ध जोड़ती है दूसरी ओर तरंग की त्वरा, आद्रता तथा प्रभाव की अभिव्यक्ति कराती है।

मालोत्प्रेक्षा :-

धायो सुभट कुअरि तिह नामा।
जो सम और न जग में बामा।
सुंदरि तिहुं भवन महि मह।
जानुक कला चंद्र की वह।
जोबन जेब अधिक तिह धरी।
मैन सुनार मानु जनु भरी।

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ967। (2) वही, पृष्ठ 1097। (3) वही, पृष्ठ 813।
4- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ813।

वाकी प्रभा जात नहि कही ।
जानक फूल भालती रही ।
जगे जुब्न की जेब के झलकत गोरे अंग ।
जन् कवि क्षीर समुद्र मे दमकत क्षीर तरंग ।।[1]

यहां उत्प्रेक्षा की इस माला में माला का प्रत्येक पुष्प अपनी सुवास की प्रतीति करा रहा है । यौवन की आभा मानो काम रूपी सुनार ने भरी है ।यौवना के झलकते हुए गोरे अंग क्षीर समुद्र की तरंग की संभावना कराते हैं।

व्यतिरेक :-

गजन देव राजा बडो गजनी को नरपाल ।कम्भल कुरंग सारस लजै लखितिह नैन बिसाल ।।
तहां दुरग दुरगम बडो तह पहुंचे कह कोन। जोनि चंद्र की ना परे चीटी करे न गोन ।।[2]

यहां राजा के नयन उपमेय से कम्भल, कुरंग, सारस को लजाता दिखा कर उपमान का अपकर्ष दिखाया गया है और नीचे की पंक्ति में दुर्ग की दुर्गमता की अभिव्यक्ति कराई गई है ।

परिकर:-

भूल छमा हमरी प्रभु आपन्
भूलनिहार कहूं कोऊ मोसों
सेव करै तुमरी तिनके छिन
मे घन लागत धाम भरोसे
या कलि मे सम कालि कृपान
की भारी भुजान को भारी भरोसो।[3]

यहां भूल क्षमा के लिए अपने भूलनिहार कहना तथा अपने भरोसे के लिए आराध्य की भुजाओं के लिए काली कृपान की भारी भुजान कहना साभिप्राय है ।

1- दशम ग्रन्थ , पृष्ठ 840 ।
2- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 1067 ।
3- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 813 ।

अतिशयोक्ति :-

अधिक रूप बेगम निरखि रीझि रहे द्रिग कोटि ।
गिरे भूरुना ह्वै धरनि लगे बिना सर चोटि ।
जिन के तीखन असि लगे लीजत तिने बचाइ ।
सिने द्रिगन के सर लगे तिनको कछु न उपाइ ।[1]

यहाँ कवि ने अतिशयोक्ति अलंकार के द्वारा नयन बाण की अमोघता का वर्णन किया है ।

उल्लेख :-

तुही जोग माया तुही बाक बानी।
तुही आदि रूपा तुही श्री भवानी ।
तुही बिशन तूं ब्रह्म तूं रुद्र राजे।
तुही विस्वभाता सदा जै बिराजै।[2]

यहाँ पर देवी भगवती के रूप को भिन्न भिन्न तरह से वर्णन करने के कारण उल्लेख अलंकार है ।

विभावना:-

नैन हरिन केहरे बैन पिक केहरे ।
जनुक सानि पर बिसिख दोऊ बाढिन धरे ।
बिना प्रहारे लगत न काढे जात हैं।
हो खतकरु हिय के माँझ सदा पिय रात है ।[3]

बाण बिना प्रहार किये ही लग रहे हैं ।इस प्रकार कारण के अभाव में कार्योत्पत्ति है साथ ही आंखों के आकर्षण की उस सीमा की ध्वनि भी है जो चितवन के विना ही अपना प्रभाव छोड देती है ।

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 871 ।

2- दशम ग्रन्थ , पृष्ठ 309 ।

3- दशम ग्रन्थ , पृष्ठ 1169 ।

मालोपमा :-

आई हुति बनि एक बाला राग माला सम
मेरे गृह मांझ दीप माला जनु वै गई।
बिछुआ की बिझक सो बीछू सोउसाइ
मानो चेटक चलाइ निज चेरो मेहि कै गई।
दसन की दिपत दिवाने देव दानौ कीने।
नैनन की कोर सो मरोरि मनु लै गई।
कचन से गात रवि थोरिक चिल चिलात
दामनी सी कामनी दिखाई आनि पै गई।।[1]

यहां बाला के सौन्दर्य प्रदर्शन के लिए रागमाला, दीप माला तथा दामिनी आदि अनेक उपमानों का प्रयोग किया गया है, जो इसके सौन्दर्यातिशय की अभिव्यक्ति में पूर्ण समर्थ हैं।

--

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 1076 ।।

उपसंहार

:o:o:o:

उपसंहार

गुरु गोविन्दसिंह के काव्य का आद्योपान्त गम्भीर अनुशीलन हमें इस निष्कर्ष पर पहुँचाता है कि वे मुख्यतया भक्ति तथा वीर रस के कवि हैं। भक्ति में सेवा का भाव (भज्-सेवायाम्) निहित है। अतः शुद्ध भक्त के लिए लोक-सेवा जीवन का विशिष्ट अंग बन जाती है। धर्म चलावन संत उबारन दुष्ट सबन को मूल उपारन ` में लोक सेवा का यही उदात्त रूप है। भक्ति और लोक सेवा की इसी भावना ने उन्हें लोक रक्षक के रूप में प्रतिष्ठित किया। वे सन्त के साथ सिपाही भी बने। जन रक्षा का सर्वभार यावज्जीवन अपने ऊपर लेने की अपेक्षा यह अधिक श्रेयस्कर था कि समाज के प्रत्येक व्यक्ति को अन्याय विरोधी एवं स्ववीर्य गुप्त बनाया जाता। गुरु गोविन्दसिंह ने यह महान् कार्य अपने भक्ति रसीय काव्य में वीर रस योजना द्वारा सम्पन्न किया। अपने आराध्य अकाल पुरुष में ऐसे ही रूप की अवतारणा उन्होंने अपने अनुयायियों के सामने की।

वास्तव में गुरु गोविन्दसिंह के सम्मुख एक दिव्य उद्देश्य था। सोई हुई जनता का जागरण कर वे उसे भ्रष्ट शासकों के अत्याचारों के विरुद्ध सशक्त विद्रोह का उपादान बना रहे थे। भक्ति के तत्कालीन शान्त रूप से यह काम न चल सकता था। युद्ध या गीता का दर्शन ही इस समय काम कर सकता था। `भामनुस्मर युद्ध च` जैसी स्थिति ही उन्होंने अपने अनुयायियों के समक्ष उपस्थित की। `सन्त सिपाही` का आदर्श इसीलिए गुरु ने रक्खा। अब ऐसे भाव्यम के चयन का प्रश्न था जिसमें जन साधारण की पहुँच हो। तथा जन साधारण को आत्मविद्रोह के लिए झकझोर सके। जनता को सत्य

आधार पर असत्य के साथ घोर युद्ध करने के लिए समुद्यत बना सके । अत: उन्होंने शृंगार रस का परित्याग करके दूसरे सर्वाधिक प्रिय रस वीर रस को अपनाया । वीर रस जन-जन की पहुँच है और प्रत्येक व्यक्ति इसे पसन्द करता है । केवल वीररस भी उनके कुछ मतलब का न था । यदि उसका अनुगमन करने वाले आपस में ही लड़भिड़ जाते ।उन्हें तो सर्वसाधारण से सदाचार वाले व्यक्तियों को मुगलों के अत्याचार के विरुद्ध खड़ा करना था। अत: उन्होंने वीर रस की अवतारणा भक्ति रस के परिवेश में ही की ।

गुरु जी के काव्यकाल में कुछ अन्य रस सिद्ध कवियों ने भी वीर रस द्वारा जनमानस को आन्दोलित करने का प्रयत्न किया था। भूषण केवल वीर रस का सहारा लेने वाले कवियों के प्रतिनिधि थे ।उन्होंने शिवा जी का गुण गान का उनके माध्यम से भारतीय मानस को मुगलशासनों के अत्याचार का प्रतिरोध करने के लिए आह्वान किया था। गुरु गोविंद सिंह भूषण के मार्ग को नहीं अपना सकते थे।उनकी अपनी सीमाएं थीं । वे भूषण के समान दरबारी कवि नहीं थे।वे भाट नहीं थे, स्वयं नेता थे । उन्हें तो केवल अकालपुरुष की ही 'जी हुजूरी' स्वीकार्य थी ।

अकाल-पुरुष का बिम्ब लोक मानस पर कैसे उतरे ,यह कठिनाई उनके सामने सब से बड़ी थी।यह कठिनाई सभी निर्गुण पन्थी कवियों के समक्ष रही है। कबीर ने इसका समाधान जन साधारण के बिम्ब लेकर निकाला ।उन्होंने लोक हृदय की पहचान करते हुए 'राम' शब्द का प्रयोग किया क्योंकि राम का अर्थ समझाने की आवश्यकता लोगों को नहीं पड़ती ।परन्तु वह 'राम' उनका अलख निरंजन था। तुलसी के सगुण अवधारी राम ने जो कार्य राम चरित मानस का पीयूष पिला कर किया, कबीर के राम ने भी इससे कम कार्य नहीं किया।गुरु गोविन्दसिंह ने भी यही परिपाटी अपनाई ।

-- दशरथ सुत तिहुंलोक बखानी ।
राम नाम का मरम है आना ।

-- कबीर ।

गुरु गोविन्दसिंह के लिए अकाल पुरुष का रूप लोगों को समझाना था। वह पुरुष जो कर्ता , ७७ सैभं , अकाल योनि आदि है। वह लोगों की समझ में तभी आ सकता है जब उन्हें काल का ज्ञान हो । वह काल जिसके द्वारा अकाल पुरुष अपने आपको सृष्टि रचना के लिए ससीम बना लेता है। उसी काल का वर्णन गुरु ने 'विचित्र नाटक' में किया है[1]। उसके लिए बिम्ब स्वभाव सुलभ थे ही। पुराणकारों ने अनन्त ऐतिहासिक पुरुष ऐसे दिए थे, जो जनता के मानस पटल पर अंकित थे। दुर्गा और शक्ति ने शुम्भ निशुम्भ राक्षसों का वध किया, राम ने रावण का और देवों ने असुरों का वध किया । इस प्रकार के प्रसंग प्रभावी बन सकते थे ।

वह ब्रह्म का काल रूप है । इस काल रूप के वर्णन में गुरु गोविन्द ने अपना विशेष चमत्कार दिखलाया । काल का यह रूप जनता के मन में गड़ गया। काल की ही उपासना उन्होंने बताई परन्तु कौनसे काल की , जो साथ ही अकाल है।[2] समय और मृत्यु दोनों से परे है। अमर है। अभय प्रदान करता है। इसलिए 'सत् श्री अकाल' का जयघोष उन्होंने प्रचारित किया । 'अमृत वेला' भी इसी दर्शन का अंग था।

ऐसा प्रतीत होता है कि गुरु नानक देव की रचना सिक्खों के लिए प्रेरणा-स्रोत होती हुई भी भाषा की दृष्टि से काल के व्यवधान के कारण कुछ दुर्बोध हो गई थी। उसी को पुनः जीवन्त बनाने के लिए तथा भक्त-सेवा निर्माण करने के हेतु गुरु गोविन्दसिंह ने 'दशम ग्रन्थ' की रचना की। यह ग्रन्थ आदि ग्रन्थ का पूरक सिद्ध हुआ। इसमें भारतीय परम्परा तथा संस्कृत साहित्य के सभी आदर्श अवतारों तथा वीर-पुरुषों की पुनरवतारणा इसीलिए की गई कि जन मानस एक बार उसी प्रकार आन्दोलित हो जाए जिस प्रकार तुलसी के राम चरित मानस ने वाल्मीकि रामायण के समझ की दृष्टि से दूर वर्ती हो जाने के कारण किसी समझ किया था। उन्होंने दशम-ग्रन्थ में कथा-चरित्र आदि के वर्णन द्वारा जहाँ पुराण परिपाटी का पालन किया है, जो

1- नमो कालकाले नमस्त्वं अकाले नमस्त्वं अपाले, ८८ तथा
कालहीन कहियत जगती काल पुरख अदेस ३४। जापु

2- सबदेवन मिलि कीयो विचारा। रोसमुद्र कहु चले सुधारा।
कालपुरख की करो बड़ाई। इस आज्ञा तह ते जिन आई।। --दशम ग्रंथ, पृ०१६७।

सर्वतोमुखी जन-शिक्षा में सहायक सिद्ध हुए, वहां उन्होंने अपने अनुयायी सिखों को इस जीवन साधना में पड़ने वाले विघ्नों और बाधाओं से भी सचेत किया। इस प्रकार दशम ग्रन्थ अपने समय की एक महान कृति है।

रिचर्डस के सम्प्रेषण सिद्धान्त की तुला पर रखने से भी गुरु गोविन्दसिंह की यह रचना अति महान सिद्ध होती है। पाठकों तथा श्रोताओं के मन में किसी काव्य की ग्रहणशीलता विषयक जो बाधाएं उपस्थित हो सकती हैं वे रिचर्डस के अनुसार :--

1- काव्य को ग्रहण करने की क्षमता का अभाव।
2- ऐन्द्रिय ग्रहण सम्बन्धी कठिनाईं।
3- अभ्यास जन्य प्रतिक्रियाएं।
4- स्मृतिगत अप्रासंगिकताएं।
5- भावुकता।
6- वर्जना
7- सैद्धान्तिक पूर्वाग्रह।

जिनका उल्लेख प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में रस सिद्धान्त और रिचर्डस का सम्प्रेषण सिद्धान्त नामक अध्याय में हुआ है। उन सभी का परिहार गुरु कवि के काव्य में भली प्रकार हुआ है।

गुरु गोविन्दसिंह ने अपने काव्य की रचना अपने पाठक को ध्यान में रख कर की है। उनके काव्य का वर्ण्य विषय तथा भाषा ऐसी ही है, जो साधारण से साधारण व्यक्ति भी समझ सकता है। तत्कालीन पाठक भी उस काव्य को ग्रहण करने में अक्षम नहीं था। यद्यपि वह सुशिक्षित और सुपठित था तथापि जिस मात्रा में लोगों ने गुरु गोविन्दसिंह का शिष्यत्व ग्रहण किया वह इस बात का प्रमाण है कि लोगों ने उनके काव्य को भली भान्ति समझा।

इस प्रकार ऐन्द्रिय ग्रहण सम्बन्धी कठिनाईं का भी अभाव है। गुरु कवि ने अपने काव्य में अति सुन्दर वाक्यांश, ध्वनि और मिश्रित बिम्बों का निर्माण किया जो पाठक या सहृदय को सहज ग्राह्य हो सके।

जैसे अकाल उस्तुति में पांच बार नमाज़ पढ़ने वाले की तुलना गीदड़, कुंजर और गधे के सर्वसाधारण बिम्बों से की गई है :--

पांच बार गीदर पुकारे परे सीतकाल
कुंचर और गदहा अनेकदा पुकार ही।
.....
.....
डूबे नरक धार मूढ़ ग्यान के बिना बिचार
भावना बिहीन कैसे ग्यान को बिचारही ।।[1]

'स्मृतिगत अप्रासंगिकता' रूपी बाधा का परिहार अवश्य ही गुरु कवि के काव्य में भिन्न ढंग से हुआ है। अर्थात उन्होंने पौराणिक गाथाओं को कहीं कहीं अपने ढंग से बदल दिया है।उदाहरणतया 'कृष्णावतार' में कवि गुरु ने योद्धाओं के नाम राजपूती और पठान परम्परा के मुसलमानी ढंग पर रखे हैं। हिन्दू नामों के पीछे 'सिंह' और मुसलमान नामों के पीछे 'खान' शब्द लगा है। जैसे नारसिंह, गजसिंह बनसिंह, अगाइखां, गैरतखां, मीरखां आदि। इस प्रकार के नाम महाभारत कालीन वातावरण में कुछ अटपटे से लगते हैं।पर कवि के (जो कवि से अधिक एक राष्ट्र नायक है) दृष्टिकोण और अभिप्राय को दृष्टि में रखने से इन नामों की उपयोगिता नापी जा सकती है। अत्याचार के विरुद्ध हिन्दू मुसलमान सभी में समान प्रतिक्रिया जागृत करने के लिए ही कवि ने ऐसा किया। इसीलिए श्रोताओं तथा अनुयायियों को यह बात अखरने के स्थान पर प्रेरणादायक सिद्ध हुई।

निहकलंकी अवतार में अभिमानी कल्कि का मीर महंदी द्वारा वध उपर्युक्त धारणा की पुष्टि के साथ साथ अहंकार का सदापतन होता है। इस बात की ओर भी संकेत करता है।इसलिए स्मृतिगत अप्रासंगिकता का यहां भी परिहार हो गया है।

1- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 19 ।

सैद्धान्तिक पूर्वाग्रह' वाली बाधा भी यहां नहीं है। गुरु गोविंद सिंह सिक्ख गुरु परम्परा में दसवें गुरु थे। उनके पाठकों के मन में अकाल पुरुष या निर्गुण ब्रह्म सम्बन्धी मान्यताएं वहीं थीं, जिनका वर्णन गुरु कवि ने अपने काव्य में किया। गुरु वाणी (आदि ग्रन्थ) के अतिरिक्त अन्यान्य शास्त्रीय ग्रन्थों को भी गुरु कवि ने पूरा पूरा लाभ उठाया।

इस प्रकार गुरु गोविन्दसिंह रीति काल के शिरोमणि जन कवि कहे जा सकते हैं। यद्यपि हिन्दी जगत ने बिहारी को यह पद सौंपा है पर प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के आधार पर गुरु गोविन्दसिंह ही इस पद के सर्वथा उपयुक्त है। इसका सब से बड़ा प्रमाण है वह जन आन्दोलन जो गुरु गोविन्दसिंह के अनुयायी सिंहों' ने भारत-धर्म की रक्षा हेतु अत्याचारों के विरुद्ध खड़ा किया। इसी में निहित है, उस महान कवि की सम्प्रेषण क्षमता।

ग्रन्थ सूची

:o:o:o:

ग्रन्थ-सूची

(क) संस्कृत ग्रन्थ

1- अग्नि पुराण — सरस्वती प्रेस कलकत्ता, 1338 ई०

2- अभिनव भारती — अभिनव गुप्त, गायकवाड ओरिएंटल सीरीज़, द्वितीय संस्करण 1956 ।

3- हिन्दी अभिनव भारती, — अनुवादक आचार्य विश्वेश्वर, अनुसंधान परिषद् दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 1960 ई० ।

4- उज्ज्वल नीलमणि, — रूप गोस्वामी

5- ऋग्वेद — वैदिक यंत्रालय, अजमेर प्रथम संस्करण ।

6- कठोपनिषाद् — गीताप्रेस गोरखपुर प्रथम संस्करण ।

7- काव्य प्रकाश — आचार्य मम्मट, व्याख्याकार, आचार्य विश्वेश्वर ज्ञान मण्डल लिमिटेड वाराणसी, सं0 2013 ।

8- काव्य मीमांसा — राजशेखर, संपादक डा० गंगासागर राय चतुर्थ संस्करण ।

9- काव्यालंकार सूत्र — आचार्य वामन, हिन्दी अनुवाद आचार्य-विश्वेश्वर, आत्माराम एण्ड सन्ज, दिल्ली 1964 ।

10- चंद्रालोक — जयदेव निर्णय सागर प्रेस बम्बई ।

11- तैत्तिरीयोपनिषाद् — गीताप्रेस गोरखपुर

12- दुर्गासप्तशती — गीताप्रेस गोरखपुर, द्वितीय संस्करण

13-	ध्वन्यालोक	आचार्य आनन्दवर्धन् , चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी 1965 ई० ।
14-	नाट्यशास्त्र	भरतमुनि, गायकवाड ओरिण्टल सीरीज़ द्वितीय संस्करण ।
15-	भगवद्भक्ति रसायन	मधुसूदन सरस्वती, अच्युत ग्रंथमाला कलकत्ता 1953 ।
16-	महाभारत	भण्डारकर ओरिण्टल रिसर्च इन्स्टीच्यूट पूना 1927 ई० ।
17-	मार्कण्डेय पुराण	निर्णय सागर प्रेस बम्बई, प्रथम संस्करण ।
18-	मालती माधव	भवभूति , अनु० शेषराज शर्मा, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, 1954 ई० ।
19-	मालविकाग्नि मित्रम्	कालिदास
20-	मेघदूत	कालिदास, अंग्रेजी अनुवादक एम० विल्सन, चौखम्बा विद्या भवन वाराणसी 1961 ई०।
21-	रघुवंश	कालिदास , निर्णय सागर प्रेस बम्बई, 1943 ई० ।
22-	रसगंगाधर	पंडितराज जगन्नाथ , चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी 1965 ।
23-	रामायण	बाल्मीकि , अनु०पांडेय रामतेज शास्त्री, पं० पुस्तकालय , काशी, , 1951 ई० ।
24-	वक्रोक्ति जीवितम्	आचार्य कुन्तक , हिन्दी अनुवादक आचार्य विश्वेश्वर, आत्माराम एण्ड सन्ज, दिल्ली 1965 ई० ।
25-	श्वेताश्वेत तरोपनिषाद्	गीताप्रेस गोरखपुर द्वितीय संस्करण
26-	साहित्य दर्पण	आचार्य विश्वनाथ , विमला टीका शालिगराम शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास 1961 ई० ।
27-	हरिभक्ति रसामृत सिंधु,	रूप गोस्वामी अच्युत ग्रंथमाला काशी, ।
28-	श्रीमद्भागवत् पुराण	गीता प्रेस गोरखपुर ।

(ख) हिन्दी ग्रन्थ

29-	हिन्दी अलंकार मीमांसा ,	भूरेलाल मनोहर प्रसाद सिंह, भारती भवन पटना ।
30-	आस्था के चरण	डा० नगेन्द्र नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली 1963 ।
31-	आलोचक और आलोचना	डा० बच्चनसिंह , विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, 1970 ।
32-	आँखों में	हरिकृष्ण प्रेमी
33-	उदात्त रस सिद्धान्त और नयी कविता,	डा० कृष्णदेव झारी, पूर्व प्रकाशन , नई सड़क, दिल्ली, 1972 ।
34-	औरंगजेब	सरयदनाथ सरकार, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय बम्बई ।
35-	कबीर	आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर (प्राइवेट) लि०बम्बई 1964 ई० ।
36-	कबीर ग्रन्थावली (सटीक)	डा० पुष्पपालसिंह
37-	कामायनी	जयशंकर प्रसाद , भारती भण्डार इलाहाबाद
38-	काव्यदर्पण	आचार्य रामदहिन मिश्र, ग्रन्थमाला कार्यालय बांकीपुर, 1947।
39-	काव्यांग दर्पण	डा० विजयबहादुर अवस्थी, दिल्ली पुस्तक सदन दिल्ली, 1962 ।
40-	गुरुगोविन्दसिंह और उनका हिंदी काव्य	डा० प्रसिन्नी सहगल, हिन्दीसाहित्य भंडार गंगाप्रसाद रोड, लखनऊ, 1963।

41- गुरु गोविन्दसिंह और उनकी हिन्दी कविता — डा० महीपसिंह, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस दिल्ली 1969 ।

42- गुरुगोविन्दसिंह का वीर काव्य — डा० जयभगवानगोयल, गुरुगोविन्दसिंह संस्थान, चण्डीगढ 1967 ई० ।

43- गुरुमुखी लिपि में हिन्दी काव्य — डा० हरिभजनसिंह, भारतीय साहित्य मंदिर दिल्ली 1963 ।

44- चिन्तामणि (भाग 1) — आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, इंडियन प्रैस लि० प्रयाग, 1953 ।

45- चिन्तामणि (भाग 2) — आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, सारस्वती मंदिर वाराणसी, 1962 ।

46- दशम ग्रन्थ की पौराणिक पृष्ठभूमि — डा० रत्नसिंह जग्गी, भारतीय साहित्य मंदिर, फव्वारा, दिल्ली ।

47- दिव्य जीवन (द्वितीय ग्रंथ) — श्री अरविन्द श्री अरविंदआश्रम पांडेचरी

48- पल्लव — सुमित्रानन्दन पंत

49- पंजाब का इतिहास — डा० कृपालसिंह नारंग, यू०सी० कपूर एण्ड सन्ज, दिल्ली ।

50- पाश्चात्य समीक्षा दर्शन — डा० जगदीश चन्द्र जैन, हिन्दी प्रचारक संस्थान वाराणसी, 1969।

51- रस मीमांसा — आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणीसभा, काशी, द्वितीय संस्क० 1954 ।

52- रससिद्धान्त — डा०नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली 1964 ।

53- रस सिद्धांत और सौन्दर्य शास्त्र, डा० निर्मला जैन
नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली-7 1967।

54- रस सिद्धान्त :स्वरूप विश्लेषण, डा० आनन्दप्रकाश दीक्षित, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली 1960।

55- रामचरित मानस गोस्वामी तुलसीदास, नागरीप्रचारिणीसभा काशी।

56- रिचर्ड्स के आलोचना सिद्धांत, अनु० डा० शम्भुदत्त फा भारतीभवन, पटना।

57- रीतिकाव्य की भूमिका डा० नगेन्द्र, गौतम बुक डिपो, दिल्ली द्वितीय संस्करण 1963।

58- शिवाजी हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर, बम्बई, सरदारनाथ सरकार 1929।

59- सौन्दर्यतत्व और काव्य सिद्धान्त, अनु०मनोहर काले, सुरेन्द्रबारालिंगे नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली।

60- संस्कृति के चार अध्याय रामधारीसिंह दिनकर, राजपालएण्ड सन्ज, दिल्ली, 1956।

61- सिख इतिहास ठाकुर देशराज। ग्रामोत्थान विद्यापीठ संगरिया सं० 2011

62- हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, इंडियन प्रेस लि० प्रयाग।

63- हिन्दी साहित्य का आदिकाल, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना, 1952।

64- हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास(षष्ठभाग) सं०डा०नगेन्द्र, काशी-नागरी प्रचारिणीसभा, बनारस।

65- हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास, अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, पुस्तकभंडार, पटना।

66- हिन्दी साहित्य बीसवीं शताब्दी, आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी।

67- हिन्दी साहित्य कोष, प्रथम भाग, सं० डा०धीरेन्द्र वर्मा ज्ञानमण्डल लि०वाराणसी, 2015वि०।

4

68- चिन्तामणि (भाग-1) इंडियन प्रेस लि० प्रयाग संस्क०, 1953 ।

69- ,, ,, (भाग 4) सरस्वती मन्दिर वाराणसी, पंचम संस्क०1968।

70- सिद्धान्त और अध्ययन -गुलाबराय आत्माराम एण्ड सन्ज, 1967 ।

71- बिहारी रतनाइ, सं० गणपतिचन्द्र गुप्त, बिहारी, राजकमल प्रकाशन , दिल्ली, 1968 ।

72- ब्रजभाषा एवं खड़ी बोली के व्याकरण का तुलनात्मक अध्ययन) डा० गेन्दालाल शर्मा, भोठ प्रकाशन प्रतिष्ठान भोठ 1967

73- ब्रजभाषा व्याकरण की रूपरेखा) डा० प्रेमनारायण टंडन

74- भक्ति का विकास डा०भुन्शीराम शर्मा चौखम्बा विद्याभवन, बनारस 1953,

75- भारतीय काव्यशास्त्र की परम्परा) डा० नगेन्द्र ,नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई सड़क दिल्ली।

76- रस अलंकार और प्रिंसिपल डा० रामनाथ पाण्डेय ।

--

(ग) पंजाबी ग्रन्थ

77- आदिग्रन्थ (शब्दार्थ) प्रकाशक बाबा हाकिमसिंह तेजासिंह, 1936

78- कोष श्री दशम ग्रन्थ, सोनीलालसिंह, जनक पुस्तक भंडार संगरूर 1945इ०।

79- गुरु छंद दिवाकर भाई काहनसिंह, भाषा विभाग पंजाब पटियाला

80- गुरु विलास भाई सुक्खासिंह

३८- गुरु गोविंदसिंह जी दी वाणी विच सुतंत्रता दी भावना — डा० रत्नसिंह जग्गी, गुरुगोविन्दसिंह फाउंडेशन, चण्डीगढ़ चण्डीगढ़, १९८१ ई० ।

३८- जीवनकथा श्री गुरुगोविंदसिंह — प्रो० करतारसिंह, लाहौर बुकशाप लुधियाना १९५१ ई० ।

३३- दशम ग्रन्थ-- श्री गुरु गोविन्दसिंह, भाई जवाहरसिंह, कृपालसिंह, अमृतसर सं० २०२४

३४- दशम ग्रन्थ(सटीक) ज्ञानी बिशनसिंह, खालसा कालेज, अमृतसर ।

३५- दसम ग्रन्थ रूप ते रस — डा० तारनसिंह, गुरु गोविन्दसिंह फाउंडेशन, चण्डीगढ़ १९८१ ई०

३६- पंजाबी साहित्य दा इतिहास- डा० गोपालसिंह, जसवन्तपब्लिकेशन्स पहाड़गंज, नईदिल्ली १९७८ ई०)

३७- महानकोष — भाई काहनसिंह, दरबार पटियाला, पटियाला १९३० ई०

३८- शब्द भूमि, — भाई रणधीरसिंह, सिख हिस्ट्री सोसायटी अमृतसर २०१८ वि० ।

३९- संक्षिप्त जीवन गुरु गोविंदसिंह, — डा० त्रिलोचनसिंह, गुरुद्वारा प्रबन्ध कमेटी, सीसगंज, चांदनीचौक, दिल्ली १९७३ई०।

--

(घ) अंग्रेजी ग्रन्थ

(B) English)

Aesthetics and Literary Criticism R.B.Patankar
Nachiketa Bombay 1969

Critical approaches to Literature-David Daiches Prentice-Hall, Literature Series 1956.

Encyclopedia of Religion & Ethics Vol. III Edt. James Hastings
T&T Clark 38 George street Edenburg 1952

Evolution of Khasla Dr. Indubhusham Banerjee
A.R. Mukherjee, 2 College Square Calcutta 1947

History of Punjabi Literature Dr.Mohan Singh.
Dr. Mohan Singh Diwana Khalsa College Amritsar

History of Sikhs J.D.Cunnigham
S.Chand& Co. Delhi

History & Philosophy of Sikh Religion Dr.Kharan Singh
Language Department Punjab Patiala.

Jap Translated by Brijinder Singh
Amritsar 1925.

Philosophy of Riteric I.A. Richards.
Oxford University Press 1936

Practical Criticism I.A. Richards
Routledge and Kegam Paul, London, 1929.

Principal of Art R.G.Colling wood.
Clarendon Press, Oxford, 1938

Principles of Literary Criticism L.Eher Cronbey.
Vora Publication Bombay 1958.

Religious Policy of Mughal Emperers Shri Ram Sharma
Asia Publication Bombay 1972

Soviet Literature Today Jeorge Rabby
London 1946.

The Tenth Master- Guru Gobind Singh Foundation
Chandigarh 1967.

P.T.O.

The Dance of Shiva Anand Kanti Sh. Coomara Swamyx
Asia Publication Bombay 1956
The Poetry of Dasam Granth Dr.D.P.Ashta.
6 Jor bagh Road New Delhi 1958
The Practical Sankrit English Dictionery V.S.Apte
Prasad Prakashan Poona 1957.
The Making of Literature Scott James.
Seckor & Warburg London 1956.
The Meaning of Meaning. C.K.Ogden & I.A.Richards.
Rontledge and Kegam Paul 1953.
The Sikh Religion Vol V Macauliff. S. Chand & Co New Delhi 196
Three Lecture Bosamquet
Transformation of Sikh Religion Sir Gokul Chand Narang.
New Book Society of India New Delhi 1950.

पत्रपत्रिकाएं

परिशोध (हिन्दी) गुरु गोविन्दसिंह अंक 1967 ,
हिन्दी विभाग पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ ।

परख (पंजाबी) गुरु गोविन्दसिंह अंक, 1967 ,
पंजाबी विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय चण्डीगढ ।

साहित्य भारती (हिन्दी) प्रथम अंक पंजाबी विश्वविद्यालय पटियाल

सिख सिध्दु (अंग्रेजी) कलकत्ता गुरुगोविन्दसिंह अंक, दिसंबर 1966,
जनवरी 1967 ।

254122

:o:o:o:o:o:o:o: